॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीहनुमते नमः ।

श्रीभक्तमाल

टीका, तिलक, और नामावली सहित ।

श्री अयोध्याजी प्रमोदवनकुटिया निवासी

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद

विरचित

—*III*—

श्रीकाशी चन्द्रप्रभा प्रेस में मुद्रित ।

१९०५

* श्रीमारुतिजी *

(S. R. S. B. P.)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमतेनमः ॥

श्रीभक्तमाल

BHAKTA MÁLA,

सटीक, अर्थात्

स्वामी श्री १०८ नाभा जी कृत मूल छप्पै;

तथा

श्रीप्रियादासजी प्रणीत टीका कवित्त,

अनेक प्रतियों से बड़े परिश्रम से संशोधित

और

"भक्ति सुधाविन्दु स्वाद"

भाषा वार्तिक तिलक

जिसको

श्रीप्रमोदवन बड़ी कुटिया, अयोध्या

श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद

ने रचा; और

जिला गया जी के वकील, मौ॰ सीतामढ़ी बुलाकीपुर निवासी

बाबू श्रीबलदेव नारायण सिंह जी

ने छपवाकर प्रकाशित किया ॥

1905. S. R. S. B. P.

श्री अयोध्या मिथिलाभ्यां नमः ।

श्री चारुशीलादेव्यैनमः ।
श्री चन्द्रकलादेव्यैनमः ।
श्री मन्त्रेश्वरीदेव्यैनमः ॥

—:o:—

वैष्णवे भगवद्भक्तौ प्रसादे हरिनाम्नि च ।
अल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैवजायते ॥

परहित बस जिन के मन माहीं । तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

पूजनीय प्रिय परम जहांते ।
मानिय सबहि राम के नाते ॥

"हरि के जे बल्लभ, ते दुर्लभ भुवन माँझ, इनहिं के पद रेणु आशा जिय करो है । योगी जपी तपी, तासों मेरो कछु काज नाहिं, प्रीति प्रतीति (प्रतीति) रीति मेरी मति हरी है ॥"

सीताराम

श्री हनुमते नमः ।

श्रीचारुशीलादेव्यै नमः श्रीचंद्रकलादेव्यैनमः

"देखिय रूप नाम आधीना ।
रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना" ॥

जेहिकर जेहिपर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू" ॥
"जाकी सुरति लगी है जहां ।
कहै कबीर सो पहुंचै तहां" ॥
"सीतापति सेवक सेवकाई ।
कामधेनु शत सरिस सुहाई" ॥

"सब सन्तन निर्णय कियो ।
श्रुति, पुराण, इतिहास ।
भजिबे को दोई सुघर, ।
कै हरि कै हरिदास" ॥

श्रीअयोध्या प्रमोदवन कुटिया

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद सौभाग्यकला (रूपकला)

सम्वत् १९६० सन् १९०३

जानिय तबहि जीव जग जागा।
जब सब विषय विलास विरागा॥
होय विवेक, मोहतम भागा।
तब सियराम चरण अनुरागा॥

॥ श्रीगुरवेनमः ॥

श्रीसीताराम

नमोनमोब्रह्मण्यो-

वैष्णवेभ्योनमोनमः ।

“यह सोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेश ।
बरनै शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश ॥”

जय श्रीसिय, सियप्राणप्रिय,
सुखमा शील निधान ।

भरत, लखन, रिपुदमन, जय,
जन रक्षक हनुमान ॥

“यहि विधि कृपा रूप गुण धाम राम आसीन ।
धन्य ते नर यहि ध्यान जे रहत सदा लय लीन ॥”

श्री अयोध्या सरयू

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद ।

१९६०] (प्रमोदबन कुटिया) [१९०३

श्रीभक्तिसुधाबिन्दुस्वाद।

(१९६०) भारतजीवनप्रेस.

श्रीसीताराम

सौभाग्यकला (रूपकला), प्रमोदवन कुटिया श्री अयोध्याजी

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद

श्रीभक्तमालतिलककार ॥

C. P. Press Benares City.

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्त्रेश्वरीदेव्यै नमः ।

"श्रीहनुमत जन्म विलास" में नामानुरागी मुनूशी रामप्रम्बे सहाय जी ने लिखा है कि

(चौ०) "एक दिवस, हरि हरिरस पागे। योगाभ्यास करन तहँ लागे ॥ नैनमूंदिबैठेगुणसागर । तपनिधान कपिवंशदिवाकर ॥ बह्यो प्रस्वेद शरमअतिकीन्हा । गुप्तभेव गिरिनायक चीन्हा ॥ सो श्रमबिन्दु ईश गहि-लीन्ही । जगतारनकी इच्छा कीन्ही ॥ शिवानाथ तेहि राख्यो गोई । यह प्रसङ्ग जाना नहिं कोई ॥ हे मुनि-गण! हे तपबलरासा । यहां भविष्य सुनो इतिहासा ॥ ह्वै है जब कलि कर परचारा। छीजै भक्तिभाव आचारा ॥ तब गिरीश सो विन्दु सुहाई। नभमग तजिहिं देवसुख-दाई ॥ (दोहा) गहै भूमि बरबिन्दु सो, हरि जन काज विचार । उपजै ताते रूप शुभ, भक्ति योग आगार ॥ नैन मूंदि बैठे कपी, यहिते होइ अनैन । "हनुमतवंशी" विमल मति, योग भक्ति तप ऐन ॥ सो अयोनिजा, योगधन, जाको वर्ण न ज्ञात। स्वयं सिद्ध, पातक विगत, जग में हो विख्यात ॥ "भक्तमाल" अद्भुत रचै, पूरै जन मन काम। "नाभा नाभा" सब कहैं, "नभोभूज" हो नाम ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमौद्गल्यऋषीश्वरायनमः

॥ श्रीमाण्डकरणी ऋषीश्वराय नमः ॥

नमो नमो ब्राह्मणेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ।

(दोहा)

श्रीसीता सीतारमण, गौरी गौरीकन्त ।
सानुकूल नित दोउपर, रहैं बिबुध हनुमन्त ॥१॥
मनिजर् *विष्णुसहाय, जो, बी० ए० शीलनिधान ।
शास्त्री श्रीमणिराम रत धर्म भक्ति विज्ञान ॥ २ ॥

(* श्रीकाशीचन्द्रप्रभाप्रेस म्यानेजर्)

श्रीगणेशाय नमः। श्रीहनुमते नमः।

॥ श्रीरामानन्दाय नमः ॥

सुप्रसिद्ध सम्पादकीय समालोचना।

श्रीकाशी "भारतजीवन"

८ अगस्त १९०४ ई०।

("साहित्य-समाचार")

"श्रीभक्तमाल। टीका, तिलक और नामावली के सहित। श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद विरचित। छपाई सफ़ाई बहुत अच्छी है। विशेषता यह है, कि पुस्तक शुद्धता पूर्व्वक छपी है॥"

श्रीकाशी कान्यकुब्ज सभा।

श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद जी की रची हुई, "श्रीभक्तमाल जी" तथा प्रियादास जी कृत टीका का भी तिलक, "श्रीभक्तिसुधा विन्दु स्वाद" पुस्तक में सर-

लता और सुगमता ऐसी रक्खी गई है जिससे सर्व साधारण मनुष्य उस्को अच्छी तरह समझ सक्ते हैं; क्योंकि पूर्व समय की हिन्दी और आधुनिक हिन्दी में बहुत अन्तर पड़ गया है। जैसे "पृथ्वीराज रायसो" की हिन्दी बड़ी विचित्र है वैसेही प्रियादास जी की टीका की हिन्दी भी अस्फुटार्थक है।

इस्में "स्थालीपुलाक" न्यायेन लिखा जाता है अन्य छापे में छपी हुई पुस्तक में खिचड़ी के भांति मिला हुआ पदच्छेद रहित (६९) कवित्त का आकार देखिये, और उसी कवित्त को तिलककर्ता ने पृष्ठ २६८ पद च्छेद, कामा (अल्प विश्राम), प्यारन्थिसिस (कोष), आदि देकर कैसा स्पष्ट कर दिया है तथा वार्तिक तिलक इस्का कैसा हृदय ग्राही है कि जड़ बांध कर सीधी रास्ते से समझाया है सो देखने ही योग्य है।

और एक बात यह अपूर्व है कि जो जो कथा टीकाकारने छोड़ दी है उन्हे ढूंढ़ २ कर पूरी किया है।

छपाई तथा काग़ज़ सुन्दर है, और छप्पै के अनन्तर विषय सूची का टेबल् (यंत्र) देकर तब विषय उठाया है।

किन्तु यावत् कथा का विश्राम अपने ही इष्ट में बलात्कार से खींच कर किया है, पर यह भी साधारण काम नहीं है।

इसकी भाषा भी बहुत रमणीय, और कहीं कहीं पुनरुक्तियुक्त, है। वैष्णवनामावली अर्थात् (नवभक्तमाल) भी इसके आदि में है।

जगह जगह श्रीमानस रामायण आदि का, तथा संस्कृत भागवत आदि का, प्रमाण भी दिया है। अभी इस ग्रंथ का प्रथम भाग इस सभा को भेजा गया है।

श्रीकाशीजी टेढ़ीनींब	(हस्ताक्षर) मणिराम शास्त्री
ता: ३ जुलाई सन् १९०४	सहकारीमंत्री, कान्यकुब्ज सभा

स्वामी श्री ६ गङ्गादास जी महाराज,

तथा

पण्डितवर श्री ६ रामवल्लभा शरण जी महाराज।

(श्री अयोध्या जी, श्रावण.शुक्ला सप्तमी १९६१)

श्रीरामायण, श्रीभक्तमाल, श्रीभागवत और श्रीभगवद्गीता, समस्त वैष्णवों के प्राण तो हैं हीं॥ टिप्पनी तो लखनऊ और बम्बई में भी छपी ही है, परन्तु श्री १०८ भक्तमाल जी और भक्तिरसबोधिनी का तिलक आज तक हमारे देखने सुन्ने में नहीं आया है; इस अभाव को इस वार्तिक भाषा तिलक "भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद" ने दूर किया।

छप्पय तथा कवित्त की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया हुआ है। चन्द्रप्रभा प्रेस की उत्तमता का कहना ही क्या है। इस तिलक का सहायता से अब साधारणतः सब को बड़ी सुभीता होगी; और प्रेमी जन तो अतिशय आनन्द प्राप्त करेंगे। अनेक कथा जो तिलककार ने लिखी हैं उनके संग्रह में भी, कुछ थोड़ा परिश्रम न हुआ होगा। जहां प्रबन्ध में बहुत गुण होते हैं, वहां दोषों का होना भी अवश्य ही है। किन्तु, हितकारी तिलककार की सच्ची दीनता प्रार्थना, उससे बढ़ी हुई है॥

॥ श्रीः ॥

ॐ नमोभगवते गुरवे हनुमते
श्रीरामदूताय मम सर्वविघ्नविनाशकाय
श्रीसीतारामभक्ति प्रदाय ॥

(दोहा)

जय श्रीसियपिय-दूत कपि, महाबीर हनुमान।
"सौभाग्या" पितु मातु हितु रक्षक गुरुभगवान ॥१॥
सियपिय अनुप सुभाव, ब्रत, श्रीभक्तन को टेक।
वरनि यथामति तव कृपा, भक्ति रहस्य अनेक ॥२॥
श्री कर कंजन मांहिं सोइ अरपौं मन बच काय।
कृपासिन्धु करुणायतन, सो लीजे अपनाय ॥३॥ पुनि
विनवौं प्रभु जोरि कर, मोहि कृपा करि देहु। श्री-
सियसियपिय पद कमल अविरल अमल सनेहु ॥४॥
नमो नमो श्रीमारुति जनरक्षक बलवान। महा-
बीर श्रीअंजनी-नन्दन, बुद्धिनिधान ॥५॥
श्रीअयोध्याप्रमोदवन } सौभाग्यकला (रूपकला)

(दो०) भक्ति-ज्ञान-निजधर्म-रत, शास्त्री श्री मणिराम।
धन्यवाद तेहि शत सहस, सहित सुप्रेम प्रणाम ॥
मार्गशीर्ष शुक्ल १९६२ } दीन सीतारामशरणभगवान् प्रसाद

॥ श्रीः ॥

काशीकान्यकुब्जसभातः
समालोचना
तथा
धन्यवादः

श्री युत-महामान्य-धन्यतम-सौजन्यमूर्तिभिः श्री-सीतारामशरणै भगवत्प्रसादैः श्री १००८ नाभास्वामिकृत-भक्तमालग्रन्थस्य तदुपरि श्री १०८ प्रियादासप्रणीतटीकाप्रवन्धस्यापि निर्मितो भक्तिसुधाविन्दुस्वादनामको व्याख्यानरूपः संदर्भो भक्तिरसिकजनानां चेतस्सु परमाह्लादमुत्पादयति ।

प्रायश्चैदृताशी सरलता सरसता च व्याख्यानग्रन्थेषु न क्वापि दृग्गोचरीभूता, प्रशंसनीयः खलु व्याख्यातुर्महाशयस्य परिश्रमः किंच वहुस्थलेषु प्रियादासेन यः कथाभागो न समासादितः, सोपि भगवद्भक्तिपरायणैर्भगवत्प्रसादैर्महता परिश्रमेणान्विष्य परिपूर्तिमापितः ॥

तथाच अस्य ग्रन्थस्य पूर्वोभागस्तिलककर्त्रा प्रेषितस्तत्समालोचनायां सभातो यानि दूषणानि परिमार्ष्टुं विज्ञप्तिः कृता तद्विषये यथाशक्यं यतते ग्रन्थकारः ॥

समायातद्वितीयभागे ऋष्यशृङ्ग (शृङ्गीऋषि) वृत्ता-न्तं समीक्ष्यापूर्वतरं साश्चर्य्या भवन्ति सभ्याः ॥

एवंच २१७ पृष्ठे स्वपचवाल्मीकेः कथापि भगवद्भक्तिं सुदृढं दृढयति ॥ २०८ पृष्ठे गोपिकावृन्दस्य भगवच्चरणार-विन्दे परमप्रेमबोधिकां गीतिं दृष्ट्वा प्रस्तरमयहृदयस्यापि द्रवता भवति । इत्थमनेकगुणगणगुम्फितोयं ग्रन्थःसु भक्तजनानां परमोपादेयः ॥

भाषापि प्रसंशनीया, पुष्टचिक्कणपत्राणामुपरि मुद्रण मिति शम् ।

श्रीकाशीजी टेढ़ीनींम ता: १७ मार्च सन् १९०९ (हस्ताक्षर) काशीनाथ मंत्री, कान्यकुब्ज सभा

(हस्ताक्षर) *Mani Ram Shastri.*

सहकारी मंत्री, का० स०

पण्डित श्री ५ रामवल्लभाशरण जी,

तथा

पण्डित श्री ५ रामनारायणदास जी ।

(श्रीअयोध्याजी, १४ नवेम्बर १९०५)

"भक्तिसुधाबिन्दुस्वादनामक व्याख्यारूप सन्दर्भस्य काशी कान्यकुब्ज सभाया या सुष्ठुतरा समालोचनाऽस्ति, तद्विषये श्रीपण्डित रामवल्लभाशरणस्य श्रीपण्डित राम-नारायणदासस्य च सम्मतिरस्ति ॥"

श्री काशी "भारतजीवन"।

(८ अगस्त १९०४)

"श्रीभक्तमाल। टीका, तिलक सहित।

श्रीसीतारामशरणभगवान्प्रसाद विरचित।

छपाई सफ़ाई बहुत अच्छी है। विशेषता यह है कि पुस्तक शुद्धता पूर्वक छपी है॥"

कविवर श्रीसर्बरीश जी के कृपापात्र

पंडित श्री रामाधारी पाण्डेय, तथा श्री राधामोहन सहाय

(सोरठा)

"भक्तमाल" सुखधाम, मोहबिनाशन अघहरन।
रीझत सीताराम, प्रेम सहित नित पढ़त ही॥

(कवित्त)

अमिय सु "भक्तमाल," गुरुनिदेश 'मन्द्राचल,' वेद औ पुराण अति अम्बुध अपार है। कृपासिन्धु नाभा स्वामी मथिकै प्रगट कियो, जासो साधु भक्त औ जगत उपकार है॥ प्रियादास बाक ससि सोभित सुछन्द सुचि, 'भक्तिरसबोधिनी' सु रैन राका सार है। 'बालक,' चकोरनि "सौभाग्यकला" जोहि ताहि, "भक्तिसुधाबिन्दु स्वाद" रच्यो मन हार है॥

गोरखपूर, १५-११-१९०५ } सा० वि० श० रामाधारी पाण्डेय,
सी० रा० राधामोहन सहाय (बालक)

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभारतधर्ममहामण्डल

श्रीनिगमागमचन्द्रिका।

(कार्तिक-पौष १९६२ । पृष्ट ३२५।३२६)

"भक्तमाल, (टीका तिलक और नामावली सहित) श्रीअयोध्या जी, प्रमोद बन कुटिया निवासी, श्रीमान् सीतारामशरण भगवान्‌प्रसाद जी विरचित। अहा! किस सुन्दर भक्तिपूर्ण प्रेमभाव के साथ यह पुस्तक छापी गई है, मानो मोती पिरोये हैं। यह इस सुन्दर पुस्तक का तीसरा भाग है जो हमें प्राप्त हुआ है; इस से पीछे इसी पुस्तक के पहले दोनों भाग भी ऐसी ही मनोहरताई से छापे मिले हैं। पहले दो भागों में सत्युग, त्रेता, और द्वापर युग के भक्तों का वृत्तान्त है और इस तीसरे भाग में कलियुग भक्तावली आरम्भ हुई है। इस तृतीय भाग में कलियुग के ४० (चालीस) भक्तों की कथा गाई गई है। पहले श्री १०८ नाभा जी कृत मूल छप्पै; फिर श्री प्रियादास जी प्रणीत टीका कवित्त, बहुत ही परिश्रम के साथ अनेक प्रतियों से शोधकर छापे हैं; और उनसे नीचे भाषा वार्तिक तिलक (टीका), श्री रामरसरंगमणि जी की सहायता से, श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी द्वारा रचित है, जिसने इस ग्रन्थ के अभिप्राय को बहुत ही सुन्दर और सरस कर दिया है।

यह पुस्तक श्रीमान बाबू बलदेव नारायण सिंह जी वकील गया ने बड़े प्रेम से छपवाकर प्रकाशित की है। भक्तमाल प्रेमियों के लिये अत्यन्त मन-मोहनी पुस्तक है। " (मूल्य तीन भागों का ३। है)

श्री अयोध्या कनकभवन निवासी परमहंस श्री ६ सीताशरण महाराज जी के शिष्य टाँडा निवासी कवीश्वर पंडित श्री रामगया प्रसाद जी बेदान्ती --

(सोरठा) मारुति दीन दयाल, जाकी कृपा कटाक्ष ते।
प्रगट्यो तिलक रसाल, बिनवौं युगकर जोरि तेहि॥

जिसे देखतेही सर्व साधारण को सच्ची भक्ति का उपदेश और श्रद्धा हो, श्रीभक्तिसुधाबिन्दु स्वाद (श्री भक्तमाल) का तीसरा भाग भी बहुत प्रेमियों के कर कमल में देख पड़ता है। अपने रस के अतिरिक्त रसिक तिलककार की रसज्ञता अपर रसों में भी चमत्कृत ही प्रतीत होती है; वरञ्च भक्तों के चरित्रों से उनके रसों का विलक्षण प्रकाश झलकता है। प्रसिद्ध भक्तों के ऐतिहासिक समय के अनुसन्धान में प्रेमी जी ने अपने अमूल्य समय को कम नहीं लगाया है। भाषा के कठिन शब्दों के अर्थ प्रत्येक कवित्त और छप्पय के अनन्तर दर्शा दिये गये हैं। सरलता, सुगमता, शुद्धता और सुन्दरता का कहना हीक्या है॥

(दोहा) भक्त चकोरन के हृदय, जो लखि होत अनन्द।
त्रिबिधि ताप हर तिलक सोइ, उदय सुपूरण चन्द॥

शास्त्री श्री मणीराम शर्म्मा ।

श्रीकाशीजी, ७-१-१९०६

॥ श्रीः ॥

श्रीरामचन्द्रचरणाब्जपरागराग-
संमग्नशुभ्रवपुषा मधुपेन साम्यम् ॥
संप्राप्य तद्रससुपाननिमग्नचेता-
दीनातिदीनहृदयो भगवत्प्रसादः ॥१॥

हृन्मन्दिरेऽस्य करुणावरुणालयस्य
जाता कदाप्यखिललोकहितार्थबुद्धिः ॥
किं कुर्महे कथमसौ खलु सर्वलोकः
पीयूषभक्तिरसबिन्दुमपि प्रपेयात् ॥२॥

निर्धार्य्य लोकगतसच्चरितद्वयस्य
श्रीभक्ततद्भगवतोः परमां प्रतिष्ठाम् ॥
यद्यप्यहो द्वयमपीह दुरूहमस्मात्
कं वर्णयामि मम शक्तिगतोऽपि भूयात् ॥३॥

सेतुद्वयं विरचितं भवदुस्तराब्धौ
नाभाभिधैस्तुलसिदासमहात्मभिश्च ॥
तेनेह कर्तुमनसा खलु राजमार्गं
लौल्यं पुरा भगवतश्चरिते वितेने ॥४॥

संचिन्त्य यद्भगवतः स्वचरित्रतोऽपि
भक्तस्य सच्चरित एव विशेषप्रेम ॥
श्रीभक्तमालगतभक्तचरित्रटीका-
टीकां ततः सुतनुते ऽतिसुगम्यगद्यैः ॥५॥
न श्रीप्रियादासमहात्मना यो-
लब्धः कथायाः परिशेषभागः ॥
सोऽन्विष्य दत्तो भगवत्प्रसादै-
र्विभूषितो रामचरित्रतोऽपि ॥६॥
भक्ताः सदा चातकचेष्टया यं
तृषार्दिताः स्वातिसुधाऽमृतस्य ॥
विन्दुं समाकाङ्क्षितवन्त एव-
स ग्रन्थरूपेण समुद्बभूव ॥७॥
रूपाख्या सौभाग्यनाम्नी कला या
श्रीमत्सीतारामयोः संस्थिताऽऽसीत् ॥
आयाता सा भक्तरूपेण भूमौ
लोकास्तस्मात्तां तथैवाभ्यनन्दन् ॥८॥
इति जनकतनूजा जानकीजीवनोऽपि-
जगति जयतु टीका भक्तिविन्दुश्च जीयात् ॥
भगवति सुखधाम्नि ग्रन्थकर्तुश्च भक्ति-
र्भवतु सततमाशंसुर्मणीरामशर्म्मा ॥९॥

"श्री वेङ्कटेश्वर समाचार" ।

[२३ फेब्रिवरी १९०६]

नाभाजी के लिखेहुए कितने भागवतों की कथा इस्में नहीं है । खैर ! जो कुछ लिखा गया है बहुत सुन्दर लिखागया है । छपाई भी बहुत अच्छी है । पुस्तक संग्रह करने योग्य है ॥

"श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" ।

(१३ एप्रिल् १९०६)

भक्तमाल । श्रीस्वामीनाभा जी कृत मूल छप्पय, प्रियादास जी प्रणीत टीकाकवित, तथा श्रीसीताराम शरण भगवान्प्रसादजी (अयोध्याप्रमोदवनकुटियानिवासी) कृत भाषा वार्तिक तिलकसहित । इस्का तृतीय भाग पहिले प्राप्त हुआ था । अब प्रथम और द्वितीय भी मिले हैं । प्रत्येक भाग का मूल्य १, है । पुस्तक का विषय जैसा उत्तम है, छपाई इत्यादि भी वैसीही अच्छी है । वैष्णवोंको तो अवश्य मँगानी चाहिये ॥

श्रीकाशी "भारतजीवन" ।

[५ मार्च १९०६]

श्रीभक्तमाल टीका तिलक और नामावली सहित । श्रीअयोध्या जी प्रमोदवन कुटिया निवासी

श्रीसीतारामशरणभगवान् प्रसाद विरचित । यह भक्त-माल ग्रन्थ भक्त पुरुषों के अवश्य धारण करने के योग्य है। इस तृतीय माला में कलियुग के चालीस भक्तों की कथा उत्तम रूप से वर्णित है। छपाई सफ़ाई प्रशंस-नीय है।

NABHA SWAMI'S BHAKTA MÁLA, With annotations by Shri Sita Ram Sharan Bhagavan Prasad of Ayodhya, published by B. Baldev Narayan Sinha a Pleader of Gaya,—will prove a very valuable addition to every efficient library of Hindi literature.

10-1-06.　R. MAHESH PRASAD, B. A.
HARJIVAN LAL, B. A.

I have gone through the first three volumes of the work. It is a book I have read with keen interest and much pleasure. I think every Hindi library should have a copy of this valuable publication, and no Hindu family should be without a copy of this book which is bound to evolve sincere love for the Maker in any mind it meets.

Nowgong, Bundelkhand.　MATHURA PRASAD, B. A.

Registered under Act XXV of 1867:
(Office of the Registrar and Superintendent, Govt Book Depot, United Provinces, Allahabad)
(Part III.) No. 203 Dated the 16 th February 1906.

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमते नमः ।

श्रीवैष्णव नामावली

अर्थात्

अष्टोत्तरशत वैष्णवों के नामों की

मंगलमयीमाला ।

सीतारामशरण भगवान् प्रसाद

विरचित ॥

"हरि को निज जस सों अधिक भक्तन जस पर प्यार"

श्रीकाशीजी

चन्द्रप्रभा प्रेस में मुद्रित

सम्वत् १९६० सन् १९०३ ई०

दूसरी आवृत्ति) S. R. S. B. P. (१००० प्रतियां ।

श्रीहनुमते नमः ।

——:o:——

श्रीवैष्णवनामावली का सूचीपत्र ।

श्री वैष्णवनामावली का सूचीपत्र ।

श्री वैष्णवनामावली का सूचीपत्र।

श्री वैष्णवनामावली का सूचीपत्र।

शुद्धि—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१९	कृषि	ऋषि
१९	७	टोक	कोट

॥ श्रीः ॥

" मंगल मूल विप्र परितोषू "

"मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ"

" मुदमंगल मय सन्त समाजू "

"सकल सुमंगलमूल जग, सिय पिय चरण सनेहु ॥"

मंगलमयी माला,

अथवा, १०८ वैष्णवों की (अष्टोत्तरशत) नामावली।

:o:

श्लोक।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।

सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवल्लभाम् ॥

रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥

मंगलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् ॥

॥ चौपाई ॥

श्री गुरु पद रज विमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥
भाव, कुभाव, अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिशि दसहू ॥
नाम प्रसाद शम्भु अविनाशी। साज अमंगल मंगलराशी ॥
मंगल मूरति मारुतनन्दन। सकल अमंगलमूल निकन्दन ॥
जगमंगल गुण ग्राम राम के। दानि मुक्ति धन धर्म धाम के ॥

सुजन समाज सकल गुणखानी।
करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥

॥ दोहा ॥

सन्त सरलचित जगतहित, जानि सुभाव सनेहु।
बालविनय सुनि, करि कृपा, सियपिय पद रति देहु ॥

सीतारामशरण भगवान्प्रसाद सौभाग्यकला(रूपकला)

॥ श्रीमते हनुमते नमः ॥

१०८ वैष्णवों की नामावली

सुजन समाज सकल गुण खानी ।
करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥

(१)

श्रीसम्प्रदायभूषण भगवान् श्री १०८ रामानन्द स्वामीजीमहाराज के शिष्य जो श्री १६ सुरसुरानन्द जी, तिनके शिष्य श्री बलीयानन्द जी, उनके सेउरिया स्वामी, उनके श्रीबिहारीदास जी, उनके श्रीरामदास जी, उनके श्री बिनोदानन्द जी, उनके परम कृपापात्र श्री ६ धरनीदास जी जिनकी जगह "माँझी" जिला सारन श्री सरयूतट में है, उनके शिष्य श्री करुणा-निधानजी, उनके श्री केवल रामजी, उनके शिष्य श्री ६ स्वामी रामप्रसादीदास जी, जिनका स्थान परसा जिला सारन एकमा रेलवे स्टेशन के समीप में है ॥

स्वामी श्री रामप्रसादीदास महाराजजी के शिष्य श्री रामसेवक दासजी; जिनके परम कृपापात्र, करुणासिन्धु भक्ति ज्ञान वैराग्य योग निवास, अनन्तश्री स्वामी "रामचरणदास" मौद्‌गल्यऋषि महाराजजी इस *दीन प्रपन्न के गुरु भगवान् करुणानिधान हैं। सम्वत् १९१६ में श्रीसरयूतट यहदीन * शरणागतहुआथा ॥ [साकेत वास, सम्बत १९४३],

* सीताराम शरण भगवान् प्रसाद ॥

(२)

महानुभाव श्री "जीवाराम, युगल प्रिया" जी, प्रेमखानि [साकेतबासी] श्री गङ्गातट चिरांदस्थान, ज़िला छपरा सारन । ये महोदय श्री जानकीबल्लभ जी के आगे गाने बजाने में अति निपुण थे इनकी "रसिक-प्रकाश भक्तमाल" तथा पदावली छपी ही है; श्री रामरहस्य महोत्सव आपने भली भांति विधिपूर्वक किया था, कि जो समाज और संघट श्री कृपाही से संभव था ॥ इनके स्थान के महन्त अब प्रभु अवध-बासी श्री श्याम सुन्दर शरण जीहैं ॥ सम्बत १९१६ में आप की कृपा इस बालक पर हुई ॥

(३)

उक्त महाराजजी के कृपापात्र महानुभाव श्री६ "युगला-नन्यशरणजी" तिन के चरणानुग पण्डितवर श्री६स्वामी जानकीवर शरण महाराजजी, लक्ष्मणकोट श्री अयोध्या जी; नित्यही तीन चार बजे से आपकी सभामण्डप में सब प्रकार के लोग आके कृतार्थ होते थे । आप योगी, पण्डित, रसिक, दानी, प्रेमी, विज्ञ, कालीन, सरल, और बड़ेही प्रसिद्ध महात्मा थे॥ (*१९४०तथा१९५५)

---

* ☞ जिस २ सम्बत में जिस २ महानुभाव की विशेष कृपा इस दीन (सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) पर हुई, उन महोदय के नाम के साथ उसी सम्बत का अङ्क उपस्थित है ॥

सम्वत १९५८ में आप श्री १०८ साकेत को सिधारे।

* (छन्द मंजु) "लछिमनकिले मिले" सबसों पुनि रहैं पवन सम न्यारे" हैं। सब सन प्रीति, रीति सन्तन की, सुरतरुसरिस उदारे हैं॥ सियरघुनन्दन रसिक सनेही करि, बहुजीव उधारे हैं॥ "श्रीजानकिबर शरण मणी-रसरङ्ग सबहि को प्यारे हैं॥ १॥ क्षमा क्षमा सम, शील सोमसम, सबसों प्रिय बतराहीं जू॥ ज्ञान बिचार भक्ति मणिडत सत "पणिडतजी" कहवाहीं जू॥ सीताराम रूप सुरतरु मति 'प्रीतिलता' लहराहीं जू। श्री जानकिबरशरण सन्त गुणपुंज गने नहिं जाहीं जू॥२॥ सम्बत शत उन्नीस अठावन माघ अमावस माहीं जू। पर्बमहोदय ब्रह्म मुहूरत अवध सरयुतट पाहीं जू॥ "श्रीजानकिबर शरण" गए श्रीजानकिबर पुर काहीं जू॥ जहाँ गए, रसरङ्गमणी, जिय पुनि आवहिं भव नाहीं जू॥ ३॥ (श्री राम रस रङ्गमणि)

(४)

अति अकिंचन परमहंस श्री ६ स्वामी "सीताशरण" महाराजजी, नामानुरागी, कनकभवन श्री अयोध्याजी; जिनके ठाकुर श्री "लालसाहिब"जी चोर के साथ जाने पर भी, आपकी वृद्धावस्था, व्रत, विरह ज्वर, और प्रेम से प्रसन्न होकर, आठ नव महीने पर पुनः आ मिले। बड़े योग्य दर्शनीय, विरक्त और पूज्य हैं। जो पूजा आती है सो श्री गुरु तिथि और भगवदुत्सव में शीघ्रही लग जाती है॥ (सम्बत १९५३ *)

एक दिन तीता कद्दू "श्रीकनक भवन बिहारी जी" को धोखे से भोग लग गया, तो आपने बहुतसा घी तथा ओषधि भोग लगाई, बड़ा प्रेम किया वह भोग लगा तिक्त कद्दू आप पागए। कहां तक प्रशंसा कीजावे॥

५. श्री ६ स्वामी "रामचरणदास" महाराजजी [साकेत-बासी], बड़ी कुटिया प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी, इन महाराज जी के निर्दम्भत्व, ज़ाप, और परिक्रमा के नेम, तथा साष्टाङ्ग दण्डवत पराकाष्ठा, अत्यन्त सरलता एवं साधुनिष्ठा, इत्यादि गुण विख्यात हैं। ये सर्वप्रिय महात्मा थे। आप के स्थान में भगवत कथा नेम से नित्यशः हुआ करती है। काशीनरेश हरिहरभक्त महाराज "श्रीईश्वरीप्रसाद" ने आप को ग्राम दिये परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया॥ (सम्बत १९५०)

६. श्री ६ स्वामी "रामचरणदास" महाराज ("श्री-हंस कला") जी, गुड़हट्टास्थान शहरभागलपूर; श्री सन्तचरणामृत के विशेष नैष्ठिक, और श्रीप्रभु शृङ्गार-रसके रसज्ञ हैं; नामानुष्ठान और झूलन का उत्सव, बड़े नेमप्रेम से किया करते हैं। (सम्बत* १९३८)

७. श्री ६ "रामदास" जी उर्मिलाश्रित श्यामनायकी ("श्रीअनङ्गकुसुमा" जी, साकेतबासी) विष्णुपुर

---

* ☞ जिस २ सम्वत में जिनजिन महानुभाव की बिशेष कृपा इस दीन (सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) पर हुई, उन महोदय के नाम के साथ उसी सम्बत का अङ्क उपस्थित है॥

बेगूसराय, जिला मुंगेर, तैलंग और द्राविड़ भाषाओं के भी बड़े पण्डित श्रीउमाजी श्रीशारदाजी के कृपापात्र थे, भक्ति शास्त्र के अनेक ग्रन्थ आप ने भले प्रकार से देखे विचारे थे; श्री राग भोग में बड़ेही सावधान कुशल और अत्यन्त प्रेमी थे (१९२८*)

इन महात्मा के अनेक परिचय, अलग पुस्तकाकार छापे जायँगे हरिकृपासे ॥

८. महानुभाव श्री ६ "विद्यादास" महाराज के कृपापात्र पण्डित श्री ६ स्वामी "रामवल्लभा शरण" जी, मणि राम जी की छावनी के समीप, श्री अयोध्या जी; भगवत् कथामृत की वृष्टि नेम से आप नित्यशः करते हैं, जो अधिकारी इनकी मोहध्वंसिनी प्रेमवर्द्धिनी कथा सुनता है सो इनके हाथों बिक ही जाता है। बड़ी भारी सम्पत्ति सम्पन्न स्थान (नर्मदा तटस्थ) की महंती श्री अयोध्या बास के अर्थ अत्युत्तम रीति से छोड़ दी॥ पूजा जो चढ़ती है सो सब सन्त भगवन्त के भोग लगता है। अति मिष्टभाषी हैं॥ नायक स्याम सुन्दर शरण शर्म्मा नाम के एक बड़े वैराग्यविमुख अवैष्णव पण्डित को अति प्रेमी श्रीवैष्णव बनाया। इनके अनेक चेले लोग प्रशंसनीय हैं॥ (१९५५*)

९. श्रीमद्राघवेन्द्रसखा "श्रीकामदेन्द्रमणि" जी, श्री अयोध्या जी "साकेत राजमहल," (श्री कनकभवन के

उत्तर;) ये भाविक महाराज बड़े विज्ञ, कृपालु और पारसी भाषा के भी ज्ञाता थे। (सम्बत १९५४*)

१०. उक्त महानुभाव के चरणानुग श्री १६ स्वामी "श्री-सीतरामशरण रामरसरंग मणि" जी महाराज भक्तमाली, श्री अयोध्या जी; सख्यरस के छके, बड़े विरक्त, कविवर मित भाषी, श्री बालमीकीयरामायण तथा श्रीमद्गो-स्वामी तुलसीदास कृत ग्रंथों के अत्यन्त श्रद्धावन्त नेमी प्रेमी हैं; "श्रीरामानन्द यशावली श्रीहनुमत् यशतरंगिनी" श्री "सरयू रसरंगलहरी," "श्रीरामस्तवराजतिलक," "श्रीराम लीला संवाद,"इत्यादि इत्यादि, अनेक पोथियां इन महाराज की प्रणीत छप चुकी हैं। भक्तमाल की कथा तो अत्युत्तम रीति से कहते हैं। श्रीगुरु स्मरण तथा श्री सीतारामचन्द्र जी के भजन के अतिरिक्त दूसरा कोई उद्यम वा कर्म आप को है ही नहीं। (सम्बत १९५५ तथा १९६०)

११ श्री ६ स्वामी "श्री मन्नारायणाचारी स्वामी" जी, सूजागंज शहर भागलपूर; रहस्यज्ञ; वैष्णव शास्त्र के बड़े भारी पण्डित, (साकेतबासी), बाल ब्रह्मचारी, कालीन, परमविरक्त, श्रद्धाविश्वास भक्ति के स्वरूप, श्रीरंगव्यंकटेश्वर जी के कृपापात्र। (सम्बत १९४१)

१२महात्मा श्री ६ "हरिहर प्रसाद" सीतारामीय जू के कृपापात्र पुजारी श्री६ स्वामी "टीकम दास"जी, कमक्षा

स्थान श्री काशी जी; भक्ति ज्ञान और योगसम्पन्न, संस्कृत तथा बंगला भाषा के पण्डित, सख्य रस के रसिक, कृपालु और अतिउत्तम सदाचारी हैं। दर्भंगा सलोना के अनेक लोगों को चेताया प्रभु के सम्मुख किया है॥ बगौरा के डिपुटी बाबू द्वारका प्रसाद आपही की कृपा से श्री अवध वासी हुए हैं॥ (सम्बत * १९२९)

१३. श्री ६ स्वामी "नारायणदास" महाराजजी, आजानुबाहु विशालाक्ष महान्त, रत्नसागर श्री जनकपूर; अति उत्तम संस्कारी और विख्यात हैं। आप की प्रशंसा किस्से हो सके॥ श्री विवाह समय्या बड़े धूमसे करते हैं। "श्रीसीतामढ़ी" "पुपरीजनकपुररोड" स्टेशन् इत्यादि में भी इनकी ठाकुर बारियां हैं। बहुत २ लोगों को महात्मा जी ने कृतार्थ किया है और करते हैं॥ (१९४६ *)

१४ परमारथी श्री ६ स्वामी "रामदास" जी [साकेतवासी], श्री गंगातट "बदनपूर" जिला इलाहाबाद; दीनों और अनाथों पर, (तथा इस देह के पितामह श्री "केवल कृष्णजी" पर और "प्रेमगंग तरंग" के कर्त्ता पिता श्री "तपस्वीराम" जी सीतारामीय पर, कि जो उस स्थान में बारंबार जाया करते थे, तथा इस दीन बालक* सीताराम शरण पर, सम्वत् १९०६ में आप की बड़ी ही कृपा रहाकरती थी; अनगनित लोगों ने आप से

भागवत बेष पाया, उस कठिन प्रदेश को आप ने भलीभांति चेताया; आप के कई स्थानों में से श्री अयोध्या जी में भी एक जगह "श्री जानकी घाट" के समीप "जानकी कुंज" वर्त्तमान है (* १९०६) ।

१५. श्री ६ स्वामी "कान्हर दास" जू [गोलोक बासी,] गंगातट रेपूरा परगना कसमर ज़िला छपरा सारन; अन्नदान में अत्यन्त प्रख्यात; साधु सेवा इनकी प्रमुख्य निष्ठा थी। इनके कई बड़े २ परिचय भी सुने गये हैं । (सम्बत १९१७*)

१६. श्री ६ स्वामी "भीष्म दास" जी, बाकरगंज बांकीपूर शहर पटना; पानसौ छः सौ मूर्त्ति सन्त चतुर्मासा में इन सरलसुभाव महाराज के स्थान में रहते, झूलन देखते, और पण्डित श्री सर्वानन्द जी की कथा सुनते थे; इनकी साधु सेवा सब को विदित थी श्रीअयोध्या जी में आके आपने १९५७ में साकेत बास पाया (* १९४५) ॥

१७. श्री ६ स्वामी हरिहर प्रसाद जी के दूसरे शिष्य श्री ६ "प्रमोदवनविहारी शरण" जी महाराज, ऋणमोचन, श्री अयोध्या जी; आपने भी दरभंगा इत्यादि के लोगों को अच्छे प्रकार से चेताया है । श्रीचित्रकूट, और पूर्व में बहुत दिनों तक श्री गंगातट एकान्तस्थान के मध्य एक काठ के गुफा में रहकर आप

भजन करते थे। सूखे आम्ब के वृक्ष को, बगौरा में, अनुष्ठान से हरा किया (*१६५५)॥

१८. श्री६ "रामसरन दास" नवलअलीजी, अब्दुल्ला-हचक, जुगेसर जिला पटना। "महाशम्भुक्षेत्र माहात्म्य" नाम एक शृङ्गार रस की इनकी पोथी (जो छपी नहीं) बड़ी उत्तम है॥ (सम्वत *१९४६)

१९. श्री५ "रघुनाथदास" महाराजजी [साकेत वासी], बड़ीछावनी श्री अयोध्या जी, जिनका प्रताप और यश देश देश पर्य्यन्त विदित ही है कि सहस्रशः मूर्त्ति प्रति दिन प्रसाद पाते थे। (सम्बत *१९२८) इनकी रचित नाम "सुमिरनी" (पदावली) प्रसिद्ध है॥

दोहा। जय उदार रघुनाथ सम, जन रघुनाथ उदार।
जासु सुजस जग जगमगत संतन मुख उजियार॥

इनकी सम्मति से इनके एक नाम रासी ने "विश्राम सागर" छपवाया था॥

२०. श्री६ "रामोदार शरण" जी, (साकेतवासी) लक्ष्मण कोट (लछिमन किले के) महन्त, श्री अजोध्या जी। ये महात्मा यथा नाम तथा कीर्त्ति उदार वर, बड़े दानी; सन्तों और विद्यार्थियों के साथ बड़ा भाव रखते थे; बड़े ही धूमधाम से, एवं वित्तशाठ्य रहित विभवपूर्वक, सब उत्सव और समैया भलीभांति करते थे; बड़े गुरुनैष्ठिक और पूर्वोक्त श्री १६ स्वामी

जानकीवरशरण महाराजजीके गुरु बन्धु और बड़े कृपा-पात्र थे [१९५० *]

२१. उक्त श्री ६ जानकी वरशरण महाराज जी के कृपा-पात्र श्री १६ "गोमती दास' "श्री मतीशरण" ("माधुर्य्य लता") जी महाराज, "श्री हनुमन्निवास" श्री अयोध्या जी। पूर्व में आपने मणिपर्वत जी पर कुछ काल पर्य्यन्त एकान्त बास करके भजन किया है; श्री हनुमत्प्रसाद से समैया उत्सव बड़े प्रेम से करते हैं; पूज्य हैं॥ इनके कृपापात्र मुनशी " अम्बे सहाय " जी बड़े श्रद्धावंत और कवि हैं ॥ (* सम्वत १९५४; १९६०)

२२. महानुभाव श्री ६ राम सखे जी के गद्दी स्थान के महन्त श्री ५ "अवधशरण" जी महाराज (साकेत-वासी,) वासुदेव घाट श्री अयोध्या जी। श्री बाल्मीकि कथा अति उत्तम कहते थे ॥ (सम्बत ११२९)

२३. श्री६ "तुलसीदास" जी (साकेतवासी,) नयाघाट, श्री अयोध्या जी, कई (धनाढ्य) महाजनों को आपने चेताया था ॥ उनकी आरती और सदाबरत प्रख्यात था। (सम्बत* १९५३)

२४. पुजारी श्री१६ "श्यामसुन्दरी शरण" (चन्द्र-प्रभा) जी, श्री अयोध्या श्री कनकभवन बिहारी जी के विशेष स्नेहपात्र, शृङ्गार रस के छके, अनन्य, विरक्त; जाग्रत स्वप्न में दिनरात अर्चा पूजा भोग राग और

सतसंग के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यवहार जिनको स्पर्श ही नहीं करता है (* १९५२)।

स्वप्न में कई बार श्रीकनकभवनबिहारिणी बिहारी जी के दरशन पाए हैं।

२५. श्री६ "राघव शरण" जी महाराज, (साकेतवासी) श्री लक्ष्मण मन्दिर बढ़ैया ज़िला मुंगेर; नामानुरागी, श्री गंगाजल के दृढ़ नेमी और शृङ्गाररस के ज्ञाता थे। (१९४४ *)

२६. पण्डितवर श्री ५ "गंगादास जी" परमहंस, अति सरल, बड़ी कुटिया प्रमोदवन श्री अयोध्या जी; नित्य नेमपूर्वक "श्री प्रमोदवन रासबिहारिणी विहारी जी" को कथा सुनाया करते हैं, जो पूजा चढ़ती है सो भगवान् को भोग लगा देते हैं; इसके अतिरिक्त इनका सम्पूर्ण काल विद्यार्थियों और साधुओं को वेदान्त तथा पुराणादिक पढ़ाने में कटता है। (सम्बत * ११३९)

२७. श्री ५ "रघुनाथ दास" जी महाराज गुफा पर, शहर बिहार ज़िलः पटना; नित्य, और विशेषतः राजगृह के मेले के समय डेढ़ महीना, आप तन मन धन से साधु सेवा करते हैं। इनके आचरण प्रशंसनीय हैं (*११४९)

२८. पण्डित श्री ५ "माधवदास" मानसव्यास जू, विरक्त, शृङ्गार कुंज श्री अयोध्या जी; सरल स्वभाव; आप नित्य नेम से श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थों का पाठ दिया करते हैं। (*११५५) श्री "रामदास" नाम रामायणी इनके शिष्यों में प्रधान हैं॥

२९. परमहंस श्री६ रामसियाशरणजी, (साकेत वासी) सन्तनिवास श्रीअयोध्या जी इनके कृपा पात्रों में काशी के बेणीप्रसाद, छोटेलाल इत्यादि थे, और बाबू जगन्नाथ प्रसाद प्रशंसनीय हैं॥ (*१९५५)।

३०. श्री ५ "स्यामसुन्दर शरण" जी, महाराज शृङ्गार कुंज प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी; बड़े प्रेमी हैं, और आप के स्थान में प्रायः उत्सव और लीला आदि होती है और श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी कृत "श्रीरामचरित मानस" नेम से कथन होता है, जिसके सुनने को बहुत महात्मा एकत्र होते हैं आप का शील स्वभाव प्रशंसनीय है। अब ये महात्मा चिरांद स्थान के महान्त भी हैं (सम्वत् १९५५*)

३१. श्री ५ "कनकभवन बिहारी शरण" जी (साकेतवासी,) रसिक निवास श्री अयोध्या जी। बड़े ही विज्ञ थे बाबू "दुर्गाप्रसाद" वकील हकमा जानकी नगर (छपरा) पर इनकी अतिशय कृपा हुई॥ (*१९५३)

३२. महाराज श्री ६ "सीतलदास" जी, अस्सीसंगम श्रीकाशीजी; साधुसेवी (*१९५३)

३३. पण्डित श्री ६ "रामनारायणदास" जी, वैष्णव रीवां मन्दिर तथा बड़ी जगह रामकोट श्रीअयोध्याजी; दयालु; विद्यादानप्रवाह; अनेक विद्यार्थियों को आप से नित्य पाठ लाभ होता है; श्रीचरणचिन्ह और श्री

अयोध्या जी का चित्र, बड़े परिश्रम से बनाया है; अती-वोत्साही हैं। भगवान के कार्य्यों में अत्यन्त उद्यत; कई पोथियां छपवाई हैं; श्री अगस्त्यसंहिता भी छपवायी है (*१९४४)।

३४. श्री ६ जानकीदास जी, (साकेतवासी) चौकाघाट बरुणातट श्रीकाशी बनारस। सन्त सीथ प्रसादी के विशेष नैष्ठिक; श्रीरामचरित मानस के रसिक थे (१९५३*)

३५. स्वामी श्री १६ रामचरणदास महाराज जी भागलपुरवासी के गुरु भाई श्री ५ "रामरत्नदास" महाराज जी शृंगारी ने मदेहपूरा जिला भागलपूर और स्थान कजरा ज़िलामुंगेर को चेताया है॥ (१९४२ *)।

३६. श्री ६ "नारायणदास" जी महाराज [साकेतवासी,] चौहट्टा वड्डलपूरा स्थान शहर बांकीपूर ज़िला पटना आम्ब (रसाल फल) को विशेष नेम तथा विलक्षण प्रेम से निवेदन किया करते थे (सम्बत *१९४६)।

३७ पण्डित श्री ६ भगवान्दास जी, (साकेतवासी) श्री ६ महाराज रघुनाथदास जी साकेतवासी के कृपापात्र, बड़ीछावनी श्रीअयोध्याजी (१९५१*)। स्वामी श्री हरिहर प्रसाद जी के बड़े कृपापात्र थे।

३८. पण्डित श्री५ "रामरत्नदास" जी बड़ी जगह श्री अयोध्या जी, उपासना ग्रंथों इत्यादि के बड़े विज्ञ हैं॥ (१९५३ *)।

३९. पण्डित श्री५ "विश्वेश्वर दास" जी तुलसीबाड़ी श्री अयोध्याजी, वेदान्त के बड़े ज्ञाता श्री यन्त्रराज के नेमी (*१९५४) ।

४०. महान्त श्री ५ "रामकुमारदास" जी बड़ी कुटिया प्रमोद वन श्री अयोध्या जी; जितेन्द्री; नेम से नित्यशः प्रतिदिन पान्सौ दण्डवत करते हैं; मुठ्ठी मांग २ कर साधुसेवा करते हैं; स्वभाव के बड़े सरल हैं ॥ (१९५१)

४१. पुजारी श्री ५ "जगदेवदास" जी, (प्रियसखी) श्री अयोध्या जी; श्री किशोरी जी के विशेष कृपा पात्र हैं; श्री कनकभवन विहारी जी की पूजा का अद्भुदानन्द आपने पाया है; (*१९२९)

४२. श्रीरामनामानुरागी श्री ५ "सियराम गोपालदास" जी तपस्वी, श्री मणिराम जी की छावनी श्री अयोध्याजी । पण्डित श्री १६ रामवल्लभाशरण जी के कृपापात्र ॥ (१९५५)

४३. श्री "गंगादास" जी, विरक्त, मधुकर, प्रशान्त; श्रीअयोध्याजी श्रीजानकीकुंजश्री जानकी घाट(*१९५४)

४४. श्री हजूरी जी के स्थान के महान्त श्री "महाबीर दास जी" जिन की सम्मति से श्री अयोध्या जी के श्रीजानकीरामघाट पर भी (ज्येष्ठपूनो को, वार्षिक) श्री सरयू जन्मोत्सव समाज होने लगा है (*१९५४) ।

४५. श्री ६ "भगवान्दास" जी ग्रामवीर दरियाबाद

ज़िला बारहबंकी; दंडवत के अत्यन्त नेमी हैं; श्री सरयू घाघरा संगम पर, पूस मकर महीना भर प्रति सम्बत्सर, साधु सेवा बड़ी श्रद्धा से करते हैं; श्रीप्रमोदबनबिहारी जी के बड़े कृपा पात्र, संगीत निपुण, कालीन (सम्बत् * १९५२)

४६. श्री ६ "ज्ञाना अली" जी (साकेत वांसी) वासुदेव घाट श्री अयोध्या जी; संगीत भजन तथा प्रेम में प्रसिद्ध और श्री जानकीजीवन जी के विरही थे; इनकी पदावली लखनऊ (श्रीलक्ष्मणपुर) में छपी है (* १९३४)

४७. पुजारी श्री६ "अवधविहारीशरण" जी साकेतवासी के कृपापात्र श्री ६ रामध्यानदास जी (साकेतवासी) शहर छपरा, ज़िला सारन; आप ने "श्रीरूपसखी जी की होली" की रहस्य लीला बड़े धूमधाम और अत्यन्त प्रेम नेम से कराई थी. जिस के परमानन्द की प्रशंसा साधारणतः असम्भव है, देखने वालों ही को अनुभूत है [*१९४१] आप मुनशी श्री तपस्वी राम जी के [जो इस शरीरके पिता थे] अत्यन्त प्रेमी थे ॥

४८. विरक्तवर परमहंस श्री ५ "सरयूदास" जी श्री अयोध्या श्रीजन्मस्थान के कुंज में [१९३५*]

४९ पण्डित श्री "अवध बिहारी शरण" जी खाकी (गोलोकवासी) रौज़ा ज़िला सारन छपरा, श्रीराधा-

रमण जी के आगे नाचने और श्री गंगा जी के दर्शन तथा श्री भागवत के पाठ का नित्यनियम अति ही दृढ़ रखते थे। श्री भागीरथी जी के तीर तीर श्री सरयू महारानी जी के संगम से सोनभद्र के संगम तक के अनेक लोगों को आप ने भली भांति चेताया (१९४६)

५० श्री ५ "वैष्णवदास" जी महाराज (साकेत वासी) श्री मणिराम जी की छावनी श्री अयोध्या जी, संतों के हेतु द्वार दिन रात खुला ही रहा करता था (केवाड़लगाए नहीं जाते थे) कि न जानें साधु किस क्षण आ पहुँचें; सरलता, दयालुता, इत्यादिक गुण संपन्न थे (१९५४)

५१ श्री ५ "सरयूशरण" जी साकेतवासी गौतमक्षेत्र श्रीसरयूतट, जिला छपरासारन [१९५०]

श्री "दामोदरदास" जी महात्मा इसी क्षेत्र में विराजते हैं; बड़े प्रेम से ताम्रपत्र पर श्री यन्त्रराज श्री अयोध्या जी से लेगए हैं॥

आप ही के प्रेमपात्र बाबू श्रीसूर्य्य प्रसाद जी वकील छपरा, कि जिन पर श्रीमारुति जी की अनूठी कृपा हुई, सन्तों और रामभक्तों के अत्यन्त श्रद्धावान् हैं॥

५२ श्री ५ "रघुवीर शरण दास" जी महाराज, चौहट्टा मन्दिर, बांकीपूर शहर पटना तथा बदल पूरा खगोल, शहर दानापूर; ये महात्मा अंक ३६ (पृष्ठ १४) के श्री ६ नारायणदास जी महाराज के कृपापात्र, बड़ेही प्रेमी तथा विवेकी; श्री अयोध्या श्री प्रमोदवन बिहारी जी के बड़े कृपापात्र (१९४९)

☞ बदनपुरीय महात्मा श्री ६ रामदास महाराज जी के, तथा श्री ६ युगलप्रिया जी कृपानिधि के, कुछ और भी चरित्र तथा परिचय, कवि-वर श्रीमहावीर प्रसाद् नारायण सिंह शर्म्मा जी ने (सम्वत् १९४५; १९४७ के मध्य) अपनी पोथी " भागवत् चरित्र चन्द्रिका" में लिखे हैं ॥

---

५३ श्री ५ "गोविन्ददास" जी व्रजवासी कथा श्रवण के बड़ेही रसिक, मधुकर, विरक्त, कभी श्री रामकोट में, कभी श्री मणिपर्वत के पास श्री अयोध्याजी (१९५३)

५४ श्री ६ "भरतदास" जी, रामनामानुरागी, मधुकर, विरक्त, कथा के नेमी, केवल एक लंगोटी और माला मात्र रखते हैं, प्रमोदवन श्री अयोध्याजी (१९५४)।

५५ पण्डितवर श्री ६ "जगन्नाथदास" जी, श्री अयोध्याजी, श्री गढ़ी में श्रीहनुमान जी को नित्य कथा सुनाया करते हैं, बड़े गुरुनिष्ठ और प्रेमी (१९५६)

५६ श्री "ठाकुरदास" जी महाराज, बांका जिला भागलपूर (१९४३)।

५७ श्री "राघवदास" जी, श्री कनक भवन के द्वार पर श्री अयोध्याजी श्री युगल सर्कार के पुष्प-शृङ्गार एवं प्रेम कैंकर्य्य में बड़ेही कुशल, (१९५४)

५८ श्रीपण्डित "माधवदास" जी, बड़ी जगह, श्री अयोध्या जी, विद्यादान के हेतु अतिशय कष्ट उठाते हैं, वैष्णववर श्री रामनारायणदास जी के गुरुभाई (१९५५)

५९ श्री "रामटहलदास" जी, महाप्रसाद के मधुकर, श्री रामकोट श्री अयोध्या जी (१९५४)

६० श्री अयोध्या जी श्रीहनुमन्निवास में श्री राज-किशोर शरण जी, पुजारी (१९५९)

६१ श्री "गोपालदास" जी (साकेत वासी) पुजारी, बड़ी कुटिया प्रमोदवन श्री अयोध्यां जी, व्यापार में भी बड़े सत्याचरणवाले, तथा शृङ्गार में बड़े निपुण थे (१९२९)।

६२ श्री "अवधनन्दन" शरण जी, पुजारी रङ्गमहल रामटोक श्री अयोध्या जी; सन्तों में आपकी भारी निष्ठा थी (साकेतवासी १९६०)

६३ श्री "रामजी शरण" श्रीहनुमन्निवास श्री अयोध्या, अति सरल और गुरु भक्त, नामानुष्ठान में बड़ा कष्ट करते हैं (१९६०)।

६४ श्री "राधिकादास" जी, (साकेतवासी) प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी, इनके अधिकारके समय में बाढ़ जनगोविन्द स्थान जिला पटना साधुसेवा में प्रख्यात था (१९५१)।

६५ श्री "रामप्रकाश दास" जी, श्री अयोध्या जी प्रमोदबन कुटिया, के पुजारी, आप के श्रीनामानुराग एवं तीव्रतर वैराग्य की प्रशंसा किस से हो सकती है (१९५२)

६६ श्री रामरघुबीरशरण महाराज श्री लखन कोट श्री अयोधया जी (१९५५)

६७ श्री ६ "खाकी जी महाराज" (साकेतवासी) खैरा परगना बाल जिला छपरा सारन, समदमादि सद्-गुणों के पूरे थे, और बड़े ही अकिंचन (१९४५)।

आप ही के प्रेमपात्र श्री पण्डित रामहितोपाध्यायजी हैं कि जिनका, श्री वाल्मीकीय द्वारा अद्भुत उपदेश प्रति वर्ष सैकड़ों विमुखों को श्रीभक्ति महारानी जी के सन्मुख करके कृतार्थ कर देता है ॥

६८ श्री ५ "प्रेमदासजी," ऋणमोचन श्री अयोध्या जी पहिले पोस्टमास्टर थे अति प्रशंसनीय (१९२९)

६९ श्री५ "रामदास काले बाबा" जी, श्री गंगातट बाढ़ जिला पटना, स्वयंही झोरी फेर के साधु सेवा बड़ी निष्ठा से करते थे ॥ (१९४४) " कुसंग से किसने दुख न पाया ? "

७० श्री ६ "रामगुलामशरण" जी, बड़े कृपापात्र, दरशनीय कभी श्री हनुमन्निवास कभी श्री प्रमोदबन कुटिया श्री अयोध्या जी (१९५१)

७१ श्री ५ गोवर्द्धनदास जी, उलाव ज़िला मुंगेर; मुंगेर के श्रीगंगातट कष्टहरणी घाट पर भी कुछ काल पर्य्यंत, ये भजन करते थे ॥ (१९४१)

७२ श्री ६ रामदास जी, साकेतवासी राजगृह ज़िला पटना लौंदके (अधिकमासके) मेले में तीन २ बर्ष पर इनके यहां वैष्णवों की भारी भीड़ भाड़ होती है, दर्शन योग्य (१९४६)

७३ श्री रामचरण दास जी (साकेतवासी) चम्पा-नाला, भागलपूर (१९३८)।

७४ श्री "तपसी जी" साकेतवासी श्री कमलातट,

शहर दर्भंगा तिहूँत (१९४०) ।

७५ श्रीरामदास जी साकेतवासी शहर आरा, भोज-पूर जिला शाहाबाद (१९२२) ।

७६ श्रीजानकी दास जी, सांकेतवासी बकसर क्षेत्र श्रीगंगातट, जिला शाहाबाद, प्रेमी, नृत्यप्रवीण, संगीत-निपुण, (१९३९)

७७ श्री रामनारायण दासजी (जड़ाववाले) श्री रामचरित मानस के चमत्कृत प्रेमी, रामायण निवास "बड़ी कुटिया," प्रमोदबन श्रीअयोध्याजी अतिमिष्ट-भाषी (१९५३)

७८ श्रीलक्ष्मीनारायणदास जी, साकेतवासी शहर कलकत्ता (१९१९).

७९ श्री हरिदासजी प्रियवर, श्रीतपस्वी जी की छावनी, रामघाट, श्रीअयोध्या, जैसा सुनें वैसा अक्षर २ सुना दें, श्रीहरिकथा के बड़े नेमी प्रेमी (१९५४) ॥

८० श्रीदामोदरदास जी, "नया घाट" श्री अयोध्या कथा के प्रेमी (१९५४) ॥

८१ श्री सियारामशरण जी, श्री अयोध्या, नेम से नित्य श्री जानकीवल्लभजू को संगीत सुनाते हैं; श्री-कृपानिवास जी के ग्रन्थों में अत्यन्त ही श्रद्धा रखते हैं; (१९५५) ॥

८२ श्रीह् रघुनन्दनशरण जी संतनिवास श्रीअयोध्या श्रीरामचरितमानस के बड़े पंडित रसज्ञ प्रेमी १९५५

८३ श्री ५ विमलाशरण जी, सन्तनिवास श्री अयोध्या (१९५६)

८४ श्री ६ तुलसीरामदास जी साकेतवासी श्री अयोध्या रामघाटरामकिंकरदास जी की जगह में थे। इन्ही महात्मा के गृहस्तीसमय के पुत्र मुन्शी जानकी प्रसाद पेनशनर हैं, महन्त श्री ५ जगन्नाथदास जी स्वर्गद्वार पुराने थाने के पास (१९२८)

८५ श्री ६ रामवल्लभा शरण जी श्रीलक्ष्मण किला, श्रीअयोध्याजी, कृपासिंधु श्री १६ जानकीवरशरण महाराज जी के चित्रपट के पुजारी, बड़े कृपापात्र, बड़े विवेकी, प्रेमी, कवि, संगीत निपुण (१९५१) ॥

८६ श्रीजगन्नाथदासजी, साकेतबासी लक्ष्मीपूर, झाड़ी में, ज़िला सन्ताल परगना श्री १६ स्वामी रामदास जी "नृत्यकला" (साकेतवासी) के स्थान में (१९३८)

८७ परमहंस श्री ५ सीतलदास जी; कभी २ बांकीपुर पटना के श्रीभीष्मदास साकेतवासीजी के स्थान में, कभी श्री अयोध्याजी में पण्डितवर श्री १६ रामवल्लभाशरण जी महाराज के साथ; बड़े योग्य पुरुष हैं॥ (१९५६)

८८ श्री कामताशरण जी, ठाकुर जी के टहलों में कुशल(१९५५)

८९ वैष्णव श्रीसीतारामचन्द्र शरण (साकेत वासी अंक ८४ के भतीजा चेला, और अंक १०५ के गुरु

भाई) आप सब लौकिक नाते तोड़ के, अपना मन धन प्राण तन श्रीप्रमोदवनविहारी जी को अर्पण करके, श्रीसाकेत को पधारे; श्री अयोध्या जी ॥ (१९५०)

९० श्री १६ सियारामशरण रूपलताजी (साकेतवासी), आनन्द भवन रामकोट श्री अयोध्या जी; बड़े ही प्रसिद्ध प्रेमी, शृङ्गाररस के अद्भुत भावना शाली, और श्री कृपानिवास जी के ग्रंथों के मर्म्मी दरशनीय थे (*१९३०)

९१ जयपूर निवासी महानुभाव श्री १६ सीताराम-शरण जी महाराज साकेतवासी श्री किशोरी जी के करुणापात्र, जो श्री आनन्द भवन में आके ठहरा करते थे; विशेष आवेशी; विरह दुःख तथा अनुकम्पा सुख में कभी २ चार २ दिन पर्य्यंत सुधि हीन रहते थे कभी २ दस दिन पर संज्ञा लौटती थी; दर्शनीय थे (१९५४)

यह आप ही के सत्सङ्ग का प्रभाव है कि कविवर वेदान्ती पण्डित श्रीरामगयाप्रसाद जी (टांडा निवासी) अपनी हठ और कुतर्क छोड़कर परमहंस श्री १६ सीता-शरण महाराज जी (अंक ४ पृष्ठ ४) के शरणागत होके विलक्षण सीताराम नामानुरागी होही गए ॥

९२ श्री पिताम्बरदास जी बिचरने हारे, छातावाले महात्मा, बड़ी छावनी श्री अयोध्या जी, मानो तप और भजन के स्वरूप, बड़े प्रशांत तथा देशकाली साधु; श्री अर्चामूर्त्ति से स्वभावतः बातें किया ही

करते हैं कि जिन सरल सप्रेम वचनों का अपूर्व अधिकार चित्तों पर होता है (*१९५०)

९३ श्री ६ "जानकीदास जी भक्तमाली," ग्राम गोर-गावां सबडिबीझन बेगूसराय ज़िला मुंगेर, सरल, प्रेमी, बिशुद्ध (*१९४५) ॥

९४ श्री "जानकीदास जी बदनपूरी" श्री अयोध्या। विचरनेहारे, उपदेश में कुशल (*१९५६)

९५. श्री "रामदास" जी श्री रामशिला गया जी (मगध), साधु सेवा में प्रसिद्ध। (१९५८ *) आप के प्रेमियों में श्री सीतामढ़ी बुलाकीपूर निवासी, गया जी के वकील बाबू श्री बै० कृ० अ० बलदेव नारायण सिंह जीहैं, कि जिनकी विषयाशक्त मति श्री सरयू जी महारानी के दरशन मात्र से पवित्र होकर श्री जानकी वल्लभ अवधकिशोर के चरण कमलों में लीन हो गई॥

९६. स्वामी श्री लक्ष्मणदास जी रामायणी के कृपा-पात्र "श्रीगंगादास" जी महाराज, श्री गया जी (मगध), अतिशय वैराग्य और नेम प्रेम युक्त, केवल केले के छाल की लिंगोटी मात्र रखते हैं और सदैव प्रभु के भजन में मग्न रहते हैं॥ (१९५७ *)

---

* जिस सम्वत में जिन जिन वैष्णव विरक्त महोदय की विशेष कृपा इस दीन पर हुई, उन महानुभाव के नाम के साथ उसी सम्वत का अंक उपस्थित है; प्रत्येक नाम के साथ जो सम्वत है उस का तात्पर्य केवल इतना ही जानिये॥

९७ महंत श्री रामचरणदास जी, श्री ५ मणिराम जी की छावनी, श्री अयोध्या जी; बड़ीप्रसिद्धछावनी है

९८ स्वामी श्रीमहंत नरसिंहदास जी [साकेतवासी] शहर मोतिहारी जिला चम्पारण के कृपापात्र और वहां के महंत भी, श्री अयोध्या जी स्वर्गद्वार पुराने थाने के पास महान्त श्री जगन्नाथदास जी " परसा-कीजगह " के।

इन्ही के समीप, मुन्शी गौरीशंकर, (अपनी ज़मींदारी और वकालत छोड़के,) छपरे से आ, श्रीअवध में बसे हैं॥

९९ श्री ५ रामभूषणदास जी, विरक्त, मधुकर, श्रीजानकीघाट श्रीअयोध्या जी, बड़े बिरही॥

आपके प्रेमियोंमें, पण्डित श्रीसीतारामप्रपन्न गयादत्तचौबेजी (चौबेबेल ज़िला बलिया निवासी) जो श्री १६ गोस्वामीकृत " मानस रामचरित " द्वारा, जीवों के हृदय तिमिर को नष्ट करके, भक्ति प्रबोध-चन्द्रोदय की निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं, चित्त की सरलता तथा प्रियाप्रियतम के चरणाम्बुज में अनुराग, उनके दरशन मात्र ही से विदित होता है॥

१०० महात्मा श्री ६ " फकीराजी ", श्रीअयोध्या जी रामकोट कैकेयी भवन। (सम्वत १९५४) साकेतवासी॥

इस स्थान के पुजारी श्रीसियारामशरण जी बड़ेही

प्रेमी शृङ्गारी हैं। यहां झूलन, वसन्त इत्यादिक सब समैया बड़े प्रेम से होते हैं ॥

१०१ तिर्हुत सुरसर के समीप के "नवाही" स्थान के परमहंस श्री ६ रामचरणदास जी महाराज, बड़े उदार हैं और विख्यात हैं (सम्बत् * १९५५)

१०२ महंत श्री "राममनोहर प्रसाद" जी, श्रीराम-प्रसाद जी की बड़ी जगह, श्रीरामकोट श्रीअयोध्याजी।

आपके उत्साह से "श्रीअयोध्यामाहात्म्य" अनुसार १५०(डेढ़सौ] तीर्थों पर, नामांकित पत्थर लगाए गए हैं, जिस्में पण्डित श्रीरामनारायण दास जी ने बड़ा परिश्रम कियाहै ("तीर्थविवेचनीसभा" की सहायतासे)॥

१०३ महांत श्री "सरयू दास" जी, प्रमोदवन श्री अयोध्या जी, कथा के प्रेमी ॥

इन्हीं के: पड़ोसमें, "श्रीजानकीदास जी चतुर्भुजी" गुरुनिष्ठ, सन्तभगवन्तकेकैंकर्य्यमे उपस्थित, कथा प्रेमी

१०४ महंत श्री दयालदास जी रामायणी जी की कुटिया, प्रमोदवन, श्री अयोध्या जी, जिन के चेले श्री हरिनाम दास जी ॥

१०५ महान्त श्री रघुबरदास जी, साकेतवासी, परसा ज़िला छपरा सारन, अंक ८९ के गुरुभाई (१९४०*)

१०६ श्री महंत रामप्रपन्न जी, रीवां मन्दिर के तथा श्री अयोध्या रत्नसिंहासन के, दोनों जगहों के

महन्त हैं (१९५२*) बड़े शान्त ॥

१०७ महान्त, श्री जानकी वर शरण जी श्री जानकी घाट श्री अयोध्या "श्री ६ महाराज रामचरणदास जी मानस टीकाकार करुणानिधानं" के स्थान में ॥

श्रीजानकीघाट में " जय " बुलाने वाले बड़े प्रेमी महात्मा रहते हैं; तथा " प्रेमीजो " के नामसे ख्यात श्रीरामप्रिया शरण जी, जो कथा के प्रसिद्ध प्रेमी हैं ॥

१०८ महंत श्री लालदास जी तपस्वी जी की छावनी, श्री रामघाट श्री अयोध्या जी ॥

(दोहा)

काहू के बल जाग जग, गुन करनी की आस ।
भक्त नाम माला अगर, उर नारायण दास ॥ १ ॥
अग्र अनुग यश गाव जे, सीतापति तेहि होहिं बश ।
हरिसुयशप्रीति हरिदासकहँ, हरिहि भावहरिदासयश ॥२॥
भक्त दाम जिन जिन कथी, तिन की जूठनि पाय ।
मति अनुसार अक्षर दुई, कीन्हों सिलौ* बनाय ॥ ३ ॥
सन्त जिते श्री अवध में, कथ्यौ कौन पै जाय ।
जलधि पान श्रद्धा करै, कहँ चिरि पेट समाय ॥ ४ ॥
☞ श्री मूरति सब वैष्णवा, लघु दीरघ गुनगाध ।
आगे पीछे बरनते, जनि मानिय अपराध ॥ ५ ॥

---

* "सिल" वृत्ति; विनयांचुनियां ॥

"भक्तन के शुभ चरित अमित महिमा सुखकारी ।
किमि बरनों मैं लोह चुम्बवत लेहु सुधारी" ॥ ६ ॥

इति " श्रीवैष्णवनामावली "
॥ शुभम् ॥

पृष्ठ ६ अंक ९ के महात्मा की कुछवार्त्ता ।
छप्पै ।
श्री कामदेन्द्रमणि सुहृद रस-आवेशी एकै प्रबल ॥
राघवेन्द्र बरसखा भुवन बिख्यात सुहाए ।
दिव्यरूप अनुभाव यहीतनु प्रगट दिखाए ॥
श्री युत दम्पति नाम अदब से उचरत आनन ।
वाल व्याह तजि चरित बनादिक सुनत न कानन ॥
शिष्यकिए सियराम रस सम्बधी बहु मति विमल ।
श्री कामदेन्द्रमणि सुहृद रस आवेशी एकै प्रबल ॥ १ ॥

कवित्त। सम्व्यत उन्नीसशत साठि में कुवाँर मास सुकल परीवा वार मङ्गल विचारे हैं। अवध सुधाम में प्रभात समै सावधान, मणि रसरङ्ग, नाम युगल उचारे हैं॥ रामविरहानल में तीनौं तन जारि पाय दिव्यरूप सीताराम ध्यान उरधारे हैं। स्वामी श्री राघवेन्द्र-सखा कामदेन्द्रमणि सवै लोक त्यागि राम-धाम को पधारे हैं॥ १॥

इन महानुभाव के गुण कुछ साधुनाम माला के नवमे मणि में वर्णित हैं॥ इस १९६० सम्व्यत्सर में परधाम श्री साकेत को पधारे हैं। आप श्री राघ-वेन्द्र लाल जी के अधिक अवस्था वाले सुहृद सखा थे, श्री प्रभु के और तत्सम्बंधी माननीयों के श्री नामों को अति आदर महामान से ग्रहण करते थे भाषा संस्कृत छन्दो में भी विना श्री के संयुक्त श्री-नाम नहीं उच्चारण करते थे, वरंच श्री सीताराम सबंधी निज शिष्यो के नाम भी श्री युक्त ही ग्रहण करते थे और अति ही उदार थे, श्री युगल वा-त्सल्य रस के उपासकों को माता पिता के समान ही मानते थे और मधुर सखाओं को अपने कर कंज से पवाउते थे इत्यादिक आप के सख्य रसावेश युक्त गुण किस्से वर्णन हो सक्ते हैं यह दिग्दर्शनमात्र मैंने सूचन कर दिया है॥

पृष्ट ३ अंक ३ के महात्मा पण्डित श्री जानकी वर शरण साकेतवासीके जीवनचरित मेरे प्रेमी श्रीप्रभुद-याल शरण जी (हैदरगढ़) ने उर्दू में, और श्री राम वल्लभ सहाय जी, सारनपैगा निवासी, नेमि कि जो श्री राम कृपा से अब श्री अयोध्या जी में श्री हनुन्निवास के पश्चिम निज राम मन्दिर में वसते हैं, लिखे हैं ॥

कविवर मुनशी श्री राम अम्बे सहाय जी कृत—

(१) श्री जानकी सहस्र नाम (२) श्री राम सहस्र नाम (३) श्री हनुमत सहस्र नाम (४) श्री हनुमत जन्म विलास (५) श्री राम नवमी जयन्ती (६) श्री जानकी जन्म विलास (७) श्री शिवरात्रि माहाम्य (८) मुक्तधाम प्रकास, बड़े अक्षरों में (९) श्री अयोध्या माहात्म्य युत महातत्व प्रकाश; यह (न० ९) उर्दू में है ॥

पृष्ट ७ अंक १० के महात्मा

श्री रामरसरंगमणि सीताराम शरण जी

कृत पोथियो में से कई एक के नाम—

(१) श्री रामानन्दयशावली (२) श्री हनुमत यश तरंगिनी (३) श्री जानकी जन्म (४) श्री सरयू रसरंग लहरी तथा बारह मास माहात्म्य (५) श्री

सीताराम नाम मंजरी (६) श्री ध्यान मंजरी का तिलक (७) श्री रामस्तवराज का तिलक (८) श्री रामलीला सम्बाद (९) श्री पंचरतन (१०) श्री सीताराम पदावली (११) श्री होली विलास (१३) श्री सीताराम शोभावली (१४) श्री सीताराम नखसिखी

श्रीकृष्णदेवनारायणसिंह जी कृत-१ अनुरागमंजरी; २ अनुरागमुकुल ३ वेद सार ४ सनेहसुमन &c.

मुनशी श्री तपस्वीराम जी सीतारामीय कृत
ग्रन्थों में से कई एक के नाम—

(१) प्रेम गंग तरंग
(२) श्री सीताराम चरण चिन्ह
(३) अद्भुत रामायण
(४) श्री भक्तमाल (फारसी) رموز مہرو وفا
(५) वकाए दिल्ली (इतिहास) وقايع دهلي
(६) श्री मद्भागवत की सूची
(७) श्री अयोध्या माहात्म्य
(८) कथामाला । इत्यादि

श्रीवैष्णवनामावली श्रीसीतारामार्पण ॥

"हरिसुयशप्रीति हरिदासको, हरिहिभाव हरिदासयश" ॥
"हरिको निजयशसें अधिक भक्तन जसपर प्यार" ॥

॥ श्री ॥

श्रीमारुतिबीरकला की जय।

यह " श्रीवैष्णवनामावली, "
☞ "श्रीभक्तमाल" जी के आदि में ,
मङ्गलाचरण रूप निवेदित है ॥

(दोहा)

" मंगल आदि विचारि रह, वस्तु न और अनूप। हरिजन के यश गावतैं, हरिजन मंगलरूप ॥१॥

भक्तन की नामावली, जे सुनि हैं चितलाय। ताकैं भक्ति बढ़ै घनी, श्रीहरि होइँ सहाय " ॥२॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमतेनमः ।

श्रीभक्तमाल

सटीक, अर्थात्

स्वामी श्री १०८ नाभा जी कृत मूल छप्पै;

तथा

श्रीप्रियादासजी प्रणीत टीका कवित्त,

अनेक प्रतियों से बड़े परिश्रम से संशोधित

और

"भक्ति सुधाविन्दु स्वाद"

भाषा वार्तिक तिलक

श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद

विरचित

ज़िला गया जी के वकील, श्रीसीतामढ़ी बुलाकीपूरनिवासी

बाबू श्रीबलदेव नारायण सिंह जी

ने

छपवाकर प्रकाशित किया ॥

"सत्ययुग, त्रेता, और द्वापर" पर्य्यन्त ।

श्रीकाशीजी] श्रीविश्वनाथपुरी [बनारस

पं. जगदम्बा शङ्कर मिश्र के प्रबंध से

"चन्द्रप्रभा" यन्त्रालय में मुद्रित ।

सन १९०४ सम्वत १९६१

न्यौछावर एक मुद्रा १)

॥ श्रीमंगलमूर्त्तये नमः ॥

॥ श्रीसीताराम ॥

श्रीमारुतिवीरकला की जय ।

(सो०) प्रणवौं पवन कुमार, खलबन पावक ज्ञान घर । जासु हृदय आगार, बसहिं राम शरचाप घर ॥

(दो०) तुमहि मातु पितु परमहित, तुम मम गुरु भगवान। "सौभाग्या" सियकिंकरी, बिनवति श्री हनुमान ॥ १ ॥

सियपिय करुणा, नाम, गुण, "श्रीभक्तन" की टेक। बिरचि यथामति कपिकृपा, भक्तिरहस्य अनेक ॥ २ ॥

कपिकर कंजनि माहिं सोइ, अरपौं मन बच काय। राम दूत करुणायतन! सो लीजे अपनाय ॥ ३ ॥

पुनि पुनि बिनवौं जोरिकर, मोहि कृपा करि देहु। श्री सिय सियपिय पद कमल, अविरल बिमल सनेहु ॥ ४ ॥

पुनि, गुरुकपि! निज चरणरति, सियपद मम मन गेहु। सिय सेवा, दम्पतिचरण, भक्ति, सुसंगति देहु ॥

श्रीअयोध्याजी प्रमोदवन } "सौभाग्य कला" (रूपकला)

दीन श्रीसीताराम शरण भगवान्प्रसाद । सम्बत् १९६१ ।

श्रीअयोध्यासरयूभ्यां नमः ।

श्रीम् नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय ।

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीभक्तमाल सटीक

भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम बपु एक ।
इनके पद बंदन किये, नाशहिं विघ्न अनेक ॥

अथ टीकाकर्त्ता श्री प्रियादास जी
का मंगलाचरण, तथा आज्ञानिरूपण ।

(कवित्त)

महाप्रभु "कृष्णचैतन्य," मनहरन जू के चरण को ध्यान मेरे, नाम मुख गाइये । ताही समय "नाभा जू" ने आज्ञा दई, लई धारि, टीका विस्तारि भक्तमाल की

सुनाइये। कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै, जगै जगमांहि, कहि, वाणी बिरमाइये। जानों निजमति, ऐपै सुन्यों भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियौ, ऐसेई कहाइये ॥ १ ॥

अथ "भक्ति सुधा स्वाद" वार्त्तिक तिलक।

ॐ नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय। श्रीचारुशीलादेव्यै नमः। श्रीचन्द्रकलादेव्यै नमः। श्रीमत्यै रामानन्दाये नमः ॥ श्री नृत्यकलाये नमः। श्री हंसकलाये नमः ॥ (श्लोक) यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव। पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिने दुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोस्मि ॥ १ ॥

(दो०) भक्तमाल आचार्य्य वर श्री नाभा पद कंज।
प्रियादास पद कमलपुनि बंदौं मङ्गल पुंज ॥
सन्त सरलचित जगत हित, जानि सुभाव सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरण रति देहु ॥

स्वामी "श्री नाभाजी" करुणासिंधु कृत "श्रीभक्तमाल" जी की प्रसिद्ध टीका श्रीभक्तिरसबोधिनीके कर्त्ता, श्रीप्रियादासजी कृपानिधि, यों कहतेहैं कि "महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य मनहरण" पद कंज का, तथा तद्रूप मनहरण [निज स्वामी] "श्री मनोहर दास" जी का, ध्यान एक समय अपने मन में मैं कर रहा था, और साथ

ही साथ श्री नाम कीर्त्तन भी। उसी समय गोस्वामी श्री नाभाजी ने मुझे आज्ञा दी कि भक्तमाल की विस्तृत टीका करो, और ऐसी कि कवित्त छंद से बंध बहुत ही मधुर तथा प्रिय लगे, और जगत में प्रसिद्ध होवे॥ ऐसी आज्ञा दे जब आप की बाणी शान्त हो गई, तब अपनी मति अति मंद जानकर पहिले अपने को सकोच तो निःसन्देह बड़ा भारी हुआ ही, परन्तु यह विचार करके आज्ञा को सीस पर धर लिया कि "श्रीमद्भागवत" में सुन चुका हूं कि "परमहंस श्री शुकदेव जी" वृक्षों में प्रवेश करके *स्वयं बोल उठे थे और "शुकोऽहं, शुकोऽहं" कहने लगे थे; ऐसेही मुझ जड़मति में भी स्वयं श्रीनाभा जी ही प्रवेश करके अपनी कृपासे ही मुझ से भी तिलक बनवालेंगे। इसमें आश्चर्य्य वा संदेहही क्या है॥

[दो०] सरल वरण, भाषा सरल, सरल अर्थ मय मान।
तुलसी सरलै सन्त जन जाहि करिय पहिचान॥

* श्री मद्भागवत के आरम्भ में ही कहा है कि जब श्री शुकदेव भगवान् जन्मते ही परम विरक्तिमान् सब त्याग कर, घर से निकल बन को चल दिये, और उनके पिता श्री व्यास भगवान् पुत्र के (उनके) विरह में कातर होकर उनके पीछे पीछे "हे पुत्र! हे पुत्र!" ऐसा पुकारते हुवे साथ हो लिये; तब योगीश्वर सर्व हृदय प्रवेशक श्रीशुकदेव जी ने तो पीछे की ओर मुंह तक भी न फेरा, और न साक्षात उत्तरही

(महर्षि पिताजी को) दिया, किन्तु उस प्रदेश के समस्त वृक्षगण आप आप को बोलने लगे कि "हां, मैं शुक हूं मैं शुक हूं, क्या आज्ञा होती है?" ॥

टीका का नाम स्वरूप वर्णन कवित्त।

रची कविताई सुखदाई लागै निपट सुहाई औ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है। अक्षर मधुरताई अनुप्रास जमकाई, अति छवि छाई मोद झरीसी लगाई है॥ काव्य की बड़ाई निज मुख न भलाई होति नाभा जू कहाई, याते (ताते) प्रौढ़िकै सुनाई है। हृदै सरसाई जोपै सुनियै सदाई, यह "भक्ति रस बोधिनी" सुनाम टीका गाई है॥ २॥

वार्त्तिक

कविताई ऐसी रची है, कि अति सुहाई (सुहानेवाली) और सुखदाई लगती है; पुनरुक्ति के दोष को भी मिटा डाला है; सचाई, और कोमल अक्षरों की मधुरता, (रसों के स्वरूपादि और टीका के बिचित्र चमत्कार,) तथा अनुप्रासों और यमकों की छबि ने मोद (आनन्द) की वृष्टि सी बरसाई है। अस्तु। अपने काव्य की प्रशंसा ("आप मुंह मिट्ठू") अपने ही मुख से कहनी, कुछ अच्छी बात तो नहीं ही है, परन्तु श्री नाभाजी ने कहलाई है, (जैसी कि ऊपर

निवेदन कर चुकाहूं, अतएव पुष्टता से कहने में आगई; सज्जन विचारमान इस्को क्षमा करेंगे ॥ यदि इसको नित्यशः कोई पढ़े सुनेगा तो अवश्यमेव उस्का अंतःकरण श्री हरि भक्ति महारानीजी की कृपा से निःसन्देह सरस हो आवेगा ॥ ऐसी टीका की है (गाई है) और इस्का नाम "भक्तिरसबोधिनी" है ॥

श्रीभक्ति स्वरूप। कवित्त।

'श्रद्धा' ई (ही) फुलेल औ उबटनौ 'श्रवण कथा,' मैल अभिमान, अंगअंग नि छुड़ाइये। 'मनन' सुनीर, अन्हवाइ अंगुछाइ 'दया', 'नवनि' वसन, 'पन' सोधो, लैलगाइये ॥ आभरन 'नाम हरि,' 'साधुसेवा' कर्णफूल, 'मानसी' सुनथ, 'संग' अंजन, बनाइये। "भक्ति महारानी" कौ सिँगार चारु, बीरी 'चाह', रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी, गाइये ॥ ३ ॥

वार्त्तिक।

निम्न लिखित सुसिँगार श्री भक्ति महारानीजी के जानिये। जो इन्हें निरखता रहता है उसको श्री प्रिया प्रियतम (श्रीराम प्रिया सीताजी तथा श्रीमज्जनकनन्दिनी प्राणवल्लभ रामचन्द्रजी) कृपा करके आ मिलते हैं। ऐसा सब वेद पुराण शास्त्रादि में गाया हुआ है ॥

१. उबटन=कथा का सुन्ना। भगवत लीला तथा भक्तों के यश का श्रवण।

(चौ०) रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन नाहीं॥ जिनके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना॥ भरहिं निरंतर होहिँ न पूरे। तिनके हृदय सदन शुभ रूरे॥ २ मैल=अभिमान। सब प्रकार के अर्थात् भीतर के बाहर के अहंकार (चौ०) उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि से मैं डारिहौं उपारी॥ अहंकार अति दुखद डमरुआ इत्यादि। (दो०)विद्या रूप सुजाति धन इत्यादिक अभिमान। जब लगि उर तब लगि कभू मिलें न श्री भगवान॥

३ फुलेल=श्रद्धा। शास्त्र और आचार्य्य के बचनों इत्यादिक में प्रीति प्रतीति सहित स्पृहा।

(श्लोक) भवानीशङ्करौ बन्दे 'श्रद्धा' विश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।
सात्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा, कर्म्म श्रद्धा तु राजसी।
तामस्यऽधर्म्मे या श्रद्धा, मत्सेवायान्तु निर्गुणा (भागवते)

(चौ०) रघुपति भक्ति सजीवन मूरी। अनूपान 'श्रद्धा' शुचि पूरी॥

४ सुनीर—मनन। मन में उसको चिंतवन करना कि जो कुछ श्रवण किया है वा जो कुछ पढ़ा है,

श्रीहरिकृपासे ऐसे सविवेक चिन्तवन मनन रूपी निर्मल सुगन्धित पवित्र अनुकूल सुन्दर जल से स्नान, [मान-हारी दीनसुखद अभिमानभंजन गर्वप्रहारी प्रणतहित-कारी भगवतचरित्रों के श्रवण रूपी उपटन के अनन्तर] योग्य ही है; तथा दया रूपी अङ्गप्रक्षालन और नवनि (नम्रता) रूपी वसन (वस्त्र) की आवश्यकता भी, भक्तिके और २ अनेक सुसाधनोंसे पूर्व ही समझना चाहिये। क्योंकि यह तो प्रसिद्ध ही है कि उपटन, स्नान, तथा वसन, सब शृङ्गारों और भूषणों से पहिले ही अत्यावश्यकीय हैं। (सो०) विद्या, बोध, विवेक, सुमति, ज्ञान, सद्‌गुणअमित। श्रीहरिरहस अनेक, प्राप्ति "श्रवण" ते; रामहित!॥ (चौ०) "मनन" बिना है विद्या भार। "मननशील" सद्‌गुण आगार॥ बिधुबदनी सबभांतिसँवारी। सोह न "वसन" बिना बरनारी॥

५ अँगुछाइब (अङ्गप्रक्षालन)= "दया"। करुणा से द्रवना, क्षमा करनी, छोहसे पघिलना, कृपासे पसी-जना, अहिंसा, अनुकम्पा; भलेबुरे जीव मात्र के क्लेश को देखसुनके दुखी होना। (दो०) "दया" धर्म्मको मूल है, यह प्रसिद्ध जगमाहिँ। शास्त्रनिपुण कैसोउ कोउ, भक्ति "दया" बिनु नाहिँ (चौ०) परहित बस जिनके मन माहीं। तिनकहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

६ वसन (विशुद्ध सुन्दर अनुकूल वस्त्र)="नवनि" मान अहङ्कार अभिमान मदादि का अभाव; नम्रता, प्रणता, दीनता, कार्पण्य, झुकना; पूर्व ही वन्दना दण्डवत करना, दूसरे के प्रणाम नमस्कार की कदापि प्रतीक्षा न करनी; अपनी निचाई समझना, अपने दोषोंको कदापि न भूलना; श्री गौरी गणपति विधाता गुरु त्रिपुरारि तमारि तो ईश ही हैं, ऋषि मुनि सुर महिसुर गो पितर माता पिता तो पूज्य हैं ही, किन्तु नरनारी गन्धर्व दनुज प्रेत और भूत मात्र को प्रणाम करके उनसे अविरल अमल "श्री हरिभक्ति" की भीख मांगनी, भगवतके अनन्यभक्तोंकी शोभा है ॥ (चौ०) तब रामहि विलोकि वैदेही। सभय हृदय विनवति जेहि तेही ॥ प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन विगत अभिमाना ॥ शाखामृग के बड़िमनुसाई। शाखाते शाखा पर जाई।"मांगौं भीख त्यागि निज धरमू।" (चौ०) की तुम "राम दीनअनुरागी"। आएहु मोहि करन बड़ भागी ॥ बरषहिं जलद भूमि नियराए। यथा नवहिँ बुध विद्यापाए ॥ (दो०)फलभर 'नम्र' विटप सब, रहे'भूमि नियराइ'। पर उपकारी पुरुष जिमि, 'नवहिँ' सुसम्पतिपाइ ॥ सत्य वचन, अरु'दीनता' पर त्रिय मात समान। एहु पर हरि जो ना मिले तुलसीदास जमान (क०) हौं तो सदा खर

को असवार तिहारोइ नाम गयन्द चढ़ायो ॥ (पद) यह दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई। (चौ०) सकल शोक दायक "अभिमाना"। संसृत मूल शूलप्रद नाना ॥ दम्भ कपट "मदमान" नहरुआ। "अहंकार" अति दुषद डमरुआ। (दो०) दीनरहा नहिं दीनभा, नाहिं दीन पद भास। दीन बन्धु केहि बिधि मिलैं बिन दीनता निवास ॥

७ सोंधो (अरगजा, चन्दन, सुगन्ध)="पन"। श्रीगिरिराजकिशोरीकृपासे नियम, नेम, व्रत, दृढ़ता, अनन्यता। (चौ०) रामभक्ति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीश प्रवीना ॥ तजौंन नारद कर उपदेशू। आपु कहैं शतबार महेशू। (दो०) चातकि को, अरु मीनको, भक्तनको 'पन' एक। सुयश 'नेम' विख्यात जग, धनि धनि धन्य सो टेक ॥

तथा एकादशी व्रत, ऊर्द्ध पुण्ड, और वैष्णवों के चरणरज को सीसपर रखने का नेम और पन ॥

८ आभरण (अनेक* भूषण)="हरिनाम"। श्रीशारदाकृपा और श्रीनारददया से "श्रीसीताराम" नाम का कीर्त्तन, अखण्ड तैलधारावत रटना जपना उसमें रमना; रागस्वर से उस्का मधुर कीर्तन सप्रेम; "चारु हरिनाम लेत अस्रुअन झरी है" (चौ०) पुलक गात, हिय सियरघुबीरू। जीह नाम जप, लोचन

नोरू ॥ तथा, श्रीहरिसहस्रनाम, युगलनाममंजरी, और भगवन्नामकीर्त्तन का पाठ करना नेमप्रेमपूर्वक * केश सुधारने और वेणी सँवारने तथा सेन्दुर से भूषित करने के उपरान्त, बेन्दी; अरगजा चन्दन सुगन्ध; और तिलक; तिल, कस्तूरिबिन्दु, दन्त शृङ्गार, सुरमा, [काजल, अंजन] मुखराग [बीरी]; इत्यादि; पुनि तिनके अनन्तर नाना मणि जटित स्वर्णाभरण पुष्पों के भूषण ॥ भूषण विबिध प्रकारके हैं और अनेक हैं जैसे, चन्द्रिका, सीसफूल, मँगटीका, बँदनी, चूड़ामणि, [नथिया] बेसर, [कर्णफूल] बुलाक, कंठिका, चम्पाकली, झूमक, मुक्ताहार, पँचलरी, कंकना चूड़ी, मुद्रिका, पहुंचि, इत्यादि ॥

श्रीसीतारामनाम प्रतापप्रकाश, कवित्तरामायण, बिनय पत्रिका, तथा श्रीमानसरामचरित और "नाम तत्व भास्कर" में "श्रीनाम प्रभाव" देखना चाहिये। यहां केवल एक श्लोक लिखे देताहूं।

(श्लोक) कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य। विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जानानां बीजं धर्म्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥ [चौ०] कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥ [दोहा०] राम नाम नर

केसरी, कनककशिपु कलिकाल। जापक जन प्रह्लाद जिमि पालहिं दलि सुरसाल ॥ बरषाऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास। राम नाम वर वरण युग स्रावण भादों मास ॥ रामं नाम जो चित धरै सुमिरे निशिदिन सोइ। योग यज्ञ तप, व्रत, सकल, तेहि पटतर नहिँ कोइ ॥

कवित्त

ज्ञान औ विराग तप, जोग, जाग, त्याग करै सिद्ध भए तरै माया बीचही में लूटती। तीरथ व्रतादि दान साधना अनेक धरै पचि मरै चावल लहै न भूसी कूटती ॥ भक्ति महारानी भव भानी युक्ति जानि परै ताहू में तो लालच लबारी आदि जूटती। शम्भु सिर सुरसरि धरी भनी रंगमनी राम नाम जाप बिनु ताप त्रय न छूटती ॥ १ ॥

९ कर्णफूल=मन, तन, अन, धन, बचन से "हरि-सेवा, तथा साधु सेवा"। बाएं कान का भूषण भगवत् कैंकर्य्य को जानिये और दाहिने कान का अलङ्कार भागवत सेवा को समझिये क्योंकि एक कुछ गुप्त होता है और दूसरा कुछ प्रत्यक्ष सा।

[चौ०]उमा! रामस्वभाव जिन जाना। तिनहि भजन तजि भाव न आना ॥ सेवहिं लषण सीयरघुबीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहि॥ [चौ०]सुमिरन, सेवा,

प्रीति, प्रतीती। गुरु शरणागति भक्ति कि रीती ॥ सीतापतिसेवक सेवकाई। कामधेनु शत सरिस सुहाई ॥

१० सुनथ (नाक की नथिया)="मानसी" अष्टयामरीति, मानस पूजा; भावना; निरन्तर सुरति से स्मरण; सुरति से सप्रेम परिचर्य्या; भक्तियोग; ध्यान; गुप्तस्मरण; मनही बन्धन तथा मोक्ष का कारण ॥ है

(चौ०) रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिये की ॥ "मन परिहरे चरण जनि भोरे"। पुनः, "मन तहँ जहँ रघुपति बैदेही" ॥

यह वार्ता किसको विदित नहीं है कि सब अंगों के सिँगारों तथा भूषणों आभरणों में नाक कान और आंखों के ही शृङ्गार मुख्य हैं; पुनः तिन में भी नाक की नथिया तो सर्वोत्तम है वरञ्च सुहाग ही कही और जानी जाती है ॥

११ अंजन [काजल सुरमा]="सुसंग"। सतसंग, सन्तसंग, साधु संगति, सम्प्रदायी सजाती भक्तों का संग; सद्ग्रन्थ विचार; श्रीगुरुहरिहरिजन चरचा आदि; तथा, भक्ति शास्त्रावलोकन, सज्जन संसर्ग, महात्मा का दरस परस, भागवत धर्म वेत्ता महानुभावों से जिज्ञासा, हरिभक्त समागम, निजसम्प्रदाय के रहस्य का ज्ञान, सन्तासन्तलक्षण विवेक, श्रीसीतारामगुणस्वभाव का कथन परस्पर ॥

(सवैया) सो जननी, सो पिता, सोइ भ्रात, सो भामिनि, सो सुत, सो हित, मेरो। सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब, चेरो॥ सो तुलसी प्रिय प्राण समान, कहां लौ बनाइ कहौं बहुतेरो। जो तजि देह कों गेह को नेह, सनेह सो राम को होइ सवेरो॥

(चौ०) मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि यतन जहां जे पाई॥ सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥ (चौ०) सत्संगति मुद-मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

(दो०) तात! स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग। तुले न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

१२ बीरी [पान, अधरराग]="चाह (नेह, भक्ति)"

[चौ०] स्वारथ सांच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥ (सो०) लोभिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि। हरि पद "रति" निःकाम, "भक्ति" सुसंज्ञा ताहि की॥ "भक्ति"=प्रेम, अनुरक्ति, चाह, इश्क़, लव, लौ, लगन। भाव, भजन, आसक्ति, राग, प्रीति, अनुराग, रति॥

[सूत्र] "सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे" [श्रीशाण्डिल्य]

[सूत्र] "सा कस्मै परमप्रेमरूपा" [श्रीनारद]

भक्ति।

"भक्ति"=भजना, भजनकरना, प्रणय, प्रिय लगना, सेवा करनी, चाहना, प्यार करना, प्रीति, प्रेम, स्नेह, अनुरक्ति, अनुराग, परम प्रेम, परा प्रीति, रति, प्रियतम बिन दुखी रहना, प्यारे बिन न जीना, सकल प्यारी वस्तुओं को प्रियतम पर न्योछावर करना, कैंकर्य्य प्रिय लगना, सदैव चिन्तवन, प्रियतम की प्रसन्नता में ही सुख मानना, पी पी रटना॥ "मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के", "स्वाति सलिल रघुवंश मणि, चातक तुलसी दास" (चौ०) प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना। "प्रेम" ते प्रगट होहिं मैं जाना॥ रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जे जाननिहारा॥ देवि! परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥

[श्लोक] मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे [१८-६५] मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः [१२-२] मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः [१२-८] अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव। मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि (१२-१०)

"थोरे महँ सब कहौं बुझाई।
सुनहु तात ! मति मन चितलाई॥

[चौ०] प्रथम हि विप्र चरण अति प्रीती। निज निज धर्म निरत श्रुति रीती॥ यहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम चरण उपज अनुरागा॥ श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। *

*[श्लोक—श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥१॥]

मम लीला रति अति मन माहीं॥ सन्त चरण पंकज अति प्रेमा॥ मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥ गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहिकहँ जानै दृढ़ सेवा॥ मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद-गिरा नयन बह नीरा॥ काम आदि मद दम्भ न जाके तात निरन्तर बस मैं ताके (दो०) मन क्रम बचन कपट तजि भजन करै निःकाम। तिनके हृदय कमल महँ करौं सदा विश्राम॥ (चौ०) प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा। (दो०) गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान। चौथि भक्ति मम गुण गण करै कपट तजि गान॥ (चौ०) मन्त्र जाप मम दृढ विश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा॥ छठ दम शील विरति बहु कर्मा निरत निरन्तर सज्जन धर्म्मा॥ सातँव सम मोहि मय जग देखा। मोते सन्त अधिक करि लेखा॥ आठँव यथा लाभ सन्तोषा।

सपनेहु नहिँ देखै पर दोषा ॥ नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना ॥ सन्मुख होय जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नाशों तब ही ॥ जननी जनक बन्धु सुतदारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥ सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बांध बटि डोरी ॥ समदर्शी इच्छा कछु नाहीं। हर्ष शोक भय नहिं मन माहीं ॥ अस सज्जन मम हिय बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे ॥ भक्ति स्वतन्त्र सकल सुखखानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥ पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न सन्ता। सतसंगति संसृति कर अन्ता ॥ पुण्य एक जगमहँ नहिँ दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ॥ सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करै द्विज सेवा ॥ (दो०) औरौ एक गुप्त मत सबहि कहौं कर जोरि। शंकर भजन बिना नर भक्ति न पावइ मोरि ॥ (चौ०) कहहु भगति पथ कौन प्रयासा। योग न मख जप तप उपवासा ॥ सरल सुभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ सन्तोष सदाई ॥ मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहां विश्वासा ॥ बहुत कहौं का कथा बढ़ाई। यहि आचरण वश्य मैं भाई ॥ बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुख मय ताहि सदा सब आसा ॥ अनारम्भ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी ॥ प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा

भगति पक्ष हट नहिं शठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥ (दो०) मम गुण ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ताके सुख सोइ जानै चिदानन्द सन्दोह"॥

श्री भक्तमाल सम्पूर्ण ही श्री "भक्ति" शब्द का अर्थ ही:अर्थ तो है; तो फिर अब भक्ति का अर्थ अलग क्या लिखा जावे॥

इति "भक्ति के स्वरूप" का संक्षिप्त वर्णन

अथ भक्तिपंचरस वर्णन कवित्त।

"शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य, औ शृङ्गार चारु" पांचौ रस सार बिस्तार नीके* गाये हैं। टीका को चमत्कार जानौगे बिचारि मन, इन के स्वरूप मैं अनूप लै दिखाये हैं॥ जिनके न 'अश्रु पात पुलकित गात कभूं, तिनहू को "भाव" सिन्धुबोरि सो छकाये हैं। जौलौं रहैं दूर रहैं बिमुखता पूर, हियो होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं॥ ४॥

(* सत्रहवीं शताब्दी में अर्थात् सम्वत साढ़ेसोलह सौ तथा सत्रहसौ के बीच में, श्री "भक्तमाल" जी का अवतार जाना गया है। और, सम्वत १७६९ में श्री प्रियादास जी ने "भक्तिरसबोधिनी टीका" लिखी है, अनुमान तथा अनुसंधान से ऐसाही निश्चय किया गया है।)

वार्त्तिक।

भक्ति के जो पांच रस हैं, नाम (१) शान्तरस (२) दास्यरस (३) सख्यरस (४) वात्सल्य रस तथा (५) दिव्य श्रृङ्गार रस ("रसराज" वा "उज्वल" रस), तिन पांचो रससार की भली भांति बिस्तार व्याख्या आप इस "भक्तिरसबोधिनी" में पाइयेगा॥ (बिचारमान महाशय!) आप स्वतः अपने मन में बिचार करके टोका के चमत्कार को जान लीजियेगा, कि इन पांचो रसों के स्वरूप कैसे अनूप दिखलाए गए हैं॥ जिन पाखानहृदय प्राणियों की आंखौँ से कभी अश्रबिन्दु नहीं निकलता, और जिनका अंग कभी पुलकित नहीं होता, ऐसे २ कठोरहिय जनों को भी श्रीसीताराम कृपा से प्रेम भाव के समुद्र में कहां तक बोर के छकाया है, सो स्वयं आप समझ लीजियेगा॥ यदि तनकभी कान लगाके भक्तों के भाव तथा भगवत भागवतयश को वैसे लोग भी सुनें, तो उनके भी, प्रेम से चूरचूर चित्त, गद्गद कण्ठ, पुलकतनूरुह, और नेत्रों से प्रेमाश्रुप्रवाह बह आवेंगे। पूरे बिमुख तो वे भी केवल उसी कालतक रहेंगे कि जब तक "भक्त माल" तथा "भक्तिरस बोधिनी" से न्यारे रहेंगे॥

☞ भक्ति के पांच रसों (१) "श्रृङ्गार (२) सख्य (३) वात्सल्य (४) दास्य और (५) शान्त रस की व्याख्या का संक्षेप कुछ, अब आगे यन्त्रो में लिखा जाता है॥

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"सख्य रस"	मित्रसुखद द्विभुजसुवेष चतुर शिरोमणि सत्यसंकल्प सुखसिन्धु श्रीरामभद्र रघुनाथ अवध- विहारी	लाललाडले लखन जी, श्रीसुग्रीव, श्रीविभीषण, श्रीवीरमणि; राजकुमार, इत्यादि	भूषण, धनुष शर; मधुर वचन; &c.	साथ साथ भोजन खेल मृगया, विचित्र परिहास; &c.	१ रोमांच २ स्तम्भ ३ प्रलय ४ स्वेद ५ विवर्ण ६ कम्प ७ अश्रु ८ स्वरभंग	३३ भाव (पृष्ठ २३ देखिये)	मित्र भाव निरन्तर

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विकभाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
“शृङ्गार” रस वा “उज्वल” रस वा “रसराज”	माधुर्य्य- प्रेमसिन्धु रूपमाधुर्य्य कमनीय कि- शोर मूर्त्ति, प्राणवल्लभ, श्री जानकी जीवन रामचन्द्र शोभाधाम छविसिन्धु	श्री जनक- किशोरी जी	कमनीयता; वसन्त ऋतु, कोकिल कूक, पवन, पावस; कटाक्ष, मुस्कान; वचन, शील, परम शोभा	श्रीकिशोरी जी की संकल्प; प्रियतमका मंदस्मित भ्रूविक्षेप स्पर्श, कटाक्ष; कर में कर नयन में नयन	१ रोमांच २ स्तम्भ ३ प्रलय ४ स्वेद ५ विवर्ण ६ कम्प ७ अश्रु ८ स्वरभंग	३३भाव (पृष्ठ २३ में देखिये)	प्रियतम पदरति; मनोहर छवि की अचला सुरति; भावना; प्रीति प्रणय

* अथ ३३ व्यभिचारी भाव।

१ निर्वेद	१० चिन्ता	१९ निद्रा	२७ वितर्क
२ ग्लानि	११ त्रास	२० सुषुप्ति	२८ अवहित्था
३ शंका	१२ ईर्षा	२१ संज्ञा वा अवबोध	१९ व्याधि
४ श्रम	१३ आमर्ष		
५ धृति	१४ गर्व	२२ व्रीड़ा	३० उनमाद
६ जड़ता	१५ स्मृति	२३ मोह	३१ विषाद
७ हर्ष	१६ अपस्मृति	२४ मति	३२ चपलता
८ दीनता	१७ मरण	२५ आलस्य	३३ औत्सुक्य
९ उग्रता	१८ मद	२६ आवेश	

(श्लोक)

पञ्चधा भेदमस्तीह तच्छृणुष्वमहामुने! शान्तो दास्यस्तथा सख्यः वात्सल्यश्च शृङ्गारकः ॥ १ ॥ मधुरं मनोहरं रामं पतिसम्बन्धपूर्वकं। ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृङ्गार रसाश्रया ॥ २ ॥ (श्रीहनुमत् संहिता)

[श्लोक] मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः ॥

(भ० गी अ० ९ श्लो० ३४)

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहं।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थसर्वशः ॥"

(भ० गी० ६)

रस	भाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"वात्सल्य" रस	दाशरथी श्रीकौशल्या नन्दवर्द्धक बालक राम लला जी; सियावर सीतापति; महाराज कुमार; सुकुमार	अम्बा श्रीकौशल्या महारानी जी, म० श्रीदशरथजी; अम्बाश्रीसुनयना जीमहारानी; अम्बा श्री सुमित्रा जी;	मीठे तोतरे २ बचन; बुलाक, घुंघुरू, काला-विन्दु; बाल-लीला;	खिलाना; लाड़; दुलार; खेलौने देना; जन्मोत्सव	१ रोमांच, २ स्तम्भ, ३ प्रलय ४ स्वेद ५ विवर्ण ६ कम्प ७ अश्रु ८ स्वरभंग	अंगताप कृशता, जागर्ण, आलंबन शून्यता, आधृति, उन्माद, मूर्च्छा, प्रहर्ष, मृत्यु	श्रीराम लाल जी में अलोल मन॥ "सुतविषयक हरि पद रति होऊ"॥

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषया लम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"दास्य" रस	सर्वेश्वर	श्रीहनुमत	शरण सुखदता, सेवक प्रियत्व	आज्ञा	१ रोमांच	चितधड़क,	अविरल
	भक्त वत्सल	श्रीप्रह्लाद		पालन;	२ स्तम्भ	दुर्बलता,	भक्ति;
	दीनदयालु	ब्रह्माजी,		तुलसी	३ प्रलय	रंगविकार,	तैलधारा-
	सेवक सुखद	शिवजी;		कंठी,	४ स्वेद	विराग,	वत स्मरण;
	ब्रह्म	भक्त		तुलसीमाला	५ विवर्ण	मूर्च्छा,	प्रेम;
	सच्चिदानन्द	मात्र		ऊर्द्ध	६ कम्प	व्याधि,	भजन,
	जगदेकत्राता			पुण्ड्र;	७ अश्रु	उन्माद,	सेवा
	व्यापक			संस्कार;	८ स्वरभंग	स्तम्भ,	
	श्रीसीतापति			भक्ति		प्रहर्ष,	
	राम भद्र					मृत्यु,	
	पतितपावन						
	अशरण शरण						

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
“शा-	इष्ट श्रीरा-	ब्रह्मा, शिव	उपनिषद्	नासाग्रपर	१ स्तम्भ	स्मृति,	प्रशान्त,
न्ति”	मचन्द्र हरि	सनकादि,	विचार	दृष्टि;	२ रोमाञ्च	निर्वेद,	मग्न,
रस	पर ब्रह्म	श्रीनारद		अवधूत	३ स्वेद	आवेग,	निर्द्वन्द्व,
	सच्चिदानन्द	श्रीवशिष्ठ,		चेष्टा;	४ विवर्ण	धृति,	समदर्शी,
	जगदेक-	श्री अगस्ति,		परमवैराग;	५ कम्प	उत्सुकता,	विरक्तपर,
	कर्ता भगवत	इत्यादि		निर्वैर;	६ अश्रु	विषाद,	तन्मय
	विश्वम्भर	शान्त रस		निर्ममता	७ स्वरभङ्ग	वितर्क,	एकाग्र
	व्यापक सर्वज्ञ	वाले भक्त			८ प्रलय	इत्यादि	निस्पृह
	शार्ङ्गधर					इत्यादि	
	श्रीसीतापति						
	परमात्मा						

(१) अथ भक्ति के शान्तिरसमें कुछ बचनः—

(श्लोक) यो मां पश्यति सर्वत्र मयि सर्वं च पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति॥ (गी०६।३०)

(दो०) तुलसी! यह तनु है तवा, सदा तपत त्रयताप।
शान्त होय जब "शान्ति" पद, पावै रामप्रताप॥
नासिकाग्र करि दृष्टि पुनि, धरै भेष अवधूत। निर्ममता, निर्वाक्यता, यथा शास्त्र अनुसूत॥२॥ दारुमांह पावक लगै, तीन रूप दरसाय। जरै, बरै, हो भस्म जब, तब सो "शान्त" कहाय॥ ३॥ अति शीतल, अतिही अमल, सकल कामना हीन। तुलसी ताहि "अतीत" गनि, "शान्ति" वृत्ति लयलीन॥ ४॥ अहङ्कार के अग्नि में, जरत सकल संसार। तुलसी! बांचे सन्त जन, केवल "शान्ति" अधार॥ ५॥ ज्ञानाभूषण ध्यान धृत, ध्यानाभूषण त्याग। त्यागाभूषण "शान्ति" पद, तुलसी अमल अदाग॥ ६॥

---

(२) भक्ति के "दास्य रस" में कुछ बचनः—

(श्लो०) दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्य क्लिष्ट कर्मणः।
हनुमान् शत्रुसैन्यानाम् निहन्ता मारुतात्मजः॥

(दो०) "सेवक सेब्य भाव" बिनु, भवन तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि॥

(चौ०) सिर भर चलौं धर्म अस मोरा। सब ते "सेवक

धर्म कठोरा ॥ अस अभिमान जाय जनि भोरे । मैं "सेवक" रघुपति "पति" मोरे ॥ "सेवक" हम "स्वामी" सियनाहू । होउ नाथ ! एहि ओर निबाहू ॥ मैं मारुत सुत हनुमत बन्दर । दीन बन्धु रघुपति कर किंकर ॥ सेवक प्रिय यह सब की रीती । मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥ सुनु कपि जिय जनि मानसि ऊना । तैं मम प्रिय लक्ष्मण ते दूना ॥ कोउ मोहि प्रिय नहिं तुमहि समाना । मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥ "सम दरशी" मोहि कह सब कोऊ । "सेवक प्रिय,"अनन्य-गति' सोऊ ॥ तैंतिस कोटि भजैं संसार । खोटा बन्दा खोटी नार ॥ ख़ाविन्दों का ख़ाविन्द एक । तिस्को जपै यह कविरा टेक ॥

सीतापति सेवक सेवकाई । काम धेनु शत सरिस सुहाई ॥
"भजबे को दोई सुघर-(१) की हरि (२) की हरिदास" ॥

(३) अथ भक्ति के "वात्सल्य" रस में कुछ बचनः—

(चौ०) सुत "विषयक" हरि पद रति होऊ । मोहि बरु मूढ़ कहैं किन कोऊ ॥ देखि "मातु" आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिये उर लाई । गोद राखि कराव पै पाना । रघुपति चरित ललित करि गाना ॥

(दो०) पिता विवेकनिधान वर, मातु दया युत नेह । तासु "सुवन" किमि पाइहैं अनत अटन तजि गेह ॥

(चौ०) सो "सुत" "पितु" प्रिय प्राण समाना। यद्यपि सो सब भाँति अजाना॥

(गीत) बूढ़ोबड़ो प्रमाणिक ब्राह्मण शङ्कर नाम सुहायो। मेले चरण चारु चारिउ सुत माथे हाथ दिवायो॥ (चौ०) 'सेवक, सुत' "पितु मातु" भरोसे। रहै अशोच, बनै "प्रभु" पोसे॥

(४) अथ भक्ति के "सख्य रस" में कुछ बचनः—

(श्लो०) न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः। न च संकर्षणो न श्री नैवात्मा च यथा भवान्॥
(एकादशे, १४। श्रीऊधव प्रति)

(चौ०) ये सब, मुनिवर! "सखा" हमारे। भरतहु ते मोहि अधिक पियारे॥ तुम सब प्रिय मोहि प्राण समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना॥

(स०) "जानि सिया जू को दास पदाम्बुज को, अलि खास! अभै मोहि दीजै। जौ मिथिलेश किशोरी के दास बने रसरंगमणी, तुम्हरी जै॥"

मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं। अनुज "सखा" सँग भोजन करहीं॥ बन्धु "सखा" संग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥

(दो०) "चपल तुरंगन फेरनी, मृग तकि मारब बान। करि पन लक्षण बेधनी, सब उद्दीपन जान॥ धरि

भुज गल बतलावनी, इक सँग भोजन सैन। अनूभाव ये "सखन" के, सब बिधि सुख के ऐन" ॥

(५) अथ भक्ति के "शृङ्गार रस" में कुछ बचनः—

(श्लो०) येत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु। ते नाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित् कूर्पादि भिर्भ्रमति धर्मव दायुषां नः ॥

(श्री भागवते)

"हरिरिति हरिरिति जपति सकामम्" इत्यादि ॥

(श्री जयदेव गीत गोविन्द)

(चौ०) प्राणनाथ! तुम विनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥ जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेइ नाथ! पुरुष बिनु नारी। नाथ! सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद विमल बिधु बदन निहारे। (दो०) प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान। तुम बिनु रविकुल कुमुद बिधु! सुरपुर नरक समान ॥ (चौ०) छिनु छिनु पिय पद कमल विलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥

"को न बिकी बिनु मोल सखी! लखि जानकीनाथ की सुन्दरताई" ॥

(गीत०) सखि, रघुनाथ रूप निहारु। &c. सखि रघुबीर 'मुख छवि देखु। &c. आली री राघो जी के रुचिर हिँडोलना झूलन जैए इत्यादि ॥

(स०) सोहहिं स्वामिनिसीय सुसंग, "सहेली सबै अलबेली नवेली; गोरी, गिरा कहिये जिन आगे गवेली लगैं रति मानहुं चेली। सारी सबै जरतारी किनारिन की पहिरे तन रंग रँगेली; पोरी, हरी, रस-रंगमनी, कुसुमी, सित, ऊदी औ नीली रमेली॥ ऐसी "सखीं" चहुँ ओर लसैं, सिय मध्य कृपा रस सागर बोरी; दै सब को मुदपुंज बिलोकहिं मंजुल कंज विलोचन कोरी। को बरनै छवि सुन्दर राजकिशोरी की, जो तिहुँ लोक अँजोरी; जासुकठाक्ष विलास पिया चित को, रसरंगमनी, लिय चोरी॥

१ श्री कथा श्रवण	= उपटन
अभिमान	= मैल
२ श्रद्धा	= फुलेल
३ मनन	= सुनीर
४ दया	= अँगुछा इव
५ नवनि	= वसन
६ पन	= सोंधो
७ भगवन्नाम	= आभरण
८ हरि साधु सेवा	= कर्णफूल
९ मानसी	= सुनथ
१० सुसंग	= अंजन
११ चाह	= बीरी

(दो०) जेहि के हियसर सियकमल पावन विकसे आय। प्रियाशरण! रघुबर भ्रमर रहे तहां मँडराय॥
नहीं जप तप व्रत ज्ञान ते, नहिं विराग ते कोय। "उज्वल रस" अधिकार वर, "लली कृपा" ते होय॥
सिद्ध योगि देखे नहीं जो थल सुर समुदाय। सीय कृपा "अलिबेष" धरि सहजहिं देखहु आय॥ निज निज सेवा द्रव्य युत, "युवति" वृन्दसिय पास। रूप कला तिन महँ लिये बहु सुगन्ध सहुलास॥

(चौ०) सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनेहि माहिं॥

"द्विभुज स्याम दशरथ कुंवर, रामऽरु जनक कुमारि।
कारण कारज ते परे, इनहि कहत श्रुति चारि॥
सदा अवध में ध्यावहीं, रासादिक बहु रंग।
बीच बीच मिथिला गवन, चहुँ कुँअरिन मिलि संग॥
रीति भाव स्थाइ पुनि, "प्रणय" प्रेम अरु नेह।
अनूराग अस जानिये मनो एक दुइ देह॥
मन्द हँसनि दृग फेरनी, सो अनुभाव बखानु।
कोकिल शब्द वसन्त ऋतु, सो उद्दीपन जानु॥
स्थाई प्रियतम रती नवनि प्रणय अति नेह।
कर पंकज स्परस पर वारत तन मन गेह"॥

(चौ०) नाथ सकल सुख शरण तुम्हारे। शरद विमल विधु, वदन निहारे इत्यादि॥

(दोहा) प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम विनु रविकुलकुमुदविधु ! सुरपुर नरक समान ॥
"सी" कहते सुख ऊपजै, "ता" कहते तम नास ।
तुलसी "सीता" जो कहै, राम न छाड़ैं पास ॥

प्रियपाठक ! श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी कृत "श्रीगीतावली," श्रीदेव स्वामी (काष्ठ जिह्वा जी) प्रणीत "शृङ्गारप्रदीप," श्रीजयदेव स्वामी कृत "गीत गोविन्द"; प्रधान कृत "रामहोली, रामकलेवा," श्रीरूप सखी जी की होली; श्रीनाभाजी, श्रीरसिक अली, श्रीतपस्वी राम जी, श्रीरामरसरङ्गमणि जी तथा श्रीरामचरणदास जी कृत "अष्टयाम मानसपूजा"; "श्रीअगस्त्य संहिता" इत्यादि और श्रीमद्भागवत (दशम), एवं श्रीकृपानिवास जी की पोथियां भी देखिये॥

कवित्त ।

पंचरस सोई पंच रंग फूल थाके नीके, पीके पहिराइबे को रचिकै बनाई है । बैजयंती दाम, भाववती अलि "नाभा" नाम लाई अभिराम श्याम मति ललचाई है ॥ धारी उर प्यारी, किहूं करत न न्यारी, अहो ! देखो गति न्यारी ढरि पायन को आई है । भक्ति छबि भार, ताते नमित "शृंगार" होत, होते वश लखे जोई यांते जानि पाई है ॥ ५ ॥

भक्तिसुधा स्वाद।

"शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार," ये जो भक्ति के पांचो रस, सोही पँचरँगे फूलों के विचित्र *थाके हैं; इन्ही की बैजयन्ती माला सप्रेम नीके रच रच के, प्रियतम को पहिराने के हेतु, श्रीनाभा नाम की अतिभाववती अलीजी सुन्दर मनोहर बनायलाई हैं; जिस को देख के, भक्तवत्सल भावग्राहक प्रेमप्रिय श्रीशार्ङ्गधर श्यामसुन्दर जी की भी मति ललचगई है; आपने इस मालाको उरमें धारण किया, यह विलक्षण अनूप रीति गति देखनेही योग्य है कि आप इस परमप्रिय माला को किसी क्षण गले से अलग नहीं करते हैं॥ भक्ति रस पुष्प थाकों की यह वैजयन्ती बनमाला है, इस कारण से यह श्री चरण कमल पर झुक के आ लगी है; अहा! भक्ति की गति क्या न्यारी होती है, "उज्वल रस" ("रसराज" अर्थात् "शृङ्गार" रस,) भक्ति की अपार छवि के भार से नमित, क्याही सुन्दर होता है; यह बात इससे जानने में आती है कि श्री भक्ति महारानी का जो दरशन पाता है सो अवश्य प्रभु के प्रेम के बश हो ही जाता है॥

(१) "सोह न वसन विना वर नारी"।

(२) "नवनि वसन, (पन सोंधो लै लगाइये)"

(३) "यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सकल सेवा बिधि गुनी॥ निज कर श्री

परिचर्य्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई" ॥ इत्यादि ॥

(४) "पद सेवा श्रीलक्ष्मी, (आसन वर श्री शेष)" इत्यादि, इत्यादि ॥

सतसंग प्रभाव वर्णन। कवित्त।

भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरी हू को, बारि दै बिचार, बारिसींच्यो सतसंग सों। लाग्योई बढ़न, गोंदा चहुँ दिशि कढ़न, सो चढ़न अकाश, यश फैल्यो बहुरंग सों॥ संत उर आलवाल शोभित विशालछाया, जिये जीव जाल, ताप गये यों प्रसंग सों। देखौ बढ़वारि, जाहि अजाहू की शंका हुती, ताहि पेड़ बांधे झूलें हाथी जीते जंग सों॥ ६॥

वार्त्तिक।

श्री हरिभक्ति रूप तरुवर की आदि अवस्था एक नवीन वृक्ष की सी समझिये कि जिस्को एक बकरी के बच्चे से भी बिघ्न का भय रहा करता है, और सन्त वा भक्त के हृदय को थाला सरिस जानिये। इस पौधे की रक्षा चारों ओर विचार रूप घेरे * से जब की गई तथा सत्सङ्ग के जल से यह सींचा गया तब यह बढ़ने लगा; चारों ओर गोंदे (शाखा प्रशाखा) निकले फैले और वृक्ष आकाश की ओर चढ़ने बढ़ने लगा भगवद्भक्ति का सुयश अनेक प्रकार से लोक में

* मिट्टी ईंटों वा कांटों के घेरे को "बारी" वा "थार" जानिये॥

विख्यात हो गया। इस तरुवर की विस्तृत छाया कैसी सुशोभित हुई कि जिस्के तले पहुँचने ही से महाताप गए; और नारिनरवृन्द वरन् जीव मात्र जी उठे अत्यन्त सुखी हुए। इस वृक्ष की उन्नति पर तनक चित्त की दृष्टि तो दीजिये कि जिस्को प्रथमतः छेरी बकरी की भी महा शंका रहा करती थी वही अब आज (रामकृपा से) ऐसा सुदृढ़ हो गया कि ज्ञान वैराग्य यश महत्वादिक बड़े बड़े प्रबल हाथी भी इस्में बँधे हुए झूला करते हैं; सत्सङ्ग के प्रभाव को विचारियेगा॥

चौपाई। सत सङ्गति मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि, सब साधन फूला॥

श्रीनाभाजूका वर्णन। कवित्त।

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो, कियो यों कवित्त पट मिहीं मध्य लाल है। गुण पै अपार साधु कहैं आंक चारिही में, अर्थ विस्तार कबिराज टकसाल है॥ सुनि संत सभा भूमि रही, अलि श्रेणी मानों, घूमि रही, कहैं यह कहा धों रसाल है। सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है॥ १॥

वार्त्तिक।

जिस सन्तका जैसा स्वरूप है, श्रीनाभा जी स्वामी ने

उसको अपने अनूठे काव्य में वैसाही अनूप दिखा दिया है और कविताई ऐसी की है कि जिस्का अर्थ ऐसा झलकता है कि जैसे बहुत झीने बस्त्र के बाहर से उसके भीतर का लाल मणि (रत्न) झलकता है॥ सन्तों के अपार गुणों को श्रीनाभाजी ने थोड़ेही अक्षरों में यों कहा है, कि उन में अर्थ अनोखे विस्तृत भरे हैं, जैसे बड़े बड़े कबिवरों की चमत्कृत रीति होती ही है॥ सन्तों की सभाएं इस भक्तमाल काव्य को सुन के भ्रमर बृन्दों की भांति मँड़राती तथा झूमती रहती हैं, और यह कहती हैं कि "यह कैसा आश्चर्य्य रस मय रसाल है"॥ मैंने "अगर" जी का नाम सुना तो था परन्तु अब ठीक ठीक जान भी लिया कि आप वस्तुतः 'अगर' हैं, जिन से "नाभा" * रूप 'चोआ' हुए, कि जिन नाभा ("नाफ़ा") † का "भक्तमाल" ऐसा 'सुगन्ध' फैल रहा है॥

☞ भागवतधर्माचरण के प्रसिद्ध तथा प्रधान आधार "भक्तमाल" की क्या बात है। इस आदरणीय ग्रन्थ का अनुवाद केवल महाराष्ट्री, बङ्गला, फारसी, उर्दू, आदि अनेक प्राकृत भाषाओं मात्र में ही नहीं. वरंच देववाणी (संस्कृत) में भी हो गया है॥

* नाभाजी "नभोभूज" का अपभ्रंश है॥ † नाफ़ा (कस्तूरी वाला) نافہ

यह तो ठीक ही है कि इस ग्रन्थ (भक्तमाल) में प्रायः सातसै भक्तों के नाम हैं, सतयुग त्रेता द्वापर के अतिरिक्त कलियुग के ४७४०वें बर्ष तक के नाम हैं॥ अर्थात्-

हिन्दू महाराजाओं के ४२९६ बर्ष के, तथा
मुसल्मान् बादशाहों के ४४४ बर्ष के,
(सम्बत १६९६, सन १६३९ ईसवी,)
कलियुग के ४७४०वें बर्ष पर्य्यन्त के महात्मा के,
(विक्रमी सत्रहवीं शताब्दि तक के);
कि जिस समय को आज, * २६४ बर्ष हुए॥

गोस्वामी श्री ६ नाभा जी के "भक्तमाल" के अनुवाद और टिप्पणी तथा टीकाएं भी, अपनी अपनी चाल पर, अनेक हो चुकी हैं-

---

"थाके" शब्द का अर्थ।

एक एक रंग के पांच सात फूलों का समूह एकत्रित, ऐसे समूहों को "थाके" कहते हैं। जैसे गुलाबी वा लाल पुष्पों का एक थाका, ऐसे ही पीले, हरे, स्वेत, स्याम तुलसीदलों फूलों के विचित्र थाके॥ ऐसे पंचरंगे थाकाओं से मालाएं रची जाती हैं, यह प्रसिद्ध ही है॥

* कलियुगीय सम्बतसर ५००४=विक्रमीय सम्बत १९६०=सन् १९०३ ईसवी॥

गिनती	सम्वत	भक्त नामावलियों के नाम	उनके कर्त्ताओं के नाम
१	१७६९	भक्ति रस बोधिनी टीका	श्री प्रिया दास जी
२	१८००	भक्त उरवसी (अनुवाद)	लालचन्द्र दास
३	१८९८	(फ़ारसी)	मु० गुमानी लाल
४	१९११	भक्ति प्रदीप (२४ निष्ठा)	श्री तुलसीराम जी
५		भक्त कल्पद्रुम (२४ निष्ठा)	प्रतापसिंह जी
६	१८००	भ०मा० टिप्पनी (श्रीकाशी१९२३ लखनऊ १९५२, बम्बई १९५७ में छपी है)	निम्बार्क सम्प्रादायी वृन्दावन वासी वैष्णवदास
७	१९२१	रामरसिकावली (चौपाई)	राजा श्रीरघुराजसिंह
८	१९२५	रसिकभक्तमाला	श्रीयुगलप्रिया जी
९	१९३०	भक्तमाल	श्री हरिश्चन्द्र जी
१०	१९३४	"رموز مسرورونا"	श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय
११		भक्तनामावली	श्री ध्रुवदास
१२	१९५८	भक्तनामावली	श्रीराधाकृष्ण दास; "श्रीकाशी नागरीप्रचारिणी सभा"

इन में, भक्तों के निवास स्थान देश तो प्रायः वर्णित हैं, परन्तु उनके जन्मादि के काल की चरचा पाई नहीं जाती। हां, इस बात के अनुमान तथा अनुसन्धान की ओर इन चार महाशयों की दृष्टि तो अवश्य ही गई है (१) प्रेमीवर श्रीहरिश्चन्द्र जी (२) "प्रेमगंगतरंग"

"रमूज़े मिह्रो वफ़ा" और "वक़ाए देहली" * इत्यादिक के कर्त्ता श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय (३) श्रीराधाकृष्णदास जी (४) "दिमाडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर् अव हिन्दुस्तान" † के कर्त्ता डाक्टर् ग्रियर्सन् साहिब् ॥ तथापि, किसी को उनकी तारीखें मिलीं नहीं ॥ तो जिन वार्त्ताओं की टोह ऐसे २ ऐतिहासिक तत्त्व रसिक अनुसन्धान कारियों को न मिलीं, उन बातों में इस दीन का हस्ताक्षेप भला कब फलदायक होना सम्भव ?
(चौपाई) "जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं ।
कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥"

अतः उसको छोड़कर, इस दीन ने स्वमति अनुसार, केवल मूल तथा कवित के अर्थ मात्रही लिखने पर चित दिया । श्रीसीताराम कृपा से, "श्रीहनुमत यश तरंगिणि" ‡ "श्रीरामानन्दयशावली", इत्यादिक अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता स्वामी श्री ६ रामरसरङ्गमणि जी भक्तमाली से, इस दीन को बड़ी भारी सहायता पहुंची है; कृपा का धन्यवाद ॥ सब सज्जनों से पुनः पुनः कृपा आसीस की इस दीन § की प्रार्थना है ॥

---

* رموزمہرو وفا و وقایع دهلي *

† The Modern Vernacular Literature of Hindustan by Dr. Grierson.

‡ "श्रीसीतारामशोभावली"

§ सीताराम शरण भगवान् प्रसाद सैाभाग्यकला (रूपकला)

कबित्त।

नाभाजू दयाल, अग्र आज्ञा ते, उताल, वंदि संत सिया लाल, रचे 'भक्त जस ज़ाल है। मेटत कुचाल, भरै भूरि भाग भाल, तम नाशै, शोभा साल, प्रभा पूरे ज्यों मशाल है॥ निरखि निहाल, रस रामभणि बाल, वेष वैष्णवी बिशाल, प्रीति पालनी निराल है। पढ़ै सर्व काल, सदा सुनै जो रसाल, होय काग ते मराल हाल, ऐसी "भक्तमाल" है॥ (श्रीरामरसरंगमणि)

यह बात विदित ही है कि "भक्तमाल" की शुद्ध प्रति आज कल ढूंढ़ निकालनी भी कोई सहज ही सी वार्त्ता नहीं है॥

भक्तमाल स्वरूप वर्णन। कबित्त।

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुण गान करैं, हरैं जग पाप, जाप हियो परिपूर है। जानि सुखमानि हरि सन्त सनमान सचे, बचेऊ जगत रीति, प्रीति जानी मूर है। तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधि सकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है। शोभित तिलक भाल, माल उर राजै, ऐपै बिना भक्त माल भक्तिरूप अति दूर है॥ ८॥

वार्त्तिक।

चाहे कोई कैसेही बड़े भक्तिमान हों, रात दिन

हरि गुण गाया करते हों, संसार के पापों को हरते भी हों, भगवन्नाम जपा करते भी हों, उनका हृदय सद्गुणों तथा भगवद्ध्यान से भरा भी हो, ज्ञानमान भीं हों, (तनु कम्प और हिय चूर्ण भी हों,) श्री हरि तथा सन्तों के सन्मान में भी सांचे हों, और उसी में सुख मानते भी हों, रीति से नाम जपते भी हों; सांसारिक प्रपंच से बचे भी हों, प्रेम को ही जड़ वा सार जानते हों, ललाट में तिलक और उर में माला भी सुशोभित हों; यह सब ठीक है सब कुछ हो, तथापि भक्ति की आराधना कठिन ही है; ओह! कोई किस प्रकार से आराधना कर सकता है? भक्ति की विलक्षण सूक्ष्मगति समझ में नहीं आती, मन कांप उठता है, हृदय चूर चूर हो जाता है। सारांश यह कि "श्री भक्तमाल जी" को पढ़े समझे और मनन किये बिना, श्री भक्तिमहारानी की आराधना और उनके स्वरूप का जानना अतीव दूर तथा असम्भव है॥

इस कवित में यह शंका है कि "जो जो श्री भक्ति के अंग इस में कहे हैं, तिस से पृथक् भी क्या और भी कोई भक्ति का रूप है?" समाधान:— नहीं परन्तु इन्हीं अंगों की निष्ठा परा काष्ठ' रूप भक्तमाल में भक्तों ने आचरण करिके दिखाए हैं, कि जिन्हके श्रवणमात्र से ही, इन अंगों संपन्न जन भी, निज भक्ति का अभिमान त्यागि के निराभिमान परा-काष्ठा भक्ति पद की आशा करते हैं॥ (उदाहरण) यथा. बड़े भक्तिमान श्री पीपा जी ने चौधर भक्त की भक्ति को देखि निज भक्ति को लघु माना॥ 'गुन गान;' जैसे वृतकनारायणदास कि शरीर ही त्याग दिया॥ 'नाम जाप' अंतरनिष्ट राजा का कि, तनही त्याग दिया॥

'श्री हरिसन्मान सेवा' जैसे मामा भानजे की कि, सरावगी के शिष्य होके कहा कि पावैं प्रभु सुख हम नरक हूं गए तो कहा॥ 'सन्त सनमान' जैसे सदाव्रतीवणिक जी की कि वेष धारी ने बेटावध किया तब बेटी विवाहिके प्रसन्न किया॥ इत्यादिक उदाहरण श्री भक्तमाल में देख लीजिए। विस्तार के भय से बहुत नहीं लिखे॥

"श्रीभक्तमाल" क्या है? उन महानुभाओं का जीवन चरित्र कि जिनको हमारे करुणाकर प्रभु की दयालुता विशेष अपने छविसमुद्र में मग्न कर चुकी है। उनके श्रवण मनन निदिध्यासन बिन, उस रस में किसी का प्रवेश कैसे सम्भव है? क्रिया का यथार्थ स्वरूप कर्त्ताओंही के आचारण जानने से पूर्णतः तथा शीघ्रतर अन्तःकरण में श्रवणादि द्वारा पहुँचकर गुणकारक और सुखप्रद होता है। श्री भक्तमाल के अपूर्व अधिकार की विलक्षणता चित्त पर कैसी होती है, इसका अनुभव श्रीभक्तमाल के पढ़ने सुननेवालों ही को होता है॥

अथ मूल मंगलाचरण॥ दोहा॥

भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु, चतुर नाम वपु एक। इन के पद बंदन किये, नाशैं (बिनशैं) विघ्न अनेक॥१॥

वार्त्तिक।

"श्रीभगवद्भक्त" "श्रीभगवद्भक्ति" "श्रीभगवत्" और "श्रीगुरु", इनके नाम ही मात्र तो चार हैं, परन्तु वास्तविक स्वरूप एक ही जानिये; इनमें भेद कुछ भी नहीं।

विश्वासपूर्वक ऐसा समझ रखिये कि इनके पद-सरोजकी वन्दना समस्त विघ्नों की निःशेष नाश करती

है, चाहे वे बिघ्न हृदय के भीतर के हों; वा बाहर के ही हों ॥

आठवें कवित्त तक तो श्रीप्रिया दास जी की ही निज भूमिका, मंगलाचरण, और उपक्रमणिका हुई। हां अब आगे, नवें कवित्त से, उनकी "टीका" प्रारम्भ होती है।

टीका ॥ कबित्त ॥

हरि गुरु दासनि सों सांचो सोई भक्त सही, गही एक टेक, फेरि उरते न टरी है। भक्ति रस रूप को स्वरूप यहै छवि सार चारु हरि नाम लेत अँसुवन झरी है॥ वही भगवंत संत प्रीति को बिचार करै, धरै दूरि ईशता हू, पांडुन सो करी है। गुरु गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहां गाई श्री पैहारी जू की रीति रंग भरी है ॥ ९ ॥

वार्त्तिक।

(१) "भक्त" उन को समझिये सही कि जिन को "हरि" (भगवत) चरणारविन्द में तथा श्री "गुरु" पद कंज में और "हरिदासों" (भागवतों) के पदपंकज में 'सच्चा' प्रेम हो; तथा "श्री हरि, श्री गुरु और श्री हरिगुरुदासों" के प्रति जिन का सत्य (निष्छल निष्कपट) बरताव होवे; और जो श्रीकृपा से अपनी निज गृहीत निष्ठा के टेक में सदैव अचल रहैं॥ भक्तिमान जन भक्त

कहे जाते हैं अर्थात् जिन भाग्यभाजनों के हृदय कमल में श्री भक्ति महारानी विराजती हैं तिन्ह सज्जनों को भक्त कहते हैं ॥ (श्लोक) वैष्णवो मम देहस्तु तस्मात्पूज्यो महामुने । अन्ययत्नं परित्यज्य वैष्णवान् भज सुव्रत ॥

(२) "भक्ति" जो रसरूपा है उस्का सुन्दर छवि सार स्वरूप संक्षेपतः यह पहिचान लीजे कि श्री सीता राम नाम उच्चारण करने के साथ ही आंखें में से प्रेमाश्रु के बिन्दु टपकने लगें वरंच आंसू की झड़ी बरसने लगे ॥

"भक्ति" की कुछ व्याख्या पृष्ठ ७ से पृष्ठ ३४ पर्य्यन्त लिख आए हैं। "भक्त" के भाव का नाम "भक्ति" है अर्थात् जिस अनूप सम्पत्ति के भाजन को "भक्त" कहते हैं उस अविरल अमल पवित्र सर्वोत्तमोत्तम फलों के रस का नाम "भक्ति" जानिये ॥

(३) "भगवत" तो सन्तों और भक्तों की प्रीतिही को विचार करता है; प्रेम के आगे अपनी ईशता (ईश्वरत्व) को न्यारे ही छोड़ देता है; जैसे कि गृद्ध, निषाद, शवरी, पाण्डवें इत्यादिकन के साथ। ऐसा भगवत, सो उस्की इस भक्तवत्सलता की जय ॥

(४) ऐसे व्यापक, सच्चिदानन्द, परब्रह्म, सुखराशि, शार्ङ्गधर, शोभाधाम, परमसमर्थ, "भगवंत" श्रीजानकी वल्लभजी के पद पंकज की भक्ति जिस्के उपदेश तथा

कृपा द्वारा भक्तों को प्राप्त होती है, उसको श्री "गुरु" कहते हैं। गुरुताई की रीति तथा सचाई को श्रीकृष्णदास पैहारी (पयोहारी) जी महाराज के रङ्ग भरे चरित्र में सुना समझना चाहिये॥ कुछ न लेना और पूरा २ कृतार्थ कर देना॥

(१) प्रीति जिसको होती है (भक्त); (२) तथा प्रीति (भक्ति); (३) और जिसकी प्रीति होती है (भगवन्त) (४) एवं जिसके द्वारा प्रीति होती है और प्रियतम मिलता है, जो कि भगवत प्रेम के ही निमित्त पूजा जाता है, सो (गुरू); ये चारों के चारों ही केवल कहने मात्र को ही चार हैं, नहीं तो भुत्र करके इन्हें वस्तुतः एक ही जानिये॥

जैसे यदि किसी को अपनी आंखें दर्पण में देखनी हो, तो उस समय विचारिये कि करता वा देखनेवाली तो आंखें ही हैं; तथा देखना आंखों ही की क्रिया है; और जिसको (कर्म) आंखें देखती हैं सो भी अपनी आंखे ही हैं; एवं जो आप के देखने के करण स्वरूप हैं नाम जिनसे आप देखते हैं वे भी आंखेंही हैं, और फिर दर्पण बना भी है केवल आंखों ही के लिये; अर्थात् कर्त्ता कर्म करण सम्प्रदान ये सब कारक आखें ही हैं। या सब एक ही तत्त्व हैं। उनमें भेद वा भिन्नता कहां है? ऐसे ही भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, ये चारों अभेद हैं॥ भगवत की ही विचित्रता हैं। चारो नामों से भगवत ही वन्दनीय है वही एक नामी है॥

चारो की एकता का तात्पर्य्य यह कि श्रीभगवत ही जीवों के कल्याण के निमित्त अपनी कृपा से चार रूप हुए हैं, क्योंकि भक्तों के अन्तर्यामी तथा उरप्रेरक आप ही हैं; उपाय रूपा भक्ति भी आपही की साक्षात कृपा शक्ति है; हितोपदेशक इष्टमन्त्र गर्भित श्री गुरु तो भगवद्रूप प्रसिद्ध ही हैं। इस प्रकार से तत्त्वतः चारो एक हैं॥

॥ दोहा ॥

मंगल आदि विचारि रह, बस्तु न और अनूप। हरिजन कौ यश गावते, हरिजन मंगलरूप॥ २॥

सब सन्तन निर्णय कियो, *श्रुति पुराण इतिहास। भजिबे को दोई सुघर, कै हरि, कै हरिदास॥ ३॥

वार्त्तिक।

मंगलाचरणों तथा मंगल वस्तुओं में विचारने से भगवत भक्तों का गुण वर्णन ही अनूप जँचता है, इसके सरीखा मंगल मूल और कुछ भी नहीं ठहरता। भग-

* प्रकट हो कि "अशुद्ध" प्रतियों में ऐसा पाठ है कि सब सन्तनमिली निर्णय कियो मथि श्रुति पुराण इतिहास॥ इत्यादि॥

वत तथा महात्माओं के सुयश को गाते गातेही, भगवत के जन मंगलमय हो जाया करते हैं ॥

सब वेदों पुराणों इतिहासों ने तथा सब सन्तोंने यह बात पक्की ठहराय रक्खी है कि भजे जाने के योग्य दो ही हैं (१) भगवान् तथा (२) भगवान् के साधु भक्त; सो इन दोनों ही की सेवा वा भजन, उत्तम ठीक और सुन्दर है ॥

॥ दोहा ॥

अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन को यश गाउ।
भवसागर के तरनकों, नाहिन औरउपाउ४।

वार्त्तिक।

स्वामी श्री ६ अग्रदेव महाराज जी ने आज्ञा दी कि भागवतों के सुयश वर्णन कर; भवसिन्धु से पार होने के अर्थ अमोघ महानौका दूसरा कोई नहीं है ॥

आज्ञा समय की टीका ॥ कवित्त ॥

"मानसी स्वरूप" में लगे हैं अग्रदास जू वै, करत बयार नाभा मधुर सँभार सों। चढ्यो हो जहाज पै जु शिष्य एक, आपदा में कर्यो ध्यान, खिच्यो मन, छुट्यो रूपसार सों॥ कहत समर्थ "गयो बोहित बहुत दूरि आवो छवि पूरि, फिरि ढरो ताही ढार सों" ॥ लोचन उघारिकै निहारि, कह्यो "बोल्यो कौन?" "वही जोन पाल्यो सीथ दे दे सुकुँवार सों" ॥ १० ॥

वार्त्तिक।

एक समय स्वामी श्री ६ अग्रदास महाराज जी मानसी भावना में मग्न थे, और श्रीनाभाजी महाराज आप को प्रेम से धीरे धीरे पंखा झल रहे थे। उसी समय आप के एक शिष्य ने, कि जो सागर (समुद्र) में एक जहाज़ पर चढ़ा था, जहाज़ के रुक जाने से आर्त्तवश स्वामी श्री ६ अग्रदेव महाराजजी का ध्यान किया। एक तो स्मरण, दूसरे दीनता से, फिर क्या था, उक्त स्वामी जी कृपालु के मन को सार स्वरूप की सेवा से छुड़ा के अपनी ओर आकर्षण कर ही तो लिया। समर्थ श्री नाभाजी अपने स्वामी के अनुपम रहस्य सेवा का यों विघ्न सह न सके; कृपापूर्वक उसी पंखे के वायुबल से जहाज़ को उस आपदा से छुड़ा कर, विनय किया कि "प्रभो! वह बोहित (जहाज़) तो आप की कृपा ही से आपदा से बच कर बहुत दूर निकल गया; अब आप अपने चित्त को उधर से लौटाय के शान्ति पूर्वक स्वकार्य्य में तत्पर करके पुनः उसी अनुपम छवि में लगाइये"। इस वर्त्ता के सुन्तेही नेत्र उघार उनकी ओर निहार आपने पूछा कि "कौन बोला?" श्रीनाभाजी ने हाथ जोड़ के प्रार्थना की कि "नाथ! वही शरणागत बालक, कि जिस्को सीथ प्रसाद देदे के आपने कृपापूर्वक पाला है॥"

टीका। कवित।

अचरज दयो नयो यहां लौं प्रवेश भयो, मन सुख छयो, जान्यो संतन प्रभाव को। आज्ञा तब दई, "यह भई तोपै साधु कृपा, उनहीं कौ रूप गुण कहो हिय भाव को"॥ बोल्यो करजोरि, "याको पावत न ओर छोर, गाऊं राम कृष्ण नहीं पाऊं भक्ति दाव को"। कही समुझाइ, "वोई हृदय आइ कहैं सब, जिन लै दिखाइ दई सागर में नाव को" ॥११॥

वार्त्तिक।

इतना सुन्तेही आप नवीन आश्चर्य्य में आकर विचार ने लगे कि इसकी यहां तक पहुंच हुई! तथा मन में अत्यन्त आनन्द छाय गया, और जाना कि यह सन्तों के प्रसादी और चरणामृत का प्रभाव है। तब आपने इन्हें आज्ञा दी कि "वत्स! यह तुझ पर साधुओं की अलभ्य कृपा हुई; अतः अब तू सन्तोंही के गुण स्वरूप तथा हृदय के भाव को वर्णन कर"। (भवसागर के तरने का यही उपाय है।)

इनने हाथ जोड़ के निवेदन किया कि "स्वामी! श्री रामकृष्ण चरित्र गा सकूं तो गा सकूं, परन्तु भक्तों के अपार रहस्य चरित्रों का आदि अन्त पाना तो मुझको असम्भव ही है"। आपने समझाया कि "पुत्र! जिनने तुम्हें समुद्र में जहाज़ को दिखा दिया, वेही

तुम्हारे हृदय में प्रवेश करके अपने अलौकिक रहस्यों को कहेंगे। सो, तुम अब भक्त यश कह ही चलो॥"

ऐसे वरदानात्मक वचनवर सुनके श्रीकृपा से श्रीनाभाजी महाराज आनन्द पूर्वक उद्यत होही तो गए, और "श्रीभक्तमाल" रचही तो दिया॥

☞ श्रीभक्तमाल जी में १९५ छप्पय (षटपदी) हैं; आदि में चार दोहे हैं; एक कुण्डलिया तथा एक दोहा मध्य में; और अन्त में बारह दोहे हैं; सब मिलके २१३ (दो सौ तेरह) छन्द हैं॥ यही "मूल भक्तमाल" है, जो (यही मूल), इस ग्रन्थ में 'बड़े अक्षरों में' छपा है॥ और, श्रीप्रियादास जी की "भक्तिरस बोधिनी" टीका (उक्त भक्तमाल की), ६२९ कवित्तों में है। इन्हीं आठ सौ बतालीस (२१३+६२९=८४२) छन्दों का भावार्थ, यथा मति, सन्तों की कृपा से लिखना, इस दीन का उद्देश्य है॥

श्रीनाभाजी की आदि अवस्था वर्णन। कवित्त।

हनूमान बंश ही में जनम प्रशंस जाको भयो दृगहीन सो नवीन बात धारिये। उमरि वरष पांच, मानि कै अकाल आंच, माता वन छोड़ि गई विपति विचारिये॥ कील्ह औ अगर ताहि डगर दरश-दियो लियो यों अनाथ जानि, पूछी, सो उचारिये। बड़े सिद्ध जल लै कमण्डलु सों सींचे नैंन, चैंन भयो खुले चख, जोरी को निहारिये॥ १२॥

वार्त्तिक।

स्वामी श्री नाभाजी महाराज के जन्म, और प्रथम अवस्था की दशा, इस प्रकार है कि परम प्रशंसनीय श्रीहनुमान वंश में अवतार लिया॥

सो हनुमान वंश का निर्णय मुन्शी श्रीतुलसी राम जी और उनके अनुग श्रीभक्तकल्पद्रुम के कर्त्ता श्री प्रत्तापसिंह जी ने, इस प्रकार किया है कि दक्षिण में तैलङ्ग देश गोदावरी के समीप श्रीरामभद्राचल केपास "श्रीरामदास" नाम के एक महाराष्ट्र ब्रह्मण श्रीहनुमान् जी के अंशावतार हुए, (उनके छोटी सी पूंछ भी थी) वे बड़े प्रसिद्ध श्रीरामोपासक परम भक्त सानुराग सिद्ध थे बहुतों को श्रीसीताराम भक्त भवविरक्त श्री चरणानुरक्त करके श्री सीताराम धाम को प्राप्तहुए। इस प्रकार श्रीहनुमान अवतार होने से वह हनुमान वंश करके विख्यात है, अबतक उसवंश के लोग गानविद्या के अधिकारी होते हैं राजा लोगों के यहां नौकरी गानेपर करते हैं ऐसा उन्होंने लिखा है॥

और इसी भक्तमाल को, दोहा चौपाई में रचनेवाले राजा श्रीरघुराजसिंह जी ने ऐसा लिखाहै कि "सो शिशु लाङ्गूली द्विजकेरो" अर्थात् उन्होंने हनुमान वंश का "लाङ्गूली" ब्राह्मण अर्थ किया है॥

और, कोई २ तो स्वामी श्रीनाभाजी का जन्म डोम

वंश में भी कहते हैं, परन्तु पश्चिम देश में "डोम" किस को कहते हैं यह न जाननेवाले लोग इस देश में डोम भंगी को नामान्तर समझ के "भंगी" भी कह बैठते हैं सो भंगी कहना महा अनुचित अविचार है क्योंकि पश्चिम माड़वार आदिक देशों में, 'डोम, कलावँत, ढाढ़ी, भाट , कथक,' इन गानविद्या के उपजीवीयें की तुल्य जाति (ज्ञाति) और प्रतिष्ठा है। इसका प्रमाण (१११वें छप्पय में) श्रीमूल कारने "लाखा" भक्त को बानर अर्थात् बानरवंशी लिखा और (४२६ वें कवित्त में) भक्त-माल के टीका कारने "लाखा नाम भक्त ताको बानरो बखान कियो कहैं जग डोम जासो मेरो शिरमोर है" ऐसा लिख के आगे इन के गृह में सन्तें का जाना और रोटी प्रसाद का खाना भी लिखा है सो देख लीजे॥ लाखा भक्त के इहां सन्तें का प्रसाद रोटी पाना अन्यथा असंभव था॥ अस्तु, इहां तो दोनें प्रकार से उत्तमता है श्रीनाभा स्वामी तो श्री सीताराम जी के अनन्य विशुद्ध जगत पूज्य दास हैं न ब्राह्मण हैं न डोम इन अच्युतगोत्र की देह तो जात्याभिमान से रहित है! इत्यलम्॥

और श्रीनाभाजी के अवतार की कथा इस प्रकार भी सन्तें से सुनी है कि जब ब्रह्माजी ने वत्स बालकें को हरण किया तब श्रीकृष्ण कृपालु जी ने कहा "ब्रह्मा

जी आप विमोह दृष्टि से हमारे प्रिय वत्स बालकों का हरण किया तिस हेतु से कलिकाल में लोचनहीन जन्म लोगे" तब श्रीब्रह्माजी ने स्तुति की और श्रीभगवान् ने प्रसन्न होके वर दिया कि "पांच वर्ष तक अंधे रहोगे तदुपरि बाहिर भीतर दोनों प्रकार के दिव्य नेत्र खुलेंगे और परम यश को प्राप्त होगे"। सोई श्री ब्रह्मा जीके अंश से अवतार लिया॥

प्रशंसनीय हनुमान वंश में, हरि इच्छा से आपने अन्धेही जन्म लिया, और "नवीन बात," सो यही कि नेत्रों के चिन्ह तक न थे, तिन्ह को भी महात्माओं की कृपा से दिव्य लोचन मिले। आप पांचबर्ष के हुए तब देश में अति दुकाल पड़ा। पिता का भी शरीर छूट गया। माता आप को लेके और देश को चलीं; परन्तु भूखों मरने लगीं, लेके न चल सकीं इसी बिपत्ति के बश बनही में छोड़कर चली गईं। वह दीनता, और भगवत की यह दीनदयालुता बिचारनेही योग्य है कि स्वामी श्री कील्ह देव जी तथा स्वामी श्री अग्रदेव जी श्रीहरि कृपा से उसी ओर जा निकले; अनाथ बालक को देख आपने पूछा कि "बालक! तू कौन है? और अकेला क्यों है? कोई और भी तेरा संगी सहायक है? तेरे माता पिता कौन हैं?"

सो उसी अवस्था में, (होनेहार बिरवे के चिकने चिकने पात) आपने उत्तर कुछ विलक्षण सा दिया, कि "महाराज! अब तक तो यह दीन अपने को असहाय ही समझे था परन्तु आप का कृपा पूर्वक पूछना ही मुझे सुधि दिलाता है कि मेरा और तो माता पिता संगी सहायक कोई नहीं है, पर जो सब जगत का माता पिता साथी और सहायक है, सोई अनाथ नाथ मेरा भी संगी सहायक और माता पिता है॥"

दोनों महात्मा सिद्ध तो थे ही, बड़े भाई श्री कील्ह देव जी ने अपने कमण्डल से कृपा रूपी जल के छींटे जों ही उनकी आंखों पर दिये, उसी छन उनकी आंखें खुलही तो गईं। दोनों महानुभावों की जोड़ी का दरशन पाकर उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आए॥

अब इस बिषय में (अर्थात श्री नाभा जी के जन्म जाति तथा नाम की बार्त्ता) कुछ और भी निवेदन की जाती है–

स्वामी श्री नाभा जी का नाम "नभभूज" है; आप अयोनिज पुरुष हैं; आप की जाति तो कोई नहीं; आप श्री हनुमत स्वेद से हैं, अतएव हनुमानबंशी प्रसिद्ध।

"श्रीसूर्य्यभगवान् से विद्यापढ़ने के अनन्तर जिस समय श्री अंजनीनन्दन पवनतनय श्री हनुमान जी श्री शिव जी के समीप योग सीख रहे थे,

उस समय बिचार के परिश्रम से जो स्वेद (पसीना) श्री मारुति भगवान् के अङ्ग से निकला, उसको भक्तिरत्न के कोषाध्यक्ष त्रिकालज्ञ जगद्गुरु श्री शिव जी ने एक पात्र में रखलिया। कालान्तर में श्री भगवद्भक्ति के बिवर्द्धन के निमित्त उसी को नभसे भू में निक्षेप किया; इसी से इनका नाम "नभभूज" हुआ कि जो "नाभा जी" के नाम से प्रसिद्ध है। हनुमान बंसी इसी से कहलाए।" अयोनिज पुरुष की जाति कोई नहीं॥ वह पसीना (स्वेद) उस समय का था कि जब आप नेत्रों को वन्द किए हुए योग की पराकाष्ठा दशा (समाधि) में थे; अतएव श्री नाभा जी भी वाह्य नयनों से हीन (परन्तु अन्तःकरण की दिव्य दृष्टि से अनुपम रहस्य के देखने वाले ही) हुए॥"

टीका। कबित्त।

पायँ परि आंसू आये, कृपा करि संग लाये, कीन्ह आज्ञा पाइ, मंत्र अगर सुनायो है। "गलते" प्रगट साधु सेवा सो बिराजमान जानि अनुमान, ताही टहल लगायो है॥ चरण प्रछालि संत सीथ सों अनंत प्रीति, जानी रस रीति, ताते हृदय रंग छायो है। भई बढ़वारि ताको पावै कौन पारवार, जैसो भक्ति रूप सो अनूप गिरा गायो है॥ १३॥

वार्त्तिक तिलक।

बड़ी श्रधा से उनने अपना सीस दोनों महात्माओं के पदकंज पर रख दिया। कृपापूर्वक वे "गलता" स्थान में (गालव मुनि के आश्रम में कि जो जयपुर के पास है,) लाए गए॥

स्वामी श्री कील्हदेवजी की आज्ञा से, स्वामी श्री अग्रदेवजी ने नारायणदास नाम रख कर इनको श्री राम मन्त्र उपदेश किया। उक्त गादी की साधु सेवा तो प्रसिद्ध है ही, श्री नाभा जी (नारायणदास जी) को यह टहल सौंपा गया कि "सन्तों के चरण धोया करें, तथा उच्छिष्ट पत्तल उठाया करें" "वही सन्त प्रसादी पाया करें और सन्त चरणामृत पिया करें"॥

महात्माओं की आज्ञानुसार कुछ काल पर्य्यन्त ऐसाही करने से श्री राम कृपा से इनको सन्तों के चरणामृत तथा सीथ प्रसाद में अत्यन्त प्रीति हो गई; और उसका स्वाद विशेष भी इनने जाना। एवं इनका अन्तःकरण भागवतों तथा भगवत के विलक्षण प्रेमरङ्ग से रङ्गगया, और ऐसे अनुपम विद्युत के चमत्कृत प्रकाश से सुशोभित हुआ कि जिसकी अलौकिक किंचित झलक की अपूर्व अवस्था से (कवित्त १० पृष्ट ५८) ज्ञान वैराग रूपी नेत्रों को चकचौंध सी हो जाती है॥

जैसी अपार बढ़वारी (बड़ाई) इनकी हुई, उस

का वार पार कौन पा सकता है ? देखिये, श्रीभक्ति जी का जैसा विलक्षण स्वरूप है उसको अपनी अनूप वाणी से श्रीभक्तमाल में आपने (श्रीनाभा स्वामीजी ने) कैसा गाया है ॥

श्री भक्तमालकार स्वामी श्री नाभाजी प्रथमतः "दोहाओं" में ही मङ्गलाचरण करके, अब "षटपदी (छप्पय) छन्द" के आरम्भ में पहिले, चौबीसौं अवतारों का जयकारात्मक मङ्गलाचरण करते हैं।

(मूल) छप्पै।

जय जय मीन[1], बराह[2], कमठ[3], नर-हरि[4], बलि बावन[5]। परशुराम[6], रघुबीर[7], कृष्ण[8], कीरतिजगपावन ॥ बुद्ध[9], कलक्की[10], व्यास[11], पृथू[12], हरि[13], हंस[14], मन्वन्तर[15]। यज्ञ[16], ऋषभ[17], हयग्रीव[18] ध्रुवबरदैन[19], धन्वन्तर[20] ॥ बद्रीपति[21], दत्त[22], कपिलदेव[23], सनकादिक[24], करुणा करौ। चौबीस[24] रूप लीला रुचिर, श्री अग्रदास! उर पद धरौ ॥ १ ॥ (५)

वार्त्तिक।

जय जय जय, हे श्री मच्छ रूप भगवान! आप की जय; हे श्री शूकर रूप भगवान! आप की

जय; हे श्री कच्छप रूप भगवान! आप की जय; हे श्री प्रह्लादपति नरसिंह जी! आप की जय; हे बलियुत श्री बामन जी! आप की जय; हे श्री परशुराम! आप की जय; हे प्रभो श्रीरामचन्द्र रघुबंशमणि! आप की जय; हे यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र! आप की जय; हे बुद्धावतार! आप की जय; हे श्री कल्कि भगवान! आप की जय; हे श्री वेदव्यास जी! आपकी जय; हे श्री पृथु जी! आप की जय; हे गजेन्द्र रक्षक श्री हरि! आप की जय; हे श्रीहंस रूप भगवान! आप की जय; हे चतुर्दश मनु अवतार! आप की जय; हे श्री स्वयंभू मनु के रक्षक श्री यज्ञ भगवान! आप की जय; हे श्री ऋषभ भगवान! आप की जय; हे श्री हयग्रीव रूप भगवान! आप की जय; हे श्री ध्रुवजी के बर दाताजी! आप की जय; हे श्री धन्वन्तर जी! आप की जय; हे बद्रीपति श्री नर नारायण जी! आप की जय; हे श्री दत्तात्रेय जी! आप की जय; हे श्री कपिलदेव जी! आपकी जय; हे श्रीसनक श्रीसनन्दन श्रीसनातन श्रीसनत्कुमार जी! आप की जय जय; हे भगवन्! आप के चौबीस रूपों की रुचिर लीलाओं की कीर्त्ति जगत को पावन करने हारी है; आप मेरे ऊपर कृपा कीजै, अर्थात् अपने निज भक्तन सहित रुचिर लीला मेरे हृदय में प्रकाश कीजिये। और हे गुरु

देव श्री अग्रदास जी। इन चौबीस अवतारों के साथ आप भी अपना २ पदसरोज मेरे हृदय में रखिये॥

गिनती	अवतारों के नाम	युग	मास*	पक्ष*	तिथि*	समय	जिस देश में अवतीर्ण हुए उसका नाम
१	मत्स्य	कृत	भ०	शु०	११	प्रात	पुष्पभद्रा
२	कच्छप	कृत	भा०	कृ०	३	प्रात	समुद्र
३	शूकर	कृत	भा०	शु०	५	मध्यान्ह	हरिद्वार
४	नृसिंह	कृत	वै०	शु०	१४	ध्गान्ह	पंजाब मुलतान
५	वामन	त्रेता	भा०	शु०	१२	मध्यान्ह	प्रयाग जी
६	परशुराम	त्रेता	वै०	शु०	३	मध्यान्ह	यमुनिया ग्राम
७	श्रीरघुपति	त्रेता	चै०	शु०	९	मध्यान्ह	श्रीअयोध्याजी
८	श्रीकृष्ण	द्वापर	भा०	कृ०	८	अर्द्ध रात्रि	मथुरा जी
९	बुद्ध	द्वापर	पू०	शु०	७	प्रात	गया कीकट)
१०	कल्कि	कलि	भा०	शु०	३		सम्भलग्राम मुरादाबाद

☞ ये प्रसिद्ध "दश" अवतार हैं।

*कल्पभेद से तिथियों में भी कहीं कहीं कभी कभी भेद पाया जाता है॥

गिनती	अवतारों के नाम	युग	देस	
११	व्यास	द्वापर		
१२	पृथु	कृत	श्रीअयोध्या	
१३	हरि	कृत	त्रिकूटाचल	
१४	हंस	कृत	ब्रह्मलोक	
१५	मन्वन्तर	कृत	बिठूर	चौदह
१६	यज्ञ (नरकुरुम)	कृत	बद्री	
१७	ध्रुववरदेन	कृत	बिठूर	
१८	हयग्रीव	कृत	कामरूप	
१९	ऋषभदेव	कृत	श्रीअयोध्या	
२०	धन्वन्तर	कृत	समुद्र	
२१	नरनारायण	कृत	बद्रिकाश्रम	
२२	दत्तात्रेय	कृत	चित्रकूट	
२३	कपिलदेव	कृत	विन्दसरकेसमीप	
२४	सनकादि	कृत	ब्रह्मलोक	चार

टीका (कवित्त)

जिते अवतार, सुखसागर न पारावार, करै विसतार लीला जीवन उधार कौं। जाही रूप मांझ मन लागै जाको, पागै ताही; जागै हिय भाव वही, पावै कौन

पार कौं ॥ सब ही हैं नित्त, ध्यान करत प्रकाशैं चित्त, जैसे रंक पावै वित्त, जोपै जानै सार कौं। केशनि कुटिलताई ऐसे मीन सुखदाई, अगर सुरीति भाई, बसौ उर हार कौं ॥ १४ ॥

वार्त्तिक ॥

भगवतके जितने अवतार हैं, वे सबही सुखके समुद्र हैं, जिनका वारपार (ओर छोर) कौन पासकता है; प्रत्येक की लीला का विस्तार पसार, जीवों के ही उद्धार के निमित्त है। जिस भक्त का, जिस अवतार के रूप नाम लीला धाम में मन लगै, और उसमें वह रँगै पगै, उसके हृदय में वही भाव ऐसा जाग उठता है (प्रकाश मान होता है) कि कहांतक उसकी प्रशंसा कीजाय, उसका अन्त नहीं। सबही अवतार नित्य हैं, सबही ध्यान करने से चित्त को प्रकाश कारक; और सब ही ऐसे सुखद हैं कि जैसे दरिद्री को धन का मिलना सुख देता है। हां, इतनी बात तो अवश्य है कि यदि सारांश तत्व का ज्ञान होवे, तब सुख की प्राप्ती होती है ॥

जिस प्रकार से 'टेढ़ापन' रूपी दोष भी बालों (केशों) के सम्बन्ध में सुखद गुणही होता है, वैसेही मीन बाराह आदि तिर्यक शरीर भी भगवत की प्रभुता के सम्बन्ध से अति सुखदाई ही हैं ॥

"सबही अवतारों को भाव पूर्ब्बक पूर्ण मानना" श्री अग्रदेव स्वामी जी की ऐसी जो मन भावती रीति सो मेरे हृदय में मनोहर हार के सरिस बसै ॥

प्रेम एक ऐसा अनुपम और अनोखा पदार्थ है कि वह जात पांत का कदापि विचार न करके तड़ितवत जिसपर पड़ता है लोक परलोक के झगड़ों से उस्को छुड़ाही के छोड़ता है। जोकि इस ग्रन्थ में जगदोद्धारक निषाद शुपचादि महानुभावों के विमल पवित्र चरित, कि जिनको देख सुनकर कर्म काण्ड के बड़े २ अभिमानी नाक सकोड़ते और दातों तले उङ्गली दबाते चले आए हैं, वर्णन किये हैं; इसीसे ग्रन्थ कर्ताने भूभार उतारने वाले और भक्तों के सुख देने हारे भगवत के भी शूकरादि विलक्षण स्वरूपों की वन्दना रूपी मंगलाचरण पहिले किया है।

जी में आया था कि चौबीसो अवतारों की संक्षेप लीलाऐंभो यहां लिखदूं; परन्तु विस्तार के भय से छोड़ दिया, न बढ़ाया ॥

(दो॰) दुइ बनचर, दुइ बारिचर, चार विप्र दो राउ।
तुलसी! दश यश गाइके, भवसागर तरि जाउ ॥

छप्पय ।

चरण चिन्ह रघुबीर के, संतन सदा सहायका ॥ अंकुश, अंबर, कुलिस, कमल, जव, धुजा, धेनुपद । शंष, चक्र, स्वस्तिक, जंबूफल, कलस, सुधाहृद ॥ अर्द्धचन्द्र, षटकोन, मीन, बिँदु, ऊरधरेखा । अष्टकोन, त्रैकोन, इन्द्रधनु, पुरूषविशेषा ॥ सीतापतिपद नित बसत, एते मंगल दायका । चरण चिन्ह रघुबीर के, संतन सदा सहायका ॥२॥ (६)

वार्त्तिक ।

चौबीसों अवतारों का मङ्गलाचरण करके, स्वामी श्री नाभा जी महाराज अब, साकेतपति श्री अवध बिहारी निज प्रभु श्री सीतापति रघुबीर जी के चरण पङ्कजों में के सुखदायक सहायक पापहारी जन उद्धारकारी चिन्हों का मङ्गलाचरण करते हैं ।

श्री जानकी जीवन रघुबीर जी के पदकंज में "अंकुश" प्रमुख (अठतालीस) चिन्ह सदैव विराजते हैं; परम मङ्गल के देनेवाले तथा संतों की विशेष सहायता करने वाले हैं ॥

"महारामायण" प्रमुख की मति से श्रीचरण चिन्ह तो बस्तुतः ४८ (अड़तालीस) हैं, २४ (चौबीस) दक्षिण पदपंकज में, और २४ (चौबीस) बामचरण सरोज में ॥

श्री अगस्तिमुनीश्वर कृत "श्री रघुनाथ चरण चिन्ह स्तोत्र" में ४८ में से केवल १८ (अट्ठारह) ही रेखाओं का बर्णन है अर्थात् (१) अम्बुज (२) अंकुश (३) यव (४) ध्वज (५) चक्र (६) ऊर्द्धरेखा (७) स्वस्तिक (८) अष्टकोण (९) पवि (१०) बिन्दु (११) त्रिकोण (१२) धनु (१३) अन्शुक वा अम्बर अर्थात् वस्त्र (१४) मत्स्य (१५) शङ्ख (१६) चन्द्रार्द्ध (१७) गोष्पद और (१८) घट ॥

ऐसेही, श्री किशोरी जी की एक कृपाश्रिता ने केवल ९ (नव) ही रेखाओं की बन्दना की है (सोरठा) बन्दौं सिय पद (१) रेख, (२) श्री लक्ष्मी, अरु (३) श्री सरयू। (४) शक्ती (५) पुरुष बिसेख, (६) स्वस्तिक (७) शर (८) धनु (९) चन्द्रिका ॥

एवं, श्रीयामुनाचार्य्य महाराज जी ने "आलवन्दार स्तोत्र" में इन अठतालीस में से केवल सातही चिन्ह चुन के लिखे (१) दर (२) चक्र (३) कल्पबृक्ष (४) ध्वजा (५) कमल (६) अंकुश और (७) बज्र ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने तो अति कल्याण दायक केवल चारही चिन्ह लिखे, अर्थात् (१) ध्वज (२) कुलिश (३) अङ्कुश (४) कमल ॥

(कवित्त) ध्यावहीं मुनीन्द्र राम पदकंज चिन्ह राज, सन्तन सहायक अरु मङ्गल सन्दोहहीं। ऊर्द्ध रेखा स्वस्तिक, अरु अष्टकोण, लक्ष्मी, हल, मूसल, अरु शेष, शर, जन जिय जोहहीं॥ अम्बर, कमल, रथ, बज्र, जव, कल्पतरु, अंकुश, ध्वजा, मुकुट, मुनि मन मोहहीं। चक्र औ सिंहासनऽरु यमदण्ड, चामर अपि, छत्र, नर, जवमाल दहिने पद सोहहीं॥१॥

(अथ चिन्हों के स्थान)

भक्तवत्सल श्री जानकीवर के दक्षिण पद की रेखाएं।

२४ जयमाल		१३ जव (अँगूठेमें)
२३ नर		१२ बज्र
२२ छत्र		११ रथ
२१ चामर		१० कमल
२० यमदण्ड	१ ऊर्द्ध रेखा	९ अम्बर
१९ सिंहासन		८ शर
१८ चक्र		७ शेष
१७ मुकुट		६ मूसल
१६ ध्वजा		५ हल
१५ अंकुश		४ लक्ष्मी
१४ कल्पतरु		३ अष्टकोण
	२ स्वस्तिक	

(कवित्त) वाम पद, सरयू, गोपद, भूमि, कलशा, पताका, जम्बूफल, अर्द्धचन्द्र, शंख, राजहीं। षटकोण, तीनकोन, गदा, जीव, बिन्दु, शक्ति, सुधाकुण्ड, त्रिबली प्रताप सुर गाजहीं॥ मीन, पूर्णचन्द्र अरु वीणा अपि, बंशी पुनि धनुष, तुणीर, हंस, चन्द्रिका, विराजहीं। एते चिन्ह श्रीसियपिय पद पंकज के, "तपसी" मंगलमूल, सब सुख साजहीं॥ २॥

(अथ चिन्हों के स्थान)

दीनबन्धु श्री जानकीवर के वामपदकी रेखाएं।

३७ बिन्दु (अँगूठे में)		४८ चन्द्रिका
३६ जीव		४७ हंस
३५ गदा		४६ तूणीर
३४ तीन कोन		४५ धनुष
३३ षट्कोण	२५ सरयू	४४ बंशी
३२ शंख		४३ वीणा
३१ अर्द्धचन्द्र		४२ पूर्णचन्द्र
३० जम्बूफल		४१ मीन
२९ पताका		४० त्रिबली
२८ कलशा		३९ सुधाकुण्ड
२७ भूमि		३८ शक्ति
	२६ गोपद	

संख्या	रेखाओं के नाम	उनके रंग	उनके ध्यान से लाभ विशेष	उस चिन्ह में कार्य्यावतार	
१	ऊर्द्ध्वरेखा	लाल (गुलबी)	महायोग; भवसिन्धु सेतु	सनकादिक *	*चारो
२	स्वस्तिक	पीत	मंगल, कल्याण	श्रीनारद जी	
३	अष्टकोण	लाल & सपेद	अष्टसिद्धिदायक यन्त्र	कपिल देव	
४	महालक्ष्मी	महा सुन्दर गुलाबी	सर्व सम्पत्ति	श्रीलक्ष्मी जी	
५	हल	स्वेत	विजय	वलरामजीकाहल	
६	मूसल	धूम	शत्रु का नाश	वलरामजीकामूसल	
७	शेष	स्वेत	शान्तिप्रद	श्रीरामानजस्वामी, शेष	
८	शर	स्वेत; पीत	सद्गुण	प्रसिद्धरवाणसब	
९	अम्बर (बस्त्र)	नीला, बिजलीसा	भयार्त्तिहरण	बराह भगवन्	
१०	कमल	गुलाबी	हरि भक्ति	विष्णुकाकमल	
११	चार घोड़ों का रथ	घोड़े सपेद रथ विचित्र	विशेष पराक्रम	स्वयभमनु; पुष्पक विमान	
१२	वज्र (पवि)	बिजलीसा	बलदायक; पापसंहारक	इन्द्रका बज्र	
१३	यव (जव)	स्वेत, रक्त	मोक्ष; शृंगार	कुवेर; यज्ञावतार	
१४	कल्पतरु	हरा	इच्छित फल	सुरतरु, पारिजात	
१५	अंकुश	श्याम	मन निग्रह		
१६	ध्वजा	विचित्र	विजय; यश		
१७	मुकुट	सोनहरा	भूषण	पृथु; दिव्यभूषण	
१८	चक्र	तप्तकांचन	शत्रु का विनाश	सुदर्शन; कल्कि	
१९	सिंहासन	तप्त कांचन	विजय		
२०	यम दण्ड	कांस	निर्भयता	यमराज; धर्मराज	

संख्या	नाम	रंग	ध्यान का विशेष फल	कार्य्यावतार
२१	चामर	धवल	हिय में प्रकाश	हयग्रीव
२२	छत्र	शुक्ल	दया, बुद्धि, ध्यान	कल्कि
२३	नर	गौर	भक्ति, शान्ति, सत्व गुण	दत्तात्रेय
२४	जयमाल	तड़ित, विचित्र	उत्सव	

अथ वाम चरण सरोज के चिन्ह।

संख्या	नाम	रंग	ध्यान का विशेष फल	कार्य्यावतार
१	सरयू	स्वेत	भक्ति	वृजा गंगा इत्यादि
२	गोपद	स्वेत, लाल	भवसिंधु लंघन	कामधेनु, पृथु, धन्वन्तर
३	भूमि	पीत, लाल	क्षमा	कमठावतार
४	कलश	सुनहरा, स्वेत	भक्ति, जीवन मुक्ति	अमृत
५	पताका	बिचित्र	बिमलता	
६	जम्बुफल	श्याम	चारो पदार्थ	गरुड़जी, व्यासजी
७	अर्द्ध चन्द्र	धवल	भक्ति, शान्ति, प्रकाश	वामनभगवान
८	शंख	स्वेत, गुलाबी	जय, बुद्धि	वेद, हंस, दत्त, शंख
९	षटकोण	लाल, सपेद	यन्त्र, षटविकाराभाव	कार्त्तिकेय
१०	तीनकोन	लाल	यन्त्र, योग	हयग्रीव; परशुराम
११	गदा	श्याम	जय	महाकाली, गदा
१२	जीव	दीप सा		जीव
१३	विन्दु	पीत	सर्वपुरुषार्थ	सूर्य्य; माया
१४	शक्ति	पीलीगुलाबी सुन्दर	श्री	मूलप्रकृति, शारदा, महामाया

गिनती	रेखाओं के नाम	उनके रंग	ध्यान से लाभ विशेष	उस चिन्ह के कार्य्यावतार	
१५	सुधाकुंड	स्वेत लाल	अमृत रतून	ऋषभ	
१६	त्रिबली	हरा,लाल, धवल	शोभा	वामन	
१७	मीन	रूपासा	मङ्गलार्थ,शुभ शकुन		
१८	पूर्णचन्द्र	धवल	सरलता,शान्ति, प्रकाश	चन्द्र	
१९	वीणा	पीत,रक्त, स्वेत	यशगान	श्रीनारद जी	
२०	वंशी	विचित्र		श्रीकृष्णजी की वंशी	
२१	धनुष	हरा,पीला, लाल	यमवशगानहंतु	शार्ङ्ग,पिनाक,&c.	
२२	तूणीर	बिचित्र	सप्त भूमि ज्ञान	परशु राम	
२३	हंस	स्वेत,गुलाबी	विवेक, ज्ञान	हंसावतार	
२४	चन्द्रिका	सर्वरंगमय तड़ितवत्	अकथ प्रभाव		

☞ अठतालिसो चिन्हौं में से २४ चौबीस चिन्ह दोनों चरणकमलों में बिराजमान हैं ॥ और, जो २४ रेखाएं श्री जनक किशोरी महारानी जी के बाम पदकंज में हैं, सोई २४ चिन्ह श्री प्राणबल्लभ जी के दक्षिण चरण सरोज में हैं। तथा जो २४ रेखा श्री जनक लली महारानी जी के बाएं चरणारबिंद में हैं, सोई २४ चिन्ह श्री प्राणप्रियतम के दाहिने पदपद्म में हैं॥ यह मनस्थ रखना चाहिए।

दुःखहारी रेखाएं	सुखकारी रेखाएं	
१ अष्टकोण*	१ उर्द्ध रेखा	२ स्वस्तिक
२ हल	३ महालक्ष्मी	४ शेष
३ मूसल	५ शर	६ कंज
४ अम्बर	७ स्यन्दन	८ कल्पवृक्ष
५ कुलिश	९ मुकुट	१० सिंहासन
६ यव *	११ चामर	१२ छत्र
७ अंकुश	१३ पुरुष	१४ जयमाल
८ ध्वजा	* अष्टकोण	* यव
९ चक्र		
१० यमदण्ड		
११ गोपद	१५ सरयू	१६ पृथ्वी
१२ पताका	१७ घट	१८ जम्बुफल
१३ अर्द्धचन्द्र*	१९ जीव	२० विन्दु
१४ दर	२१ शक्ति	२२ सुधाह्रद
१५ षट्कोण	२३ त्रिवली	२४ मत्स्य
१६ त्रिकोण	२५ पूर्णसशि	२६ वीणा
१७ गदा	२७ निषंग	२८ हंस
१८ वंशी	२९ चन्द्रिका	* अर्द्धचन्द्र
१९ धनुष		

४८ में १९ दुःखहारी हैं और २९ सुखकारी। ये* तीन दुःखहारी भी हैं और सुखकारी भी—अष्टकोण, यव, और अर्द्धचन्द्र॥

करुणासिन्धु श्रीनाभाजी महाराज ने ४८ में से विशेष सहायक २२ (बाईस) चिन्हों का ही मंगलाचरण किया है, जिनमें से ११ (ग्यारह) प्रत्येक पद के हैं॥ अर्थात्

(१) अंकुश (२) अम्बर (३) कुलिश (४) कमल (५) जव

(६) ध्वजा (७) चक्र (८) स्वस्तिक (९) ऊर्द्ध रेखा (१०) अष्ट कोण (११) पुरुष। ये ग्यारह दाहिने पद के और (१) गोपद (२) शंख (३) जम्बु फल (४) कलस (५) सुधाकुण्ड (६) अर्द्धचन्द्र (७) षट्कोण (८) मीन (९) बिन्दु (१०) त्रिकोण (११) इन्द्रधनुष ये ग्यारह बाएं चरणकंज के ॥

टीका । कवित्त ।

सन्तनि सहाय काज, धारे राम नृपराज चरण-सरोजन में चिन्ह सुखदाइये। मनही मतंग मतवारो हाथ आवै नाहिं, ताकेलिये "अङ्कुश" लै धास्यो, हिये ध्याइये ॥ सठता सतावै शीत, ताही तें "अम्बर" धस्यो हस्यो जन शोक ध्यान कीन्हे सुखपाइये। ऐसेही "कुलिश" पाप पर्वत के फोरिबे को, भक्ति निधि जोरिबे को "कंज" मनल्याइये ॥ १५ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

सन्तों की सहायता के अर्थ नृपराज महाराज श्रीरामचन्द्र कृपासिन्धुजी ने अपने पदकमलोंमें भक्तों के सुखदाई चिन्ह वृन्द धारण किये हैं ॥ मन रूपी मतवाला गजेन्द्र अपने बशमें नहीं होता है; इसी लिये प्रभु ने "अंकुश" चिन्ह निज चरण पंकज में धारण किया, कि भक्त जन निज मन रूपी मत्त हस्ती को बश करने

के निमित्त, उक्त चिन्ह का ध्यान अपने हृदय में करके, इसकी सहायता से बश करलें। इससे "अंकुश" चिन्ह का ध्यान करना चाहिये॥ सठता (जड़ता *) रूपी शीत हरिजनोँ को दुख देता है, इसी लिये "अम्बर" (वस्त्र) चिन्ह को धरा, कि जिसमें इस चिन्ह का ध्यान भक्त जनों के शोक को हरे, तथा प्रतिष्ठादि सुख प्राप्त हों।

* (चौ०) जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा॥ (मानस राम चरित)

इसी प्रकार, पाप रूपी पर्वत के फोड़ने के हेतु "वज्र" रेखा, और प्रेम मय नवधा भक्ति रूपी नवों निधियों के जोड़ने के हेतु, सर्व निधीश्वरी श्री लक्ष्मी जी का वास स्थान कमल तिसका चिन्ह धारण किया है। उक्त सहाय के हेतु दोनों चिन्ह मन में लाके ध्यान करना चाहिये॥

टीका। कवित्त।

"जव" हेतु सुनो सदा दाता सिद्धि विद्याहीं को, सुमति सुगति सुख सम्पति निवास है। छिनुमें सभीत होत कलि की कुचाल देखि, "ध्वजा" सो|विशेष जानो अभै को विश्वास है॥ गोपद सो हूहैं भवसागर ना- गर नर जो पै नैन हिय के लगावै, मिटै त्रास है। कपट कुचाल मायाबल सबैं जीतबे को, "दर" को दरस कर, जीत्यो अनायास है॥ १६॥

वार्त्तिक तिलक।

"जव (यव)" चिन्ह के धारण का अभिप्राय सुनो कि ध्यान करनेवाले को यह चिन्ह सर्व विद्या सर्व सिद्धियां देता है; और सुमति सुगति सुखसम्पत्ति का निवास स्थान है; इससे, ध्याता को भी इन गुणों का घरही कर देता है॥

कलिकी कुचालों को देख देख के भक्त जन क्षण-मात्र में भय ग्रसित हो जाते हैं, उनको विशेष करके अभयत्व का विश्वास दिलाने के लिये प्रभु ने ध्वजा चिन्ह को धारण कियाहै। और "गोपद" चिन्ह धारण करने का हेतु यह है कि जो प्रवीण (नागर) जन इस का ध्यान करेगा तिसको अपार भवसागर गोपद के सरीखा सुलभ हो जायगा, सो जो कोई जन अपने हृदय के नेत्रों को इस "गोपद" के ध्यान में लगावै, तो उसको भवसागर में डूबने आदि का डर मिट जावै दंभ कपट कुचाल इत्यादिक माया के जालों को बिना प्रयास जीतने के हेतु "शंख" चिन्ह को श्री प्रभुने धारण किया तिसको दर्शन करके भक्तजनों ने उक्त माया जाल को बिना प्रयास ही जीत लिया, क्योंकि शंख बिजयकारी शब्द संयुत है॥ इस सहायता रूप कृपा की जय॥

टीका। कवित्त।

कामहुं निशाचर के मारिबे को "चक्र" धार्यो,

मङ्गल कल्याण हेतु स्वस्तिक हुँ मानिये। मंगलीक "जम्बूफल", फल चारिहूं को फल, कामना अनेक विधि पूर्ण, नित ध्यानिये॥ "कलस" "सुधाकोसर" भस्यो हरि भक्ति रस, नैन पुट पान कीजै, जीजै मन आनिये। भक्ति को बढ़ावै औ घटावै तीन तापहूं को, "अर्ध चन्द्र" धारण ये कारण हैं जानिये॥ १७॥

वार्त्तिक तिलक।

कामरूपी निशाचर के बध के लिये "चक्र" चिन्ह को धारण किया, मङ्गल और कल्याण के निमित्त "स्वस्तिक" रेखा का धारण मानिये॥ "जम्बूफल" को मङ्गलों का करने वाला, तथा चारोंही फलों का फल रूप, और सब मनकामनाओं को नाना प्रकार से पूरा करनेवाला, जानके नित्य ध्यान कीजे॥ "अमृत का घड़ा" और "अमृत का हृद" (तालाब) इसलिये धारण किये, कि इन्हें ध्यान करनेवाले के हृदय में भक्तिरस भरें; और मानसिक नयन पुट से पीकर परम अमरत्व प्राप्त हो॥ "अर्द्धचन्द्र" चिन्ह के धारण के कारण ये जानिये कि, इसके ध्यान से तीनों ताप घटते हैं, और प्रेमाभक्ति बढ़ती है॥

टीका। कवित्त।

विषया भुजङ्ग वलमीक तनमांहिँ बसै, दास को न डसै, ताते यत्न अनुसस्यो है। "अष्टकोन" "षटकोन"

औ "त्रिकोन" जंत्र किये, जिये जोई जानि जाके ध्यान उर भस्यो है। "मीन" "विन्दु" रामचन्द्र कान्ह्यों वशीकर्ण पायें ताहिंते निकाय जन मन जात हस्यो, है। संसार सागर को पारावार पावैं, नाहिं "ऊर्ध्वरेखा" दासन को सेतुबन्ध कस्यो है ॥ १८ ॥

वार्त्तिक तिलक।

शरीर रूपी बल्मीक (बामी वा बमीठ) में कामादिक विषय रूपी सांप जो बास करता है, सो जिसमें भक्तों को न काटखाय, इस लिये प्रभुने ये यत्न किये, कि "अष्टकोण", "षटकोण", और "त्रिकोण" यत्रों को धारण किया। जिसने इस बात को जानके इन रेखाओं का ध्यान हृदयमें किया, सोई जन विषय भुजंग से बच के अखण्ड जिया ॥

और श्रीरामचन्द्र जी ने अपने पाय (पद पङ्कज) में "मीन" और "बिन्दु" चिन्हों को बशीकरण यन्त्र बनाके धारण किया, क्योंकि मीन जगत बशीकारक "कामदेव" का ध्वजा है तथा "बिन्दु" (बेंदी) भी वशीकरण तिलक रूप है। इसी से, श्री प्रभु चरण चिन्तवन करने हारे समस्तजनों के मन हरे जाते हैं अर्थात् प्रभुके बिबश होते हैं ॥ अपार संसार रूपी समुद्र का पार कोई नहीं पा सकता; अतएव ऊर्ध्व रेखा रूप सेतु (पुल) बांधा है, कि जिसमें ध्यानारूढ़ होके, मेरे भक्त, सुगमही, संसारसागर उतर जावें ॥

टीका। कवित्त।

"धनु" पद मांहिँ धस्यो, हस्यो शोक ध्याननि को, मानिन को मास्यो मान, रावणादि साखिये। "पुरुष विशेष" पद कमल बसायो राम हेतु सुनो अभिराम, श्याम अभिलाखिये॥ सूधो मन सूधी बन सूधो करतूति सब ऐसो जन होय मेरो, याही के ज्यों राखिये। जोपै बुधिवन्त रसवन्त रूप सम्पति में, करि हिये ध्यान हरिनाम मुख भाखिये॥ १९॥*

वार्त्तिक तिलक॥

श्री धनुधारीजी ने पदकंज में "इन्द्रधनुष" का चिन्ह धारण करके ध्यानधारी जनों का शोक नाश किया, क्योंकि महामानी रावणादिकों के मान और प्राण का क्षय, धनुषही से किया; सो वे मरके साक्षी दे रहे हैं कि हम लोग भक्त द्रोही थे तिन्हों को श्री राम धनुष ने नाश किया; तैसेही, "इन्द्रधनुष" चिह्न ध्यानियों के समस्त शत्रुओं का नाश करके विशोक करेगा॥ "पुरुष" नाम चिन्ह को अपने पदकमल में बसाया, तिसका अति सुन्दर कारण सुनके श्यामसुन्दर सियावर श्री राम की अभिलाषा कीजे; श्री प्रभु इस चिन्ह से यह जनाते हैं कि जो हमारा जन सरल

* १५ वें से १९ वें तक, इन पांच चार कवित्तों को किसी किसी ने "क्षेपक" बताया है।

(सूधा) मनवाला, सरल बचनवाला, सरल कर्म वाला और इस चिन्ह का ध्यान करनेवाला हो, तिसको इसी चिन्ह के समान मैं अपने पद में अर्थात् पद प्रेम रूपी स्थान में, तथा (अन्त में) परम पद श्री साकेत धाम में रखूंगा॥ जो जन कदाचित् ऐसे बुद्धिमान हों, तथा श्री राम रूप सम्पत्ति में रस (स्नेह)वन्त हों, सो समस्त श्री चरण चिन्हों का ध्यान करके श्री सीताराम नाम ही मुख से निरन्तर कहें॥

छप्पय।

बिधि[१], नारद[२], शङ्कर[३], सनकादिक[४], कपिलदेव[५], मनुभूप[६]; नरहरिदास[७], जनक[८], भीषम[९], वलि[१०], शुक[११] मुनि, धर्म स्वरूप। अंत रंग अनुचर हरि जू के, जो इन को यश गावैं; आदि अन्त लौ मङ्गल तिनको स्रोता बक्ता पावैं। अजामेल[१२] परसंग यह निर्णय परम धर्म के जान; इनकी कृपा और पुनि समझे "द्वादश भक्त" प्रधान॥ ३॥ (७)

वार्त्तिक तिलक।

स्वामी श्री नाभा जी अब १२ (द्वादश) महाभक्त राजों के नामोच्चारण पूर्व्वक भक्तों की "माला" का प्रारम्भ करते हैं।

(१) श्री ब्रह्माजी (२) श्रीनारदजी (३) श्री उमापति शिवजी (४) [१] श्रीसनक [२] श्रीसनन्दन; [३] श्रीसनातन; [४] श्रीसनत्कुमार (५) श्रीकपिलदेवजी (६) महाराज श्री मनु जी (७) श्री प्रह्लादजी [नृसिंह दास]; (८) पिता श्री जनक जी महाराज (९) श्री भीष्माचार्य्य जी (१०) श्री बलिजी (११) परम हंस श्री शुकदेव जी महा मुनि, भागवत, धर्मस्वरूप, (१२) श्री अजामिलजी॥

जो जन श्री सीतारामचन्द्रजी के इन ऐकान्तिक प्रिय समीपी प्रधान द्वादश भक्तराजों के यश गावें, तिन महा भक्तों के यशों के श्रोता वक्ता आदि अन्त तक (सदैव) मंगल पावैं। परम धर्म के निर्णय में श्री-अजामिल जी का प्रसंग जानने योग्य है; अर्थात् श्री नामोच्चारणादि भागवत धर्म सप्रेम करने की तो बातही क्या है, नामाभास मात्र ने भी सब महापातकों का विनाश कर ही दिया॥ ये द्वादश, (ऊपर लिखे हुए श्री विरंचि महेश नारदादि बारहो), तो महा प्रसिद्ध भक्तराज हैं ही, पुनि और समस्त भक्त मात्र इन्ही

कीं कृपा उपदेश तथा सतसंग से समझना चाहिये; अर्थात् श्री लक्ष्मीनारायण की शिक्षित वैष्णव संप्रदायों के भागवतधर्म विशेष के आचार्य्यवर और प्रचारक शिरोमणि ये ही बारहो तो हुवे॥

(दो०) "बिधि, शिव, नारद, शुक, जनक, सनकादिक, प्रह्लाद। ज्यों हरि आपुन नित्यहैं, त्यों ये भक्त अनाद॥"

(१) श्री ब्रह्मा जी।

(सो०) बन्दौं बिधिपद रेणु, भवसागर जिन कीन्ह यह।
सन्त सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल विष वारुणी॥

सृष्टि और सुख दुःखादि प्रारब्धरेखाओं के कर्त्ता जगत पिता सुगम अगमवरदाता श्री ब्रह्मा जी की (श्री भगवत नाभी कमल से जन्म आदि) कथाऐं, पुराणों में अगणित हैं। "हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश बिधि हाथ"॥ श्रीबिधाता जी यद्यपि सब निष्ठाओं में श्रेष्ठ तथा प्रधान हैं, तथापि इनकी गणना "धर्मप्रचारक निष्ठा" में प्रत्यक्ष है। जिन देव मुनि गो महि इत्यादिक की प्रार्थना से भगवत के विविध अवतार होते हैं उन मण्डलों के अगुआ और मुखिया श्री अज ही तो होते हैं, सो व्यवस्था किस्को विदित नहीं है?

(२) श्री नारद जी।

(चौ०) बन्दौं श्री नारद मुनि नायक।
करतल बीण राम गुण गायक॥

अप्रतिहतगति देवर्षि श्रीनारद भगवान् तो परमात्मा के मन ही हैं, भगवत के अवतार हैं, और जगत के परम उपकारक प्रसिद्ध हैं। सेवापूजा, कीर्तन, प्रसाद, भक्ति प्रचारक इत्यादिक सबही निष्ठाओं में प्रधान हैं। पुराण मात्र में आप की शुभ कथा भरी है। सर्व लोकों में आप का पर्य्यटन केवल परोपकार के निमित्त यही आपका व्रत सा है॥

(३) श्री शिव जी।

टीका। कवित्त।

द्वादश प्रसिद्ध भक्तराज कथा "भागवत" अति सुखदाई, नाना विधि करि गाए हैं। शिवजी की बात एक वहुधा न जानै कोऊ, सुनि रस सानै, हियो भाव उरभाए हैं॥ "सीता" के बियोग "राम" बिकल बिपिन देखि "शंकर" निपुण "सती" बचन सुनाए हैं। "कैसे ये प्रबीन ईश? कौतुक नबीन देखौं"; मनेहूँ करत, अंग वैसेही बनाए हैं॥ २०॥

वार्त्तिक तिलक।

बारहो प्रधान भक्त राजों की कथाएं "श्री मद्-भागवत" प्रभृति में व्यास शुकादि ने नाना प्रकार से कही हैं। परन्तु श्री महादेव जी की एक बात प्रायः

सब लोग नहीं जान्ते; सो उस अपूर्ब वार्त्ता को सुन के, अपने हृदय को श्रीसीताराम भक्ति रस में सान देना चाहिये, देखिये श्रीमहेश्वरजी श्री सीताराम भक्ति के भाव में अपने मन को कैसा उलझाए (अटकाए) हुए हैं॥

श्रीशंकर जी तो परम प्रवीण ही हैं परन्तु "सती" जी ने मोह वश श्री महादेव जी से कहा कि "हेप्रभो! इन (श्रीराम) को आप प्रवीण परमेश्वर परमात्मा कहते हैं सो कैसे? क्योंकि इनका यह कौतुक नवीन तो देखही रही हूं कि स्त्री श्रीसीताके वियोग से बन में ये विकलहैं!" तब श्री शिवजी ने बहुत समझाया पर न समझीं, और परीक्षा लेने को चलीं ही। तब, जगद्गुरु श्री शिवजी ने वरज दिया कि "सावधान! कोई अविवेक की क्रिया मत करना"। तथापि, सतीजी ने जगजननी श्रीरामप्रिया श्रीजानकी जी महारानी कासा अपना रूप बनाया॥

टीका। कवित्त।

सीता ही सो रूप वेष, लेश हू न फेर फार, रामजी निहारि नेकु मन में न आई है। तब फिरि आइकै सुनाइ दई शंकर को; अति दुख पाइ, बहु बिधि समुझाई है॥ इष्ट को स्वरूप धस्यो, ताते तनु परिहस्यो, पस्यो बड़ो शोच मति अति भरमाई है। ऐसे प्रभु भाव पगे, पोथिन में जगमगे, लगे मो को प्यारे, यह बात रीझि गाई है॥ २१॥

वार्तिक तिलक।

अपने जान्ते तो सतीजीने कुछ भी श्रीजनकललीजी के रूप और वेष से अन्तर न रक्खा; पर, सर्वज्ञ श्रीप्रभु उसको देख के मन में कुछ भी न लाए। तब फिर आके सतीजी ने श्रीशिवजी को सब सुना दिया; श्रीशिवजी ने मन में बड़ा ही दुख पाया और अनेक प्रकार से सती जी को समझाया कि तुम ने मेरी परम इष्ठ देवता श्रीजानकी सीता जी महारानी का रूप धारण किया, अतः मैं ने तुम्हारे इस शरीर में से पत्नी भाव को त्याग किया। श्री सती जी मति के भ्रम वश यों बड़े ही शोच में पड़ीं। सो कथा प्रसिद्ध ही है कि सती जी ने वह तन त्याग ही तो दिया और श्रीशिव जी से तब मिल सकीं कि जब श्री गिरिवरराजकिशोरी हुई॥

अहो! धन्य श्रीगिरिजापति हैं कि अपने प्रभु के भाव में ऐसे पगे हुए हैं कि पुराणों में आप की भाव भक्ति की कथाएं जगमगा रही हैं। यह बात अतिशय प्रिय मुझे लगी; इस्से रीझ २ के गान किया है॥

——:o:——

टीका। कवित्त।

चले जात मग उभै खेरे शिव दीठि परे, करे परनाम, हिय भक्ति लागी प्यारी है। पारवती पूछें "किये कौन को? जू! कहो मोसों, दीखत न जन कोऊ"

तब सो उचारी है॥ "बरष हजार दश बीते तहां भक्त भयो; नयो और ह्वैहै दूजी ठौर बीते धारी है।" सुनिकै प्रभाव, हरि दासनि सों भाव बढ़यौ, रढ़्यौ कैसे जात चढ़्यौ रंग अति भारी है॥ २२॥

वार्त्तिक तिलक।

एक समय श्री चन्द्रभूषण अपनी प्राणप्रिया श्री पारवतीजी के सहित कैलाशशिखर को छोड़कर भूमण्डल में विचरने के हेतु निकले, मार्ग में दो उजड़े २ छोटे ग्रामों के टीले (खेरे) देखके नन्दी से उतर के दोनों को प्रणाम किया। क्योंकि भक्तों की भक्ति आप को अतिही प्यारी लगती है। तब श्री पारवतीजी ने पूछा कि "प्रभो! आपने प्रणाम किस्को किया? प्रत्यक्ष में तो कोई जन दिखाई देताही नहीं।" श्रीमहादेवजी ने उत्तर दिया कि "हे प्रिये! यह जो एक टीला दीखता है तहां दस हजार बर्ष बीते कि एक श्रीसीतारामानुरागी परम भक्त निवास करते थे; और वह जो दूसरा खेरा दिखाई दे रहा है उसमें दस सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर एक दूसरे भक्तराज निवास करनेवाले हैं। इसी से ये दोनों स्थल मेरे बन्दनीय हैं" ऐसा आश्चर्य्यजनक प्रेम देख और भागवत प्रभाव सुनके, श्रीपार्वती जी ने इस बात को अपने मन में धारण किया, उनका प्रेमभाव भगवद्भक्तों में अत्यन्तही बढ़ा, कि जो

क्योंकर कहा जासकता है (रढ़्यो कैसे जात), क्योंकि उनके अन्तःकरण रूपी स्वच्छ वस्त्र पर अनुराग का रंग गहरा चढ़आया ॥

श्लोक। भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

श्री शिवजी इसी से भागवतों में शिरोमणि गिने जाते हैं और इनके अनेक चरित्र ऐसे परउपकार भरे हैं कि जैसे "विषभक्षक, त्रिपुरारि," इत्यादिक नामों से ही सूचित होते हैं। आपकी कथासमूह पुराणों में प्रसिद्ध हैं; आप जगद्गुरु परमोपदेशक हैं, श्रीरामनाम माहात्म्य के प्रकाशक हैं, और श्री काशीजी में मरनेवाले जीव मात्र को श्रीरामतारक मन्त्र सुनाके मुक्ति देते हैं ॥

(४) सनकादि।

सनकादिक चारो भाई (१) श्रीसनक (२) श्रीसनन्दन (३) श्रीसनातन (४) श्रीसनतकुमार, श्रीभगवत् के अवतार और श्रीब्रह्माजी के पुत्र हैं। (चौपाई) जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुण शील सुहाए ॥ ब्रह्मानन्द सदालयलीना। देखत बालक बहु कालीना ॥ रूप धरे जनु चारिउ वेदा। समदरसी मुनि विगत विभेदा ॥ आसा बसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होय तहँ सुनहीं ॥ मुनि रघुपति छवि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी ॥

(दोहा) बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित सिरु नाइ॥
ब्रह्म भवन सनकादि गे, अति अभीष्ट वर पाइ॥

(५) श्रीकपिलदेव।

श्रीकपिलदेव जी श्रीभगवत के अवतार पुरुष प्रकृति विवेकमय तत्त्वज्ञान खानि साङ्ख्य शास्त्र के विशेष आचार्य्य हैं॥ (चौपाई) आदि देव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि "कपिल" कृपाला॥ "सांख्य शास्त्र" जिन्ह प्रगट बषाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना॥

(६) श्री मनु जी।

यह बात तो सभी जान्ते हैं कि "मनु" ही से मनुज, मनुष्य (नर) वा मानव सृष्टि हुई है। "श्री स्वायंभू मनु जी" की कथित "मनुस्मृति" सर्व धर्मशास्त्रों में अग्रगण्य है॥ आपकी कठिन तपस्या, अलौकिक भजन, विलक्षण प्रीति, तथा अनन्यभक्ति तो श्रीतुलसीकृत रामायण "मानस राम चरित" बालकाण्ड में प्रसिद्धही है कि जिन्होंने सर्वावतारी पर ब्रह्म को पुत्र करके प्रत्यक्ष सब को सुलभ कर दिया॥ स्वायंभू मनु अरु शतरूपा। जिनते भइ नरसृष्टि अनूपा॥ (दोहा) जासु सनेह सकोच बश, राम प्रगट भए आइ। जे हरहिय नयनन कबहुँ, निरखे नहीं अघाइ॥

(७) श्री प्रह्लाद जी।

श्री नरहरि दास अर्थात् "श्रीप्रह्लाद जी" द्वादश भक्त-

राज में हैं; ये महाभागवत "दास्य निष्ठा" में अग्रगण्य हैं। श्रीनरसिंहावतार आपही के हेतु प्रसिद्ध है ही। श्री नरसिंह जी तथा श्री प्रह्लाद जी का यश अनेक पुराणों में गाया हुआ है। भगवत की इच्छा से श्री सनकादिक ने "श्री जय, श्री विजय" को तीन जन्म निशाचर होने का शाप दिया; पुनः भगवत तथा श्री सनकादिक ने शापानुग्रह किया कि भगवत अवतार लेले के तीन जन्म में उद्धार करेंगे। सो पहिले जन्म में "हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु" हुए; दूसरे जन्म में वही "रावण और कुम्भकर्ण"; एवं तीसरे जन्म में "शिशुपाल और दन्तवक्त्र"॥

जब हिरण्याक्ष को भगवत ने बाराह अवतार लेके मारा, तब हिरण्यकशिपु ने तप करके श्री ब्रह्मा जी से बर मांगा कि किसी देशकाल में किसी अस्त्र शस्त्र से किसी जीव से मैं मारा न जाऊं। श्री ब्रह्मा जी ने ऐसाही बर दिया। उस्की स्त्री के गर्भ में श्री प्रह्लाद जी थे इसलिये श्री नारद जी ने राजा इन्द्र से उसे बचाकर ज्ञानोपदेश किया। हिरण्यकशिपु अलौकिक बर पाके राज गादी पर बैठ देवतों को कष्ट देने लगा। परन्तु श्री प्रह्लाद जी जिसके बेटे हुए उस्के भाग्य की क्या बात है। जब गुरु जी पढ़ाने लगे आपने "श्रीसीताराम सीताराम" की मधुरध्वनि करना

आरम्भ किया। बरंच पाठशाला भर के लड़कों को इसी में लगा दिया। और इस्के बिरुद्ध यद्यपि उनके पिता माता गुरु ने लाख समझाया पर आपने भगवत बिमुख बाप की एक न मानी॥

दुष्टपिता की आज्ञा से ये पहाड़पर से गिराए गए, जल में डुबाए गए, आग में जलाए गए, हाथी तथा हत्यारों से प्राण लेने का उद्योग किया गया, बिष दिया गया, यह सब किया परन्तु जिस श्री प्रहलादजी के मुखारविन्द पर अष्टप्रहर श्रीसीताराम नाम बसता था उनका एक बाल भी बांका न हुआ। तब हिरण्य कशिपु खड्ग निकाल क्रोध से लाल हो आपसे पूछने लगा "बता तेरा रक्षक कहाँ है ?" आप ने उत्तर दिया कि "वह समर्थ सर्व व्यापी है" उसने पूछा कि क्या वह इस खम्भे में भी है जिसमें तू बँधा है ? श्री भक्त राजमहाराज बोले कि हां निस्सन्देह ऐसाही है" उस मूर्ख तामसी ने ज्योंही उस खम्भे में मुष्टिका मारी, उस खम्भे में से महा भयङ्कर प्रचण्ड शब्द के साथ साथ अति तेजमय महाभयानकरूप ऐसी एक तेजोमयी मूर्त्ति उस्को देख पड़ी कि जिस्को वह न तो मनुष्य ही कह सकता था और न सिंह ही समझ सकता था। यह अद्भुतअवतार मध्यान्ह समय वैसाख शुक्ल चतुर्दशी को भक्तवत्सल भगवत ने श्रीप्रहलाद जी के निमित्त लिया, "मुलतान" में कि जो उक्त कनककशिपु की राजधानी थी।

बहुत काल तक लड़ाई होती रही। अन्त को सन्ध्या काल में घर के द्वार की देहली पर अपनी जांघ पर रख के अपने नखों से उसका शरीर विदार डाला। ब्रह्मा शिव इन्द्र तथा सब देवतों की और विशेष कर के श्रीप्रह्लाद जी की स्तुति से प्रसन्न हो भक्तिवर दिया। और राज तिलक देके अन्तर्ध्यान हो गए॥

(सवैया)

आरतपाल कृपाल जो राम जहां सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा अकरे किय छोटेउ खोटेउ बाढ़े॥
सेवक एक ते एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि कौ जिन पाहन ते परमेश्वर काढ़े॥

श्रीप्रहलाद जी के राज में भगवद् भक्ति कैसी फैली इसका कहना ही क्या है॥ श्री भगवत की भक्तवत्सलता की जय॥

(८) श्री जनक जी।

पिता श्रीजनक जी महाराज योगीराज की महिमा वर्णन कर सके ऐसा त्रिभुवन में कौन है? भगवद्गीता में भगवत् ने प्रसंगतः आपही का नाम कहा है ("जनकादयः" अ० ३ श्लो० २०) जिनके ज्ञान वैराग्य रूपी प्रचण्ड प्रभाकरको देख श्री शुकादि ऋषीश्वरों के भी हृदय कमल विकशित होते थे।

☞ पृष्ठ ७८ में, बारहवां "धर्म स्वरूप"। ("अजामिल" नहीं)

(चौपाई) प्रणवौं परिजन सहित विदेहू । जिनहि रामपद गूढ़ सनेहू ॥ योगभोग महँ राखेउ गोई । राम विलोकत प्रगटेउ सोई ॥ जासु ज्ञान रवि भवनिशि नाशा । वचन किरण मुनि कमल विकाशा ॥

आप की "सौहार्द निष्ठा" की बात ही क्या है कि जगजननि महारानी श्रीजानकी जी ने ही जिनको स्वयं अपना पिता मान लिया, और प्रभु ने भी "पितु कौशिक वशिष्ठ सम जाने" ॥

(९) श्री भीष्म जी ।

श्रीभीष्माचार्य्य जी को बहुतेरे महाशयों ने "धर्म कर्म" निष्ठा में लिखा है । श्रीभीष्माचार्य्य जी आठ वसुओं में से एक "वसु" के अवतार हैं । इनकी माता साक्षात "श्री गंगाजी" और पिता महाराज "शन्तनु" जी हैं इनकी प्रशंसनीय कीर्ति "महाभारत" इत्यादि में देखनेही सुन्ने योग्य है । ज्ञान वैराग्य भक्ति और धर्मशास्त्र के बड़े ही विज्ञ आचार्य्य हुए हैं, बड़े ही पर उपकारी थे यहां तक कि महाभारत की कठिनलड़ाई में श्रीयुधिष्ठिर महाराज के लिये, अपने मरने का उपाय आपही बतादिया, आपने बाणशय्या पर शयन किया, और पर्व का पर्व नीति व्याख्या की ॥ महाभारत में भगवान् अपनी प्रतिज्ञा छोड़ के महाभागवत भीष्मजी के प्रण को पूरा करने के निमित्त अपने भक्त अर्जुन जी के हितार्थ रथ का चक्र लेकर भीष्मजी पर

दौड़े, यहां तक भक्तवत्सलता भगवत की देखिये ॥

बावन दिन पर्य्यन्त शर शय्या पर रहके सन्त और भगवन्त के समागम में प्राण परित्याग किया ॥

श्रीकृष्णभगवान के सामने ही परमधाम को गए ॥

(१०) श्री बलि जी।

राजा बलिजी श्रीप्रह्लाद जी के पौत्र (विरोचन के पुत्र) "धर्मकर्म" निष्ठा में वर्णित हैं। इनने १०० (एक सव) यज्ञ का संकल्प करके यज्ञ करना आरम्भ किया। सुरेशमाता श्री अदिति जी ने भगवत से विनय किया कि बलि मेरे बेटे (इन्द्र) का राज लेके इन्द्रपद की अचलता के निमित्त यज्ञ कर रहा है। भगवत ने "श्री वामन रूप" धारण कर राजा बलि से तीन डेग पृथ्वी भीख मांगी। यद्यपि दैत्यकुलगुरु शुक्र जी ने बलि को रोका, पर इन ने उनकी एक न सुनी और दान देही दिया। पृथ्वी नापने के समय बामन से विराट हो कर हरि ने दोनों लोक (स्वर्ग, पाताल) नाप लिये; और शेष तीसरे डेग की जगह बलि जी ने अति हर्षित मन से अपना शरीर निवेदन कर दिया। प्रभु ने प्रसन्न हो अगले जन्म में सुर पुर का राज्य और ततकाल इस जन्म में पाताल का राज्य बली जी को अनुग्रह किया। केवल इतना नहीं वरन भक्त से छल करने के कारण स्वयं आपने (उनके द्वारपाल होकर) उस (वामन) रूप से नित्यशः उनको दरशन देना स्वीकार करलिया।

(११) श्री शुक जी।

(श्लोक) निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृत द्रवसंयुतं। पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

परमहंस श्रीशुकदेव जी की आदि अवस्था की कथा कुछ पांचवें पृष्ठ में लिख भी आए हैं। आप महर्षि श्रीव्यास भगवान् के पुत्र हैं। आपही ने श्रीमद्भागवत सुनाके श्रीपरीक्षित महाराज को एक सप्ताह मात्र में परमधाम को पहुँचा दिया॥

किसी समय श्रीपारवतीजी ने श्रीशिवजी से श्रीरामनाम माहात्म्य के तत्त्वज्ञान का गुप्त रहस्य सुनाचाहा; तब श्रीशङ्कर जी ने अपनी प्राणप्रिया की यह अनोखी अभिलाषा देखकर (जैसे प्रभु की कृपा ने उनके अन्तः करण से अन्य साधनों की महिमा का अभाव कर दिया था) प्रथम उस शुभस्थान को अपर जीवों से शून्य करके उसके अनन्तर अपना उपदेश प्रारम्भ किया। श्रीगिरिजा जी तो नींद बश हो गईं, परन्तु हरिइच्छा से शुक पक्षी का एक बच्चा वहां रहगया था, सो श्रीरामनाम माहात्म्य श्रवण के प्रभावसे वही बच्चा परम तत्त्ववेत्ता तथा अमर होकर "हूं हूं" कार भरता रहा; महेश्वर ने यह जानकर शीघ्र उसको मारने की इच्छा की। भागकर उसने श्री व्यास जी की धर्मपत्नी के पेट में जा शरण लिया॥

(१२) श्री धर्मराज जी। *

"अजामिल" जी की टीका (कवित्त)

धर्यौ पितु मातु नाम " अजामेल ", सांचो भयो, भयो अजा मेल, तिया छूटी शुभ जात की। कियो मद पान, सो सयान गहि दूरि डार्यौ,गार्यौ तनु वाही सों, जो कीन्हो लैकै पातकी। करि परिहास काहू दुष्ट ने पठाए साधु, आए घर, देखि बुद्धि आइ गई सातकी। सेवा करि सावधान, सन्तन रिझाइ लियो, "नारायण" नाम धर्यौ गर्भ बाल पात की ॥ २३ ॥

* ☞ पृष्ठ ७९ में "(१२) श्रीअजामिलजी" नहीं, वरंच "(१२) श्री धर्मराज जी"

वार्त्तिक तिलक।

ये ब्राह्मण के पुत्र थे; इनका नाम माता पिता ने अजामेल रक्खा था। सो वह अजामेल सच्चा ही हो गया, अर्थात् अजा (माया, अविद्या) की अन्त सीमा शूद्री वेश्या मय वह होगया; और ब्राह्मण ज्ञाति शुभ धर्मपत्नी को छोड़ दिया। इस कार्य्य का कारण अब टीकाकार बताते हैं कि " कियो मद पान " अर्थात मद पान करतेही सात्विकी बुद्धि ने अन्तःकरण को परित्याग किया उसके पयान करते ही तामसी दशा प्रगट हुई, तमोगुण के करतब होने लगे, पिता के रक्खे हुए नाम ने अपनी सचाई दिखाई॥ सत्यसंकल्प प्रभु के अनुरागियों के साथ लौकिक परिहास का भी कैसा अनोखा फल होता है सो देखिये।

किसी खलने हँसी से सन्तों को भेज दिया (कि अजामिल बड़ा साधु सेई हरि भक्त है उस्के घर जावो) सन्त चले चले अजामिल के घर आए; उनके दर्शन से उस्की बुद्धि श्रीसीतारामकृपासे सात्विकी हो आई; अर्थात् सन्तन में श्रद्धा आगई। और साव-धानता से सेवा करिके साधुओं को रिझाय लिया। जब सन्त चलने लगे तब उस गर्भवती अपनी दासी को सन्तन के चरण पर गिराय के बोला कि इस गर्भवती को आसीस दिया जाय। सन्त ने प्रसन्न होके कहा कि श्रीरामकृपासे "इस्के पुत्रही होगा, सो उस्का तू 'नारायण' नाम रखना"। साधु तो ऐसा कहके चले गए; कालान्तर में उस्के पुत्र जन्मा और कुछ काल का हुवा॥

टीका। कवित्त।

आइ गयो काल, मोह जाल में लपटि रह्यौ, महा बिक-राल यमदूत सों दिखाइये। वोही सुत "नारायण" नाम जो कृपा कै दियो, लियो सो पुकारि सुर आरत सुना-इये॥ सुनत ही पारषद आए वोही ठौर दौर, तारि डारे पास कह्यौ धर्म्म समुझाइये। हरि लै विडारे जाइ पति पै पुकारे कहि "सुनो वज्रमारे! मत जावो हरि गाइये॥ २४॥

स्त्री पुत्र के स्नेह रूप महा मोह जाल में लपटा पड़ा था,

इतने में उस्का मरण काल आगया। महा भयानक यमदूत मुगदर (मुद्गर) फांसी लिये हुए देख पड़े। तब अतिशय मोह तथा महाभय से उस सुत का कि जिस्को सन्तों ने कृपा करके दिया था और नाम भी रख दिया था बड़े आर्त और उच्चस्वर से "नारायण!" ऐसा पुकारा।

भक्तरक्षार्थ जो भगवत पार्षद जगत में विचरते रहते हैं वे नारायण शब्द आर्त्तनांद से सुन्तेही उसी ठिकाने दौड़ के आही तो पहुंचे। और उस बेचारे की फांसी को तोड़ के उस्को छुड़ा ही लिया॥

यमदूतों ने पापी की सहायता का कारण पूछा तब पार्षदों ने बिबशहु भगवन्नामोच्चारण का माहात्म्य कहिके उनको हराया ही नहीं बरंच भगा भी दिया उन्ने जाके अपने पति यमराज से पुकार किया। यमराज ने सब व्यवस्था सुन के उन दूतों को डाट बताया कि "अरे! तुम सबों पर बज्र पड़े, मेरी बात समझ के चित्त में दृढ़ गहि रक्खो कि कोई कहीं कैसाहू पापी क्यों न हो परन्तु वह यदि किसी प्रकार से भगवन्नामोच्चारण करे तहां तुम भूलके भी कदापि मत जाव वहां तो तुम्हारा वा मेरा भी कोई प्रयोजन ही नहीं। उनको तो भगवद्भक्तही जान्ना"॥ प्रियपाठक! नाम का माहात्म्य तनक चित्त लगा के देखिये॥

(चौ०) विबशहु जासु नाम नर कहहीं।
जन्म अनेक सँचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं।
ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥

(छप्पै)

मो चित वृति नित तहँ रहौ जहँ नारायण पद पारषद॥ विषवकसेन, जय, विजय, प्रबल बल, मङ्गल कारी। नन्द, सुनन्द, सुभद्र, भद्र, जग आमय हारी चण्ड, प्रचण्ड, विनीत, कुमुद, कुमुदाक्ष, करुणालय। शील, सुशील, सुषेन, भाव भक्तन प्रतिपालय॥ लक्ष्मी-पति प्रीणन प्रवीन भजनानन्द भक्तन सुहृद। मो चित वृति नित तहँ रहौ जहँ, "नारायण पद पारषद" ॥४॥ (८)

वार्त्तिक तिलक।

मेरे चित्त की वृत्ति सर्वदा तहां रहै कि जहां श्री नारायण जी के पदपंकज सेवी पारषद हैं, किजो मंगल के करने वाले; संसार रूपी महा रोग के हरने वाले; करुणा के स्थान; विनीत; और भावयुक्त भक्तों के प्रति-पालक हैं; जो श्रीलक्ष्मीपतिजी की सेवा करके

उनको प्रसन्न करने में परम प्रवीण हैं; तथा जो भजनानन्द भक्तों की हद्द हैं; अर्थात सब में श्रेष्ठ सीमा रूप हैं।

(१) श्रीविष्वक्सेन जी, (९) श्रीभद्र जी,
(२) श्रीसुषेन जी, (१०) श्री सुभद्र जी,
(३) श्री जय जी, (११) श्रीचण्ड जी,
(४) श्री विजय जी, (१२) श्रीप्रचण्ड जी,
(५) श्री बल जी, (१३) श्रीकुमुद जी,
(६) श्रीप्रबल जी, (१४) श्रीकुमुदाक्ष जी,
(७) श्रीनन्द जी, (१५) श्रीशील जी,
(८) श्रीसुनन्द जी, (१६) श्रीसुशील जी॥

☞ किसी किसी पोथी में, इस छप्पय के पाठ में "पद" शब्द नहीं ही है।

श्री यमराज (श्रीधर्म्मराज) महा भागवत की, श्री रामनाम माहात्म्य वर्णन द्वारा श्रीभगवद्भक्ति, अजामिल के प्रसंग में वर्णन हो ही चुकी है॥

टीका। कवित्त।

पारषद मुख्य कहे सोरह सुभाव सिद्धि सेवाही की ऋद्धि हिये राखी बहु जोरि कै। श्री पति नारायण के प्रीणन प्रवीण महा, ध्यान करे जन पालैं भाव दृग कोरि कै॥ सनकादि दियो शाप, प्रेरि कै दिवायो आप, प्रगट ह्वै कह्यौ पियो सुधा जिमि घोरि कै॥ गही प्रतिकूलताई जो पै यही मन भाई, याते रीति हद गाई धरी रङ्ग बोरि कै॥ २५॥

वार्तिक तिलक ।

श्रीनाभाजी ने जो सोलह मुख्य पारषद कहे सो उनको स्वाभाविक सिद्ध अर्थात् नित्यमुक्त जानिये, सो प्रभु की सेवा रूपा सम्पत्ति को एकट्ठी करके अपने अपने हृदय में रख ली हैं; श्रीलक्ष्मीपतिनारायण जी की प्रसन्नकारिणी सेवा में महा प्रवीण हैं; और सर्वदा उन्ही के ध्यान में मग्न रहते हैं; समस्त भगवद्भक्त जनों का पालन यों करते हैं कि जैसे पलक नेत्रगोलकों की रक्षा करते हैं ।

और तत्सुखी आज्ञाकारी यहां तक हैं कि उनमें श्री जय जी और श्री विजय जी को जब श्री प्रभु की प्रेरणा से सनकादिकों ने तीन जन्म तक असुर होने का शाप दे दिया (पृष्ठ ८७) और उसी समय शीलसिन्धु श्रीनारायण जी प्रगट हो के बोले कि "इस शाप को मेरी ही इच्छा समझ के सुधापान सरिस ग्रहण करो," तब इतना सुन कहा कि "जो यह आप की इच्छा है तो हम को सहस्र सुधा समान है" ॥ इससे सेवक धर्म की रीति "हद" (सीमा) है, क्योंकि नित्य सेवा का सुख छोड़ के आपकी आज्ञा से, प्रसन्नतापूर्वक, प्रतिकूलता को अर्थात असुर भाव को अङ्गीकार किया । ऐसे रँगीले सेवक हैं ।

(छप्पै)

हरि वल्लभ सब प्रार्थों, जिन चरण रेणु आशा धरी ॥ कमला, गरुड़, सुनन्द

आदि षोड़श प्रभु पद रति। हनुमन्त, जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, शबरी, खगपति॥ ध्रुव, उद्धव, अम्बरीष, विदुर, अक्रूर, सुदामा। चन्द्रहास, चित्रकेतु, ग्राह, गज, पाण्डव नामा॥ कौषारव, कुन्ती, बधू, पट ऐंचत लज्जा हरी। हरि वल्लभ सब प्रार्थौं, जिन चरण रेणु आसा धरी॥ ५॥ (९)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीहरि के समस्त परम प्रिय श्रीप्रभुपदप्रीतिपरायण भक्तों की प्रार्थना करता हूं कि जिन्हके चरण रज कण की आसरा संसार सागर के तरने के हेतु अपने हृदय में रक्खे हुआ हूं—

(१)श्रीलक्ष्मी जी(२)श्रीगरुड़जी (३) श्रीसुनन्द आदि (पृष्ठ ९६ और ९७) सोलहो पारषद (४) श्रीराम दासाधिपति कपीन्द्र श्रीहनुमन्त जी (५) श्रीजामवन्त जी (६) श्रीरामसखा श्रीसुग्रीव जी (७) श्रीविभीषण जी (८) श्रीशबरी जी (९) खगपति श्रीजटायू जी (१०) श्रीध्रुव जी (११) श्रीउद्धव जी (१२) श्रीअम्बरीष जी (१३) श्रीविदुर जी (१४) श्रीअक्रूर जी (१५) श्रीसुदामा जी (१६) श्रीचन्द्रहास जी (१७) श्रीचित्रकेतु जी (१८) गजराज (१९) ग्राह (२०) पाण्डव [१ श्रीयुधिष्ठिर जी

२ श्रीअर्जुनजी ३ भीमसेन जी ४ नकुलजी ५ सहदेव जी]
(२१) श्रीमैत्रेय मुनि जी (२२) श्रीकुन्ती जी (२३) श्री
कुन्तीबधू जी जिनकी लज्जा दुःशासन के पट छीनते
समय श्री प्रभु ने रक्खी है सो अर्थात् श्रीद्रौपदी जी ॥

टीका । कवित्त ।

हरि के जे बल्लभ हैं दुर्लभ भुवन मांझ तिनही
की पद रेणु आसा जिय करी है । योगी, यती, तपी,
तासों मेरो कछु काज नाहिं प्रीति परतीति रीति मेरी
मति हरी है ॥ कमला, गरुड़, जाम्बवान, सुग्रीव, आदि,
सबै स्वादरूप कथा पोथिन में धरी है । प्रभु सौं
सचाई जग कीरति चलाई अति मेरे मन भाई सुख
दाई रस भरी है ॥ २६ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीहरिके बल्लभ जगत में परम दुर्लभ हैं, सो मैंने उन्ही
के पदरज रेणु की आसा की है । और कोरे योगी
यती तपस्वी लोगों से मुझे कुछ कार्य्य नहीं है;
मेरी मति को तो श्रीभगवत के प्यारों की "प्रीति"
"प्रतीति" और "रीति" ने ही हर ली है । पूर्व कथित
भक्तों में, श्रीलक्ष्मी जी, श्रीगरुड़ जी, श्री जामवन्त जी,
श्रीसुग्रीवजी, आदिकों की भक्तिरसास्वादरूपा कथाएं
तो पुराणों में प्रसिद्ध ही हैं, जिन्होंने प्रभु से सच्ची प्रीति
करके जगत में अपनी कीर्त्तियां फैलाई हैं, और मुझे
अत्यन्त ही भली लगी हैं क्योंकि रसीली तथा सुख दाई हैं॥

सोलहो पारषद तथा पांचो पार्षदो समेत ४२ (बयालीस) हरि-वल्लभों के नाम इस (पांचवें) छप्पय में हैं॥

(चौ०) वन्दनीय पद पंकज तिन्ह के।
सियपियप्रिय, प्रिय सियपिय जिन्ह के॥

श्री लक्ष्मी जी।

जग जननी श्री लक्ष्मी जी महारानी तथा श्री मन्नारायण जी, गिरा अर्थ जल वीचि सम वास्तव में एकही हैं। भक्तों के हेतु युगल मूर्त्ति से प्रगट हैं। वस्तुतः जो यह हैं सो वह और जो वह हैं सो यह॥ भगवत आपही, श्री लक्ष्मी रूप से, जगत को उत्पन्न करके, संरक्षण पालन करि भुक्ति, मुक्ति, भक्ति, प्रभु मंत्र नेम प्रेम दे के जीवों को श्रीप्रभु समीप निवासी करते हैं॥ इसी से श्रीलक्ष्मी जी भक्तिमार्ग "श्री संप्रदाय" की परमाचार्य्य आदि भक्त रूपा श्रीहरि-वल्लभा हैं॥ जितने वेद पुराण भागवत इतिहास और सद्ग्रन्थ हैं, सब के सब युगल सरकार की ही लीला यश चरित्र को तो वर्णन करते हुए "नेति नेति" पुकारते हैं॥ श्री कृपा की जय जय जय॥

(श्लोक) या देवी सर्व भूतेषु भक्ति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥

श्री पार्षद।

भगवत के प्रमुख पार्षद जो सोलह [१६] हैं श्री

"सुनन्द, प्रमुख, तिनका वर्णन पृष्ठ ९६ तथा पृष्ठ ९८ में कुछ हो ही चुका है; और इनकी कृपा अजामिल के प्रसङ्ग में भी विदित ही है। भक्तों के रक्षक हैं, इनकी कृपा कौन वर्णन कर सकता है॥ यहां श्री नाभाजी स्वामी ने इनकी प्रार्थना "हरि वल्लभों" में भी पुनः की है॥

श्री गरुड़ जी।

श्री हरिवल्लभ (श्री गरुड़) जी भी भगवत पार्षद हैं, प्रभु के वाहन हैं "श्रीहनुमान गरुड़ देव की जय" यह तो सबको प्रसिद्ध है ही॥

(चौ०) गरुड़ महा ज्ञानी गुण रासी।
हरि सेवक अति निकट निवासी॥

आप अनेक भाव रूप, अर्थात् दास, सखा, वाहन, आसन, ध्वजा, वितान, व्यजन, हो के श्री प्रभु की सेवा करते हैं और सदा सन्मुख खड़े रहते हैं॥

"श्री यामुना चार्य्य स्वामी जी" ने तो श्रीगरुड़ जी को वेद त्रयी रूपही कहा है, जिन्ह के पक्षों से "सामवेद" उच्चारण होता है, सो प्रभु चढ़े हुए सप्रेम सुनते हैं॥

श्री काक "भुशुण्डि" जी से आपने "श्री राम चरित मानस" जिस प्रेम से श्रवण किया उसका कहना ही क्या।

(चौ०) सुनि शुभ राम कथा खग नाहा॥ विगत मोह मन परम उछाहा॥ सुनि भुशुण्डि के वचन सुहाए। हरषित षगपति पंख फुलाए॥ नयन नीर

मन अति हरषाना। श्री रघुपति प्रताप उर आना॥ पुनि पुनि काग चरण सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ाया॥ (दो०) काक चरण सिर नाइ करि, प्रेम सहित मति धीर। गरुड़ गंएउ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥

और इनका बल पराक्रम भक्ति चरित्र के वर्णन में तो महाभारत येक "सौपर्ण" पर्व का पर्व ही प्रसिद्ध है॥

श्रीबाल्मीकि युद्ध काण्ड में श्री बैनतेय जी ने निज बल्लभता श्री सीता कान्त जी से स्वयं कही है कि "हेश्री ककुत्स्थ कुल भूषण जी! मैं आप का सखा हूं परमप्रिय वाहर का विचरने वाला आप के प्राण हूं यह नरनाट्य नाग पास बंधन लीला सुन के निज सख्य सहायता निवेदन करने को आया हूं॥

श्री हनुमान जी।

(चौ०) महाबीर बिनवौं हनुमाना।
राम जासु यश आपु बखाना॥

टीका। कवित्त।

रतन अपार सार सागर उधार किये लिये हित चायके बनाइ माला करी है। सब सुख साज रघुनाथ महा राज जू को, भक्ति सों, विभीषण जू आनि भेंट धरी है॥ सभाही की चाह अवगाह हनुमान गरे डारि दई सुधि भई, मति अरबरी है। राम बिन काम कौन,

फोरि मणि दीन्हें डारि, खोलि तुचा नामही दिखायो; बुद्धि हरी है ॥ २७ ॥

वार्त्तिक तिलक।

सागर से निकाले हुए जिन रत्नों में अपार सार अर्थात् अति प्रकाश युत अमूल्यता थी, वे रत्न तीनों लोकों के देव भूप नागों के मस्तकों के महामुख्य भूषण थे; तिनको जीत के रावण ने बड़े चाव से अपने कोश में रक्खा था। उन्ही रत्नों को बड़े हित चाह से श्री विभीषण जी ने माला बना के, सब सुखसाजयुक्त महाराज श्रीरघुनाथ जी को भक्ति पूर्वक भेंट दी ॥

उस महा मनोहर माला को देख के सभा भर के लोगों को उसकी अथाह (अवगाह) चाह उत्पन्न हुई। श्रीजानकी जीवन जी ने देखा कि इस माला ने तो हमारे सब निष्काम भक्तों के मन को चाह युक्त कर दिया; इससे सब को चाह रहित करने के निमित्त श्री-हनुमान जी के गले में वह माला पहरा दी ॥ श्री-मारुती जी तो प्रभु के रूपअनूप के अवलोकन से छके अपनपो बिसारे हुए थेही माला कण्ठ में पड़ते ही मणियों के सौन्दर्य्य को देखकर और उसमें कहीं श्री-राम नाम न देख कर आप की मति अकुला उठी और विचार किया "कदाचित इसके भीतर श्री नाम हो" इस हेतु से उस माला की एक मणि को फोर के आपने देखा तो भीतर भी श्री नाम न पाया। तब यह विचार

किया कि "यह तो श्री राम रहित है" उस मणि को डाल दिया; इसी प्रकार से एक एक मणि को फोर फोर देख देख फेंकने लगे। यह कौतुक देख के सब सभा चकित हुई और श्रीविभीषण जी बोल ही उठे "कपिवर जी! आप इन अमूल्य मणियों को फोर फोर फेंकते क्यों हैं? कपि जाति स्वभाव से ही, वा इसमें कोई हेतु भी है?"

तब श्रीसीताराम सम्पत्ति के धनिक श्री अंजनी नन्दन जी ने उत्तर दिया कि "श्रीरामनाम से हीन ये मणि मेरे काम के नहीं" यह सुन श्रीविभीषण जी-ने पुनः पूछा कि आप के शरीर में भी तो श्री राम नाम दीखता नहीं, फिर उसे क्यों रक्खे हुए हैं? इतना सुनतेही आपने नखों से अपने दिव्य विग्रह की त्वचा खोल के दिखाया तो तेजोमय सूक्ष्म शब्द युत सर्वाङ्ग में श्रीरामनाम सब को देख पड़े॥ और सब की मति आश्चर्य्य मग्न में हो गई॥

देखिए, इस कौतुक से श्री कपिकुलकेतु जी ने सबौं को परम बैराग्य युत निष्काम श्रीरामानुराग का उपदेश किस प्रकार दृढ़ाया। भला इन्ह के ज्ञान बैराग्यादि दिव्य रत्नों से पूर्ण विमल भक्ति जल से भरे हुए परम प्रेमरूपी सिंधुकी थाह किसको मिल सक्ती है? और श्री सीताराम सेवा में ऐसा अनूठा अनुराग किस का होगा, कि तीन रूप से सेवा सुख

लेते हैं (१) "श्रीरघुकुलकुमार चारुशीलमणि जी" हो के सख्य सेवा सुख लूटते हैं; (२) "श्रीनिमिकुल कुमारी चारुशीला जी" हो के सखी सेवा सुख अनुभव करते हैं; (३) एवं "श्री अंजनीनन्दन" रूप से दिव्यदम्पती जी के दास्य सेवा का सुख लेते हैं। इस कपि रूप की प्रीति भक्ति सेवा तो लोक प्रसिद्ध है कि जिसके वश अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीजानकी जीवन जी आप तो ऋणी कहाए और सेवा धर्म धुरंधर श्री हनुमन्त जी को धनी बनाया॥

(चौ०) "सुनु सत तोहिं उरिन मैं नाहीं।
देखउँ करि विचार मन माहीं॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सन्मुख होइ न सकत मन मोरा॥

(चौ०) हनूमान सम नहिं बड़ भागी। नहिं कोउ रामचरण अनुरागी॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥"

श्री हनुमान जी के यश को बारबार सुनते भी हैं॥
(दो०) किमि वरनौं हनुमन्त की कायकान्ति कमनीय।
रोम रोम जाके सदा राम नाम रमनीय॥१॥

(विनय) जाके गति है हनुमान की। ताकी पयज पूजि आई यह रेखा कुलिश पखान की॥ अघटित घटन सुघट विघटन ऐसी विरुदावली नहीं आनकी॥ सुमिरत संकट सोच विमोचन मूरति मोद निधान की। तापर सानुकल गिरिजा हर लखन राम श्री जानकी। तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यान की॥

(दोहा)

जय जय कपि श्री राम प्रिय ! धन्य धन्य हनु-
मन्त। नमोनमो श्री मारुती ! वलिहारी बलवन्त ॥१॥
सिया दुलारे, पवनसुत ! मम गुरु, अंजनि पूत।
सतसंगति, निज चरण रति, देहु, सीयपियदूत ॥ २ ॥
श्रीसियसियपिय पद कमल अविरल अमल सनेहु।
युगल चरण कैंकर्य्य पुनि मोहि कृपा करि देहु ॥ ३ ॥
"बीरकला श्रीमारुती" ! तुमहि निहोरि निहोरि।
रूप कला सियचेरि लघु विनय करति करजोरि ॥ ४ ॥

श्री जाम्बवान जी।

श्री जाम्बवान जी, श्री ब्रह्मा जी के अवतार हैं। श्री प्रभु तथा सुग्रीव जी के मन्त्रीवर हैं। लंका के युद्ध में बुढ़ापे में भी बड़ा पराक्रम ऋक्षपतिजी का प्रसिद्ध है। और युवावस्था में तो—

(दो०) "बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घड़ी महँ दीन्ह मैं, सात प्रदक्षिण धाइ॥"

श्रीमद् भागवत में वर्णित है कि इन ने बहुत बूढ़ेपन में भी, श्री कृष्ण भगवान् के साथ बड़ा पराक्रम दिखाया, जब तक कि इन ने आप को पहिचाना न था॥ फिर तो अपनी कन्यारत्न "जाम्बवती" को भगवत को प्रदान कर दिया॥

श्री सुग्रीव जी।

श्री सुग्रीव जी, श्री सूर्य्य भगवान् के पुत्र हैं। श्री सुकण्ठ जी से प्रभु ने श्री अग्निदेव को साक्षी करके मित्रता की। आप ने जैसी सख्यता सम्पत्ति आप को प्रदान किया और निबाहा, सो श्री बाल्मीकीय रामायण ही के देखने वालों को विदित है।

कपीश्वर जी सब ऋक्षों और कपियों के राजा थे। और श्री जानकीजीवन जी के तो प्राण से भी प्रिय "पंचम भ्राता" ही थे॥

श्री विभीषण जी।

श्रीसीताराम भक्त लंकेश श्रीविभीषणजी की भक्ति तथा शरणागति को वर्णन कर सके ऐसा कौन जन है? तथापि कुछ थोड़ा सा कहाही जाता है, सो चित्त लगाके सुनिये। देखिये कि प्रात समय इनका नाम लेना बड़ाही मंगल दायक है। और, श्री रामायण जी में जो इनकी कथा है, सो तो प्रसिद्ध है ही, एक नवीन इतिहास यों है-

टीका। कवित्त।

भक्ति जो विभीषण की कहै ऐसो कौन जन, ऐपै कछु कही जाति सुनो चित लाइ कै। चलत जहाज परी अटकि; विचार कियो, कोऊ अंगहीन नर दियो ले बहाइ कै॥ जाइ लग्यो टापू ताहि राक्षसनि गोद

लियो, मोद भरि, राजा पास गए किलकाइ कै। देखत सिंहासन ते कूदि परे, नैन भरे, "याही के आकार राम देखे भाग पाइकै" ॥ २८ ॥

वार्त्तिक तिलक।

एक वणिक की जहाज चली जाती थी। किसी कारण से अटक गई; उसने बहुत यत्न किये पर नहीं चली। तब वणिक ने ऐसा विचार करके कि समुद्र के देवता ने रोका है, उसके लिये किसी मनुष्य को बलि की भांति समुद्र में गिरा दिया॥ वह मनुष्य श्रीराम कृपा से मरा नहीं, वरंच "लंका टापू" के तीर पर जा लगा। उसे राक्षसों ने देखा; और वे बड़े आनन्द से उसको अपने गोद में उठा के, बहुत खिल-खिलाते हुए, राक्षसेन्द्र "श्रीविभीषण जी" के समीप ले गए।

उस समय श्रीविभीषण जी श्रीरामविरह अनुराग में छके प्रभु का ध्यान करते हुए बैठे थे; आप इस मनुष्य को देखतेही सिंहासन से कूद पड़े; क्योंकि मनुष्य रूप का दरशन आपको एक उद्दीपन ही हो-गया। ऐसा विचारने लगे कि "इसी की नाईं मेरे स्वामी नराकार विग्रह श्री राम जी हैं, इनके दरशन इस समय बड़े भाग्य से पाये" इस भाव से नयनों से प्रेमाश्रु बह चले॥

टीका। कवित्त।

रचि सो सिंहासन पै लै बैठाए ताही छन, राक्षसन रीझि देत मानि शुभघरी है। चाहत मुखारविन्द, अति ही अनन्द भरि, ढरकत नैन नीर, टेकि ठाढ़ो छरी है॥ तऊ न प्रसन्न होत, छन छन छीन ज्योति, हूजिये कृपाल, मति मेरी अति हरी है। "करो सिन्धु पार, मेरे यही सुख सार"; दियो रतन अपार, लाये वाही ठौर फेरी है॥ २९॥

वार्त्तिक तिलक।

दिव्य वस्त्र, चन्दन, मणि और सुवर्ण के भूषणों से, उनके शरीर की रचना शृङ्गार करके सिंहासन पर बैठाय धूप दीप, नैवेद्य, आरती के अनन्तर भूषण वस्त्रादि न्योछावर करके, राक्षसों को रीझ पारितोषिक दिये॥ उस घड़ी को अति शुभदायक माना। और, श्री प्रभु का भाव करके सुवर्ण की छड़ी लेके प्रतीहार की भांति सम्मुख खड़े हो, उनके मुखारविन्द का सप्रेम दरशन करने लगे और आपके नेत्रों से आनन्द का जल चलने लगा; तथापि उस मनुष्य के मुख में प्रसन्नता का लेश भी न दीख पड़ा, वरंच क्षण क्षण प्रति उसकी चेतना (चेष्टा) क्षीण ही होती जाती थी उसकी आंखों से आंसू बहते थे, और उसके मन में यह भय बढ़ता जाता था कि इन सब सत्कार पूर्वक, मुझे ये सब बलि दे देंगे॥

श्रीविभीषण जी ने प्रार्थना की कि "इस दास पर कृपा करके कुछ आज्ञा दीजे, क्योंकि आपको उदास देख के मेरी मति सभीत हो रही है" ॥ तब वे बोले कि "मुझे समुद्र पार उतार दीजे, मुझको तो इसी में परमसुख होगा" ॥

तब, श्री विभीषण जी बहुत रत्न देके फिर उसी ठौर सिन्धुतीर उनको ले आए ॥

टीका। कवित्त।

"राम" नाम लिखि, सीस मध्य धरि दियो; "याको यही जल पार करै," भाव सांचो पायो है। ताही ठौर बैठ्यो, मानो नयो और रूप भयो, गयो जो जहाज सोई फिरि करि आयो है ॥ लियो पहिचान, पूछ्यो सब, सो बखान किया, हियो हुलसायो, सुनि, विनै कै चढ़ायो है। पस्यो नीर कूदि, नेकु पांय न परस कस्यो, हस्यो मन देखि, 'रघुनाथ नाम' भायो है ॥ ३० ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीविभीषण जी ने "श्री राम नाम" लिख के उनके मस्तक पर श्रीकरकमल से भाव पूर्वक रख के वस्त्र से बांध दिया; और कहा कि "इस 'श्रीराम' नाम के प्रताप से लोग संसारसागर से पार हो जाते हैं, सो इस समुद्र के जल को तो आप बिना प्रयास ही पार हो जाइयेगा"

उनके सच्चे भाव और विश्वास से वह मनुष्य जल में स्थल की नाईं चल के उसी ठौर पहुंच गया कि जहां संयोग वश वही जहाज़ लौट के आ लगा था ॥ उन लोगों ने इसको देखके पहिचाना और उसके शरीरके तेज तथा अवस्था को दिव्य पाया । पूछने पर उसने अपनी सब कथा और श्रीविभीषण जी की भक्ति कह सुनाई । सुनके सब को अति आनन्द हुआ; बड़े विनय से उसको जहाज़ पर चढ़ा के क्षमा मांगी । प्रसन्न होके श्रीराम नाम का प्रभाव उन सबों से कहा वरंच समुद्र में कूद के दिखा दिया कि जल में उसका पांव तक भी भीगा नहीं ।

अथवा (ऐसा भी कहते हैं कि), उसके पास अनमोल रत्नों की गठरी देख कर नौकापति को लोभ प्रबल हुआ; उसके ये ढंग देख के उसकी माया से बचने के निमित्त यह मनुष्य पुनि जल में कूद पड़ा और यों चल दिया जैसे कोई सूखी धरती पर सहज ही में चले ॥

इस प्रभाव को देख के, "श्रीसीताराम" नाम में सबों को श्रद्धा और प्रतीति उपजी, और अति प्रीति पूर्वक जप के सब के सब संसार के पार हो गए ॥

——:o:——

देवी श्री सवरी जी ।

समस्त प्रेमी भक्तों में शिरोमणि रूपा श्री "सवरी"

जी, किसी हेतु से सवर (भिल्ल) जाति में उत्पन्न हुईं; परन्तु बालपन से ही इनकी दशा तथा मति लोक से विलक्षण ही थी। जब विवाह योग्य अवस्था इनकी हुई, तब माता पिता उसके प्रबंन्ध में उद्यत हुए और सम्बन्धी लोगों के भक्षण के लिये, बहुत से जीव, एकट्ठे किये। इन्हों ने विचारा कि "ओह! मेरे निमित्त इतने जीवों का बध होगा! धिक् इस लोक के प्रपंच को है"। रात्रि में आपने उन सब जीवों को छोड़ दिया और उसी रात आप भी वहां से चल के पंपा-सर के पास जा छुपीं, और वहीं बन के फल मूल से निर्वाह करती हुई दिन बिताने लगीं॥

टीका। कवित्त।

बन में रहति, नाम "सवरी" कहत सब, चाहत टहल साधु, तनु न्यूनताई है। रजनी के शेष, ऋषि आश्रम प्रवेश करि, लकरीन बोझ धरि आवै, मन भाई है॥ न्हाइबे को मग झारि, कांकरनि बीनिडारि, बेगि उठि जाइ, नेकु देति न लखाई है। उठत सबारें, कहैं "कौन धौ बहारि गयो", भयो हिये शोच, "कोउ बड़ो सुखदाई है"॥ ३१॥

वार्त्तिक तिलक।

उसी बन में रहती थीं; इन को सब "सवरी" ही कहते थे॥ इन्हें संतो की सेवा की चाह विशेष थी, परंतु अपनी नीच जाति जान के साधुवों के समीप नहीं

जाती थां। तथापि बिना सेवा किये नहीं ही रहा गया, तब कुछ रात रहते श्री मतंगादि ऋषि जनों के आश्रम में लकड़ियों के बोझ रख आया करती थीं; मन में इस्से सुख मानती थीं; और स्नान के मार्ग की कंकड़ियां भी रात्रि ही में बहार के चली आया करती थीं, जिस्में कोई देख न लेवे। श्री राम भक्त ऋषिजन प्रभात उठके इस टहल को देख विचारते कि "मार्ग को झाड़ बहार के लकड़ियां रख जाने वाला सुखदायक कौन है ?" ॥

टीका। कवित्त।

बड़ेई प्रसंग वे "मतंग" रस रंग भरे, धरे देखि बोझ, कह्यो "कौन चोर आयो है ? करै नित चोरी; अहो! गहो वाहि एक दिन; बिना पाए, प्रीति वाकी मन भरमायो है" ॥ बैठे निशि चौकी देत शिष्य सब सावधान; आइ गई; गहि लई; कांपै, तनु नायो है। देखत ही ऋषी जल धारा बही नैनन ते, बैनन सों कह्यो जात, कहा कछु पायो है ॥ ३२ ॥

वार्त्तिक तिलक।

सब ऋषियों में बड़ेही प्रसंग श्री राम रंग से भरे श्री मतङ्गजी लकड़ियों का बोझ धरा देख के बोले कि "हमारे सुकृत का चोर यह कौन आता है ? जो नित्य ही चोरी से सेवा करके चला जाता है। उस प्रीतिवान को विना देखे उस की प्रीति ने मेरे मन

को चपल कर रक्खा है। रात्रि में जाग के उसको पकड़ो" ॥ रात को शिष्य लोगों ने सावधान रहके चौकी देके उसको पकड़ा। उससे शिष्यों ने पूछा कि तू ने यहां लकड़ियां पहुंचाने के लिये किसी से कुछ पाया है ?

अति भय से वह कांपती हुई पांव पर गिर पड़ी। देखतेही श्रीमतंग जी के नेत्रों से प्रेमानन्दजल की धारा चलने लगी। और ऐसे अकथ आनन्द में मग्न हो गए मानो कोई महा अलभ्य वस्तु पाया है ॥

टीका। कवित्त।

डीठी हू न सोंही होत, मानि तन गोत छोत, परी जाय शोच सोत, कैसेकै निकारियै। भक्ति को प्रताप ऋषि जानत निपट नीके "कैऊ कोटि विप्रताई यापै वारिडारियै" ॥ दियो बास आश्रम में, श्रवण में नाम दियो; कियो सुनि रोष सबै, कीनी पांति न्यारियै। सबरी सों कह्यो "तुम रामदरशन करो, मैं तो परलोक जात, आज्ञा प्रभु पारियै" ॥ ३३ ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीसबरी जी की तो दृष्टि भी मुनिवर जी के सामने नहीं होती थी, अपनी जाति को अति नीच मान के सोच रूपी प्रवाह में पड़ गईं। इधर श्रीमतङ्ग मुनिजी शोच विचार के प्रवाह में पड़े कि इसको सोच के सोत (धारा) से कैसे निकालूं ? क्योंकि ऋषी-

श्वर जी "श्रीरामभक्ति जी" का प्रताप भले प्रकार जान्ते थे। शिष्यों से कहने लगे कि "यह जाति की तो नीच है सही, परन्तु इसकी भक्ति पर तो कई कोटि ब्राह्मणाभिमान को न्योछावर करना योग्य है"॥ निदान, सवरी जी को अपने आश्रमही में निवास देकरके महामन्त्र श्रीसीताराम नाम श्रवणमें सुना दिया॥

इस वार्त्ताको सुनके औरसब मुनि जनोंने अति रोष करके आपको अपनी ज्ञाति पंक्ति से न्यारा कर दिया।

इस बात का कुछ हर्ष विषाद श्रीराम भक्त "मतङ्ग" मुनि जी को लेश भी न हुआ। श्रीसवरी जी सेवा में तत्पर हो के रहने लगीं॥ कुछ काल में श्रीमतङ्ग जी के देह त्याग का समय आपहुँचा; श्रीसवरी जी से आपने कहा कि "मुझे तो अब इस लोक में रहने की प्रभु की आज्ञा नहीं है, श्रीरामधाम को जाता हूं; परन्तु तुम यहां ही बनी रहो"। इतना सुन श्रीसवरी जी अत्यन्त व्याकुल हुईं। आपने समझाके कहा कि "मेरे इस आश्रम में 'परब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्र जी' अपने अनुज 'श्रीलक्ष्मण' जी के सहित आवेंगे, तू उनका दरशन पूजन सप्रेम करना। तब श्रीरामधाम को आना॥" ऐसा समझा के श्रीमतङ्ग जी परमधाम को पधारे॥

टीका। कवित्त।

गुरू के वियोग हिये दारुण ले शोक दियो, जियो

नहीं जात; तऊ राम आसा लागी है। न्हाइबे को बाट निशि जात ही बहारि सब, भई यों अबार ऋषि देखि व्यथा पागी है॥ छुयो गयो नेकु कहूं, खीजत अनेक भांति; करिकै विवेक गयो न्हान; यह भागी है। जल सों रुधिर भयो, नाना कृमि भरि गयो, नयो पायो शोच, तौहू जानै न अभागी है॥ ३४॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीसवरी जी को श्री गुरु वियोग से बड़ाही दुसह दुःख हुआ कि जिस्में वह प्राण को नहीं रक्खा चाहती थीं; पर श्रीराम रूप अनूप के दरशन की लालसा ने प्राणों को निकलने न दिया॥ आप मुनियों के स्नान के पथ को रात ही को झार आया करती थीं।

एक दिन कुछ बिलम्ब हो गया; प्रतिपक्षी एक मुनि ने श्रीसवरी जी को देख लिया, इस्से श्रीसवरी जी भय से व्यथित हुईं। वन का मार्ग पतला तो होता ही है, मुनि, किंचित छू जाने से, क्रोध करके अनेक दुर्वचन बोले॥

अपने मन में विचार के उस मुनि ने फिर जाके स्नान किया। और श्री सवरी जी भाग के अपनी कुटी में चली आईं॥ मुनि जब स्नान करने लगे, तो श्रीरामभक्त सवरी जी के प्रति अपराध से, जल रुधिर हो गया, और देखतेही देखते उस सर में कीड़े भी पड़ गए। मुनि को यह एक नया सोच हुआ

तथापि इस बात को तो न समझे कि 'श्री सवरीजीको नीच मान के दुर्वचन जो कहे, और उनके स्पर्स के अनन्तर पुनः स्नान किया, तिसी से इस सर का जल रुधिर हो गया;' किन्तु भक्ति भाग्यहीन मुनि ने उलटे ऐसा समझा कि "सवरी ही के स्पर्स के दोष से यह जल बिगड़ गया है" ॥

टीका कवित्त।

लावै बन बेर, लागी राम की अवसेर भल, चाखै* धरिराखै फिर, मीठे उन जोग हैं। मारग में जाइ, रहै लोचन बिछाइ, कभूं आवैं रघुराई, दृग पावैं निज भोग हैं॥ ऐसे ही बहुत दिन बीते मग जोहत ही, आइ गए औचक सो; मिटे सब सोग हैं। ऐपै तनु नूनताई आई सुधि, छिपि जाई; पूछैं आप "सवरी कहां ?" ठाढ़े सब लोग हैं॥ ३५॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीसवरी जी के मन में श्री राम जी की अति अवसेर थी अर्थात् प्रभु के आने के सोच सन्देह में मग्न हो रही थीं; सो बन के बेर आदिक फल लाकर चखती थीं* और मीठे प्रभु के योग्य जान कर रख छोड़तीथीं॥

*इसका अर्थ कोईएक महात्मा ऐसा बताते हैं कि चखने पर जिस वृक्ष के फल मीठे पाती थीं उसी वृक्ष के फल प्रभु के योग्य जान तोड़ के रख छोड़ती थीं॥

प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा में अपनी आंखें बिछाए रहती थीं और अति उत्कण्ठा से ऐसा विचारा करती थीं कि "कब वह दिन आएगा ? कि जिस दिन श्रीरघुनन्दन लाल जी आवेंगे और उनके दरशन रूपी सुधा को मेरे नेत्र चखेंगे ॥"

प्रिय पाठक ! श्री शवरी जी का प्रेम अकथ अगाध है ॥ "गीतावली" में गोस्वामी श्री ६ तुलसीदास जी ने भी कुछ गाया है ॥

"छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ," इत्यादि ॥

इसीप्रकार मार्ग जोहते २ बहुत दिन व्यतीतहुए ॥ अवचकही एक दिन लालजी (प्रभु) आयही तो पहुँचे; सुन के सब शोक सन्देह जाते रहे; पर अपने शरीर की नीचता की सुधि आगई, और प्रेम की विचित्र विकलता से, आगे लेने को तो न बढ़ीं, वरंच छुप गईं ॥

प्रभु आके, बन बासी लोगों से पूछने लगे कि "वह सरस भक्तिवती सवरी कहां रहती है ?" ॥

टीका कबित्त।

पूछि पूछि आए तहां, स्योरीकौ अस्थान जहाँ, कहां वह भागवती ? देखौं दृग प्यासे हैं। आइ गई आश्रम में; जानिकै पधारे आप, दूर ही ते साष्टाङ्ग करी चष भासे हैं ॥ रवकि उठाइ लई, बिथा तनु दूरि गई, नई नीर झरी नैन, परे प्रेम पासे हैं। बैठे, सुख पाइ फल खाइ कै सराहे, वेइ कह्यौ "कहा कहौं मेरे मग दुख नासे हैं ॥ ३६ ॥

वार्त्तिक तिलक।

इस प्रकार पूछते २ जहां श्रीसवरी जी की कुटी थी तहां ही आके यह बात पूछी कि "हमारी वह परम भागवती शवरी कहां है? हम उसको नयन भर देखा चाहते हैं, हमारे नेत्र उसके दरशन रूपी जल के प्यासे हो रहे हैं"। प्रीति पगे श्रीमुख बचनों को सुनके उनको अपनी नीचता का सोच मिट गया और यह देखा कि आश्रम में ही दोनों भाई कृपा करके आखड़े हैं; तब सन्मुख आके जहां से आपके दरशन पाए वहीं से प्रेम पूरित साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रभु ललक के आए और श्रीकरकमलों से आपने श्रीशवरी जी को उठा लिया। श्रीकरकंज के स्पर्स हीसे वियोग की सब व्यथा जाती रही और नेत्रों से नवल प्रेम मय जल की झड़ी लग गई। क्योंकि इस समय इनके पौ बारह सरीखे प्रेम के पासे अनुकूल पड़ गए अथवा श्रीशवरी जी के नयन श्रीरामप्रेम पास में बँध गए॥

चरण धोके दोनों भाइयों को अनुराग रंजित आसन पर बैठाय फूलमाला पहिराय फलों को नवीन २ दोनाओं में करके आगे रक्खा। प्रभु उन फलों को खाते हुए बारम्बार उन के स्वाद की प्रशंसा, और शिव जी आदि उसके भाग्य की तथा प्रभु की भक्तवत्सलता की सराहना, करने लगे॥ और बोले कि क्या कहूं आज तुम ने मेरे मार्ग भर के परिश्रम दुःखों को मिटा के परम सुख दिया॥

टीका। कबित्त।

करत हैं सोच सब ऋषि बैठे आश्रम में, जल को बिगार! सो सुधार कैसे कीजिये? आवत सुने हैं बन पथ रघुनाथ कहूं; आवैं जब, कहैं "याको भेद कहि दीजिये"॥ इतनेही मांझ सुनी "सवरी के बिराजे आन" गयो अभिमान! चलो पग गहि लीजिये। आय, खुन-साय, कही "नीर कौ उपाय कहौ" "गहौ पग भीलिनी के छुए स्वच्छ भीजिये" ॥ ३७ ॥

वार्त्तिक तिलक।

उधर ऋषी लोग अपने आश्रमों में बैठे सोच रहे थे कि यह जल जो बिगड़ गया है सो इसकी शुद्धता किस प्रकार से की जावे। इतने में कोई बोल उठे कि सुनते हैं कि इस बन मार्ग से कहीं श्री रघुनाथ जी चले आते हैं; सो जब आवें तब इसका हेतु तथा शुद्धि का उपाय आपही से पूछ लिया जायगा। ये बातें होही रही थीं कि उसी क्षण मुनियों ने सुना कि आप आही गए, शवरी के कुटी में बिराज रहे हैं॥

यह सुनते ही सभों के अभिमान जाते रहे और वे लोग बोले कि चलो उनके चरणों में दण्डवत प्रणाम करें। खुनसाए हुए आए और प्रभु से कहा कि हमारे स्नान पान का जल बिगड़ गया है इसके सुधरने का यत्न बता दीजिये।

इसके उत्तर में प्रभु ने कहा कि आप लोगों ने परम भागवती शवरी का अनादर किया इसी भक्ता-

पराध से जल की यह दुर्दशा हो रही है । अतएव इसी के चरणों को गहिये और "सादर इन्हें लेजाके इनका चरण स्परस कराइये तो जल निःसन्देह निर्मल हो जावेगा" ॥ आप लोग सुख से स्नान पान कीजियेगा ॥

क्या करें उन ने ऐसाही किया; और जल परम निर्मल और स्वाद सुगन्धित युक्त हो गया ॥

प्रभु ने जब वहां से चलना चाहा, श्री शवरीजी ने अपना प्राण न्यवछावर कर दिया और परम धाम को चली गईं । धन्य, धन्य! अहो! प्रीति परमेश्वरी परम आश्चर्य्य! श्री शवरी जी के प्रेम की प्रशंसा करें ? कि श्री प्रभु की प्रेम पालकता की ? दोनोंही की बलिहारी ॥ देखिये तो श्री शवरी जी ने केवल बन के फल ही खिलाने में प्रभु में अनुराग, उससे शत सहस्र गुण अधिक किया कि जो प्रेम माता सुत को खिलाने में करती है; और वैसेही प्रभु ने श्रीमातु कौशल्या जी महारानी के पवाए भोजनों से भी अधिकतर मीठे स्वादिष्ठ मान के उन फलों को पाया ॥

इस प्रेम की जय हो और इस प्रेम भाव ग्राहकता की जय ॥ (क॰) कछू चूक परी, ताते नीच योनि धरी, तऊ ऊंचे ओर ढरी, हीनजाति पांति न बरी । सन्त सेवा करी, मुनि राम भक्ति भरी, प्रेम पथ अनुसरी, भई प्रीति रीति जबरी ॥ आए राम हरी, देखि लागी

आंसु भरी, आसा बेलि सुख फरी, भूली तन मन खबरी। रस रंग, बदरी, सुधा को स्वाद निदरी, सो खाए राम आदरी, औ माने मातु सवरी ॥

(दोहा) श्रीरामहिँ रस रङ्गमणि, प्रेम भाव की भूख। सबरी की बदरी चखे, मन महँ निदरि पियूष ॥१॥ घर गुरु गृह ससुरारि प्रिय, सदन पाय पहुनाय। सवरी फल रुचि माधुरी, कहुँ न लही रघुराय ॥ २ ॥ प्रेम पगे चखि चार फल, कौशल्या के लाल। भक्तन की कबरी मणी सवरी करी कृपाल ॥ ३ ॥ अधिक बढ़ावत, आप ते, जन महिमा, रघुबीर। तुलसी, शवरी पद रज से, शुद्धभयो सरनीर ॥ ४ ॥

खगपति श्रीजटायू जी।

टीका। कवित।

"जानकी" हरण कियो "रावण" मरण काज; सुनि "सीता" बाणी "खगराज" दौड़ो आयो है। बड़ी ये लड़ाई लीन्ही, देह वारि फेरि दीन्ही, राखे प्राण, राम मुख देखिबो सुहायो है॥ आए आपु, गोद शीश धारि दृग धार सींच्यो, दई सुधि लई गति तन हू जरायो है। "दशरथ" वत मान कियो जल दान, यह अति सनमान, निज रूप धाम पायो है ॥ ३८ ॥

वार्तिक तिलक।

पक्षियों के राजा महाभक्त श्रीजटायु जी ने अपना तन भी भगवत के निमित्त अर्पण कर दिया। अब

रावण अपना मरना प्रभु के शर से संकल्प करके उसके निमित्त श्रीमायासीताजी को हरके लेचला, तो आपकी आर्त्तवाणी और विलाप सुन के सहायता करने को उक्त श्रीभक्तराज महाराज अति शीघ्र पहुँचे। आप जगतविख्यात निशाचरपति रावण से बहुत लड़े, रावण ने भी जाना कि किसी से काम पड़ा।

जब उस दुष्ट ने आपके दोनों पक्ष काट डाले तब आपने अपना शरीर प्रभु के निमित्त न्यवछावर कर दिया; परन्तु श्री चक्रवर्त्तिकुमार महाराज के प्रिय दरशन के हेतु प्राण रक्खे हुए प्रभु का स्मरण कर रहे थे॥

श्रीप्रिया जी को ढूंढते ढूंढते श्रीजानकीजीवन जी श्री लक्ष्मणजी के साथ साथ वहां आए॥

(क०) जाति के निषिद्ध, मांसभक्षक अशुद्ध "अवधेश" धर्म्म वृद्ध, सखा किये निज शुद्ध हैं। पातक पिनद्ध बली रावण अबुद्ध मूढ़ काल पास बद्ध कियो करम बिरुद्ध है॥ सुनत सनद्ध जुरे रसरुद्र जुद्ध, सिया छीनि लिये क्रुद्ध परे पंख बिनु बिद्ध हैं। रामकृपा रुद्ध दिये प्रेम ते प्रबुद्ध धाम सुख को समृद्ध धन्य श्री जटायू गृद्ध हैं॥

(दो०) कर सरोज सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुबीर। निरषि राम छविधाम मुख विगत भई सब पीर॥ प्रभु ने श्रीजटायु जी का सीस अपने श्रीगोद में लेके, स्नेह के आंसुओं से सींचा॥

(सवय्या)

दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परेउ क्षिति खिन्न दुखारी।
"राघव" दीन दयालु कृपालु को देखि दुखी करुणा भइ भारी॥

गीधको गोदमें राखि कृपानिधि नैन सरोजन में भरि बारी।
बारहिँ बार सुधारत पंख "जटायु" की धूरि जटान सो झारी॥

(चौ०) "राम कहा तनु राखहु ताता"। मन मुसुकाइ कही तिन्ह वाता॥ "जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुक्त होय श्रुतिगावा॥ सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं नाथ! देह केहिषांगे?॥"

चौ०॥ गीध अधम खग आमिष भोगी गति तेहि दीन्ह जो जांचत जोगी॥ प्रभुने पिता श्रीदशरथ जी महाराज के सदृश जान के, क्रिया की; इस सनमान की बलिहारी॥ (चौ०) गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा॥ (दो०) अविरल भगति मांगि वर, गीध गएउ हरि धाम। तेहि की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्ही राम॥

(गीत) फिरत न बारहिंबार प्रचारयो। चपरि चोंच चंगुल हति हय रथ खण्ड खंड करि डारयो॥ विरथ विकल कियो, इत्यादि, इत्यादि।
तुलसीदास सुर सिद्ध सराहत धन्य बिहंग बड़भागी॥

(दो०) दशरथ से दशगुन भगति सहित तासु कृत काज। तुलसी सोचत बन्धु युत राम गरीबनिवाज॥ मुए, मरत, मरिहैं, सकल, घरी पहर के बीच। लही न काहू आजु लौं, गीधराज की मीच॥ २॥ गोदसीस धरि, पितुसखा जानि कृपा के धाम। झारी धूरि जटायु की, निज जटान सो राम॥ ३॥

(छप्पै)

भक्ति भूमि भूपाल श्री दशरथ दश दिशि विदित यश ॥ मनु वपु में बहु भक्ति सुतपकरि ब्रह्म विलोके। परमातम प्रिय पुत्र पाय सिय वधू विशोके ॥ फणि मणि इव जल मीन सरिस प्रभु प्रीति सुपागे। सत्य प्रेम के सीम राम बिछुरतं तन त्यागे ॥ कौशल्या पति पूज्य जग धर्म ध्वज वात्सल्य रस। भक्ति भूमि भूपाल श्री दशरथ दस दिशि विदित जस ॥ १ ॥ वारिधि रस वात्सल्य की कौशल्या बेला मनहु ॥ कृपा प्रीति प्रभु भक्ति सुकीरति सकल सकेली। विरचेउ चतुर विरंचि राम जननी मुदवेली ॥ सीता सरिस स्वभाव धर्म धुर धरनि उदारा। भरतादिक को करनि रामते अधिक दुलारा ॥ मातु सुमित्रा आदि सब "रस रङ्ग मणी" तेहिं सम गनहु ॥ वारिधि रस वात्सलय की कौशल्या बेला मनहु ॥ २ ॥ (राम रस रङ्ग मणि) ॥

श्रीअम्बरीष जी।

टीका। कवित्त।

"अम्बरीष" भक्त की जो रीस कोऊ करै और, बड़ो मति बौर, किहूं जान नहीं भाखिये। "दुरबासा" रीसि खीसि सुनी नहीं कहूं साधु मानि अपराध, सिर जटा खैंचि नाखिये ॥ लई उपजाइ काल कृत्या विकराल रूप भूप महाधीर रह्यो ठाढ़ो अभिलाखिये। चक्र दुख मानि लै कृशानु तेज राख करी, परी भीर ब्राह्मण को भागवत साखिये ॥ ३९ ॥

वार्तिक तिलक।

श्री अम्बरीष भक्तराजऋषि जी की समानता जो और कोई किया चाहे सो बड़ाही मतिमन्द विक्षिप्त है, क्योंकि उनकी भक्ति किसी प्रकार कथन में भी नहीं आसक्ती। देखिये, दुर्वासा ऋषि ने किसी साधु की

सिखावनि नहीं सुनी, श्री अम्बरीषजी के बिना अप-
राध ही अपराध माना, अर्थात् एक समय द्वादशी
के दिन महाराज के यहां दुर्बासा जी आए महाराज ने
नमस्कार विनय के अनन्तर भोजन के लिये प्रार्थना
की। ऋषि जी ने कहा कि स्नान कर आवैं तो भो-
जन करैं। इतना कह स्नान को गए। परन्तु उस दिन
द्वादशी दोही दण्ड थी। राजा ने बिचार किया
कि त्रयोदशी में पारण करने से शास्त्राज्ञा उलंघित
होगी। तब ब्राह्मणों ने कहा कि चरणामृत पी लीजिये।

एसाही किया। दुर्बासाजी आए और अनुमान से
जाना कि इन्हों ने जल पिया है। फिर तो अत्यन्त
क्रोध करके अपने जटा को भूमि में पटक के महा
विकराल "काल कृत्या" उत्पन्न करके उससे कहा कि
"इस राजा को भस्म करदे" इतने पर भी श्री अम्ब-
रीषजी हाथ जोड़े, दुर्बासा की प्रसन्नता के अभिलाष
में खड़ेही रहे। "श्री सुदर्शनचक्र जी" जो श्री प्रभु की
अज्ञानुसार राजा की रक्षार्थ सदा समीप ही रहते थे,
उनने दुर्बासा के दुखदाई क्रोध से दुखित होके उस
कालाग्नि कृत्या को अपने तेज से जलाके राख करदी।
और ब्राह्मण की ओर भी चले, यह देख दुर्बासा जी
भागे और चक्रतेज से अत्यन्त बिकल हुए, कि जैसा
श्री मद्भागवत में लिखाही है॥

टीका। कवित्त।

भाज्यो दिशादिशा सब लोक लोकपाल पास गये, नयो तेजचक्र चून किये डारे हैं। ब्रह्मा शिव कही यह गही तुम टेव बुरी, दासन को भेद नहीं जान्यो, वेद धारे हैं॥ पहुंचे बैकुंठ जाय, कह्यो दुःख अकुलाय, हाय हाय! राखो प्रभु! खरो तन जारे हैं। "मैं तो हौं अधीन; तीनगुण को न मान मेरे 'भक्तवात्सल्य गुण' सबही को टारे हैं" ॥ ४० ॥

वार्त्तिक तिलक।

ऋषिजी श्री चक्र के भय से भागे हुए चारों दिशाओं, तथा चारो विदिशाओं, को, और सब लोकों में गए; और लोकपालोंकेपास अर्थात् इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम, के पास जाके, उनने शरण शरण पुकारा; परन्तु चक्रका प्रतिक्षणबढ़ताहुआ तेज दुर्वासाजीको यों जलाके चूनासा कियेडालता था जैसे अग्नि कंकड़ पत्थर को। जब श्री ब्रह्माजी एवं श्री शिवजीके लोक में वह पहुंचे, तब आपदोनोंने कहा कि "दुर्वासाजी! तुम ने यह बड़ीनिकम्मी टेव पकड़ी है कि भगवद्भक्तों का भेव (भेद, मर्म) न समझके उनसे उलझतेहो, कि जिनकाप्रभाव वेद गानकरते हैं। तुम्हारी रक्षा हम नहीं करसक्ते"। हां, श्री नारद जी ने हित उपदेश दिया॥

तब अन्त में, श्री वैकुण्ठ जापहुंचे और हायहाय! करके अकुलाके प्रभु से अपना दुःखकहा कि "हे प्रभो!

रक्षा कीजिये। त्राहि त्राहि दयालु रघुराई! रघुवीर करुणा सिन्धु आरतबन्धु जनरक्षक हरे!! इस चक्र का अति तीक्ष्ण तेज मुझे जलाए डालता है। (१) आप शरणागतपाल हैं, मैं शरणागत हूं, (२) आप आर्त्ति-नाशक हैं, मैं आर्त्त हूं; और (३) आप ब्रह्मण्यदेव हैं, मैं ब्राह्मण हूं॥" यह सुन श्री भगवान् बोले कि "आपने बात तो ठीक कही, परन्तु मैं भक्तों के आधीन अस्वतन्त्र हूं; जो मेरे उक्त तीन गुण आपने कहे, उनका मान मुझको नहीं है, क्योंकि 'भक्तवात्सल्यगुण' ने इस देश काल में उन तीनों गुणों का तिरस्कार कर दिया है"॥

टीका। कवित्त।

"मोको अति प्यारे साधु, उनकी अगाध मति; कस्यो अपराध तुम, सह्यो कैसे जात है। धाम, धन, वाम, सुत, प्राण, तनु, त्याग करैं, ढरैं मेरी ओर, निशि भोर मोसो बात है॥ मेरेऊ न सन्त बिनु और कछु; सांची कहौं, जाओ वाही ठौर, जाते मिटै उतपात है। बड़ेई दयाल, सदा दीन प्रतिपाल करैं; न्यूनता न धरैं कहूं; भक्ति गात गात है"॥ ४१॥

वार्त्तिक तिलक।

"मुझे साधु अत्यन्तप्यारे हैं,काहे कि उनका अगाध-मत है। सो जब तुमने उन्हीं का अपराधकिया तो मुझसे कैसे सहा जासकता है? वे मेरे लिये, गृह, धन, तन, अन्न, जन, वरंच स्त्री, पुत्र तथा प्राण तक, परित्याग

करके मेरी ओर, लगते हैं। और रात्रि दिवस मेरा भजन छोड़ उनके दूसरी बात ही नहीं ॥

एवं, मेरे भी सन्तों के लालन पालन सार सँभार बिना और कोई कार्य्य कुछ भी नहीं है, मैं सच्ची २ कहे देता हूं। (चौ०) असरसज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥ आप उन्ही के पास जाइये, जिस्से यह चक्रकृत दुःख उत्पात मिट जावे। यह शंका न कीजिये कि वे मुझे कैसे क्षमा करेंगे, क्योंकि मेरे सन्त भक्त बड़ेही क्षमाशील, अकारण पर-उपकारी एवं दयालु होते हैं तथा दीनों का सदा प्रतिपाल करते हैं। दूसरे का चूक अपने हिय में नहीं रखते; क्योंकि उनके तो सम्पूर्ण अङ्गों में मेरी भक्ति ही भरी है, किसी की न्यूनता रखने के लिये कुछ भी जगह ही उनके चित्त में बची नहीं है ॥

(चौ०) सुनु, मुनि! सन्तन के गुण जेते।
कहि न सकहिं श्रुति शारद तेते ॥"

टीका। कबित्त।

ह्वैकरि निरास, ऋषि आयो नृप पास, चल्यो गर्व सों उदास, पग गहे, दीन भाष्यो है। राजा लाज मानि, मृदु कहि, सनमान कर्यो ढर्यो, चक्र ओर, कर जोर, अभिलाष्यो है ॥ भक्त निसकाम, कभूं कामना न चाहत हैं, चाहत है विप्र, दूरि करो दुख, चाख्यो है ॥ देखिके विकलताई, सदा सन्त सुखदाई, आई मन मांझ, सब तेज ढांकि राख्यो है ॥ ४२ ॥

वार्त्तिक तिलक।

प्रभु के ऐसे वचन सुन के, ऋषिजी निरास, तथा अपने गर्व (अभिमान) से उदासीन होके चले, और राजा अम्बरीष जी के पास आके चरणों को पकड़कर ऋषि ने दीन वचनों से क्षमा मांगी। महाराज लज्जित हो, सादर पग छुड़ा, कोमल वचनों से मुनिजी का सनमान करके, श्री चक्र जी की ओर जा हाथ जोड़, यों प्रार्थना करने लगे, कि "हे क्षमामन्दिर श्रीसुदर्शन जी! यद्यपि हरि भक्तों को कोई कामना नहीं होती, वे सदा निष्काम रहते हैं, तथापि मेरी यह कामना है कि, इन विप्रजी ने बहुत दुःख पाया सो अब, आप मुझ पर कृपा करके इनकी रक्षा कीजिये" सन्तों के सुखदाता श्री सुदर्शन चक्र जी ने द्विज के दुख से श्रीभगवतभक्त को विकल देख, प्रसन्न हो, प्रार्थना मान, अपने तेज को छिपा लिया, और भाग्यभाजन राजा ने दुर्वासा जी को अभयदान दे भोजन करा, बिदा किया॥ (चौ०) "श्रापत ताड़त परुष कहन्ता। पूजिय विप्र कहहिं अस सन्ता॥ (दो०) मन क्रम बचन, कपट तजि, जो कर भूसुर-सेव। विष्णु समेत विरंचि शिव, बश ताके सब देव॥"

टीका। कवित्त।

एक नृपसुता सुनि अम्बरीष भक्तिभाव, भयो हिय भाव ऐसो बर कर लीजियै। पितासों निशंक ह्वैके

कही "पति कियो मैं ही, विनय मानि मेरी, बेगि चीठी लिखिदीजियै ॥" पाती लेके चल्यो विप्र, छिप्र वही पुरी गयो, नयो चाव जान्यो ऐपै कैसे तिया धीजियै। कहो तुम जाय, "रानी बैठीं सत आय, मोको बोल्यो न सुहाय, प्रभुसेवा मांझ भीजियै ॥४३॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीअम्बरीष जी की एक आख्यायिका कहकर अब राजसुता सम्बन्धी भक्ति उनकी वर्णन करते हैं। एक राज कन्या को श्रीअम्बरीष जी की भक्ति और प्रेम भाव सुनके बड़ा आनन्द हुआ, उसके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि "ऐसा पति कर लेना चाहिये; जो भाग्यशालिनी ऐसे भक्तराज की दासी हो वह धन्य है" यों विचार कर, निशंक हो, उसने अपने पितासे कहा कि मैंने श्री ६ अम्बरीष जी को पति मान लिया, "बरौंताहि न तु रहौं कुमारी"; "आप मेरा विनय मान के राजा को एक पत्रिका लिख दीजिए"। कन्या के पिताने पत्र लिखके एक ब्राह्मण के हाथ दिया। ब्राह्मण ने, वह पत्र ले, बड़ी शीघ्रता से उस पुरी में जा, महाराज (श्रीअम्बरीषजी) को दिया। महाराज ने पत्र पढ़ के कहा कि "उसका नवीन अभिलाष मैंने भली भांति जाना, परन्तु मैं स्त्री को कैसे ग्रहण करूं? क्योंकि मेरे तो सैकड़ों रानियां घर में बैठी हैं और मुझको उनसे बात तक करनी नहीं भाती।

(चौ०) उमा! राम सुभाव जिन जाना।
तिनहिं भजन तजि, भाव न श्राना॥
मेरा मन तो केवल भगवत सेवा ही में रँग गया है।
यह बात श्राप जाके राजकन्या से कह दीजिये"॥

टीका। कवित्त।

कह्यो नृपसुतासो जु कीजिये यतन कौन? पौन जिमि गयो श्रायो काम नाही बिया कौ। फेरिकै पठायो, सुख पायो मैं तो जान्यों वह बड़े धर्मज्ञ, वाके लोभ नाहीं तिया कौ। बोली श्रकुलाइ मन भक्ति ही रिझाइ लियो, कियो पति, मुख नहीं देखौं श्रौर पिया कौ। जाइके निशंक यह बात तुम मेरी कहौ, "चेरी जो न करौ तौ पै लेवो पाप जिया कौ" ॥४४॥

वार्त्तिक तिलक।

ब्राह्मण ने श्राके राजकन्या से सब वार्त्ता सुना के कहा कि "क्या यत्न किया जाय? मैं पवन के समान बेग से गया श्रौर श्राया पर कार्य्य कुछ भी (गुंजा के बीया भर भी) न हुश्रा! राजकन्या ने कहा कि "उनके तीव्रतर वैराग्य की श्रनुपम व्याख्या सुनके मुझको बड़ाही आनन्द हुश्रा; मैं जानती हूं कि वे बड़ेही धर्मज्ञ हैं तथा उनके शुद्ध श्रन्तःकरण में भक्ति लता ऐसी सघन फैली है कि स्त्री श्रादिक की चाह के श्रङ्कुर की जगह रही नहीं है"। इतना कहने के साथही साथ भक्तराज के स्नेह से व्याकुल होके वह सुशीला

फिर बोलउठी कि "उनकी भगवद्भक्ति ही ने मेरे अंतःकरण को आकर्षण करके मुझे ऐसा रिझा लिया है कि मैं उनको अपना पति मान चुकी हूं। और अब दूसरे पुरुष का मुँह मैं देखनेवाली नहीं। आप फिर जाके निःशंक कहिये कि 'जो आप अपने चरण की चेरी न कीजियेगा तो मेरे देह त्याग का पाप लीजिये' मैं उनके बिन अपने प्राण नहीं रखने की ॥

(दो०) कै अपनावहिं मोहि वे, कै मैं त्यागौं देह।
भक्त शिरोमणि नृपति ते, कहेहु विप्रवर! नेह" ॥

टीका। कवित्त।

कही विप्र जाय, सुनि चाय भहराय गयो, दयो लै खड़्ग "यासों फेरी फेरि लीजियै"। भयो जू विबाह उत्साह कहूं मात नाहिं; आई पुर अम्बरीष देखि छबि भीजिये॥ कह्यो "नव मन्दिर में झारिकै बसेरो देवो, देवो सब भोग विभौ, नाना सुख कीजियै। पूरब जनम कोऊ मेरे भक्ति गन्ध हुती, याते सनबन्ध पायो यहै मानि धीजिये" ॥४५॥

वार्त्तिक तिलक।

ब्राह्मण ने फिर जा के श्रीअम्बरीष जी से राजकन्या की प्रीति प्रतीति प्रणय पातिव्रत्य का पन और प्राण त्याग का संकल्प पर्यन्त कहा। राजा ने, ऐसा सप्रेम चाव सुन, धर्म संकष्ट से अधीर हो, अपना खड्ग दिया, कि "इसी से भांवरी फिरा लीजियेगा"

[राजा ने खड्ग इस कारण से दिया कि क्षत्रियों का शस्त्र शास्त्र में उनका अंग ही माना गया है] ॥

इस प्रकार से बिवाह होजाने पर राजकन्या का आनन्द तन मन में अँटता नहीं था। बड़ेही उत्साह से मन्त्री वर्गों के साथ पुर में आईं। राजसुता तथा श्रीअम्बरीषजी दोनों श्री युगल सरकार के भक्तिरस माधुरी से छके हुए अन्योन्य छवि देख के श्रीप्रभु प्रेम में मग्न हो गए। महाराज ने आज्ञा दी कि "नए मन्दिर को झाड़ वहार, स्वच्छ कर, रानी को निवास देके, सब भोग सामग्री दिया जावे, कि वे नाना प्रकार के सुख भोगें। जाना जाता है कि पूर्व जन्म की मेरी इनकी कोई भक्ति सम्बन्धी विमल वासना थी; इसी हेतु से मेरा इनका सम्वन्ध हुआ; और ऐसाही अनुमान कर के इनका स्वीकार किया गया" ॥

टीका। कवित्त।

रजनी के सेस पतिभौन में प्रवेस कियो, लियो प्रेम साथ, ढिग मन्दिर के आइये। बाहिरी टहल पात्र चौका करि रीझि रही, गही कौन जाय, जामें होत ना लखाइये ॥ आवतही राजा देखि लगै न निमेष क्यों हूं कौन चोर आयो मेरी सेवा लै चुराइयै। देखी दिन तीनि, फेरि चीन्हि कै प्रवीन कही, "ऐसो मन जोपै प्रभु माथे पधराइयै" ॥ ४६ ॥

वार्त्तिक तिलक।

भक्तिवती रानी अपने निवास में रहने लगी। एक दिन कुछ रात रहते हुए अकेली केवल अपने प्रिय प्रेम ही को संग लेके पति के पूजामहल में प्रवेश करके भगवतमन्दिर के समीप आके बाहर की सेवा टहल किये अर्थात पूजा के पार्षद मांजके चौका लगाके, उस सेवा सुख के अनुभव से अति प्रसन्नता पुर्वक चली आई, जिस्में किसी को लखाई न पड़े। तो अब इस्में सेवा करनेवाली कौन रानी कही जावे ? तदनन्तर श्रीभक्तराजा जी ने, आके देखा कि वाह्य कैंकर्य्य (पार्षद चौका) कोई कर गया है। इस्से उनको ऐसी चंचलता हुई कि उनके मन रूपी नेत्र में स्थिरता का निमेष भी नहीं लगता था। विचारने लगे कि यह कौन चतुर चोर आके मेरी सेवा सम्पति चुरा ले गया ?

इस प्रकार तीन दिन पर्य्यन्त देखा; चौथे दिन उसी समय परम प्रवीण राजा छिप के बैठे, और देख के भक्तिवती रानी को पहिचान के कहा कि "जो तुम्हारे मन में ऐसीही सेवा की उत्कंठा और भक्ति है तो अपने मनभावन को अपने निज भवन में ही क्यों नहीं पधरा लेती हो ? जिस्में तुम्हारेही सीस पर सेवा सुख भार रहे" ॥

(लोक०) "पुस्तक, माला, असनो, बसनो।
ठाकुर बटुआ, अपनो अपनो ॥"

टीका। कवित्त।

लई बात मानि, मानो मन्त्र लै सुनायो कान; होत हीं बिहान, सेवा नीकी पधराई है। करति सिँगार, फिरि आपुही निहारि रहै, लहै नहीं पार, दृग झरी सी लगाई है॥ भई बढ़वार, राग भोग सों अपार भाव, भक्ति बिस्तार रीति पुरी सब छाई है। नृपहू सुनत अब लागि चोप देखिबे की; आए ततकाल मति अति अकुलाई है॥ ४७॥

वार्त्तिक तिलक।

श्री भक्तराज के स्वच्छ अंतःकरण से प्रीति युक्त निकले हुए ऐसे अनुपम वचन सुनतेही प्रेम मूर्त्ति रानी ने महामुदित मन में इस प्रकार मान लिया कि मानो गुरु मन्त्र ही कान में सुना दिया गया है। प्रातःकाल होते ही उनने भगवत के दिव्य अर्चा विग्रह नीके प्रकार से उत्सव पूर्व्वक विराजमान किया। (चौ०) जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू॥ फिर अब क्या कहना है, अपने हाथों से सप्रेम शृङ्गार करके पुनि उस छवि को आपही अवलोकन करती हुई चन्द्रचकोरवत एक टक रहजाती, शोभासिन्धु श्रीप्रभु की शोभा का पार नहीं पाती थी; उसके नेत्रों से प्रेमानन्द जल की झड़ी सी लग जाती थी। सेवा राग भोग से अपार भाव हुआ। इस भक्तिरसिका रानी की प्रीति प्रतीति रीति भक्ति की ऐसी अभि-

वृद्धि हुई कि संपूर्ण नगर में सुकीर्त्ति छा गई ॥

यहां तक कि राजा ने भी सुना; तब उनको भी प्रेमवती के प्रेमवर्द्धकप्रभु के दर्शन की अतिशय चाह उत्पन्न हुई; वरंच दर्शन बिना व्याकुल होके ततकाल चलही तो दिया ॥

टीका। कवित्त।

हरे हरे पांव धरै, पौरियानि मने करै, खरे अरबरै, कब देखौं भागभरी को। गए चलि मन्दिर लौ, सुन्दरी न सुधि अङ्ग, रङ्ग भीजि रही, दृग लाइ रहे झरी को॥ बीन लै बजावै, गावै, लालन रिझावै, त्यों त्यों अति मन भावै, कहैं धन्य यह घरी को। द्वार पै रह्यो न जाय, गए ढिग ललचाय, भई उठि ठाढ़ि, देखि राजा गुरु हरी को ॥ ४८ ॥

वार्त्तिक तिलक।

जब निकट पहुँचे तब धीरे धीरे पांव रखते और पौडियों को अर्थात् वृद्ध द्वाररक्षकों तथा द्वार रक्षिणीयों को रसे रसे निवारण करते, कि रानी को जाके जताओ मत। और अत्यन्त अकुला रहे हैं कि उस भक्ति भाग्य-पूर्णा को मैं कब देखूं। यों ही जब मन्दिर के समीप जा पहुँचे तब देखते क्या हैं कि सानुरागा सुन्दरी अपने शरीर की सुधि भूल के प्रेम रस रंग में मग्न है, और उसके नेत्रों से प्रेमानन्द जल की अविछिन्न बर्षा हो रही है; वीणा बजा के झीने स्वर से प्रभु का नाम-

यश गाके प्राणप्रिय को रिझा रही है। यह दशा ज्यों ज्यों देखते हैं त्यों त्यों श्रीअम्बरीष जी के मन में यह दशा तथा प्रीतिदशावतीरानी अत्यन्तही प्रिय लगती हैं। महाराज मन में कहते हैं कि यह घड़ी धन्य है॥ (रा०क०) "कोउ लै बीन नवीन सुरनते, मनहु बशीकर जापैं। कोउ मृगनयनी कोकिलबयनी, पंचम राग अलापैं॥" (श्लोक) "नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये नच। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि, नारद!"॥

प्रेम सुख की लालच से द्वार पर ठहरा नहीं गया, तब रानी के पासही जा खड़े हुए। "हरि ते अधिक गुरुहि जिय जानी" के आशय ने, प्रेम निमग्न रानी की सुरति को श्री सेवा से खींच के, भक्तराज के सन्मुख कर दिया; रानी ने देखा कि मेरे हरि (पति) हितोपदेशक गुरु, राजा, पासही खड़े हैं॥ इससे उनके आदर के निमित्त उठ खड़ी हुई॥

टीका। कबित्त।

वैसे ही बजाओ बीन ताननि नबीन लैकै, झीन सुर कान परै, जाति मति खोइये। जैसे रंग भीजि रही, कही सो न जाति मोपै, ऐपै मन नैन चैन कैसेकरिगोइये। करिकै अलाप चारो फेरिकै सँभारि तान, आइगयो ध्यान रूप ताहि मांझ भोइये। प्रीति रस रूप भई, राति सब वीति गई, नई कछु रीति अहो! जामें नहिं सोइये॥ ४९॥

वार्त्तिक तिलक ।

तब राजा ने कहा कि "इस सन्मान को इस घड़ी जाने दो; जैसे बीन बजाती रही हौ, वैसेही बजा के नए तान लेके मधुर स्वर से स्वामी के यश गान करो; क्योंकि उस श्रवणामृत के सुने बिना मेरी मति विकल हुआ चाहती है।"

रानी जैसे अनुराग रंग में मग्न हो रही है, सो दशा मुझ से कही नहीं जासकती, परन्तु ध्यान से देखते ही मन तथा मानसिक नेत्रों को ओपती अर्थात् चमाचम प्रेमप्रभामय कर देती है; वह प्रेमानन्द कुछ कहे बिना किसी प्रकार से रहा नहीं जाता।

राजा के बचन सुनतेही रानी ने वीणा लेके फिर सरस स्वर अलाप करके गान तान को सँभाला; कि जिस्के साथही मन में श्यामसुन्दररूप अनूप का ध्यान आ गया और उसी में मग्न हो गई। इस भांति, रानी राजा दोनों को ऐसी भक्ति रस रूपा प्रीति बढ़ी कि जिस्में सारी रात पल सरीखी व्यतीत हो गई। आश्चर्य्य मय प्रीति की अलौकिक रीति की अनूठी घटनाएं ऐसीही विलक्षण हैं, कि जिस्में नींद आलस भूख इत्यादि बाधावों का तो कहनाही क्या है, जागरित स्वप्न सुषुप्त अवस्था पर्य्यन्त भी अपना २ निरादर देखकर अन्तःकरण और वाह्य इन्द्रियों से अपना शासन आप ही उठा लेती हैं॥

टीका। कवित्त।

बात सुनी रानी और, राजा गए नई ठौर, भई सिर मोरे, अब कौन वाकी सर है। हमहूं लै सेवा करैं, पति मति बश करैं, धरैं नित्य ध्यान, विषय बुद्धि राखी धर है॥ सुनिकै प्रसन्न भए अति अम्बरीष ईस लागी चोफ़, फैल गई भक्ति घर घर है। बढ़ै दिन दिन चाव, ऐसोई प्रभाव कोई, पलटै सुभाव होत आनँद को भर है॥ ५०॥

वार्त्तिक तिलक।

यह वृतान्त और सब रानियों ने सुना, कि नई रानी के समीप में जाके प्रभु का नाम गुण गान सुन्ते २ राजा ने आज रात्रिभर बिता दिया; अतएव वह तो अब सबकी शिरोमणि हो गई, अब उसकी समानता हम सब कैसे कर सकती हैं। तब सबों ने यह विचारा कि महाराज यदि श्रीभगवत सेवा भक्ति ही से प्रसन्न होते हैं तो हम सब भी क्यों न भगवत सेवा करके प्राणपति को अपने बश करलें।

सब रानियों ने ऐसाही किया; विषयात्मक बुद्धि को अलग रखके केवल भगवत सेवा पूजा गुणगान और रूप अनूप के ध्यान में ही दिन रात बिताने लगीं। उन सबों की भक्ति को भी उनके स्वामी श्री अम्बरीष जी सुनके बड़ेही प्रसन्न हुए। और उन

सब रानियों के हरि मन्दिरों में भी जा जाके उनको वैसाही आनन्द देने लगे ॥

महाराज की यह रीति समस्त पुरवासियों ने सुनी; तब तो नगर भर के लोगों को भगवद्भक्ति में अतिशय भाव चाव उत्पन्न हुआ और घर घर में भक्ति कल्पलता फैल फूल के फल युक्त हुई। इस प्रकार महाराज श्रीअम्बरीष जी के घर नगर तथा देश में दिन दिन प्रति प्रेमभाव भक्ति की वृद्धि और उन्नति हुई। देखिये, परमप्रेमवती एक रानी की भक्ति के प्रभाव सेही, सब रानियों वरंच सम्पूर्ण नगर वासियों का स्वभाव संसार से पलट के प्रभु में लग गया। और सर्वत्र भगवत प्रेमानन्द छा गया॥ सत्संग ऐसा पदार्थ है।

श्रीविदुरानीजी और श्रीविदुरजी।

टीका। कवित्त।

न्हात ही विदुर नारि, अंगन पखारि करि; आइ गए द्वार कृष्ण बोलि कै सुनायो है। सुनतही स्वर, सुधि डारी लै निदरि, मानो राख्यो मद भरि, दौरि आनिकै चितायो है॥ डारि दियो पीत पट, कटि लपटाइ लियो, हियो सकुचायो, वेष बेगिही बनायो है। बैठी ढिग आइ, केरा छीलि छिलका खवाइ; आयो पति, खीभयो, दुःख कोटि गुनो पायो है॥ ५१॥

वार्त्तिक तिलक।

महाभारत होने के पूर्व श्रीकृष्ण भगवान् पाण्डवों

की ओर से मिलाप की वार्ता करने को दुर्योधन के पास गए; पर उसने नहीं माना; इससे उसके घर भोजन भी नहीं किया।

श्रीविदुर जी के गृह आए, उस समय श्रीविदुर जी की स्त्री, दूसरे वस्त्र के अभाव से विवस्त्र हो अंगो को धो २ स्नान कर रही थीं। द्वार पर आके श्रीकृष्ण भगवान् ने महा मधुर स्वर से पुकारा; श्री विदुरानी जी आपका वह मधुर स्वर सुनतेही सुध बुध भूल गईं, क्योंकि वह स्वर मानो प्रेम से भरा हुआ था; दौड़ती हुई आके किवाड़ों को खोल के दरशन किया। श्रीयादवेन्द्र जी भी उनको प्रेमोन्मत्त वस्त्रहीन देख के अपना पीताम्बर शीघ्रही आप को उढ़ा दिया; जिसको आपने अपनी कटि में लपेट लिया और संकोच युक्त हो, शीघ्रता से अपने वेष को सँभाल लिया॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने कुछ भोजन मांगा। आप केले ला, पास बैठ, केले को छीलने लगीं, पर प्रेम तथा हर्ष से विह्वल होके, छिलकों ही को तो खिलाती जाती थीं और सार को फेंक २ देती थीं।

भक्तवत्सल भगवान् प्रेम के स्वाद में छके छिलकों ही को बड़े चाव से खाते जाते थे; इतने में श्रीविदुर जी आके इस कौतुक को देख अपनी धर्मपत्नी पर

बहुत झिँझलाए; तब सचेत हो अपने व्यतिक्रम को समझ के श्रीविदुरानी जी ने अत्यन्त दुख पाया ॥

(दो०) अहह! भइउँ मैं बावरी! रही न तनु सुधिनेकु। ऐसी सुधि भूली, कि नहिं छिलका सार विवेकु ॥

टीका । कवित्त ।

प्रेम को विचार आपु लागे फल सार दैन, चैन पायो हियो, नारि बड़ी दुखदाई है। बोले रीझि श्याम, तुम कीनो बड़ो काम, ऐपै स्वाद अभिराम वैसी वस्तु में नपाई है ॥ तिया सकुचाय, कर काटि डारौं हाय प्राणप्यारे को खवाई छीलि छीलिका न भाई है। हित ही की बातें दोऊ, पार पावै नाहिं, कोउ, नीके के लड़ावै, सोई जानै, यह गाई है ॥ ५१ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

प्रिय पाठक! प्रेम के प्रवल प्रभाव को विचार कीजे। अथवा, विदुरजी अपनी धर्मपतनी के प्रेम प्रमाद को विचार के, प्रभु को फल का सारांश खिलाने लगे, तब उनके हृदय में आनंद आया; और मन में वे यह कहने लगे कि इसने प्रेम से विक्षिप्त होके यह दुःखप्रद कार्य्य किया।

श्याम सुन्दर जी ने प्रसन्न होके कहा कि "आपने काम तो बहुत अच्छा किया कि केलों का सारांश खिलाया; परंतु न जानूं क्या कारण है कि जैसा उन

छिलकाओं में अत्यन्त सुन्दर स्वाद मुझे मिलता था वैसा इस सारांश में नहीं प्राप्त हुआ।

(श्लो०) पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
अभी, अभी, दुर्योधन के घर अनेक षटरस व्यंजनादि का त्याग किये हुए चला आता हूं॥

उधर श्रीविदुरानी जी अतिशय संकोच को पाके पश्चात्ताप करने लगीं कि, "हाय! मैं तो इन हाथों को काट डालूं, जिन हाथों से प्राणप्रिय को छिलके खिलाए। लालन को छिलके कैसे प्रिय लगे होंगे?।"

देखिये! श्री विदुरानी जी तथा श्री विदुरजी का छिलका और सार खिलाना, ये दोनों ही बातें प्रेम की ही हैं; तथापि प्रेमरूपी सागर ऐसा अपार है कि कोई उसका पार नहीं पासकता; हां, जो इस प्रेम में परायण होके प्रेमग्राहकप्रभु को लाड़ लड़ावै, प्रेम करे, सोई इस अनुराग सिन्धु की गम्भीरता तथा अपारता को कुछ जाने; अपने तो, आप सब की कृपा से, केवल गान मात्र कर दिया है॥

श्री सुदामाजी।

टीका। कवित।

बड़ो निसकाम, सेर चून हू न धाम, ढिग आई

निज भाम, प्रीति हरि सों जनाई है। सुनि सोच पर्यो हियो खरो अरबर्यो, मन गाढ़ो लैके कर्यो, बोल्यो " हांजू सरसाई है " ॥ " जावो एक बार, वह बदन निहार आवो, जोपै कछु पावो, ल्यावो, मोको सुखदाई है "। " कही भलीबात, सात लोक में कलंक है है, जानियत याही लियें कीन्ही मित्रताई है " ॥५३॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीकृष्णभगवान् के मित्र श्रीसुदामा जी बड़े निष्काम भक्त थे; यहां तक कि घर में सेरभर आटा भी न रहता था। एकदिन उनकी धर्मपत्नी श्री "सुशीला" देवी, समीप में आके, कहने लगीं कि " सुना है कि श्रीलक्ष्मीपति द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र जी से और आपसे मित्रता है।" यह सुन, श्रीसुदामा जी उसका आशय विचार के, हृदय में अत्यन्त घबड़ाकर सोच में पड़ गए; परन्तु फिर मन को दृढ़ करके बोले कि " हां, उनकी मेरी तो बड़ी सरस प्रीति है। "

इसपर ब्राह्मणी (उनकी स्त्री) ने कहा कि " एक बेर जाके अपने मित्रवर का मुखचन्द्र अवलोकन कर आइये; और यदि कुछ मिले तो लाइये कि वह मुझे बड़ा सुखदाई होगा। "

भक्तजीने उत्तर दिया कि " तुमने बात तो भली कही, परन्तु मुझको समस्त लोकों में कलंक होगा कि

इस अर्थार्थी भिक्षुक ब्राह्मण ने केवल द्रव्य ही की लालच से प्रभु से मित्रता की है॥

(दो०) चाहत नहिँ रसरंगमणि चन्द्रमुखी, सुत, वित्त।
चाह यही प्रभु! दीजिये 'चाह न उपजै चित्त' ॥१॥
भजन बिगारी कामिनी, सभा बिगाड़ी कूर।
भक्ति बिगाड़ी 'लालची' केसर मिलगइ धूर ॥२॥

एवमादि, इनने बहुत "नहीं, नहीं" किया; परन्तु—

टीका। कवित्त।

तिया सुनि कहै "कृष्णरूप क्यौँ न चहै? जाय, दहै दुख आपही सो," बचन सुनाए हैं। आई सुधि प्यारे की, विचारे, मति टारे सब, धारे पग, मग भूमि "द्वारावती" आए हैं॥ देखिकै विभूति, सुख उपज्यो अभूत कोऊ, चल्यो मुखमाधुरी के लोचन तिसाए हैं। डरपत हियो, ड्योढ़ी लाँघि, मन गाढ़ो कियो, लियोकर गहि चाह तहां पहुँचाए हैं ॥५४॥

वार्तिक तिलक।

इनका उत्तर सुन, इनकी स्त्री ने कहा कि "जाके केवल अपने प्रिय मित्र के रूप अनूप का दर्शन मात्र क्यों नहीं करते?" और ऐसा प्रमाण बचन भी सुनाया कि "भगवत के दर्शनही से दारिद्र्यादि सब दुःख आपही आप भस्म हो जाते हैं।"

श्रीसुदामा जी को प्राणप्यारे मित्र के रूप का ध्यान आगया; तब विचार करके लोभादिकों के उपहास की

शङ्का को चित से हटाके, श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन को सानुराग चले; प्रेममद में छके झूम झूम पग धरते, मिलन सुख का मंजुमनोरथ करते हुए श्रीहरि कृपा से अति शीघ्र श्रीद्वारका जी में आ पहुँचे। परम प्रिय प्रभु का ऐश्वर्य्य विभूति देख के मन में कोई आश्चर्य्य सुख उत्पन्न हुआ, और आगे बढ़े ॥

मित्र मुखचन्द्र सुधा पान के हेतु नेत्र चकोर अतिशय प्यासे हैं; इससे आप अत्यन्त आतुर हो रहे हैं; हृदय में किसी के रोक देने का भय भी हो रहा है; परन्तु मन को दृढ़ करके, राजसदन पर आ विप्र जी ने डेवढ़ीयों को उल्लंघन किया, मानो मिलनकीचाह रूपा प्रतिहारी ने इनका हाथ गहके (थांभके) इनको श्रीकृष्ण महाराज के पास पहुँचा दिया ॥

"जाकी सुरति लगी है जहां। कहै कबीर सो पहुँचै तहां॥"

टीका कवित्त ।

देख्यो श्याम आयो मित्र, चित्रवत रहे नेकु; हित को चरित्र, दौरि रोइ गरे लागे हैं। मानो एकतन भयो, लयो ऐसे लाइ छाती, नयो यह प्रेम, छूटैं नाहिँ अंग पागे हैं॥ आई दुबराई सुधि, मिलन छुटाई ताने; आने जल रानी, पग धोए भाग जागे हैं। सेज पधराइ, गुरु चरचा चलाइ, सुखसागर बुड़ाइ, आपु अति अनुरागे हैं ॥ ५५ ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीश्यामसुन्दर जी ने देखा कि मेरे मित्र आए, तब प्रेमानन्द की विचित्रता से कुछ काल तो अपनपौ भूलके चित्रवत जहां के तहां रह गए; फिर दौड़के अति विह्वल होके मित्र के, चरित्र में पगे, नेत्रों में आंसू भर, सखा (सुदामाजी) को अपने कण्ठ में लपटा, और इस प्रकार से अपने हृदय में लगालिया, कि मानो श्याम-सुदामा एकही मूर्त्ति हो गए; एवं, इस लोकोत्तर प्रेम के वश हो के परस्पर अंग ऐसे पग गए कि छुड़ाए से दोनें छूटते नहीं। फिर श्रीश्यामसुन्दर जी को यह सुधि आगई कि " मेरे मित्र अति दुर्ब्बल हैं, सो कहीं इनको क्लेश न हो "; तब आप ने छोड़दिया।

हाथ में हाथ मिलाए हुए रंग महल में लाए; श्रीरुक्मिणी जी जल और थार लाईं, आप ने अपने कर कमलों से उनके चरण कमल धोए; और कहा कि आज मेरे धन्य भाग्य हैं।

(सवैया)

" ऐसे बेहालबेवायन सों भए कंटक जाल गुंधे पग जोए। हाय सखा! दुख पाए महा, तुम आए इतै न कितै दिन खोए॥ देखि सुदामा की दीन दशा करुणाकरिकै करुणामय रोए। पानी परात को हाथ छुए नहिं, नैननकेजलसों पगधोए॥" (श्रीनरोत्तमकवि)

लेजा के निज दिव्य सेज पर विराजमान करके, कुशल पूछ, श्रीगुरु गृह में जो इकट्ठे पढ़ते थे सो उन दिनों के चरित्रों की चरचा चलाके, आनन्द के सागर में इनको मग्न करदिया; और आप भी इनके अनुराग में मग्न होगए॥

टीका। कवित्त।

चिरवा छिपाए कांख, पूछे कहालयाए मोको? अति सकुचाए, भूमि तकैं, दृग भींजे हैं। खैंचि लई गांठि, मूठि एक मुख मांझ दई, दूसरी हूं लेत स्वाद पाइ आपु रीझे हैं॥ गह्यो कर रानी, "सुखसानी प्यारी बस्तु यह, पावो बांटि" मानों श्रीसुदामा प्रेम धीजे हैं॥ श्याम जू विचारि दीनी सम्पति अपार, बिदा भए, पै न जानी सार बिछुरनि छीजे हैं॥ ५६॥

वार्त्तिक तिलक।

आपने पूछा कि "सखे! मेरे लिये क्या लाए हो?" यह सुन श्रीसुदामा जी सकोच के बश होके पृथ्वी की ओर देखने लगे और इनकी आंखो में आंसू भर आए।

श्रीश्यामसुन्दर जी ने देखा कि फटे कपड़े में एक छोटी सी गठरी बांधे हुए ये कांख में दबाए छुपाए हुए हैं; देखतेही उस्को खींच के खोल देखा कि उस्में चिउड़े हैं। आप उस्में से एक मुट्ठी लेके शीघ्रता से श्रीमुख में डाल के चबाने, पुनः दूसरी मुट्ठी भी भर के पाने लगे, और मित्र की लाई वस्तु जान के

उसमें अपूर्व स्वाद पा अत्यन्त रीझ के आपने तीसरी मुट्ठी भी भर ली; मानों उस चिउड़े को श्रीसुदामा जी के प्रेम का रूपही मानके ग्रहण करते हैं। श्री रुक्मिणी जी महारानी ने आपका करकंज पकड़के कहा कि "यह वस्तु प्रेमसुख से सनी हुई आप अकेलेही सब न पालीजिये, किन्तु हमसबों का भागभी बांट दीजिये"। तब आपने मुट्ठी छोड़दी और उसको श्रीमती रुक्मिणी जी को देदिया।

सत्यसंकल्प श्रीकृष्णभगवान् ने उस चिउड़े को ग्रहण करके, विचार के, अपने मन ही से इनको अपार सम्पति देदी, प्रत्यक्ष में कुछ न दिया; परन्तु इन ने इस भेद को न जाना।

श्रीसुदामा जी प्रिय मित्र का परम सत्कार पाते हुए (बहुत आग्रह करने से) सात दिन रहकर, विदा हुए। श्रीमित्रवर के वियोग से अतिशय दुःख पाते अपने गृह को लौट चले॥ (चौ०) मिलत एक दारुण दुखदेहीं। बिछुरत एक प्राण हरिलेहीं॥

टीका कवित्त।

आए निज ग्राम वह, अति अभिराम भयो, नयो पुर द्वारका सो, देखि मति गई है। तिया रंग भीनी संग सतनि सहेली लीनी, कीनी मनुहारि यों प्रतीति उर भई है॥ वहै हरि ध्यान रूप माधुरी को पान, तासों राखैं निज प्रान, जाके प्रीति रीति नई है।

भोग की न चाह ऐसे तनु निरबाह करैं, ढरैं सोई चाल सुखजाल रसमयी है ॥५७॥

वार्त्तिक तिलक ।

जब अपने गांव (सुदामापुर) में आ पहुँचे तो देखते क्या हैं कि वह ग्राम अतिशय रमणीय होगया है यहां तक कि सब नवीन रचनायुक्त मानों साक्षात् द्वारका ही है। ऐसा देखते ही श्रीसुदामा जी की मति तो भ्रम में डूब गई।

परन्तु इनकी धर्मपत्नी जी अपनी अटारी पर से इनको देखके परम अनुराग में भरी हुईं आरती कलश चँवर आदिक सामग्रीयों सहित प्रभु की दी हुई सैकड़ों सहचरीयों के साथ साथ, सामने आके, आरती कर, प्रभु की कृपा से इन सब विभवों की प्राप्ति परम प्रिय वचनों से समझा के, विश्वास कराके अपने कंचन भवन में लेगईं॥

यद्यपि श्रीसुदामा जी ने सब प्रकार के विभव भोग पाए तथापि उस्में आशक्त न हुए। श्यामसुन्दर सखावर जी के उसी रूप अनूप का ध्यान और सुधामाधुरी का पान मन से करते, नवीन प्रीति रीति में पगे हुए, अपने प्राणों को रखते थे; इसी प्रकार से अपने शरीर का निरबाह करते, विषय भोगों से विरक्त रहके भक्ति प्रेमानन्दमयी रस भरी चाल से जीवनावधि पर्य्यन्त चलते रहे। (चौ०) अमित बोध अनीह, मितभोगी। सत्यसार, कवि, कोविद, योगी॥

(दो०) गुणागार संसार दुख रहित विगत सन्देह।
तजि प्रभु चरण सरोज प्रिय तिनके देह न गेह॥

(श्लो०) युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

वैराग्य की जय! अनुराग की जय!!

प्रिय पाठक! कहां श्रीसुदामा जी का विमल चरित्र, और कहां इस दीन की असमर्थ लेखनी॥

श्रीचन्द्रहास जी।

टीका। कवित्त।

हुतो नृप एक, ताके सुत "चन्द्रहास" भयो; परी यों त्रिपति, धाई ल्याई और पुर है। राजा कौ दीवान, ताके रही घर आन, बाल आपने समान संग खेलै रसढुर है॥ भयो ब्रह्मभोज, कोई ऐसोई संयोग बन्यो, आए वै कुमार, जहां विप्रन को सुर है। बोलि उठे सबै "तेरी सुता कौ जु पति यहै, हुवो चाहै जानी;" सुनि गयोलाजघुर है॥५८॥

वार्त्तिक तिलक।

केरलदेशका एक मेधावी नाम राजा था, उसके पुत्र "चन्द्रहास" हुए। उनके पिताको दूसरे राजा ने युद्धमें मार डाला, तब माता भी सती होगई; इस विपत्ति से एक दासी उनको लेके, कुन्तलपुर के राजा के प्रधानमन्त्री "धृष्टबुद्धि" के घर में रहने, और निज

पुत्र करके इनको पालने लगी। जब चन्द्रहास जी पांच वर्ष के हुए, वह धाई भी मरगई। क्या बात है! जय हरि।

एकदिन इनके भाग्यबश दयासिन्धु श्रीनारदजी कृपाकर आके एकान्त में मिले, और एक श्रीशालग्राम जी की छोटीसी मूर्त्ति देके समझागए कि "इनको धोके पीलियाकरो, और दिखाके खायाकरो"; फिर उसमूर्त्ति को मुखमें ही रखने की युक्ति भी बताके श्रीभगवन्नामका उपदेश कर गए। ये वैसा ही करते और समानवयसवाले बालकों के साथ २ भगवतसम्बन्धी (रसद्रुर) खेल खेलाकरते थे॥

एकदिन धृष्टबुद्धिकेघर ब्राह्मणोंका भोजन था। विधिसंयोगवश लड़कोंके साथ २ उन ब्राह्मणोंके मुखियापण्डित केसामने आके उनको श्रीचन्द्रहास जी ने प्रणामकिया। उसीसमय धृष्टबुद्धिने विप्रवरसे पूछा था कि मेरी इस कन्याको पति कैसा मिलेगा?" तब वे श्रीचन्द्रहासजीकीओर अंगुल्यानिर्देशकरके कहउठे कि यही बालक तेरी इस कन्याका पति होगा। हम यह भावी निश्चय जानतेहैं॥"

सुन्तेही, वह प्रधान लज्जा ग्लानि में डूबगया॥

टीका। कवित्त।

पर्‍यौ सोच भारी "कहा करौं? यौं विचारी; "अहो! सुता जो हमारी, ताको पति ऐसो चाहियै? डारौं याहि मार, याकौ यहै है विचार;" तब बोलि

नीचजन, कह्यौ "मारौ, हिय दाहियै" ॥ लैकैगएदूर,
देखि बाल छविपूर, "हम योनि परै धूर, दुख ऐसो
अवगाहियै" ! बोले अकुलाय, "तोहि मारैंगे; सहाय
कौन ?" "मांगौं एक बात 'जब कहौं तब बाहियै'" ॥५९

वार्त्तिक तिलक।

उस्केमनमें बड़ाभारी सोच हुआ कि "अब क्या
करनाचाहिये ?" तब धृष्टबुद्धि ने निज भ्रष्ट बुद्धिसे
ऐसा विचारकिया कि "इसबालक (चन्द्रहास) को
मारडालना चाहिये। बड़े आश्चर्य्य की बात है ! क्या
मेरी बेटीको ऐसा दासीपुत्र दीन पति होना चाहिये ?"
ऐसा अविचार ठीक करके घातक नीचजनों को बुल-
वाके आज्ञा दी कि "इस बालक को देख मेरा हृदय
जलाभुना जाता है, इस्को लेजाव शीघ्र मारडालो॥"

वे घातक लोग इनको बाहरबनमें लेगए; परन्तु
मारने के काल में इनकी अतिशय सुन्दरता देख श्री-
प्रभुप्रेरित दया उनके हृदयमें आगई; वे अपने मनमें कह-
नेलगे कि "धिक ! धिक हमारी जातिकर्मको है, इस पर
क्षारपड़े, कि ऐसे दुःख झेलने पड़ते हैं"; फिर, अकुलाके,
श्रीचन्द्रहासजीसे वे बोले कि "अब हम तुम्हारा बध-
करेंगे, बताओ तुम्हारा सहायक रक्षक कोई है ?"

इनने उत्तरदिया कि "मैं केवल एकही बात चाहता
हूं कि 'जब मैं कहूं तब मुझपर खड्ग का हाथ छोड़ना।'" ॥

टीका कवित्त ।

मानिलीन्हो बोल वे, कपोलमध्य गोल एक "गंड-कीकोसुत", काढ़ि सेवानीकीकोनी है। भयो तदाकार, यों निहार सुख भार भरि, नैननि की कोर ही सों आज्ञा बध दीनी है॥ गिरे मुरझाइ, दया आइ, कछु भाय भरे, ढरे प्रभु ओर, मति आनँद सो भीनी है। हुती छठी आंगुरी, सो काटि लई, दूषन हो, भूषनही भयो, जाइकही सांचु चीनी * है ॥६०॥ (* चीन्ही है)

वार्त्तिक तिलक ।

दुष्टौंने इनकी वार्त्ता मानली । तदनन्तर श्रीचन्द्रहासजी अपने गालमें से श्रीनारदजीकीदी हुई श्रीशालग्रामजीकी मूर्त्तिको निकालके तड़ागके जल एवं वनके पुष्पोंसे उनकी सप्रेम पूजन भलेप्रकारसे कर, अपने करकमल पर विराजमान करके, एकाग्रचित्त हो देखने लगे; तब प्रभुने उसी मूर्त्तिमें ऐसा सच्चिदानन्द सूक्ष्म रूप का दर्शन दिया, कि जिसके भारी प्रेमानन्द में ये मग्न होके देहाभिमानभूलके तन्मय होगए। जय, जय ॥

उसी क्षण अपनी आंखोंकी कोरसे अपने बधकी आज्ञा देदी । जोंही बधिकों ने मारडालने का विचार किया त्योंही प्रभुप्रेरित ऐसी दया बधिकोंके हृदयमें आई कि मूर्छित होके वे सब भूमिपर गिरपड़े । फिर सावधान होके उठे तो उनके मन में भगवतकी भक्ति का भाव भी कुछ आगया। अपने पापोंसे ग्लानि कर,

प्रभुके सन्मुख हो; प्रेमानन्दको प्राप्तहुए। प्रभुकी जय॥

श्रीचन्द्रहासजीके एक पगमें छः उंगलियां थीं, कि जिस्का होना सामुद्रिकमें दूषण बतायाहै। उसी छठी उंगलीको काट, उन्होंने इनको छोड़दिया; मानों वह अधिक अंगुली रूप दूषण (अपलक्षण) निकलगया और अब आप भवभूषणरूप सुलक्षण रहगए॥

जाके, दुष्ट धृष्टबुद्धिको वही अंगुली सहदानी (चिन्हासी) दिखा, कहदिया कि "हमने उस्को मारडाला"। उसने अंगुली पहिचानी, और वह बात सच मानी।

"कौन की त्रास करै? तुलसी, जोपै राखि हैं राम, तो मारिहै को रे?॥"

(चौ०) गरलसुधा, रिपुकरै मिताई। गोपद सिन्धु, अनलशितलाई॥ गरुअसुमेरु रेणुसम ताही। रामकृपाकरि चितवहिँ जाही॥

टीका। कवित्त।

वहै देश भूमि मैं रहत लघु भूप और, और सुख सब, एक सुत चाह भारी है। निकस्यो विपिन, आनि, देखि याहि, मोद मानि, कीन्ही खग छांह, घिरी मृगी पांति सारी है॥ दौरिकै, निशंक लियो, पाइनिधि रंक जियो, कियो मनभायो, सो बधायो, श्री हु वारीहै। कोऊ दिन बीतें, नृप भए चित चीते, दियो राज को तिल, भाव भक्ति विसतारी है॥६१॥

वार्त्तिक तिलक।

उसी कुन्तलपुरके राजाके राजधानी में एक छोटासा राजा रहता था; वह स्त्री धनादि सब प्रकारके सुखें से तो सुखी था, परन्तु उस्के पुत्र न था, सो उस्के पुत्र की अतिशय अभिलाषा थी। भावीबश वह राजा उसी बनके मार्गसे जानिकला; देखता क्या है कि श्रीचन्द्रहास जी बैठेहुएहैं, और श्रीसर्वान्तर्यामी प्रभुका प्रिय जानके, इनके सुन्दर रूपको देखतीहुई, हरनींयों के समूह इनको घेरे हैं, और एक बड़ा पक्षी सीसपर छाया कियेहुएहै कि जिस्की छाया माथेपर होना महाराज्य प्राप्ति का सूचक है "उसे कृपाकरते नहींलगतीवार"।

यह देख, अत्यन्त आनन्दयुक्त हो, इसप्रकारसे दौड़के राजाने अपने गोदमें लेलिया, कि जैसे दरिद्री महा धनको पाके प्राणसमान ग्रहणकरताहै; घरमें लाके, जैसा निजपुत्र होनेसे मनमाना मंगल लोग करतेहैं वैसाही आनन्दबधावा नांचगान करकराके बहुत सा द्रव्य लुटाया, और लालनपालन करनेलगा।

कुछदिन बीतनेपर श्रीचन्द्रहासजीकी योग्यता देख अपने चित्तमें विचारकरके उस राजाने इनको राज्यतिलक करदिया।

(दो०) मसकहि करहि विरंचि प्रभु, अजहि मसक ते हीन। अस विचारि तजि संशय, रामहिं भजहिं प्रवीन॥

राजाहोके श्रीचन्द्रहासजी ने अपने राज्यमें भगवद्-भक्ति और प्रेम भाव का बड़ाही प्रचार किया॥

टीका। कवित्त।

रहै जाके देश सो नरेश कछु पावै नाहीं, बांह बल जोरि दियो सचिव पठाइकै। आयो घर जानि, कियो अति सनमान, सो पिछान लियो वहै बाल मारो छल छाइ कै॥ दई लिखि चिट्ठी, जाओ मेरे सुत हाथ दीजे, कीजे वही बात जाको आयोलै लिखाइकै। गऐ पुर पास बाग, सेवा मति पाग करि, भरी दृग नींद नेकु सोयो सुख-पाइकै॥६२॥

वार्त्तिक तिलक।

चन्दनावती का राजा कलिन्द जिस महा राज (कुन्तल पुर वाले) के राज्य में था, उस महाराज को अब श्री चन्द्रहास जी के यहां से कर नहीं पहुंचने लगा, क्योंकि साधु सेवाही में इनका पैसा लग जाताथा, कौड़ी बचती न थी। इसीसे उसने कुछ सेना समेत अपने मन्त्री धृष्टबुद्धिको कर लेने के लिये चन्द-नावती में भेजा। राजा कलिन्द तथा श्रीचन्द्रहास जी ने (अपने घर में आया हुआ जानकरके) उसका बड़ा आदर सतकार किया॥

धृष्टबुद्धि ने पहिचान लिया कि यह तो वही लड़का है जिसके बधका प्रबन्ध किया था; वह क्रोध से जलभुनकर सोचने लगा कि अब "छल से

इसका बध करो" । कुछ बातें बनाकर चन्द्रहास जी को एक पत्र दे धृष्टबुद्धि ने अपने घर भेजा कि यह पाती मेरे पुत्र मदन के हाथ में दीजिये और कहिये कि जो कुछ इसमें लिखा है सो कृपा करके करवा दीजिये।

पत्रले, उस ग्राम में पहुच, एक सुन्दर वाटिका में, जो उसी मन्त्री धृष्ट बुद्धि का था, ठहरके इनने श्री शालग्राम जी की सेवा बड़े प्रेम से की; और प्रसाद पाके श्रीराम भरोसे निर्द्वन्द्व बिश्राम किया। हरि इच्छा से उनको नींद आगई, सुखसे सो गए ॥

टीका कबित्त।

खेलति सहेलिनिमों, आइ वाहि बाग मांझ करि अनुराग, भईन्यारी, देखि रीझाहै । पाग मधि पाती छबिमाती झुकि खैंचिलई, बांची खोलि, लिख्यो विष दैन, पिता खीझीहै ॥ "विषया" सुनाम अभिराम, दृगअंजनसों बिषयाबनाइ, मनभाइ, रसभीजीहै। आइ मिली आलिन में, लालन को ध्यान हिये, पिये मद मानो, गृह आइ तब धीजीहै ॥ ६३ ॥

वार्त्तिक तिलक।

हरिइच्छासे उसीमन्त्री की लड़की "विषया" नामा अपने उस बाटिका में अपनी सखियों सहित आई; अचानक उसकी दृष्टि चन्द्रहासजी पर पड़ी, और साथ ही अति अनुरक्त और आशक्त हो गई। दूसरी ओर जा, वहां से अपनी सहचारियों से अलग हो, वह

चक्कर लगाके फिर वहीं पहुंची जहां श्रीचन्द्रहास जी सोए थे; "जिनसे अटकत हैं ये नैना। खटकत है उर सो दिन रैना॥" इनको देखही रहीथी कि इतने में एक पत्रिका दिखाईदी जिस्को उस सुन्दरीने निकालके पढ़ा; उस पत्रको अपने भाई मदन के नाम अपने पिता धृष्टबुद्धि का लिखा, पाया; और उस्का आशय यह था कि "इस पत्रिकालेजानेवालेको शीघ्रही विषदेदेना, विलम्ब करने से मैं तुमपर क्रोध करूंगा।"

यह पढ़ उस बालिका को अपने पितापर क्रोध, तथा प्रीतिबश इस प्रिय मूर्त्तिपर दयाआई; श्रीहरिकृपासे उसीक्षण उस्को ऐसी सूझी, कि उसने बड़ीही फुरती के साथ अपनी आंख के काजल से विष शब्द के अनन्तर 'या' अक्षर बना दिया, जिस्से "विष" अब "विषया" होगया। श्री भगवतकृपाका मनन करती हुई, प्रेम रस में पगी, वहां से चटपट चली और अपनी सहचरियों में आमिली॥

जैसे मद से मांती हो इस भांति वह प्रेमाशक्त हो अपने मनोरथ की सफलता के लिये घर आई। और संतुष्ट हो प्यारे के ध्यान में मग्न, परमात्मा से प्रार्थना करने लगी॥ "जगदम्बे! मोर मनोरथ जानसि नीके"

टीका। कवित्त।

उठ्यो चन्द्रहास; जिहि पास लिख्यो लायो, जायो

देखि मन भायो, गाढ़े गरे सों लगायो है । देई कर पाती, बात लिखी मों सुहाती; बोलि विप्र, घरी एक मांझ ब्याह उभरायो है ॥ करी ऐसी रीति, डारे बड़े नृप जोति, श्री देत गई बीति, चाव पार पै न पायो है । आयो पिता नीच; सुनि घूमि आई मीच मानों; बानो लखि दूलह को, शूल सरसायो है ॥ ६४ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीचन्द्रहास जी उठे और ठिकानेपर पहुँचके चिट्ठी दी; मदनसेन बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने इनको अपने गलेसे लगालिया और अपना हर्ष प्रगट किया; बड़ी त्वरासे, ब्राह्मणोंको बुला, लग्न सोधके भगवत कृपा से एकही घड़ीके भीतर अपनी बहिन बिषयाका विवाह चन्द्रहास से करदिया । सारी रात आनन्द और दान पुण्य में व्यतीत हुई; ऐसा उत्सव किया, कि अपने से बड़े २ राजासेभी बढ़के, और तबभी महोत्सवसे अघाता न था । प्रियपाठक ! देखिये—

विष देते विषया भयो; राम "गरीब निवाज"

उसका बाप, नीच धृष्टबुद्धि, आने पर यहां यह रंग, और चन्द्रहास जी को दूलह वेष में, देख, अतिशय शूल पा, अत्यन्त मूर्छित हो गया ॥

"पर दुख लागि असन्त अभागी !"

टीका । कवित्त ।

बैठ्यो लै इकान्त, "सुत! करी कहा भ्रान्त यह?"

कह्यो सो नितान्त, कर पाती लै दिखाई है । बांचि आंच लागी; मैं तो बड़ोई अभागी ! ऐ पै मारो मति पागी बेटी रांड़ हू सुहाई है ॥ बोलि नीच जाती,बात कही " तुम जावो मठ, आवै तहां कोऊ, मारि डारौं मोहि भाई है " । चन्द्रहास जू सों भाष्यो " देवी पूजि आवो आप मेरी कुलपूज, सदा रीतिचलिआई है" ॥६५॥

वार्त्तिक तिलक ।

परहितघृतमाखी दुर्मतिक्रोधी धृष्टबुद्धिने अपने पुत्र से एकान्त में पूछा कि " रे ! तूने यह क्या गड़बड़ किया ?" मदनसेन ने पाती दिखादी। पढ़के कुबुद्धिके तनमें आगसी लगगई; यहांतक कि बेटी का बिधवा रहना तक, वह अभागा अच्छा समझा ।

बध करनेवालों को बुलाया और चुपचाप आज्ञा दी कि " कल भोरे जिस्को देवीमन्दिर में पाना,बिना-विचारकियेही उस्काबध करदेना; और इधर निरपराधी चन्द्रहास जी से कहा कि " देवी मेरी कुलपूज्य है, तुम प्रात ही उठके जाके उस्की पूजा कर आओ, विवाह के अनन्तर उस्की पूजा हमारे कुल की रीति चली आती है " ॥

सठने अपनासा उपाय, गढ़ारचा तो परन्तु उसने यह नजाना कि (दो०) "जो भावी सो होइहैं, झूठीमन की दौर। मेरे मन कछु और है, करता के कछु और ॥१॥

पर अनहित को सोचिबो परम अमंगल मूल । कांट जो बोवे और को, ताहीं को तिरसूल ॥ २ ॥

टीका । कवित्त ।

चलो ई करन पूजा; देशपति राजा कही "मेरे सुत नाहीं, राज वाहीको ले दीजिये" । सचिव सुवन सों जु कह्यो "तुम लावो जावो, पावो नहीं फेरि समय, अब काम कीजिये" ॥ दौर्यो सुख पाइ चाइ, मग ही में लियो जाइ, दियो सो पठाइ, नृप रंग माहिं भीजिये । देवी अपमान ते न डरो, सनमान करौं; जात मारि डार्‌यो, यासों भाष्यो भूप "लीजिये"॥६६॥

वार्त्तिक तिलक ।

प्रभातहोते स्नान और श्रीशालग्रामजीकी पूजासे अवकाशपा श्रीचन्द्रहासजी, श्रीदेवीजी महारानी को पूजने चले । उसीसमय श्रीसीतारामकृपासे देशाधिपति (कुन्तलपुरके महाराज) के मनमें आया कि मेरे पुत्र हैही नहीं, तो अब यही उत्तम है कि सुयोग्य चन्द्रहास को ही मैं राज्य तिलक करदूं; हरिभजूं"

ऐसा विचार कर मन्त्री के पुत्र मदन को बुलाकर हरिकृपासे यों कहा कि "मेरे मन में यह बात आई है, सो तुम अभी अभी दौड़े जाव; अपने बहनोई चन्द्रहास को लाओ; इसी समय काम कर लो; नहीं तो विलम्ब करने से फिर न होगा; हरि इच्छा ऐसी ही है; पीछे पछताओगे" ॥ ("मन! पछतैहै अवसर बीते")

मदनसेन प्रहर्षमेंभरा बड़े चावसे दौड़ा, पंथही में दोनों (साला बहनोई) मिले। चन्द्रहासको महाराज केपास भेजा कि ऐसी ऐसी वार्ता है, इस घड़ी महाराज बैराग और अनुराग में पगे हैं, इस संकल्प में दृढ़ हैं, सीधे उनके पास पहुँचो, राज्यको प्राप्त हो; श्रीदेवी महारानी जी के अपमान का भय मत करो; मानसी प्रार्थना कर लो; मैं मठ में जा उनका पूरा सनमान पूजन करता हूं "।

उधर जाते ही मदनसेन को घातकों ने मारडाला; और इधर चन्द्रहास से महाराज ने कहा कि "यह लीजिये"; और राज्याभिषेक करही दिया। आप भगवद्भजन में लगा ॥ *

* (मनुस्मृति) प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेतिसम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येतिपञ्चवै (१२—९०)

(चौ०) "उमा! कहौं मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना"

टीका। कवित्त।

काहू आनि कही "सुत तेरो मारो नीचनिने," सींचन शरीर दृग नीर झरी लागी है। चल्यो ततकाल, देखि गिस्यो है बिहाल, सीस पाथर सों फोरि मस्यो ऐसोही अभागी है। सुनि चन्द्रहास, चलि बेगि मठपास आये, ध्याये पग देवताके, काटे अंग, रागी है। कह्यो

" तेरो द्वेषी, याहि क्रोध करि मार्यो मैं हीं, " " उठै दोऊ दीजै दान " जिये बड़ भागी है ॥ ६७ ॥

वार्त्तिक तिलक।

कुबुद्धिसे आकर किसीने कहा कि " तेरे बेटेका घातकोंने बध करडाला ? " यह सुन, डाढ़ें मारमार कर, वह रोनेपीटनेलगा। दौड़ताहुआ मन्दिरमें जा वैसाही देखा। वह अभागा भी पत्थरपर सीस पटक कर कालवश होगया! "कर्म प्रधान विश्वकरि राखा"

श्रीचन्द्रहास जी सब वृतान्त सुनकर शीघ्रही देवी-भवनमें आ स्तुतिकरनेलगे; वरंच अपना सीस बलि-देनेपर उद्यत हुए। श्रीदेवीमहारानीजी प्रगटहो, इनका हाथ पकड़, यह बोलीं कि " धृष्टबुद्धि तेरा द्वेषी, है इसलिये वत्स! मैंहीने उस्को पुत्रसमेत मारडालाहै।"

श्रीचन्द्रहास जी ने, उनको प्राणदान सुमतिदान के लिये देवीजीसे विनयकिया और पुनः स्तुतिकी ॥

"जय महेश भामिनी! अनेकरूपनामिनी, समस्तलोक स्वामिनी, हिमशैल बालिका। सिय पिय पद पद्म, प्रेम तुलसी चह अचल नेम, देहु ह्वैप्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका ॥"

श्रीदेवीमहारानी जी ने साधुता देख, हरिभक्तजान इनकी प्रार्थना स्वीकार की और प्रसन्न हो, दोनों को जिला के उन्हें सुमति भी दी कृपा की जय २ ॥

" सन्त सहहिँ दुख परहित लागी ॥ " *

* वाञ्छित कल्पतरुभ्यश्च, कृपासिन्धुभ्यएवच।
पतितानां पावनेभ्यश्च, वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

टीका । कबित्त ।

कस्यो ऐसो राज, सब देश भक्तराज कस्यो, ढिग को समाज ताकी बात कहा भाषिये।"हरिहरि" नाम अभिराम धामधाम सुन, और काम कामना न, सेवा अभिलाषिये ॥ काम, क्रोध, लोभ, मद, आदि, लैके दूरि किए, जिये नृप पाइ, ऐसो नैननिमें राखिये। कही जितीबात आदिअन्तलों सुहाति हिये, पढ़ै उठि प्रात फल " जैमिनि " में साखिये ॥ ६८ ॥

वार्तिक तिलक ।

कहते हैं कि श्रीचन्द्रहासजीने तीनसौबर्ष राज्य-किया और राज्य भी इसप्रकारसे कि देशमें हरिभक्ति फैलादी, अपने समीपियों की तो वार्त्ताही क्या है, घर घर " श्रीसीताराम सीताराम " प्रीति से और मधुर स्वरसे सुनलीजियें; किसीको किसी काम की कामना न थी; सब भगवत सेवा भजन में रत रहतेथे; इस्के कहने की आवश्यकताही क्या कि ऐसा राजा पाकर सब प्रजा चैनसे जीवनबितातीथी; और कहती थी कि ऐसे नृपति को आंखों में रखना चाहिये ॥

(चौ०) असिख तुमबिनुदेइ न कोऊ । मातुपिता स्वारथरतआऊ ॥ हेतु रहित जग युग उपकारी । हरि-सेवक, अरु श्रीअसुरारी ॥ अस सुराज बसि दूनौं लाहू । लोक लाभ परलोक निबाहू ॥

श्री चन्द्रहासकथा सुनेका तथा श्रीचन्द्रहास जी का नाम प्रातसमय लेने का माहात्म्य को "जैमिनी" जी ने वर्णन कियाही है ॥

श्रीमैत्रेयऋषि जी।

टीका। कवित्त।

"कौषारव" नाम सो बखान कियो नाभाजूने मैत्रे अभिराम ऋषि जानि लीजै बात में। आज्ञा प्रभु दई "जाहु 'विदुर' है भक्त मेरो, करो उपदेस रूप गुण गात गात में ॥ 'चित्रकेतु' प्रेमकेतु 'भागवत' ख्यात, जाते पलट्यो जनम प्रतिकूल, फल घात में। 'अक्रूर' आदि 'ध्रुव' भए सब भक्तभूप 'उद्धव' से प्यारेन की ख्यात पात पत्त में ॥ ६९ ॥

वार्त्तिक तिलक।

आपकी माताजीका नाम श्रीमित्राजी और पिताजीका श्रीकुषारुजी था; इसीसे, आप "श्रीमैत्रेय" ऋषि, तथा श्री "कौषारव" भी कहेजाते हैं; कि जो नाम श्रीनभोभूज (श्रीनाभा जी) स्वामी ने वर्णन किया है। आप श्रीपराशर मुनि के शिष्य हैं।

जिसघड़ी श्रीकृष्णभगवान विदुरजी के लिये, अपने सखा श्रीऊधवजी को, ज्ञान और भक्ति का उपदेश कर रहेथे, उससमय वहीं श्रीमैत्रेयऋषि जी भी थे तथा उन्होंने भी उपदेश लाभ किया था; और प्रभुने इनसे आज्ञा की थी कि "मैत्रेयजी! आप मेरे परम प्रिय

भक्त विदुर जी को यह उपदेश इस प्रकार सुनादीजियेगा कि जिस्में मेरा नाम मेरे गुण और मेरारूप उनके रोम रोम में, नाड़ी नाड़ी में, प्रविष्ट व्याप्त और विराजमान हो जावें" ॥

जब श्रीकृष्ण भगवान् गोलोक को गए, और श्री "उद्धवजी" प्रभुके विरह में बद्रिकाश्रम को चलेजारहेथे, तो श्रीविदुर जी से श्रीउद्धवजी मिले, परन्तु श्रीविरह में अत्यन्त विकल होरहेथे इस्से कुछ उपदेश न करके श्रीउद्धव जी ने श्रीविदुर जी से इतनाही मात्र कहदिया कि प्रभु ने श्रीमैत्रेयजी के सामने मुझसे आपके लिये बहुत कुछ उपदेश कियाहै, सो मैं तो बिरहाकुल हूं, आप उनसे सत्संग करके उस्को प्राप्त कर लीजियेगा"। श्रीविदुर जी ने ऐसाही किया; यह प्रसंग (श्रीमैत्रेय विदुर सम्वाद) श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध में विस्तार पूर्वक है।

धन्य वे, कि जिनने स्वयं भगवतही से उपदेश पाया ॥

प्रेम के भवन वा प्रेम के ध्वजा "श्रीचित्रकेतु" जी की कथा श्रीमद्भागवत में ख्यात है, कि कई शरीर पलटके प्रतिकूल जन्म अर्थात असुर ("वृत्तासुर") होके, श्रीइन्द्र जी के त्रिशूल को फूल सरीखा समझ, घात से प्रसन्न हो, अपनी भक्ति और ज्ञान के चमत्कार से सबको प्रफुल्लित कर दिया ॥

"श्रीअक्रूर जी", श्रीभक्तराज "ध्रुव" जी, तथा अतिशय प्रिय श्री "उद्धव" जी, इत्यादिक (समुदाय) की कथाएं श्रीमद्भागवत के पत्र पत्र में प्रख्यात और प्रसिद्ध हैं ही ॥ ६९ ॥

श्रीअक्रूर जी।

श्रीग्रन्थ कर्त्ता, श्रीअक्रूर जी का वर्णन, आगे चल के करेंगे, अर्थात् 'नवधाभक्ति' के भक्तों के प्रसंग में।

श्रीचित्रकेतु जी।

राजा "चित्रकेतु" के लाखोंस्त्रियां थीं। "कृतद्रुती" नामा एक स्त्री के, (श्रीनारदजी के एवं श्रीअंगिरा जी के यज्ञकराने से) एक पुत्र हुआ था, जिस्को और-सब रानियों ने मिलकर विष देदिया; वह मरगया ॥

स्नेह बश राजा उस्का दाहकर्म नहीं करता था; यद्यपि श्रीनारद जी ने उपदेश किया समझाया, तथापि उस्का मोह नहीं गया बोध नहीं हुआ। तब श्रीनारद जी के प्रभाव से वह पुत्र जीवित होके स्वयं कहने लगा कि "हे राजा! सैकड़ौं बार मैं तुम्हारा और तुम मेरे पुत्र हो चुके हो; मोह कहां तक और कैसा?॥"

"अस्तु, पूर्व जन्म में मैं साधु था और श्रीशालग्राम जी की पूजा करताथा। एक दिन इस माई ने, जो अब मेरी माता कृतद्रुती है, मुझे भोजन करानाचाहा तो अमनिया सीधा के साथ रसोई करने के लिये जो

जलावन दी, उसमें लाखों चींटियां भरी थीं !!!
मैंने प्रभुको भोग लगाकर प्रसाद पालिया।

"उन चींटियों के कारण एक एक बेर प्रत्येक के हाथों से मुझे मरने के लिये (ओह!) लाखें जन्म लेने पड़ते (हरे! हरे!!) परन्तु अपने लिये तो रसोई नहीं की थी वरंच प्रभु का निमित्त करके, और प्रभुही को भोग लगाया था, इसी से श्रीसीताराम कृपा से, इस एकही जन्म में वह बात सधगई, अर्थात् वेही लाखें चींटियां सबकी सब रानियां हुईं, वही माई मेरी यह माता हुई, मैं पुत्र हुवा, जिन हमदोनें से उन्हों ने अपना पलटा इस प्रकारसे लेलिया।

"प्रभु राखेउ श्रुति नीति अरु मैं नहिं पाव कलेश"।
इतना कह, लड़केने पुनः उसशरीरकोछोड़दिया। उस्का दाह क्रिया कर श्रीचित्रकेतु जी मोह रहित होगए।
"यह सब माया कर परिवारा"।

श्रीनारद जी ने चित्रकेतु जी को संकर्षण भगवान् का मन्त्र उपदेश किया; जिस्से सातही दिन में श्री नारद कृपासे चित्रकेतु श्रीसंकर्षणभगवान् के समीप जा पहुंचे॥ स्तुति कर, श्रीवासुदेव मन्त्र पा, उस्के जप से अव्याहत (अप्रतिहत) गति पाई अर्थात् जहां चाहें जावें, रोके न जावें।

एकदिन विमान पर चढ़ श्रीशिव जी के पास पहुंचे वहां सभा में देखा कि समर्थ महाप्रभु शिव जी अपनी

प्राणप्रिया श्रीपार्वती जगतमाता को अपने जंघापर विठाए हैं। यह देख मूर्खतावश ("छोटा मुँह बड़ी बात") वह देवदेव महादेव को उपदेश करने लगा।

श्रीगिरिजा जी ने शाप दिया; शापवश "वृत्रासुर" होने परभी उसको ज्ञान बना रहा। दधीच राजा की हड्डी के वज्र द्वारा इन्द्र के हाथों से मारा गया॥ संग्राम में जो विलक्षण वार्त्ता उसने सुरेन्द्र जी से कही है, सो श्रीमद्-भागवत के छठे स्कन्ध में पढ़ने सुनेही योग्य है। शरीर त्याग करके उसने परांगति पाई॥

श्रीउद्धव जी।

महात्मा श्रीउद्धव जी, को श्रीकृष्ण भगवान् अपना अति समीपी नाता वाले सुहृद् जानते थे, आप परम ज्ञानी महाभागवत थे और श्रीयदुवंशमणि महाराज की सेवा प्रेमपूर्वक अतिशय उत्तम प्रकार से कियाकरतेथे।

जब श्रीव्रजराज जी की आज्ञा से आप श्रीगोपियों के पास व्रज में पहुंचे, तो उनकी अद्भुत प्रीति देखी—

(पूर्वी) सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि हियकी। सखि ! मोहि कत दिन तरसत बीते, सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि हिय की॥ आह धुआं मुख, हिय बिर-हागी, ठाढ़ि जरौं जैसी बाती दिय की। अधिक दाह चित चातक कोकिल, बिरह अनल जिमि आहुति घिय

की ॥ सब उर व्यापक, अन्तरयामी, जानत हैं पिय रुचि तिय जिय की । सांचहु स्वपनेहु कब लगि देखिहौं मधुर मनोहर छवि सियपिय की ॥ क्षमा निधान त्रिलोकिहैं निज दिशि, करिहहिँ खोज न मोरे किय की । कृपा निधान दया सुख सागर, मनिहैं सखि ! विनती लघु तिय की ॥ रूपकला बिनवति हनुमत ही, चन्द्रकला अरु गिरिवर्धिय ही, एको उपाय न सूझत आली ! मोहि आसा केवल श्री सिय की ॥१॥

(सौभाग्यकला रूपकला)

अब तो सुरतिया दिखादे पियरवा ! धीर धरो नहिँ जात रामा । तलफत बीति गईं ऋतु सारी, शीत गरम बरसात रामा । हाय तिहारो सँदसवो न पायों रहि रहि जिय अकुलात रामा ॥ अब तो० ॥ नीको न लागत भोजन भूषण तात मात अरु भ्रात रामा । संग की सहेली अली अवली सब जहँ लों कुटुम अरु नात रामा ॥ अब तो० ॥ घर ना सुहात घने बन बहार भीतर दिन अरु रात रामा । सांझ सुहात न धूप छांह कछु अरु ना सुहात प्रभात रामा ॥ अब तो० ॥ जानत हौं नहिँ ज्ञान ध्यान जप जोग जुगुत की बात रामा । श्रवण मनन निदिध्यासन आसन कीर्त्तन सुमिरन प्रात रामा । अब तो० ॥ सहिनहिँ जात व्यथा बिछुरन की नाहि कछुक कहि जात रामा । काह करौं जिय निकसत नाहीं नातो बनत बिष खात रामा ॥ अब तो सु० ॥

हारी जतन करि राह न सूझत कित जाऊं नहिँ ज्ञात रामा। दीन दयाल दया दरसाओ, "जीत" जगत विख्यात रामा॥ अब तो सुरतिया दिखादे पियरवा धीर धरी नहिं जात रामा॥ (सर्वजीतलाल)

प्रिय पाठक। "सूरसागर", कृष्णगीतावली, ललितगीत, गीतगोविन्द इत्यादिक देखनेही योग्य हैं॥

निदान, श्रीसखावर उद्धव जी महाराज उनके चरण रजमें लोटनेलगे, और अपने को धन्य और कृतकृत्य, तथा अपना सब सुकृत सफल समझा। धन्य २ श्रीउद्धव जी, जिनने श्रीब्रजसुन्दरियें की महिमा अपने हृदय में बसाई।

"तव महिमा जेहि उर बसे, तासु परम बड़भाग।"

आप जब ब्रजसे लौटके ब्रजवल्लभ महाराज केपासआए, तो प्रभुसे श्रीब्रजसुन्दरियें की ऐसी स्तुति की कि जिस्के लिये श्रीउद्धव जी की प्रशंसा जहां तक की जावे सब थोड़ीही है॥

आप मथुरा से श्रीगोपिकाप्राणवल्लभ जी के साथ साथ श्रीद्वारका जी को गए। वहां से देशकालानुसार उपदेश तथा ज्ञान और भक्ति प्रभु से प्राप्त करके, आज्ञा पाके, प्रभु के वियोगाग्नि से संतप्त बद्रिकाश्रम को गए॥

श्रीध्रुवजी।

जैसे करुणाकर प्रभु श्रीप्रह्लादजीका कष्ट न सहके

उनकेरक्षार्थ आप प्रगट होहीगये, वैसेही आपने "श्री-ध्रुववरदेन" अवतारभी धारणकिया॥

श्रीध्रुव जी की कथा प्रसिद्ध ही है।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनामू। पाएंउ अचलअनूपमठामू।

राजाउत्तानपादकी रानीसुनीतिके गर्भसे आपका जन्म हुआ; और श्रीसुनीतिजीकी सपत्नी सुरुची के गर्भसे जो पुत्रथा, उसका नाम "उत्तम" था। एकसमय, राजा उत्तमको गोदमें लियेहुएथे, श्रीध्रुवजीने भी (जो चारबर्षके थे) राजा के गोदमें बैठना चाहा; परन्तु उनकी वह सौतेलीमाता बोलउठी कि "भगवतका तप करके तू पहिले मेरे उदरसे जन्म तो ले, तब तुझको राजाके अंकमें बैठने की योग्यता और अधिकार होवे" यहसुन आप रोतेहुए निज माताके पास गए, और उनकी आज्ञा पाकर तपकरनेको निकले॥

मार्ग में दयासिन्धु देवर्षि श्रीनारदजी मिले। "लागिदया कोमल चित सन्ता" श्रीदेवर्षिजीने अतिशय कृपासे "द्वादशाक्षर मन्त्र' का उपदेशकिया; श्रीध्रुवजी मथुराजीमें श्रीयमुनाजीके तटपर आकर—

"द्वादश अक्षरमंत्रवर जपत सहितअनुराग।"

हरिने साक्षात प्रगट होकर भक्तिबर दिया और कृपाकरके, अपना शंख श्रीध्रुवजीके कपोलमें स्पर्शकरदिया कि जिस्से उसीही अवस्थामें आपने भगवतकी स्तुतिकी—

जै अशरन शरन, राम! दशरथ किशोर। जनकनंदिनी मुख विधूवर चकोर॥ अवधनाथ, श्रीनाथ, मम प्राण नाथ। लखन मारुती नाथ, शरचाप हाथ॥ प्रभो! जानकीप्राणवल्लभ हरी। कृपासिंधु, भगवंत, रावण अरी॥ मुनीजनअगम कृत् सखाभालुकीश। निजेच्छाबिहारी, रमास्वामिनीश॥ बिबुध वृन्द सुखदाइ, दूषण दमन। महीदेव गो देव महि दुख शमन॥ अलख, सच्चिदानन्द, छबि मूर्त्तिमान। पतित पावन, अव्यक्त, करुणानिधान॥ न गुन में, न निर्गुण, न तू रत्न में। न है ज्ञान में तू न है यत्न में॥ प सब रंग में, और परतीत में। चमकता है तू प्रेम में प्रीत में॥ तुझी में मही, स्वर्ग, सातो पताल। नहीं शून्य तुझसे कोई देशकाल॥ तुही सब में है, औ तुझी में हैं सब। तुही एकही था, न था कुछ भी जब॥ सकलही पदारथ भरे हैं यहीं। प तुझ बिन तो कुछ भी है अपना नहीं॥ भटकते बहुत दूर ढूंढ़ैं अजान। तुम्हें आप में ही हैं पाते सुजान॥ मैं दिनरात देखूं हूं लीला तेरी। है चक्कर में, हे प्यारे! बुद्धी मेरी॥ अगम औ अकथनीय महिमा तेरी। है अति क्षुद्र बुधि, मन्दतर मति मेरी॥ न देखी किसू ने "गिरा" थाह लेति। कहा "शेष" औ "वेदों" ने "नेति नेति"॥

बड़े से बड़े भी सके कर न जो ।
प्रभुस्तुति तेरी मुझ से किस भांति हो ।
तेरे पद्म पद छुट नहीं और ठौर ।
न तव प्रेम तजि, जग में, कुछ सार और ॥
मैं कलिमलग्रसित, अतिबिकल पाहि पाहि ।
तेरी माया गाढ़ी प्रबल, त्राहि त्राहि ॥
अधिक इस से क्या कह सके 'रामहित*, ।
अमित है, अमित है, अमित है, अमित ॥
कृपा करके दो प्रेम अपना, विभो !
"सियाराम सियराम" जपना, प्रभो !

(* पण्डित श्री रामहितोपाध्याय जी)

प्रभुने कहा कि "छत्तीस सहस्रवर्ष इस पृथ्वीका राज्य करके, तब अचलअनुपमलोक का राज्य करोगे; अब तुम घर जाव"। आप घर को चले ॥

श्रीनारदजीकी आज्ञासे महाराज उत्तानपादजीने आगेआके इनका आदरसत्कार कर, घरला, इनको राज्य देदिया, स्वयं और स्त्री भगवद्भजन करने के लिये बनको गए ॥

भूमण्डल के राज्य के अनन्तर, श्रीध्रुव जी अपनी दोनों माताओं और पिता के समेत "ध्रुव लोक में जा बिराजमानहैं; महाप्रलयकेपीछे परमपदको जायँगे ॥

श्रीअर्जुन जी।

श्रीअर्जुन जी श्रीयादवेन्द्र प्रभु के फुफेरे भाई थे; भगवत में सखाभावसे प्रेम रखते थे। सुहृद होने के उपरान्त मित्रता भी आपस्में ऐसी थी कि करुणाकर प्रभु आप के सारथी का कामभी किया करते थे।

मित्रता की अधिकतासे श्रीअर्जुन जी निष्कपट भी ऐसे होगए थे कि जब आप श्रीयदुपति महाराज की बहिन सुभद्रा जी की सुन्दरता पर आशक्त होगए, (दो०) व्याकुलता अरु वयग्रता व्याप्यो रगरग आय। चंचल चित अति छटपटी, घर आंगन न सुहाय ॥१॥ गद्गद स्वर रोमांच अरु नैनन नीर बहंत। प्रेम मग्न उन्मत्त ज्यों, अन्तः पीर सहंत ॥२॥ तो अपनी पूरी विकलता श्रीकृष्णभगवान्से निःशंक होके कह सुनाई।

(दो०) परदा कौन सुमित्र सन, हित सन कौन दुराव,
हियकी सब परगट करै, तुरतहि भाव कुभाव ॥

(चौ०) जिन्हके असमति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई ॥

(चौ०) राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुराण सन्त सब साखी ॥ जेहिजन पर ममता अरु छोहू। तेहि करुणाकर कीन्ह न कोहू ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजी ने, लौकिक निन्दा उपहास के भयशंका को धरखेपरधर,

भक्त रहस्यानुकूल ऐसा गुप्त मन्त्र बताया कि उस्के अनुसार श्रीअर्जुन जी अपने मनोरथ को प्राप्तही हो गए। मित्रवत्सलता की जय॥

(चौ०) " जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू॥" एक बेर प्रभु अपने सखा अर्जुनजी के पास, बेखटके वहां चलेगए कि जहां आप श्रीसुभद्राजी के साथ विराजतेथे॥ "होसख्य जो तो ऐसा, हो प्रीति जो तो ऐसी। विश्वास हो तो ऐसा, परतीति हो तो ऐसी॥" भक्त की प्रशंसा की जावे? कि भक्तवत्सल जी की? कि प्रेमाभक्ति महारानी की?

एक समय मंगलमूर्त्ति श्रीमारुतिजी गन्धमादन निजस्थलसे श्रीसीतारामजी के दर्शनार्थ दिव्यसाकेतलोकआए, जहाँपर श्रीसनकादि ऋषिवृन्द और श्रुतियां स्तुति कर रही हैं। किञ्चित काल प्रभु सेवाकर श्रीराम दूत जी ने गन्धमादन जाना चाहा; तो भक्तवत्सल श्रीसीतानाथजी ने कहा कि " जाव, परन्तु हमारे अवतारान्तर के भक्त ' पाण्डवों ' की रक्षा कौरवों से अवश्यही करना "।

इस प्रभुबचनामृत को अङ्गीकार और दण्डवत कर श्रीपवनात्मज जी आकाशमार्ग होकर चले; जब "द्वैतवन" के समीप पहुंचे, तब अर्जुनादिपाण्डव और श्रीकृष्णचन्द्रकी वार्त्ता सुनी। सो वह वार्ता यह है:-

अर्जुनादि ने कहा कि "कौरव रूपी दुख से कैसे बचैंगे?" यह सुन, श्रीकृष्णचंद्रजी ने कहा कि "देखो, ये पवन पुत्र हनुमान श्रीसाकेतविहारी के दूत, आकाशमार्ग हो के जारहे हैं; सो ये ही तुम्हारी रक्षा करेंगे"

इतना सुनतेही, वृत्त जानने की वांच्छा से श्रीमारुति जी श्रीकृष्णचंद्रजी के समीप पहुंचे; तब आपने अपने को 'श्रीसाकेतविहारी जी का अवतार' ज्ञापन करने के लिये, श्रीरामरूप हो दर्शन दिया; और पाण्डवों को श्रीहनुमत् शरण में लगा दिया।

श्रीअंजनी नन्दन जी ने पाण्डवों को निज अनूप भक्त और दास जान, कौरवों से उनकी रक्षा की॥ इसीसे, श्रीमारुति जी का "अर्जुन सहायकारी" ऐसा ख्यात हुआ॥

पाण्डवों की भक्ति की प्रशंसा किस्से हो सकती है॥

"तुलसी, सकल सुकृत सुख लागे राम भक्ति के पाछे॥"

श्रीयुधिष्ठिरादि [पाण्डव]

श्रीपाण्डव पांचो भाइयों में से, श्रीअर्जुन जी की कथा तो अभी अभी निवेदन की जा चुकी है। श्री-युधिष्ठिर जी महाराज, श्रीभीमसेनजी, श्रीनकुलजी, और श्रीसहदेव जी, ये चारो श्रीयादवेन्द्र जी के ममेरे भाई थे। वे आपको पूर्ण ब्रह्म तथा अपना स्वामी मानते थे। श्रीयुधिष्ठिर जी और श्री भीमसेन को

(जो बड़े थे) आप प्रणाम; तथा, श्रीनकुल जी और श्रीसहदेव जी (जो छोटे थे) आप को दण्डवत, किया करते थे।

श्रीयुधिष्ठिर जी की महिमा कौन कह सके कि जो साक्षात् "धर्म" के ही अवतार थे। महाभारत में भगवत की भक्तवत्सलता और बारम्बार सहायता के साथ पाण्डवों का सुयश भी प्रसिद्ध है ही॥

"कहां न प्रभुता करी? हे प्रभु! तुम कहां न प्रभुता करी"

गजेन्द्रजी; ग्राहजी।

(कल्पान्तभेदसे एक कथा)

स्वेतद्वीप में एक सर में श्री देवलमुनि स्नान कर रहे थे, हाहा नाम गन्धर्व ने, खेलसे पानी के भीतर, ग्राह की नाईं उनका पांव पकड़ लिया; इसलिये मुनि के शाप से वही वहीं ग्राह हुआ।

बड़ों से हँसी खेल का फल ऐसाही है।

इन्द्रदवन राजा अपने मन्त्री को राज्य देकर पहाड़ पर जा मौनी हो भजन करता था; भक्तराज ऋषीश्वर श्रीअगस्त्य जी महाराज कृपाकर वहां गए, पर उसने अभिमान से आप का सत्कार आदर नहीं किया। फलतः मुनि जी के शाप से गजेन्द्र हुआ॥

ओह! अभिमान से किस्का सर्बनाश न हुआ?

(कल्पान्त भेद से दूसरी कथा)

मरु देश के राजा के यज्ञ में भगवद्भक्त दो भाई ब्राह्मणों में, एक ब्रह्मा दूसरे होता हुए; होता ने बहुत परन्तु ब्रह्मा ने उनकी अपेक्षा थोड़ी दक्षिणा पायी; अतएव ब्रह्मा ने दोनों दक्षिणा इकट्ठा मिला के आधा-आधा बांट लेना चाहा। होता ने न माना। ब्रह्मा ने शाप दिया "तुम गंडकी में ग्राह हो"; एवं होता ने भी शाप दिया तुम गज हो"॥

आपस की लड़ाई और लोभ के लाभ हैं तो ये हैं॥

सारांश यह कि ये दोनों वैष्णव वा ब्राह्मण थे और शाप से एक ग्राह दूसरे गजेन्द्र हुए थे।

एक दिन संयोगवश गजेन्द्र उसी ठौर अपनी हथिनियों और पट्ठों के समेत जल पीने गया कि जहां वही ग्राह रहता था; ग्राह ने गज का पांव पकड़ लिया; ग्राह अपनी ओर जल में, गज जी अपनी ओर थल में खींचते थे; कुछ काल पर्यन्त और हाथियों ने गजेन्द्र जी की सहायता की, परन्तु अंत को हारमान के उनको अकेले असहाय छोड़ छोड़ के चले गए।

"कौन काको मीत कुसमय कौन काको मीत"

(दो०) हरे चरैं, तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ॥

सहस्र वर्ष पर्यन्त लड़ाई होती रही अंत को ग्राह

प्रबल हो गज को नदी में ले चला, केवल सूंड़मात्र बाहर रह गया।

अब गज का ध्यान दीन रक्षक आरत हरन की ओर आया। "सुख समय तो दुइ नशान सब के द्वार बाजे। दुख समय दशरथ के लाल तू गरीब निवाजे"॥

श्रीगजेन्द्र जी ने भगवान की शरण ली और

एक कमल का फूल तोड़ कर श्रीबैकुण्ठ नाथ को अर्पण करके पुकाराः-

यः कश्चनेशो बलिनोऽतकोरगात् प्रचंडवेगादभिधावतो भृशं, भीतं-प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥ नायं वेदस्वमात्मानं यच्छक्त्याऽहंधियाहतं। तंदुरत्ययमाहात्म्यं भगवंतंनतोस्म्यहम्॥

आर्त की टेर को सुनतेही आर्तिहरण चक्रधर हरि गरुड़ को छोड़के बैकुण्ठ से दौड़ उसी निमिष श्रीगजेन्द्रजी के पास पहुंच, ग्राह को चक्र से मार श्रीगजेन्द्र जी को छुड़ा लिया।

शीघ्रता देखियेकि "पानीमें प्रगट्यो किधों बानी गयंदके"॥

भगवत ने श्री गजेन्द्र जी को तो परम पद दियाही, किन्तु ग्राह ने भी मुक्ति पाई।

श्रीमद् भागवत आदिकमें श्रीगजेन्द्र कृत स्तुति पढ़ने ही योग्य है॥

किसने प्रभु को पुकारा और अपने कष्ट से छुटकारा न पाया?

श्रीकुन्ती जी।

टीका। कवित्त।

कुन्तीकरतूति ऐसी करै कौन भूत प्रांणी; मांगति विपति, जासों भाजैं सब जन हैं। देख्यो मुख चाहौं लाल! देखे बिनु हिये शाल, हूजिये कृपाल, नहीं दीजे बास बन हैं॥ देखि बिकलाई प्रभु आंखि भरि आई, फेरि घरही को लाई, कृष्ण प्राण तन धन हैं। श्रवण वियोग सुनि तनक न रह्यो गयो, भयो बपु न्यारो अहो! यही सांचो पन हैं॥ ७०॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीयादवेन्द्र महाराज श्रीकुन्ती जी के भतीजा थे; परन्तु आप प्रभु में ब्रह्मसच्चिदानन्दही का भाव रखती थीं, उनकी अन्तःकरणदृष्टि के सामने मोह माया का धूंधलापन नहीं था, सदा भगवत की मूर्त्ति सन्मुख विराजमानहीरहती थी।

श्रीकुंतीजीकी प्रशंसा करसके ऐसा कौन है? जिस विपत्ति से सबलोग भागतेहैं, सोई विपत्ति आपने प्रभुसे माँगी, कि "हेलालजी! सुखसे वह दुःखही मुझे भलाहै कि जिस दुःखमें तुम सदैव दर्शन दिया करतेहौ; मैं सदा तुम्हारा मुखारविंद देखती रहाचाहतीहूं; जिसके अवलोकन विना मेरे हृदय में बड़ा शूल होताहै; मुझपर कृपाकरके सदा मेरेपास रहाकरो;

और नहीं तो, बनवास दो, क्योंकि बनवास में सदा तुम साथरहतेथे, राज्यहोनेपर तुम्हारा वियोग हुवा-चाहता है। "

जबकि श्रीयुधिष्ठर जी को राज्य प्राप्त होनेकेअनंतर भगवत द्वारका जाने का विचार करते थे, तब इस प्रकारकी प्रार्थना आपकियाकरतीं।

आपकीयह व्याकुलता और विकलता देखके प्रभुकी आंखोंमें प्रेमअश्रुभर आया, और श्रीद्वारकाकीयात्रा को छोड़ दिया; आप इस प्रकारसे आनंदकंदको रथपरसे उतारके अपने पास लौटा लाईं।

सारांश यह कि श्रीकृष्णभगवान्ही आपके धन, जन, तन, प्राण, सभ कुछ थे।

जब हरि इस जगत को छोड़ गोलोक को गए, तो यह समाचारसुननेके साथही, श्रीकुंतीजी भी शरीर परित्यागकरके, हरिके पास जा पहुँची॥

देखिये 'प्रेमकापन निवाहना' इसको कहते हैं, ऐसे पन का नाम सच्चापन है। (दोहा) मीन आदि के प्रेम को कविगण कियौ बखान। प्रीति सो सांचि सराहियै, बिछुरत निसरै प्रान॥१॥ आली! मैंने यह सुनी, पह फाटत पियगौन। 'पह' में, 'हिय' में है रही, "पहिले फाटै कौन?"॥२॥

नारायण अति कठिन है, प्रेम नगर की बाट ।
या मारग सो पगधरै, प्रथम सीसदे काट ॥३॥

श्रीद्रौपदी जी ।

द्रौपदी सती की बात कहै ऐसो कौन पटु ? खैंचतही पट, पट कोटि गुने भए हैं । "द्वारकाकेनाथ !" जब बोली तब साथहु ते द्वारका सों फेरि आए, भक्तवाणी नए हैं ॥ गए दुर्वासा ऋषि बनमें पठाए नीच धर्म-पुत्र बोले विनय आवै पन लए हैं । भोजन निवारि त्रिया आइ कही शोच पर्यो, चाहै तनु त्यागो, कह्यो "कृष्ण कहूं गए हैं ?" ॥ ७१ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

परमसती श्रीद्रौपदीजी की महिमा वर्णनकरनेका सामर्थ्य किस प्रवीण (पटु) को है ? आप श्रीयाद-वेन्द्र भगवान्‌को ब्रह्मसच्चिदानन्द जानके देवरभावसे उनमें अमल विशुद्ध भक्ति रखती थीं; और श्रीहरीभी आपको अपनी भावज जानते थे ।

(चौ०) तिन सम पुण्य पुंज जग थोरे । जिनहिं राम जानत करि "मोरे" ॥ को रघुबीर सरिस संसारा । शील सनेह निबाहनिहारा ॥

श्रीद्रौपदीजी की कथा महाभारत में विस्तार के साथ वर्णित है । जब श्रीयुधिष्ठिर जी बरबस जूआ खेलके छली दुर्योधन के हाथ श्रीद्रौपदी सतीजी को हारगए,

और कलिरूप दुर्योधन की आज्ञा से दुष्ट दुःशासन भरीसभामें आपको नग्न करने के निमित्त वस्त्र खींचने लगा, (केवल एक सारी मात्र आप उस समय पहिरे हुए थीं), तब उस कठिन कालमें, आपने अपने देवर श्रीकृष्णभगवान् भक्तवत्सल प्रणतहित को "द्वारका-नाथ !" नाम लेके स्मरण किया ।

करुणासिन्धु महाराज यद्यपि साथही में विद्यमान थे, तथापि भक्तवचन चरितार्थ करने के लिये उसी क्षण द्वारका से हो आये ।

भक्तरक्षक भगवान् उस चीर (सारी) को अपनी कृपासेबढ़ानेलगे. वह वस्त्र इतना बढ़ताजाताथा कि दुःशासन, जिस्को दशसहस्र हाथियों का बल था, खींचते खींचते हारगया, परन्तु आपके एक नखके कोरका भी वस्त्र मर्य्यादासेनहीं सरका; वरंच आप सारीसे हरिकृपासे ज्यों की त्यों सम्पूर्णतः ढँकी हुई खड़ी रहीं । दुष्टोंके मुख काले होगये ! और सज्जनों के मुखसे "भक्ति भक्त भगवन्त की जय" ध्वनि गूंज उठी, आपके चारो ओर वस्त्र का ढेर होगया ॥

(क०) दुर्जन दुशासन दुकूल गह्यो "दीनबंधु !" दीन हूके द्रुपददुलारी यौं पुकारी है । आपनो सबल छांड़ि ठाढ़े पति पारथ से भीम महा भीम ग्रीवानीचे करि डारीहै ॥ अम्बर लौ अम्बर पहाड़ कीन्हो, शेष

कवि, भीषम, करण, द्रोण, सभी यों विचारी है। नारी मध्य सारी है, कि सारीमध्यनारी है, कि सारीही की नारी है, कि नारीही की सारी है ?"

(दो०) कहा करै वैरी प्रबल, जो सहाय रघुबीर।
दशहजार गजबल घट्यो, घट्यो न दशगजचीर॥

(कृ० गी०) अपनेनिको अपनो बिलोकिबल, सकल-आसविश्वास विसारी। हाथउठाइ अनाथनाथसों "पाहि पाहि प्रभु पाहि!" पुकारी॥ तुलसी परखि प्रतीति प्रीति गति आरतपाल कृपालुमुरारी। "वसन वेष" राखी विशेष लखि बिरदावलि मूरति नरनारी॥१॥ प्रीति प्रतीति दुरपदतनया की भली भूरि भयभभरि न भाजी। कहि पारथ सारथिहि सराहत गईबहोरि गरीबनिवाजी॥ शिथिल सनेह मुदित मनही मन, वसनबीचबिच बधू विराजी। सभा सिन्धु यदुपति जय-मय जनु रमाप्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी॥ युग युग जग साके केशव के शमन कलेश कुसाजसुसाजी। तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्णकृपालु अगति पथ राजी॥२॥

एकदिनजब नीच दुर्योधनने जगतप्रसिद्ध श्रीदुर्वासा ऋषीजीको श्रीयुधिष्ठिरजीकेपास बनमें (किसीप्रकार से) भेजा तो वह महात्मा ऐसे समय पहुंचे कि जब श्रीद्रौपदीजी सबको भोजन कराके श्रीसूर्यभगवान् की

दी हुई टोकनी को धोधा चुकी थीं*। अतः श्रीयुधिष्ठिर आदि बड़े शोच में पड़े कि दससहस्र चेलों समेत दुर्वासाजी को अब कहां से भोजन करावैं!

दुर्वासाजीने कहाकि जबतक कि तुमभोजनका ठीक-ठाक करो, इतने में हमसब स्नानादिक नित्यक्रिया करके आतेही हैं।"

धर्म्मात्मा श्रीयुधिष्ठिर जीने विचार कियाकि "अब तो शरीर परित्याग करनाही भला जानपड़ता है"

परन्तु श्रीद्रौपदीजी ने कहा कि "आप किसीप्रकारकी चिन्ता मत कीजिये; क्या हमारे शोकबिमोचन प्रभु कहीं गए हैं ?"

टीका। कवित्त।

सुन्यो भागवतो को बचन भक्ति भाव भर्यो, कर्यो ध्यन, आए श्याम, पूजे हिये काम है। आवतही कही "मोहि भूख लागी देवो कछु," महा सकुचाये मांगैं प्यारी "नहीं धाम है"॥ "विश्व के भरण हार धरे है अहार, अजू, हमसौं दुराके" कही वाणी अभि-राम है। लख्यो शाक पत्र पात्र, जल संग पाइ गए पूरण त्रिलोकी विप्र गिनै कौन नाम है॥७२॥

---

*"श्री सूर्य्य नारायण जी ने प्रसन्न होकर वोह टोकनी दीथी। उसका यह चमत्कार था कि जब तक श्रीद्रौपदी जी भोजन कराके उसको नहीं धोडालती थीं, तब तक विविध भाँतिकी भोजनसामग्री उसमें से निकला करती थी"

वार्त्तिक तिलक।

प्रेमी के शुद्धान्तःकरणकी भक्ति भावभरी वाणी ("क्या श्रीकृष्णचन्द्र कहीं गए हैं?") सर्वव्यापी करुणाकर ने ज्यों ही सुनी, फिर क्या था? दयालुता ने सुहृद के अन्तःकरण का चित्र सामने धरही तो दिया। भक्तवत्सलता कैसे स्थिर रहने देती? निजधाम छोड़ने और भक्त के सम्मुख पहुंचनेमें शीघ्रताने विद्युत को लज्जित करदिया। भगवत तथा भक्त के एकत्र होने से प्रमोद पाकर अन्तःकरण की जो दशा होतीहै, वह अन्तःकरण ही के समझने की वार्त्ता है; लेखनी के सामर्थ्य से बाहर है कि उस्का किंचित अंश भी प्रकाश कर सके।

(चौ०) "बारबार प्रभु चहत उठावा।
प्रेम मगन तेइ उठब न भावा॥"

आनन्दकन्द विश्वभरण प्रभु ने बड़ी आतुरता से आप से मांगा कि "भौजी! शीघ्र कुछ खिलावो, मैं बड़ा भूखा हूँ।" यह सुन, अति सकुचाय, आपने उत्तर दिया कि "प्यारे! खानेपीने का तो कोई वस्तु घर में नहीं है!"

हरि मुसक्याके बड़ेहीमधुरस्वरसे बोले कि "भौजी! मुझसे तुम दुराव क्योंकरतीहो? तुमने तो वह (बटुई टोकनी) घरमे धररक्खी है, कि जिससे चाहो तो

हरि कृपासे तुम संसार भरको खिला सकती हो "।
आपने कहा कि "प्यारे! मैं पाके उस बटुई को धोधा
चुकी हूं ॥" प्रभुने टोकनी मांगी, कि "लाओ, देखूं"
आप उठा लाईं, और प्रभुकेसामने उसको रखदिया ।

भगवत्‌ने उसमेंसे एकपत्ता साग का (सटाहुआ)
ढूंढ़निकाला, जिसको, श्रीद्रौपदी जी को दिखलाके, आप
पागए और उसके ऊपरसे थोड़ासा जल भी पीलिया।
उसीक्षण, दुर्वासाजी और उनके चेलों की कौन कहै,
वरंच सारेत्रैलोक्य के प्राणी भोजनसे पूर्ण होगये ।

दुर्वासा जी, श्रीअम्बरीष जी की वार्ता स्मरणकरके,
डरे; और बाहरहीसे बाहर नदी तटसे अपने चेलौं
समेत भागे ।

"जन को पन, राम ! न राखो कहां ?"

(चौ०) शील सकोच सिन्धु रघुराऊ ।
सुमुख, सुलोचन, सरल सुभाऊ ॥

" वह अपनी, नाथ ! कृपालुता तुम्हें यादहो किन
याद हो । वह जो कौल भक्तोंसे थाकिया, तुम्हें याद
हो किन याद हो ॥

सुनी गजकी जोंही वह आपदा, न बिलम्ब छिन
का सहा गया; वहीं दौड़े उठके पयादापा, तुम्हेंयाद हो
कि नयादहो ॥१॥ वह जो चाहा लोगोंने द्रौपदी को कि
लाज उस्की सभामें लें; वह बढ़ाया वस्त्रको तुमने आ,

तुम्हें यादहो किनयादहो ॥२॥ वह अजामिल एक जो पापी था, लियानाम मरने में बेटे का; उसे तुमने ऊंचोंका पददिया, तुम्हें यादहो किनयादहो ॥३॥ जिन बानरों में न रूप था न तो जाति थी, न तो गुन ही था; रहे उलटे उनके ऋणी सदा, तुम्हें यादहो, किन यादहो ॥४॥ वह जो गोपी गोप थे ब्रज के सब, उन्हे इतना चाहा कि क्या कहूं; उन्हें भाइयों कासा मानना, तुम्हें यादहो किनयादहो ॥५॥ वह जो गीध था, गनिकाजो थी, वह जो ब्याध था, वह मलाह था; उन्हें तुमने भक्तों का पद दिया, तुम्हें यादहो किनयादहो ॥६॥ खाना भिल्लनी के वह जूठे फल, कहीं भाजि छिलके विदुरके चल; योहीं लाखों किस्से कहूं मैं क्या, तुम्हें यादहो, किनयादहो ॥७॥ वह गोपियों से कहा था क्या करो याद गीता की भी ज़रा; यानी विरद शरण निवाह का, तुम्हें यादहो किनयादहो ॥८॥ यह तुम्हाराही "हरिचन्द" है, गो फ़साद में जग के बन्द है; वह है दास जन्मों का आपका, तुम्हें यादहो किन यादहो ॥९॥
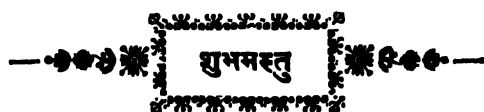
श्रीगणेशाय नमः ।

॥ श्री जानकीवल्लभाय नमः ॥

श्री हनुमते नमः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः । श्री रामानन्दाय नमः ॥

॥ छप्पै ॥

पदपङ्कज बांछौं सदा, जिनके हरि नित उर बसैं ॥ योगेश्वर, श्रुतिदेव, अङ्ग, मुचुकुन्द, प्रियव्रत जेता । पृथू, परीक्षित, शेष, सूत, शौनक, परचेता, ॥ सतरूपा, त्रयसुता, सुनीति, सतीसबही, मन्दालस । यज्ञपत्नि, ब्रजनारि, किये केशव अपने बस ॥ ऐसे नरनारी जिते, तिनही के गाऊं जसैं । पदपङ्कज बांछौं सदा, जिनके हरि नित उर बसैं ॥ ॥ ६ ॥ (१०)

[जसैं=यशैं; बांछौं=याचौं]

वार्त्तिक तिलक ।

जिन जिन भक्तजनौँ के हृदय में श्रीहरि भगवान् नित्यही निवास करते हैं, तिन भक्तों के कमलरूपी चरणों की (मैं मधुपसम) सदा इच्छा करता हूं—

"जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, हरि सन सहज सनेह।
बसहिँ निरन्तर तासु उर, सो हरि कौ निज गेह ॥"

(१) ९ (नव) योगीश्वर, इत्यादिक योगीश्वर वृन्द ।
(२) श्रीश्रुतिदेव जी,
(३) राजा श्रीअङ्ग जी,
(४) श्रीमुचुकुन्द जी,
(५) जगत विजयी श्री प्रियव्रत जी महाराज
(६) श्री पृथु जी
(७) श्री परीक्षित जी
(८) सहस्रानन श्री शेष भगवान्
(९) श्री सूत जी
(१०) श्री शौनकादिक
(११) श्री प्रचेता गण
(१२) श्रीसतरूपाजी; उनकी तीनों कन्या अर्थात्
(१३) श्री प्रसूती जी,
(१४) श्री आकूती जी,
(१५) श्री देवहूती जी ।
(१६) श्री सुनीती जी
(१७) श्री मन्दालसा जी
(१८) श्री सती (शिवा) जी
(१९) सम्पूर्ण सती (पतिव्रता) स्त्री वर्ग
(२०) श्रीमथुरावासिनी यज्ञ पत्नी समूह

(२१) श्री ब्रजगोपिका वृन्द, जिन्होंने भगवान् को अपने बश कर लिया ॥ जय जय जय ॥

(२२) भगवत को इस प्रकार अपने हृदय में बसानेवाले पुरुष वा स्त्री वर्ग जितने हैं, तिन्हीं के सुयश को मैं नित्य गान करता हूं और करूंगा ॥

टीका । कवित्त ।

जिनही के हरि नित उर बसैं तिनही की पदरेनु चैनु देनु आभरण कीजिये। योगेश्वर आदि रस स्वादमें

प्रवीन महा, बिप्रश्रुतिदेव ताकी बात कहि दीजियै ॥ आए हरि घर देखि गयो प्रेम भरि हियो ऊंचो कर करि, पट फेरि, मति भीजियै। जिते साधु संग, तिन्हैं विनय न प्रसंग कियो, कियो उपदेश "मोसो बाढ़, पांव लीजियै" ॥ ७३ ॥

वार्त्तिक तिलक।

जिन महानुभावों के हृदय में सर्व दुःख हरनहारे तथा मन हरनेवाले भगवान् सर्वदा बसते हैं, तिन्हीं के पदपंकज की सर्व सुखदेनेहारी धूरि को अपने मस्तक में सदा धारण करना चाहिये। तिन भक्तों में योगीश्वर आदिक प्रेमापराभक्तिरस के छके हुए परम प्रवीण प्रसिद्ध ही हैं।

उनमें से, "श्रुतिदेव" नाम ब्राह्मण परम प्रेमी की वार्त्ता कहे देता हूं—

श्री श्रुतिदेव जी।

एक समय श्रीकृष्णचन्द्र जी द्वारकाजी से श्रीबिदेहपुर (जनकपुर) में निमिवंशी राजा श्रीबहुलाश्वजी से जाके मिले; और साथही, उसी समय सब साथियों समेत दूसरे रूप से बिप्र श्रीश्रुतिदेवजी के घरमें भी कृपा करके गए। ये दर्शन करतेही परम प्रेम में भरे, भक्ति रस में मति को भिगाए, ऊंचे हाथों से, अपने बस्त्र को फिरा २ के, नाचने लगे। परन्तु श्रीकृष्ण भगवान् के

साथ में और जो सन्त थे, तिनको विनय प्रणाम आदर सत्कार इनने कुछ नहीं किया! तब, प्रभु ने इनके प्रेम विचित्रता को देखके स्वयं यों उपदेश किया कि "तुमने सन्तों का तो सतकार नहीं किया! इनको मुझ से अधिक जानके दण्डवत प्रणाम तथा पूजन करो"॥ ऐसा सुन, सुख मान, इनने वैसाही किया। चतुर्मासा भर दोनों के घर कृपा कर रहे; तब भी एक को दूसरे का समाचार नहीं मिला॥

योगीश्वर।

नवो (९) योगीश्वरों के नाम श्री ग्रन्थ कर्त्ता जी आगे चलके, ९ (नवें) छप्पै अर्थात् १३ (तेरहवें) मूल में कहेंगे॥

राजा श्रीअङ्ग जी।

राजा "अङ्ग" सोमवंशी विठूर निवासी बड़े धर्म्मात्मा थे; इनके पुत्र न था। ब्राह्मणों से यज्ञ कराया परन्तु देवतों ने (पूर्व पाप के कारण) यज्ञ स्वीकार न किया। बहुत विनयवश ब्राह्मणों ने वसु का यज्ञ किया; वसु महाराज ने प्रगट होकर हविष (क्षीरान्न) दिया; जिस्से राजाबेणु उत्पन्न हुआ परन्तु वह अपने धर्म्मात्मा पिता श्रीअङ्गजी की आज्ञानुसार नहीं चलता था।

अतः श्रीअङ्गजी चुपचाप अरण्य में जाकर भगवत के भजन में भली भांति लगे। भजन प्रभाव से परमधाम को गए॥

अङ्ग नाम के दूसरे राजा "अङ्ग प्रदेश" (पटना बिहार प्रान्त) के थे। इनके पुत्र श्रीरोमपादजी बड़े भक्त हुए ॥

राजामुचुकुन्द जी।

श्री मुचुकुन्द जी श्री अयोध्याजी के राजा थे; देवतों की, लड़ाई में, बड़ी सहायता की; थकके एक पर्वत के कन्दरे में बिश्राम कर रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र "काल यवन" के पीछा करने से, भागते भागते उसी खोह में पहुंचे; और अपना पीताम्बर श्रीमुचुकुन्दजी के शरीर पर उढ़ाकर आप कहीं छुप गए। कालयवन इन्हीं को श्रीकृष्णजी समझ कर उलटी पुल्टी सुनाने लगा।

इनने आंखें खोलीं तो इनकी दृष्टि पड़तेही कालयवन मृत्यु को प्राप्त होगया। क्योंकि भक्तापराध का दण्ड शीघ्रतर मिलता है। और भगवान् ने स्वयं इस लिये उसको न मारा कि गर्गाचार्य्य का वचन था कि कालयवन किसी यदुबंशी के हाथ से न मरे ॥

(ऐसा सुना गया है कि यही श्रीमुचुकुन्द जी श्री जयदेव कविशिरोमणि हुए कि जिनका "गीतगोविन्द" प्रसिद्ध है) ॥

महाराज श्रीप्रियव्रत जी।

भगवान् श्रीस्वयंभूमनुजी तथा महारानी श्रीसत-

रूपा जी के पुत्र, श्री प्रियव्रतजी, पाँच वर्ष के ही जब थे श्रीनारद भगवान् के उपदेश से, विरक्त हो बनमें हरि भजन करने लगे। (चौ०) "जेतो श्रम संसृति हित कीजै। कसनहिं तेतो हरि मन दीजै"॥

महाराज श्रीमनुजी ने श्रीब्रह्माजी से कहा। तब दोनों प्रियव्रतजी को समझाने चले। इसलिये श्रीनारदजी ने आज्ञा देदी कि "वत्स! श्रीब्रह्माजी तथा श्रीमनु महाराज तेरे पास आते हैं, उनके बचन मानलेना"॥

श्रीब्रह्माजी के उपदेश से श्रीप्रियव्रतजी बिबाह कर गृहस्थ हुए। उनके दस बेटे, तीन ऊर्द्ध्वरेता (विरक्त) और सात गृहस्थ कि जो सातो द्वीप के राजा हुए॥

ये महाराज ऐसे प्रतापी भक्त और तेजस्वी थे कि इनका प्रकाश सूर्य्य के तेज के तुल्य था; जब सूर्य्य नारायण अस्ताचल को जाते तब भी इनके रथ के प्रकाश और तेज से दिन बनाही रहता था। श्रीब्रह्माजी के उपदेश से इनने अपने तेज को ढांप लिया। तब सब को रात्रि का बोध होने लगा॥

(चौ०) लघुसुत नाम "प्रियव्रत" ताही। बेद पुराण प्रशंसत जाही॥ "गुरुशासन गुनि पुनि घर आयो। कियो राज्य रघुपतिपद ध्यायो"॥

श्रीप्रियव्रतजी ग्यारह अर्बुद वर्ष राज्य कर भगवत भजन करते हुए, शरीर का परित्याग करके परधाम को गए॥

राजा श्रीपृथु जी ।

राजा श्री पृथुजी का नाम पहिले चौबीस अवतारों (मूल ५ छप्पै १ पृष्ठ ५८) में आचुका है ॥

आप भगवत यश के ऐसे बड़े प्रेमी थे कि उस्के श्रवण के निमित्त अपने कानों में दस सहस्र कर्णों का सामर्थ्य मांगा और पाया ॥

राजा श्रीपरीक्षितजी ।

हस्तिनापुर के राजा श्रीपरीक्षितजी ही के प्रति, परमहंस श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत सुनाया, कि जो सब पुराणों मे श्रेष्ठ तथा पारमहंसीसंहिता है; सब का सार और, संसार समुद्र के तरने की दीर्घ नौका (जहाज़) है ॥

आप श्रीअर्जुन जी के पोता थे । भगवान् ने गर्भ में ही इनकी विशेष रक्षा की थी । आपने "कलियुग" को दण्ड किया था, और इसको बासके लिये पाँच ही स्थान दिये थे अर्थात् (१) हिंसा जहां हो; (२) मद्यपान जहां हो; (३) द्यूत (जूआ) जहां हो; (४) वेश्या जहां रहें; और (५) सुवर्ण पर ।
आपको ५००४ बर्ष हुए ॥

श्री शेषजी ।

शेष सहस्र सीस जग कारण । जो अवतरेउ भूमि

भय टारण ॥ "चौदह भुवन सहित ब्रह्मण्डा। एक सीस सरसव सम मंडा" ॥

श्रीशेष भगवान्। श्रीक्षीरशायी प्रभु के सय्या तथा छत्र रूप से अखण्ड सेवा करते हैं और सहस्र मुख से शेषी (भगवत) का यशगान करते हैं। "अनन्त" के चरित्र का अन्त कौन पासकता है ? किस्से बर्णन हो ?

"श्रीसम्प्रदा" के प्रगट करनेवाले आचार्य्य आप ही हैं। इसी लिये श्रीसम्प्रदा को शेष सम्प्रदा के नाम से भी पुकारते हैं। आपकी ही सम्प्रदा "श्री रामानुज सम्प्रदा" कही जाती है जिसकी परम्परा यों है (१) नारायण (२) श्रीलक्ष्मीजी (३) श्रीविष्वकसेन (४) श्रीशठकोप (५) श्री श्रीनाथ (६) श्रीपुण्डरीकाक्ष (७) श्रीराममिश्र (८) श्रीयामुनाचार्य्य जी जिनके "आलवन्दारस्तोत्र" इत्यादि हैं (९) श्रीपूर्णाचार्य्य (१०) स्वामी अनन्त श्री रामानुज भगवान् ॥

श्रीसूतजी; श्रीशौनक जी ।

यह बात प्रसिद्ध है ही कि सब पुराणादिक के कीर्त्तन करनेवाले श्रीसूतजी हैं; एवं, उनके अठासी सहस्र श्रोताओं में श्रीशौनक जी प्रसिद्ध ही हैं ॥

श्री प्रचेता ।

ये दस भाई थे और दसों का नाम "प्रचेता" ही है; ये प्राचीनबर्ही के पुत्र थे ॥

पिता की आज्ञानुसार तप करने के लिये सिद्धिसर वा "नारायणसर" को जाते थे। पन्थ में व श्रीनारद जी मिले और कृपा करके भक्ति के लिये तप का उपदेश कर दिया। दश सहस्त्र बर्ष तप करने के अनन्तर, गरुड़ पर चढ़े आकर भगवत ने दर्शन तथा भक्ति का बरदान दिया, पुनः एकही लड़की से दसो भाई को बिवाह करने की आज्ञा भी दी। उससे "एक" प्रजापति का दूसरा जन्म हुआ, जिनको राज्य देकरके दसो भाई पुनः भगवत भजन करने के लिये बन में गए॥

देवर्षि श्रीनारद जी कृपासिन्धु के उपदेश से ऐसी भक्ति की कि देह त्याग कर दिव्य शरीर धर भगवत के धाम को चले गए॥

श्रीसतरूपा जी; और श्री १०८ कौशल्याजी।

महाराज श्रीस्वायंभूमनु की धर्मपत्नी. श्रीसतरूपा और महाराज श्री दशरथजी की महारानी श्री कौशल्या जी थीं॥

(चौ०) सतरूपहिं बिलोकि करजोरे। "देबि? मांगु बरु जो रुचि तोरे॥" "जो बरु नाथ! चतुर नृप माँगा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा॥ प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगतहित तुम्हहिँ सुहाई॥ तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल-उर-अंतरजामी॥ अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रमान पुनि सोई॥ जे निज भगत नाथ! तव अहहीं। जो

सुख पावहिँ जो गति लहहीं ॥ (दो०) सोइ सुख, सोइ गति, सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु । सोइ बिबेक, सोइ रहनि प्रभु ! हमहिँ कृपाकरि देहु" ॥ (चौ०) सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बचरचना। कृपा सिंधु बोले, मृदु बचना ॥ "जो कुछ रुचि तुम्हरे मन माहीं । मैं सो दीन्ह सब संशयनाहीं ॥ मातु ! बिबेक अलौकिक तोरे । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे ॥"

श्रीसतरूपाजी श्रीसुरपुर में बसने के अनन्तर श्री १०८ अयोध्या जी में, मातु श्री १०८ कौशल्याजी महारानी हुईं, जिनकी भक्तिबश अखण्डैक परात्पर ब्रह्म प्रियतम प्रभु श्रीरामचन्द्र जी, श्रीअवध में आप्रगट हुए ॥ अम्बा श्री १०८ कौशल्या महारानी जी की जय ॥ मङ्गल मूल राम सुत जासू । जो कछु कहिय थोर सव तासू ॥ तेहि ते मैं कछु कहेउँ बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥ "कौन तासु महिमा कहौं, जासु सुवन श्रीराम । बिना काम सब कामप्रद, सहित काम नहिं काम ॥"

बारिधि रस वात्सल्य की कौशल्या वेला मनहुँ ॥

श्री प्रसूतीजी ।

श्री सतरूपा मनुजी की कन्या, श्रीदक्षजी की धर्म पत्नी, श्रीप्रसूती जी, अतिशय पतिव्रता तथा भगवद्

भक्तिपरायणा हुईं। आपकी स्तुति किससे हो सकती है। तीनों बहिनें एक से एक बढ़के प्रशंसनीय हुईं॥

श्रीआकूती जी।

महाराज श्रीस्वायंभूमनु और महारानी श्रीसतरूपा जी की नन्दिनी श्रीआकूती जी का विवाह, श्रीरुचिऋषिजी से हुआ। इनकी भगवद्भक्ति तथा पातिव्रत्य की प्रशंसा कौन कवि कर सकता है॥ आप तीनों श्रीउत्तानपादजी और श्रीप्रियव्रत जी की भगिनी (बहिन) थीं॥

श्रीदेवहूती जी।

(चौ०) स्वायंभूमनु अरु सतरूपा। जिन्हतें भइ नरसृष्टि अनूपा॥ दम्पति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्हके लीका॥ देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रियनारी॥ आदि देव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥

"देवहूति, तहँ करि दृढ़ नेमा। करि सियपिय पद पूरण प्रेमा॥ रही जगत महँ कछु काला। लग्यो न तेहि संसृत जंजाला"॥ जो स्वयं हरि (कपिलजी) की माता हुईं, और जिन्ह देवी ने साक्षात् भगवत से उपदेश पाया, उनकी स्तुति जहां तक की जासके सो थोड़ी ही है तीनों बहिनों की कथा उक्त प्रकार से है॥

श्रीसुनीती जी।

"ध्रुव हरि भक्त भएउ सुत जासू।" ये महारानी, महाराज उत्तानपाद की धर्म पत्नी, भक्तराज श्रीध्रुव जीकीमाता हैं, जिनने अपने प्रियपुत्र(श्रीध्रुवजी) को पांच ग्रर्ष की अवस्था में हरि भजन परायण कर दिया॥

"छोड़ि भवन बन गवन कीजिये। रघुपति पद रति रंग भीजिये॥ श्रीहरि संकट काटनहारे। दूज न रक्षक और तिहारे"॥ "हरिभरोस करि कियो न मोहू। पंच बर्ष बालक तजि छोहू॥ चढ़ि विमान सुन्दर सुखछाई। गइ बैकुंठ निसान बजाई॥ ध्रुवहु लख्यो निज नैन उठाई। गवन करत आगू निज माई॥" पुत्रवती युबती जग सोई। रघुपति भक्तजासु सुत होई॥

श्रीमन्दालसा जी।

श्री सीताराम कृपासे श्री मन्दालसा जी ने ऐसा पन किया कि "जौन जीव मम गर्भहिँ आवै। सो पुनि जन्म मरण नहिँ पावै। भगवद्भक्त होके आवागवन से छूटजाय" आपने अपने पिता से यह बिनय किया कि "यदि मेरा बिवाह कीजिये तो ऐसे पुरुष से कीजिये कि जो 'दूसरी स्त्री के पास नहीं जाने, की प्रतिज्ञा करले"॥ इसीके अनुसार आप का बिबाह राजा रति-ध्वज (प्रतर्दन) से हुआ श्री मन्दालसा कथा श्री प्रियादासजी आगे चलके कहेंगे॥

इनके जो पुत्र होता था, श्रीमन्दालसा जी उसको बचपनही से ऐसा उपदेश किया करतीं कि वह ग्यारहवें ही बर्ष में तीक्ष्ण विरक्त हो, हरि भक्त परम अनुरक्त हो जाता था। इसी प्रकार से जब पांच छ पुत्र विराग और अनुराग पूर्वक हरि भजन परायण हो ही गए, तब राजा ने बड़ी युक्ति से रानी श्रीमन्दालसा जी से यह बर मांग लिया कि "यह सातवां बेटा अलर्क (सुबाहु) मेरे लिये रहने दो कि राज काज प्रवृत्ति नीति सीख सके"। बचन बश रानी ने यह बात स्वीकार की। और एक श्लोक लिखके एक यन्त्र में अपने इस लघुतम पुत्र सुबाहु के दक्षिणहस्त में बांध के यह सिखा दिया कि "बत्स! जब तुझपर कोई कष्ट पड़े तो तू इस यन्त्र को खोलके पढ़ना"। पुत्र को राज दिलवा रानी श्रीमन्दालसा जी पति को सुन्दर उपदेश कर, हरि भजन के निमित्त पति के साथ साथ बन को गईं; और सुबाहु (अलर्क) राज्य करने लगा॥

बन में अपने पुत्रों को बासनाविगत श्रीहरि पद रत देख अति प्रसन्न हो यह बोलीं कि "हे पुत्र! सबसे छोटे सुत की मुझे चिन्ता है उसको भी किसी प्रकार से निवृत्ति मार्ग में लावो"॥

सबसे बड़े पुत्र जी ने मातुवचन सीस धर, घर आ सबसे छोटे भाई (राजा) से उचित वार्त्ता करके

देखा कि 'वह रजोगुण में बहुत ही डूबा है और उस प्रमाद में उपदेश कुछ काम नहीं करता'। तव उनने अपने मामू काशी राज को उभारा, आधा राज देने का बचन दिया, और यों उसने इनके छोटे भाई पर चढ़ाई की॥

इस संकट के समय, सुबाहु (अलर्क) ने अपनी माता के दिये यन्त्र को खोलके पढ़ा (चौ०) "करै न संग कबहुँ केहु केरो। करै तो सन्त हि संग घनेरो॥"

(श्लो०) "संगः सर्वात्मना त्याज्यः सचेद्धातुं न शक्यते। ससद्भिः सह कर्तव्यः संगः संगारिभेषजम् ॥१॥ शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि संसारनिद्रां त्यज स्वप्नरूपां" मन्दालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्॥ २॥

यह पढ़तेही श्रीसीताराम कृपा से श्री माता के आसीस से इसबचन का ऐसा अधिकार इनके चित्त पर हुआ कि उसीक्षण वहीं से बन की ओर चल निकले॥ श्रीरामकृपासे श्रीदत्तात्रेय जी मिले। (बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेउ राम तुम शमन विषादा") उनके सत्संग के उपरान्त, प्रसन्नतापूर्बक अपने बड़े भाई जी से जामिले तथा माता के चरण पर गिरे और पिता एवं सब भाइयों के सत्संग का आनन्द पाया। सब मिल भगवद्भजन करने लगे॥ (दो०) "ऐसी श्री

मन्दालसा, राम भक्त सिरताज। पति सुत तारयो भव उदधि, आपुहिँ भई जहाज॥"

यह घटना सुन वह राजा भी, कि जिसने अलर्क (सुबाहु) पर चढ़ाई कर सुबाहु के जाने पर राज कर रहा था, अपने पुत्र को राज्य दे उन्ही के पास जा भगवद्भजन परायण ही गया॥

श्रीमन्दालसा जी की जय।

श्री सतीजी।

दक्षसुता श्री सती जी महारानी की कथा, श्री शिव जी की कथा के अन्तर्गत, पृष्ठ ८२।८३ में हो चुकी है॥

"सिय बेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परि हरी। हर बिरह जाइ बहोरि पितु के यज्ञ योगानल जरी॥"

यज्ञपत्नी (श्रीमथुरानी चौबाइन)

भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने गऊ चराते समय एकदिन चतुर्वेदीविप्रों (चौबे लोगों) को, यज्ञ करते देखा; अपने सखाओं को उनसे भोजन मांगने के लिये भेजा; चौबे लोगों ने नहीं दिया; सखा सब लौटआए॥

पुनः, प्रभु ने उनको भेजा कि "चौबाइनों (उनकी स्त्रियों) से मांगना"। ब्रजचन्द महाराज का नाम सुन्तेही वे सब अतिशय प्रेम से (अपने पतियों की आज्ञा के विरुद्ध) थालियों में भोजन व्यञ्जन ले ले बन में

पहुंच, श्रीनन्दनन्दन महाराज को सखाओं समेत भोजन करा, मनमानी भक्ति का बरदान पा, घर घर आ मंगलकारिणी हुईं ॥

(सवैया)

"रूप गुन्यो प्रथमै सुनिके हरि देखन की अति लालसा जागी। आय प्रत्यक्ष लखी तिनको अपने को गुनी जगमें बड़भागी॥ श्रीरघुराज अनूप स्वरूप हिये धरि मूंदि दृगैं अनुरागी। मोहन को मिलिके मनमें द्विजनारि बूझाइ दई बिरहागी ॥"

श्रीगोपिका बृन्द ।

"प्रेम"—हा ! इस शब्द (प्रेम) के तो सुन्तेही हृदय की कुछ औरही दशा होजाती है; नेत्रौं के सामने एक व्यवधान सा आजाता है। प्रिय पाठक ! संसार में ऐसा कौन सा अन्तःकरण है कि जिसपर इस तीक्ष्ण शस्त्र ने अपना कठिन घाव न किया हो ? चाहे थोड़ा चाहे बहुत ।

परन्तु कहीं कहीं तो इसने ऐसी अपूर्व तथा विलक्षण दशा प्रगट की है कि जिसके सुन्ने समझने से बड़े बड़े कठोर चित्तवालौं के नयनों से भी मघा की सी झड़ी लग जाती है। श्री ब्रजगोपियां ज्ञान और भक्ति की खानि वरञ्च साक्षात परा प्रीति ही तो थीं।

"श्री नारद भक्ति सूत्र" देखिये। वेद, ब्रह्मा, शिव, शेष, सनकादि, गणेश, नारद, शारदा, सूत, श्री नाभा-स्वामी, श्री तुलसीदास जी, श्री सूरदास जी, इत्यादिक बड़े बड़े कुशल, कोई भी तो श्री ब्रजगोपिकाओं की पूरी प्रशंसा न कर सका पर, अपनी अपनी बाणी को कृतार्थ करने के हेतु कोई कुछ न कुछ कहे बिन रहा भी तो नहीं॥

आज तक साधारण लोक भी इनके प्रेम को गाते ही हैं। श्री ब्रज के कुंज कुंज घर घर हाट घाट बाट से सुन्दरियों की ऐसी पुकार सुनाई देती है कि "हायश्याम! मिलिहौ कबै? तुम बिन छिनु युग जात" १

ऊधो! जोग कहत हैं काको ?
की दधि माखन के चाखन को, लाखन आखन ताको।
की जमुना तट पनघट ऊपर घट पटकन लीला को॥
की मधुबन संग श्याम बिहरिबो, हरिबो चीर अबला को।
की मुरली की तान मनोहर प्रान हरो नहि थाको॥
की रस रास बास में बसिबो हंसिबो हेरि इहा को।
हौं तो गई गुजरी उनही पै बांकी चितौनि जाको
इनते कछू और नहिं चाहों पावों "जीत" पिया को॥२॥
कबसे पियारे तिहारे दरस को, तरसत हैं मोरे नैन–राम।
जोहत बाट कपाट सो लागी, आठो पहर दिन रैन–राम॥
ऐसी सुरतिया हा री बसीहै, पलको न लागत दैन–राम।
जानों न ठांव कहां तुम छाये, आये नहीं सुधि लैन–राम॥

पतियां की बतियाँ कोकौन चलावे,नेकहु संदसवोसरैन-राम
कासो कहूं कोऊ सुनत न मोरी, बिछुरन की तोरी बैन-राम
जो कोउ सुनत करेजवा है थामत, बिसरावत सुख चैन-राम
आवो पै आवो देखावोछटा छबि,नैना नोकीले वपैन-राम
जो नहि आवो पठावो खबरिया, ऐसी निठुरता पैन-राम
अन्तर की गति जाननहारो, तुम बिन कोऊ तो है न-राम
जो मन भावे करो सोई प्रीतम, जीत कबहुँ बिसरैन-राम३

माधो ! कही न जाति गति ब्रज की । &c. &c. ॥ ४ ॥

कहि न जात बृज की कछु बतियां ॥
देखत ही मोको उठिधाईं ग्वाल गोपिका जतियां ।
दिन की औरै दसा गोसाईं हूां की औरै रतियां ॥
नहि प्रतीत कोऊ उर आनत रहत वेसिये पतियां ।
काह कहूं कहि जात न मोपै भरि आवत हैं छतियाँ ॥
जीत आपही जाय तो देखो निबहत है केहि भतियां॥५॥

(सर्व्वजात लाल)

॥ सवैया ॥

सुत दारा औ गेहकी नेह सबै तजि जाहि बिरागी निरन्तर ध्यावैं। यम नेम औ धारना आसन आदि करैं नित योगी समाधि लगावैं ॥ जेहि ज्ञान औ ध्यान ते जानैं कोऊ श्रौ अनादि अनन्त अखण्ड बतावैं। ताही अहीर की छोहरियां, छछिया भर छांछ पै, नाच नचावैं॥६॥

यह श्लोक “यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः

शनैः प्रियदभीमहि कर्कशेषु। ते नाटवीमटसि तदुव्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषं नः॥"
(जो दशमस्कन्ध का प्राण कहा जाता है,) सो कैसे अनूठे चित्त से निकला है॥

गोपियों के प्रेम सा प्रेम, न तो होनेवाला, न है, और न हुआ; हां श्री जनक नगर की युवतियों की प्रीति और श्रीरघुवीरचरणानुरक्ति, का क्या कहना॥ (चौ॰) कहि न सकहिँ सत शारद शेसू। वेद बिरंचि महेश गनेसू॥ सो मैं कहउँ कवनि बिधि बरनी। भूमि नाग सिर धरइ कि धरनी॥

॥ छप्पै ॥

अंघ्रीअम्बुज पांशु को जनम जनम हौं जाचिहौं॥ प्राचीनबर्हि[1], सत्यव्रत[2], रहुगण[3], सगर[4], भगीरथ[5],। [6]बाल्मीकि[7], [8]मिथिलेश[9], गए जे गोबिँद पथ॥ रुक्माङ्गद[10], हरिचन्द[11], भरत[12], दधीचि[13] उदारा। सुरथ[14], सुधन्वा[15], शिबिर[16], सुमति अति बलि-की-दारा[17],॥ नील मोरध्वज[18], ताम्रध्वज[19], अलरक[20] की कीरति राचिहौं। अंघ्री अम्बुज पांशु को, जनम जनम हौं जाचिहौं॥ ७ (११)

वार्त्तिक तिलक।

इन भक्तों के चरण कमल की धूरि (पांशु) को, मैं जन्म जन्म याचूंगा

इन्ही भक्तों की रङ्गीली कीर्त्तियों से मैं रँग जाऊंगा॥

(१) श्री प्राचीनबर्ही जी
(२) श्री सत्यव्रत जी
(३) श्री रहूगण जी
(४) श्री सगर जी
(५) श्री भगीरथ जी
(६) महर्षि श्रीवाल्मीकिजी
(७) श्री बाल्मीकिजी, दूसरे
(८) श्रीमिथिलेशजी महाराज
(९) जो जो श्री विदेहवंशी श्री भगवद्भक्ति के पथ में चले, ते सब
(१०) श्री रुक्माङ्गद जी
(११) श्री हरिश्चन्द्र जी
(१२) श्री भरत जी
(१३) परमोदार श्री दधीचिजी
(१४) श्री सुरथजी
(१५) श्री सुधन्वा जी
(१६) राजा श्री शिवि जी
(१७) अति सुमति श्री बलिपत्नी रानी श्री विन्ध्यावली जी
(१८) श्री मोरध्वज जी
(१९) श्री ताम्रध्वज जी
(२०) श्री अलर्क जी

टीका। कवित्त।

जन्म पुनि जन्म को न मेरे कछु सोच, अहो! सन्तपद कंज रेनु सीस पर धारिये। प्राचीनबर्हि आदि कथा परसिद्ध जग, उभै बालमीकि बात चित्त तें न

टारिये ॥ भए भील संग भील, ऋषि संग ऋषि भए, भए राम दरशन, लीला विसतारिये। जिन्हें जग गाय कि हूं सकै ना अघाय चाय भाय भरि, हियो भरि, नैन भरि ढारिये ॥७४॥

वार्त्तिक तिलक।

अहो! मुझ को इस बात का तो कुछ भी शोच नहीं है कि मोक्ष न पाके जगत में बारम्बार जन्म लूं, क्योंकि जन्म लेके यदि सन्तों के चरण कमल की रज सीस पर धारण करूं तो मुक्ति से भी अधिकतर सुख मानूंगा। प्राचीनबर्ही आदिक भक्तों की कथा श्री मद्भागवत आदि ग्रन्थों से जगत में प्रसिद्धही है ॥ परन्तु महर्षि श्री बाल्मीकि जी, तथा दूसरे बाल्मीकि जी, इन दोनों भक्तों की कथा चित्त से न टालना चाहिये क्योंकि दोनों की वार्त्ता अनोखी हैं ॥

महर्षि श्री बाल्मीकि जी।

आदि कवि श्री बाल्मीकिजी भिल्लों का संग पाके भिल्ल ही होगए; पुनः श्रीसप्तर्षि के सत्संग से महर्षि होगए, कि साक्षात् श्री सीतारामलक्ष्मणजी ने आपके आश्रम में जाके दर्शन दिया ॥

आपने विस्तार पूर्वक श्री रामायणलीला को गान किया, कि जिस्के श्रवण अनुकथन से संसार के सज्जनों को किसी प्रकार से तृप्ति होती ही नहीं। "राम चरित

जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन नाहीं॥" वरंच श्रवण और गान करने पर अत्यन्त चाव भाव हृदय में भर आता है। और नेत्रों से प्रेमाम्बु का प्रवाह ढलने लगता है॥

(सो०) बन्दौं मुनि पद कंज, रामायण जिन निर्मएउ। सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित॥ श्रीबाल्मीकिजी थे तो ब्राह्मण परन्तु भीलद्वारा पाले गए तथा भीलनी ही से बिबाह भी हुआ। पथिकों को मारना लूटना यही उनका उद्यम था। "को न कुसंगति पाइ नशाई"। करुणाकर हरि की इच्छा से एक दिन श्रीसप्तर्षि (१ कश्यप २ अत्रि ३ भरद्वाज ४ बसिष्ठ ५ गौतम ६ बिश्वामित्र और ७ जमदग्नि) उसी ओर से जा निकले। इन्हें भी जब आपने लूटना मारना चाहा तो महात्माओं ने यों उपदेश किया कि "रे द्विजाधम! (दो०) जो तेरे यमदण्ड में, भागी होय न कोइ! तौ कत कीजत पाप हठि, घोर दण्ड जिहि होइ?" (चौ०) सुत तिय उत्तर दियो प्रचण्डा। "हम नाहीं भागी यमदण्डा॥" श्रीसीताराम कृपा से महाभागवत सप्तर्षि के दर्शन सम्भाषण से उनकी किरातबुद्धि जाती रही; विरक्ति तथा सुबुद्धि उत्पन्न हुई; "पाहि पाहि" कह, चरण पर गिर, अपने कल्याण का उपदेश पूछा। दिव्यदर्शन करुणापूर्ण सन्तों ने कृपा करके देशकाल

पात्रानुसार आज्ञा यह दी कि "मरा मरा रट"। वे वहीं बैठ अमित काल पर्य्यन्त "मरामरामरामरा" रटते जपते रहे (चौ०) "सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई ॥"

सहस्र युग बीतने पर पुनः श्रीसप्तर्षि कृपा करके उधरही से आए, और बल्मीकि (बामी) में से अन्वेषण करके उन्हें ढूंढ निकाला, "बाल्मीकि" नाम रक्खा। व्याध को राम कृपा तथा नाम प्रताप से शुद्ध सिद्ध मुनीन्द्र पाया। सत्सङ्ग की जय ॥

"जहां बालमीक भए व्याध तें मुनीन्द्र साधु, 'मरा मरा' जपि, सुनि सिष ऋषि सात की"। (चौ०) उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीक भए ब्रह्म समाना ॥ श्रीसीताराम मन्त्रराज का उपदेश करके, श्रीसप्तर्षि चले गए ॥ श्रीरामनाम का माहात्म्य कौन किस प्रकार से कहे ?

श्री नारद भगवान् तथा जगतपिता श्री ब्रह्मा जी ने कृपा करके महर्षि आदिकवि महाराज को श्रीराम गुण तथा रामचरित से परिचित किया। महर्षि ने शतकोटि रामायण कीर्त्तन किया। "चरितं रघुनाथस्य शत कोटि प्रविस्तरं। एकैकमक्षरं पुंसां महा पातक नाशनम्" ॥ कूजन्तं रामरामेति मधुरंमधुराक्षरं। आरुह्य कविताशाखां बन्दे बाल्मीकिकोकिलम्" (कवित्त)

विधिजू सुजस बीज बोये बिश्व बाग बीच, बारिबर दे बढ़ाए मोक्षफल काम हैं। सगुणावतार ब्रह्म यश 'रसराम' थंभ, काण्ड सप्तकाण्ड, सर्ग पत्र अभिराम हैं॥ त्रेता ऋतुराज, रामअयन रसाल तरु, कविता सुसाखा पै विराजैं बसु जाम हैं। कूजत मधुर मधुराखर श्रीराम राम बन्दौं बालमीकि कवि कोकिल ललाम हैं॥

(चौ०) राम लषन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमिकहि जाई॥ देखत बनसर सेल सुहाए। बालमीकि आस्रम प्रभु आए॥ (दो०) सुचि सुन्दर आश्रम निरखि, हरषे राजिव नैन। सुनि रघुबर आगमन मुनि आगे आयउ लैन॥ (चौ०) मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा। आसिरबाद विप्रवर दीन्हा॥ देखि राम छवि नैन जुड़ाने। करि सनमान आस्रमहिं आने॥ मुनिबर अतिथि प्रान प्रिय पाए। कंदमूलफल मधुर मंगाए॥ सिय सौमित्रि रामफल खाए। तब मुनि आसन दिये सुहाए॥ बालमीकि मन आनँद भारी। मंगल मूरति नैन निहारी॥ (सो०) "राम स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर। अबिगत अकथ अपार, 'नेति नेति' नित निगम कह॥"

"श्री वाल्मीकीय रामायण" बड़ा प्रमाणिक ग्रन्थ है।

(१) श्री वाल्मीकीय (२) श्री भगवद्गीता (३) पराशरीय-श्री विष्णुपुराण (४) मनुस्मृति, और (५) महाभारत, ये पांचों बड़ेही प्रमाणिक माने जाते हैं॥ इङ्गरेज़ी, फ़ारसी, आदि में भी इनके अनुवाद हैं॥

दूसरे श्री बाल्मीकि जी।

टीका। कवित्त।

हुतो बालमीक एक सुपच सुनाम, ताको श्यामलै प्रगट कियो, भारथ में गाइये। पाँडवन मध्य मुख्य धर्मपुत्र राजा, आप कीनो यज्ञ भारी, ऋषि आए, भूमि छाइये॥ ताको अनुभाव शुभ शंख सो प्रभाव कहै, जो पै नहीं बाजै तो अपूरनता आइये। सोई बात भई वहु बाज्यो नाहिं, शोच पर्यो, पूछैं प्रभु पास "याकी न्यूनता बताइये" ॥७५॥

"सुपच" (श्वपच)=जो श्वान का मांस भी रांधके खा जावे, भंगी॥

वार्त्तिक तिलक।

अब दूसरे बाल्मीकि जी की कथा कहते हैं। एक सुपच गुप्त भगवद्भक्त "बाल्मीकि" नाम के थे। उनको श्रीश्यामसुन्दर जी ने प्रगट किया; सो कथा "महा भारत" ग्रन्थ में गाई हुई है।

पांचो पाण्डवों के मध्यमें ज्येष्ठ धर्म्मपुत्र श्री युधिष्ठिर जी राजा थे। आपने इन्द्रप्रस्थ में एक बड़ा भारी यज्ञ किया। जिस्में सम्पूर्ण ऋषिवर्ग आए, जिनसे समस्त यज्ञभूमि भर गई।

उस यज्ञ के पूर्ण होने का अनुभाव प्रभाव यह था कि एक शंख रक्खा गया, कि जब वह आपसेआप बज-उठे तब यज्ञ को सम्पूर्ण जानें। और यदि शंख स्वतः

न बजे, तो जानिये कि यज्ञ पूर्ण न हुवा; सो वैसाही हुआ अर्थात् शंख नहीं बजा॥

तब युधिष्ठिरादिक को बड़ाही शोच हुआ; और श्रीकृष्णचन्द्र जी से पूछने लगे कि "किस घटती (न्यूनता) से शंख नहीं बजा? सो कारण आप कृपा करके बता दीजिये"॥

टीका। कवित्त।

बोले कृष्णदेव, "याको सुनो सब भेव, ऐपै नीकेमानि-लेव बातदुरी समुझाइये। भागवत संतरसवंत कोऊ जेंयो नाहिं, ऋषिनसमूह भूमि चहूंदिशि छाइये॥ जोपै-कहो "भक्तनाहीं" नाहीं कैसे कहौं, गहौंगांस एक और कुलजाति सो बहाइये। दासनि को दास, अभिमान को बास कहूं, पूरण को आस, तौपै ऐसो लेजिंवाइये॥७६॥

"दुरी"=छुपी, गुप्त। "गांस"=गुप्त सूक्ष्मबात। "बास"=गन्ध; तनकछुक।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर दिया कि इसका सब भेद सुनो। परन्तु सुनके उसको भलेप्रकार से मानना। क्योंकि मैं तुम्हें गोप्य रहस्य बताए देताहूं। यद्यपि ऋषियों के वृन्द तो आके यज्ञ भूमि में चारों ओर छाए हुए हैं, परंच किसी भक्ति रस रसिक भागवत मेरे प्यारे सन्त ने तुम्हारे इस यज्ञ में भोजन नहीं किया, इसीसे शंख नहीं बजा। यदि यह कहिये कि "क्या ये सब मुनिगण आपके भक्त नहीं हैं?" तो यह कैसे

कहूँ कि "ये मेरे भक्त नहीं हैं" परन्तु एक ओर ही गांस ग्रहण करने योग्य है; कि ये सब ऋषिमुनि आचार, ब्रह्म ज्ञान, जाति तथा कुल के अभिमान से भरे हुए हैं; पर मेरा भक्त तो जाति और कुल आदिक के अभिमान को भक्तिरूपी निर्मल नदी में बहाके मेरे दासों का भी दास होकर समस्त अभिमानों के लेश से रहित रहता है।

(चौ०) भक्ति बिरति विज्ञान निधाना। बास विहीन गलित अभिमाना॥ रहहिं अपनपौ सदा दुराए। सब बिधि कुशल कुवेष बनाए। तेहिते कहहिं सन्त श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे। प्रभु जानत सब बिनहिं जनाए। कहहु लाभ का लोक रिझाए॥

(दो०) तिनहिं न जानहिं प्रगट सब, ते न जनावहिं काहु। लोकमान्यता अनल सम, कर साधन बन दाहु॥

यदि तुम्हें यज्ञ की पूर्णता की इच्छा हो, तो ऐसे मेरे प्यारे भक्त को भोजन करावो"॥

टीका। कवित्त।

ऐसो हरिदास पुरआसपास दीसै नाहिं, बासबिनु कोऊ लोक लोकनि में पाइये। "तेरेई नगर मांझ निशि दिन भोर सांझ आवै जाय, ऐपै काहू बात न जनाइये" सुनि सब चौंकिपरे, भाव अचरज भरे, हरे मन नैन "अजू! बेगिही बताइये। कहानांव? कहां ठावँ?

जहाँ हम जाय देखैं, लेखैं करि भाग, धाय पाय लप-
टाइये ॥७७॥

"बासबिनु"=गृहहीन, विरक्त; बासना विगत, इच्छा रहित।

वार्तिक तिलक

ऐसे श्रीमुखबचन सुनके श्रीयुधिष्ठिर जी बोले कि 'ऐसे भगवतदास तो हमारे नगर के आसपास कहीं दिखाई नहीं देते; वरंच ऐसे विरक्त सर्ववासनाविगत सन्त कदाचित कहीं किसी लोकलोकान्तर में मिलें तो मिलैं"। तब आपने कहा कि "तुम्हारे ही पुर में तो दिनरात रहते हैं' और नित्यही सांझ सवेरे तुम्हारे हां आते जाते हैं; परन्तु न कोई उनके प्रभाव को जानता है, और न वे किसी को जताते हैं।"

यह सुन्तेही सब चकित होके आश्चर्य भाव में मग्न हो गए; सब के मन तथा नेत्र दर्शन के अभिलाष से अकुला उठे; और सब कहने लगे कि अब कृपाकरके शीघ्रही बता दीजिये कि उनका क्या नाम है और वे कहां विराजते हैं, जहाँ हम जाके दर्शन करके अपना धन्यभाग्य मानें और उनके चरणकमल में लपट जायँ॥"

टीका। कवित्त।

जिते मेरे दास कभूं चाहैं न प्रकास भयो, करौं जो प्रकास, मानैं महा दुखदाइये। मोको पर्यो सोच यज्ञ

पूरन की लोच हिये, लिये वाको नाम; जिनि ग्राम तजि जाइये॥ ऐसी तुम कहौ, जामें रहो न्यारे प्यारे! सदा, हमहीं लिवाइ ल्याइ, नीकेकै जिमाइये। जावो 'वालमीक' घर, बड़ो अवलीक साधु; कियो अपराध हम दियो जो बताइये"॥ ७८॥

" जिनि "=मत, नहीं " लोच "=देखने की इच्छा॥ "जिमाइये"= जिँवाइये, भोजन कराइये॥ " अवलीक "=निर्व्यलीक, सच्चा॥

वार्त्तिक तिलक।

तब प्रभु ने कहा कि "जितने मेरे सच्चे दास हैं, वे कभी लोकमें प्रकाशित नहीं हुआ चाहते; और यदि मैं उनके गुणों का प्रकाश करूं, तो वे उस प्रकाश को अपनें मनमें बड़ादुखदाईमान्तेहैं। परन्तु अब मुझे बड़ाही सोच पड़ा क्योंकि तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण देखने की बड़ी भारी इच्छा है। और यदि मैं तुमसे उनका नाम बताऊं तो कहीं ऐसा न हो कि वे इस ग्राम ही को छोड़के चलेजावें"।

श्रीयुधिष्ठिर जी बोले कि "हे प्यारे! आप इस प्रकार से बतादीजिये कि जिसमें आप तो सदा अलग के अलगही रहिये, पर हमही जाके लिवायलावैं, और भलीभांति से भोजन करावें"। श्रीकृष्णभगवान् ने आज्ञा दी कि "वाल्मीकि के घर जाओ; वे सच्चे बड़ेही साधु हैं। क्याकहूं! मैंने उनका बड़ा अपराध किया कि तुमसे प्रगट कर बता दिया"॥

टीका। कवित्त।

अर्जुन औ भीमसेन चलेई निमन्त्रन को, अन्तर उघारि कही भक्तिभाव दूर है। पहुँचे भवन जाइ, चहुँ दिशि फिरि, आइ, परे भूमि, भूमि, घर देख्यो छवि पूर है॥ आए नृपराजनि को देखि, तजे काजनि को, लाजनि सों कांपि कांपि भयो मन चूर है। पायनि को धारिये जू, जूठन को डारिये जू, पाप ग्रह टारिये जू, कीजे भाग भूर है॥ ७९॥

"दूर", दुरी, समीपनहीं, छुपी, अप्रगट॥

"पापग्रह"=शनि, राहु, केतु, जो जो प्रतिकूल हों॥

वार्त्तिक तिलक।

प्रभुआज्ञानुसार श्री अर्जुन जी तथा भीमसेन जी उनको नेवता देके लाने के लिये चले; प्रभु ने हृदय खोलके कह दिया कि "जाते तो हो परन्तु मनमें कोई न्यूनता नहीं लाना, क्योंकि भक्ति का भाव बहुत ही अगम होता है।"

वे दोनों इनके घर जा पहुँचे; चारो ओर फिरके इनके घर की परिकर्मा कर, सन्मुख आ, प्रेम से झूम झूम, भूमि में पड़ उन दोनों ने दण्डवत किये, और देखा कि इनका भवन, भीतर श्रीभगवन्नाम शंख चक्र चिन्ह श्रीतुलसीवृन्द इत्यादिक भक्तिसामग्रीकी छविसे भरा है। जब इनने देखा कि राजाओं के राजा मुझ दीन

के घर आए, तो भजन के कार्यों को छोड़ दिया, और अत्यन्त लज्या से मनमें चूरचूर होके कांपने लगे।

श्रीअर्जुन जी ने प्रार्थना की कि "महात्मा जी! आप कृपाकरके मेरे घर चरण धरिये, भोजन करके अपना जूठन गिराइये और हमारे घरको सम्पूर्ण पापों से रहित तथा शुद्ध करके हमको पापग्रहों से छुड़ाके हम सबको बड़भागी कीजिये॥

टीका। कवित्त।

"जूठनि लै डारौं, सदा द्वार को बुहारौं, नहीं और कों निहारौं, अजू! यही सांचोपन है"। "कहो कहा?" जेंवो कछू पाछे लै जिंवावो हमे जानीगई रीति भक्ति भाव तुमतन है॥ तब तो लजांनौ; हिये कृष्ण पै रिसानो, नृप चाहौ सोई ठानौ, मेरे संग कोऊ जन है। भोर ही पधारौ अब यही उर धारौ और भूलि न बिचारौ कही भली जो पै मन है॥ ८०॥

वार्त्तिक तिलक।

यह सुन, श्रीवाल्मीक जी अपने प्रभाव को छिपाते और निज जाति की न्यूनता को प्रगट करते हुए बोले कि, "अजी महाराज! मेरी तो यही प्रतिज्ञा है ही कि सदा आपके जूंठे पत्तल आदि बाहर फेंक आया करता हूं, और आपही के द्वार को झाड़ताबहारता हूं; दूसरे किसी की ओर तो मैं देखता तक नहीं"।

श्रीअर्जुन जी ने सादर कहा कि "आप यह क्या कहते हैं? कृपाकरके चलिये, हमारे हां कुछ भोजन कीजिये और पीछे हम लोगों को खिलाइये; आपको भोजन कराए विन हमलोग खा नहीं सकते, क्योंकि हम आपके स्वरूप तथा प्रभाव को भले प्रकार से जान चुके हैं कि प्रभु की प्रीति रीति भक्ति भाव से आपका तन मन पूर्ण है।"

तब तो श्रीबाल्मीकि जी लजाए और हृदय में श्रीकृष्णचन्द्र पर रिसियाने कि "प्रभो! मुझे प्रगट करना यह तुम्हारा ही काम है! तुमने यह क्या किया?" फिर प्रत्यक्ष में श्री अर्जुन जी से कहा कि "आप राजा हैं, जो चाहिये सो कीजिये; मैं क्या कर सकता हूँ, क्या कोई सहाय करने वाले मनुष्य मेरे साथ हैं?"

श्रीअर्जुन जी ने कहा कि "इन सब बातों को छोड़के हम पर कृपा कीजिये, और हमारे घर आप कल सवेरेही पधारिये; अब दूसरा कुछ भूलके भी न बिचारिये; केवल हमारी प्रार्थनाही को अङ्गीकार कीजिये"।

जब महात्मा जी ने उनका यह आग्रह तथा ऐसी श्रद्धा और प्रीति देखी, तो सरलवाणी से बोले कि बहुत अच्छा, जो आपकी वही रुचि है तो वैसा ही करूँगा॥"

———

टीका। कवित्त।

कही सब रीति, सुनि धर्मपुत्र प्रीति भई, करी लै रसोई, कृष्णा द्रौपदी सिखाई है। "जेतिक प्रकार सब व्यञ्जन सुधारि करो, आजु तेरे हाथनि की होतिसफलाई है" ॥ ल्याए जा लिवाई, कहै "बाहिर जिमाई देवो," कही प्रभु "आपु ल्यावो अंक भरि भाई है"। आनिकै बैठायो पाकशाल में, रसाल ग्रासलेत बाज्यो शंख, हरि दण्डकी लगाई है ॥८१॥

वार्त्तिक तिलक।

आयके, श्रीअर्जुन जी और भीमसेन जी ने श्री युधिष्ठिर जी से श्री बाल्मीकजी की रीति प्रीति भक्ति का वर्णन किया। सुनके श्रीधर्म पुत्र महाराज को अत्यन्त प्रेम हुआ और मन में कहा कि—

"हरि को भजै सो हरि को होई। जाति पांति पूछै नहिँ कोई" ॥ तदनन्तर श्री द्रौपदी जी रसोई करने लगीं; श्री कृष्ण भगवान् ने उनको सिखाया कि "जितने प्रकार के व्यञ्जन तुम जानती हो सो सब अच्छे प्रकार से सुधार के करो; आज तुम्हारे हाथोँ की सफलता है।"

फिर भोजन के समय युधिष्ठिरादि स्वयं जाके उनको सादर ले आए। श्री बाल्मीक जी ने कहा कि "मुझे बाहरयहीं बैठाके प्रसाद पवादीजिये" परन्तुप्रभु ने श्रीअर्जुन जी से आज्ञा की कि ऐसा नहीं, बरंच मेरी तो यह

रुचि है कि इनको सादर भीतर ले चलके बैठाओ"। ऐसा-ही किया अर्थात् पाकशाला में ही बिठलाके उनके आगे व्यंजनों के थार ला रक्खे॥

श्री बाल्मीकजी ने मनही में श्रीकृष्ण भगवान् को अर्पण किया। (चौ०) प्रभुहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥ फिर जोंहीं परम रसाल ग्रास मुख में डाला, उसी क्षण शंख बजा। बजा तो सही, परन्तु भली भाँति से नहीं। तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उस शंख को एक छड़ी लगाई॥

टीका। कवित्त।

"सीत सीत प्रति क्यों न बाज्यो? कछु लाज्यो कहा? भक्ति कौ प्रभाव तैं न जानत यों जानिये"। बोल्यो अकुलाय, "जाय पूछिये जू द्रौपदी कौं, मेरो दोष नांहिं, यह आपु मन आनिये"॥ मानि सांच बात "जाति बुद्धि आई देखि याहि, सबही मिलाई मेरी चातुरी बिहानिये"। पूंछेते, कही है बालमीक "मैं मिलायों यातें आदि प्रभु पायो पाउं स्वाद उन मानिये॥ ८२॥

वार्त्तिक तिलक।

और, प्रभु ने पूछा कि "क्यों रे शंख! तू प्रत्येक सीथ पर नीके प्रकार से क्यों नहीं बजता? कुछ लज्जित सा होके क्यों बजा है? मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तू इनकी भक्ति के प्रभाव को नहीं जानता।" तब

यह अभिमन्त्रित दिव्य शंख अकुलाके स्पष्ट बोला कि "इसका कारण आप जाके श्री द्रौपदी जी से पूछिये; इसमें मेरा दोष नहीं है आष इसे अपने मन में निश्चय मानिये" ॥

श्री प्रभु के पूछने पर श्री द्रौपदीजी ने शंख की वार्त्ता को सत्यमानके कहा कि "हां प्रभो! मुझे इनमें जाति बुद्धि आगई क्योंकि इन्होंने पदार्थों को एक में मिला करके मेरी चातुरी की हानि कर डाली। मैं इनसे, शंख से, तथा आप से तीनों से क्षमा माँगता हूं।'

इस पर प्रभु ने श्री बालमीक जी से पूछा कि "तुम इन बिविध प्रकार के व्यंजनों को एक में मिलाके क्यों पाते हो?"

आपने उत्तर दिया कि "इन सब पदार्थों को प्रथमतः आपने तो पाया ही है, इससे येसब आपके प्रसाद हुए। अब मैं इन्हें पृथक पृथक पाके प्रत्येक के स्वाद को अनुमान नहीं किया चाहता हूं, स्वाद लेने से प्रसाद का भाव जाता रहेगा" ॥

ऐसा सुन्ते ही, श्रीद्रौपदी युधिष्ठिरादि का अधिक भाव इनमें हुआ; तब शंख की ध्वनि भली भाँति हुई और यज्ञ पूर्ण हुआ। देवते फूलों की वर्षा करने लगे। सब बोले कि श्रीभक्ति महारानी जी की जय!

श्री प्राचीनबर्हीं जी।

राजा प्राचीन बर्हि पूर्व मीमांसा के अनुसार यज्ञा-

दिक कर्म विधिवत् किया करते थे । इनके कई सहस्र पुत्र हुए; परन्तु देवर्षि श्रीनारदजी कृपासिन्धु ने दया करके भक्ति योग के अनुपम रहस्य का उपदेश कर, उन सब को विरक्त बना, हरि भजन में तत्पर कर ही तो दिया । कृपा करके राजा से कहा कि "आँखें मूंद के देख तो" । उसने और यज्ञ करानेवालों ने देखा कि बहुत पशु कि जिनको उन्होंने यज्ञ में बलि दिया था कोप करके खड़े हैं और इनसे अपना २ पलटा लेने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । "पर पीड़ा सम नहिँ अधमाई" ॥ "परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा" ॥

वह देख राजा के रोमांच खड़े हो गए और वह समझ गया कि हिंसा वास्तव में महा पाप है। श्रीनारद जी का उपदेश पाकर श्रीराम कृपा से राजा तथा यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण सब भगवद्भक्ति रूपी बोहित के सहारे संसार सागर तर के परम धाम को चले गए॥ (दो०) "उमा! दान, मख, यज्ञ, तप, नानाव्रत, अरु नेम। राम कृपा नहिँ करहिं तस, जस निःकेवल प्रेम॥"

——:०:——

श्रीसत्यव्रत जी ।

श्रीभगवत के "मीन" अवतार इन्ही की अंजली में प्रगट हुए थे । राजा सत्यव्रत जी सिन्धुतीर संध्या कर रहे थे सूर्य्य भगवान को अर्घ देने के समय एक विचित्र मत्स्य इनकी अञ्जली में आगिरा । राजा ने कमण्डल में छोड़ दिया। वह बढ़ने लगा और ऐसी

विलक्षण रीति से कि जब क्रमशः घट, हृद, और सर में भी नहीं अँटा तब उसे समुद्र में पहुँचा दिया॥ वहाँ आप दशलाख योजन लंबे हो गये और उसके सातवें दिन प्रलय हुआ। मीन भगवान् की आज्ञा और उपदेश से, एक अलौकिक नौका पर, सप्तर्षि इत्यादि और ओषधियों समेत, राजा चढ़े। मत्स्यभगवान् ने अपने शृङ्ग में उस नौका को वासुकीनाग से बँधवालिया और उस महा जलार्णव में राजा को उनके साथियों सहित बचा लिया। यही, राजा सत्यव्रत की संक्षिप्त कथा है॥

"केशव! धृत मीनशरीर; जय जगदीश हरे!"

(२) एक दूसरे "श्रीसत्यव्रत जी" रघुवंशी "श्री धीरमणि जी" थे जिनके नाम "अन्नदाता" आदि भी थे॥

श्री मिथिलेश जी।

श्री मिथिलेश "निमि" जी महाराज की चर्चा श्री ग्रन्थकार स्वामी जी आगे चलके, नवें छप्पै (तेरहवें मूल) में करेंगे; और श्री मिथिलेश जनक जी महाराज की कथा, पृष्ठ ८९।९० में हो चुकी है॥

राजा श्री नील जी।

राजा श्री नील जी श्री नर्मदा तट माहिष्मती में रहते थे। उनके पुत्र प्रवीर ने श्री अर्जुन जी के यज्ञ के घोड़े को बांध रक्खा; पर लड़ाई में वह हार के अपने पिता नील राजा के पास भाग गया। श्री नील जी ने अपने जामाता पावक देव को स्मरण किया

जिन ने उनके साथ समर में जाकर श्री अर्जुन जी की बहुत सैना जला डाली; श्री अर्जुन जी ने वरुणास्त्र से अग्नि को शान्त कियाचाहा, पर नहोसका। तब श्री कृष्ण भगवान् के उपदेश से वैष्णवास्त्र चलाया, जिस्से पावक देव भाग चलें और जाकर उनने नील जी से कहा कि जीतना कदापि सम्भव नहीं; अब यज्ञाश्व को छोड़दो, देदो" ॥

श्री नील जी ने घोड़ा देकर अश्वमेध के अनन्तर, प्रभु के प्रिय सखा श्री अर्जुन जी से विनय कर, उनके तथा प्रद्युम्न जी के द्वारा, श्री हरि भक्ति पाके, श्री बैकुण्ठ में अचल बास पाया ॥

श्रीरहुगण जी।

राजा श्रीरहुगण जी बड़ेप्रतापी तथा बुद्धिमान थे। एक दिन आप, ज्ञान प्राप्ति के लिये श्रीकपिल भगवान् के दर्शन को शिविका (पालकी) पर, जा रहेथे। पंथ में एक कहार की आवश्यकता आपड़ी तो लोग एक हृष्ट पुष्ट मनुष्य को पकड़ लाए और पालकी में ढुरादिया (लगादिया)। आप "श्री जड़भरत जी थे"। आप मार्ग को देख भालके जीव जन्तु बचाके पग धरते और कभी २ कूद भी जाते थे। इस्से पालकी बहुत हिलती तथा राजा को कष्ट होता था।

राजा के रजोगुणी हृदय से तमोगुणमय वार्ता

अवस्था करके जब महात्माने सतोगुणी प्रसंग प्रारंभ किया तब राजा जी समझ गए कि ये कोई महान् पुरुष (परम हंस) हैं। तब शिविका से उतर, पांव पड़, आप से सादर बिनय किया, क्षमा मांगी, और इष्ट बार्ता लाप करने लगे।

आप के उपदेश से राजा कृतार्थ हो अपनी राजधानी को लौट आए।

श्री "जड़ भरत" जी और राजा रहुगण का सम्बाद श्रीमद्भागवत के पांचवें स्कन्ध में अवश्य देखना सुनना चाहिये॥

श्रीसगर जी।

राजा सगर को उनकी सौतेली माता ने गर्भ ही में विष देदिया था; परन्तु राम कृपा से बचे। राजा सगर के, एक स्त्री से, असमंजस नाम एक पुत्र, और दूसरी स्त्री से ६०००० (षष्ठिसहस्र) बेटे हुए। असमंजस ने प्रजा के साथ कठिन उपद्रव किया इससे राजा ने उसको देश से निकाल दिया। तब असमंजस जी, अपने योग बल से प्रजा का कल्यान करके, आप बन में रहके हरिभजन करने लगे।

राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ से इन्द्र घोड़ा चुरा लेजाकर श्रीकपिल देव जी के आश्रम में बांध आए। सगर के साठसहस्र पुत्रों ने घोड़ा ढूंढने में पृथ्वी खोदी कि जिससे सागर हुआ। वे जब श्रीकपिल देव जी के

पास यज्ञपशु (अश्व) को देख कपिल भगवान् को दुर्वचन कहने लगे, तब आपने आंखें खोलीं। दृष्टि पड़ते ही साठो सहस्र भस्म होगए॥

असमंजस के पुत्र अंशुमान ने श्री कपिल महाराज की स्तुति की। आपने प्रसन्न हो घोड़ा देदिया; तथा श्री गंगाजी को लाने की आज्ञा दी। घोड़ा लाकर अंशुमान ने अपने दादा (पितामह) राजा सगर को दिया॥

श्री सगर जी ने, यज्ञ पूर्ण कर, अंशुमान को राज्य दे आप बन को जा भगवत भजन कर परांगति पाई॥

श्री भगीरथजी।

राजा अंशुमान ने बहुत दिन राज्य कर, अपने पुत्र दिलीप को राज्य दे, तप किया तथा दिलीप राजा ने भी श्री गंगाजी ही के लिये तप किया। राजा भगीरथ ने बिवाह करने के पूर्वही तप करना आरम्भ किया, उनके तप से राम कृपा से श्री गंगाजी आईं, इसीलिये श्री गंगाजी भागीरथी के नाम से भी पुकारी जाती हैं। श्रीभगीरथ जी की भक्ति को धन्यवाद जिनके द्वारा श्री गंगाजी प्रगट हुई हैं॥ जय३ सुरसरि! तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥ जय भगीरथनन्दिनी, मुनिचय चकोर चन्दिनी, नर नाग बिबुध बन्दिनी, जय जन्हु बालिका। बिष्णु पद सरोजजासि, ईश सीस पर बिभासि, त्रिपथगासि,

पुण्यराशि, पाप छालिका॥ बिमल विपुल बहसि वारि, शीतल त्रय ताप हारि, भँवरबर विभंगतर तरंगमालिका। पुरजन पूजोपहार शोभित शशिधवल धार, भंजनि भवभार भक्त कलपथालिका॥ निज तटबासी बिहंग जलथलचर पशु पतंग कीट जटिल तापस, सब सरिस पालिका। "अवधपुरीसरयु तीर सुमिरत रघुबंशबीर बिचरत मति" देहि मोहमहिष कालिका!

श्रीरुक्माङ्गद जी।

(८१४२) टीका। कवित्त।

रुक्मांगद बाग शुभ गन्ध फूल पागि रह्यो, करि-अनुराग देवबधू लेन आवहीं। रहि गई एक, कांटा चुभ्यो पग बैंगन को, सुनि, नृप माली पास आए सुख पावहीं॥ कही "को उपाय स्वर्ग लोक को पठाइ दीजे" "करै 'एकादशी' जलधरै कर जावहीं"। "ब्रत को तो नाम यहि ग्राम कोऊ जानै नाहिँ" "कीनो हो अजान काल्हि, लावो गुन गावहीं" ॥८३॥(६२१-८४६)

वार्त्तिक तिलक।

भगवद्भक्त राजा श्री रुक्माङ्गद जी की पुष्प-वाटिका फूलके सुन्दर सुगन्धित फूलौं से भरी पगी सुशोभित हो रही थी, यहाँतककि स्वर्ग के वाटिकाओं से भी अधिक उत्तम थी, और इस्से स्वर्गस्त्रीयां(अप्-सराएं) भी रात्रि में प्रेम से फूल लेजाया करतीथीं।

एक बार उन्में से एक अप्सरा के पांव में भांटे का कांटा चुभ गया, अतः उस्का पुण्य क्षीण होने से उस्की आकाश में उड़ने की दिव्यगति नष्ट होगई अत एव बाटिकाही में रह गई। यह वार्त्ता मालियों से सुनके श्रीरुक्माङ्गद जी ने, स्वयं वहां पहुंचके उस अप्प्सरा को (राम कृपा से अकाम दृष्टि से ही) देखा, और प्रसन्न होके उससे पूछा कि "तुम्हारे स्वर्ग जाने का कोई उपाय हो तो बताओ कि जिस्से हम तुम को स्वर्ग को भेज दें"।

उस अप्प्सरा ने उत्तर दिया कि "जिसने 'एकादशी' का ब्रत किया हो, वह यदि अपने एक एकादशी के ब्रत का फल संकल्प करके जल मेरे हाथ में देदेवे तो मैं स्वर्ग को चली जाऊं" राजा ने उत्तर दिया कि इस ब्रत का तो नाम भी कोई इस नगर में नहीं जानता"।

तिस्पर अप्प्सरा बोली कि "कल एकादशी थी; कदाचित कोई अज्ञातहूसे भूखा रह गया हो, तो उस्को लाके उस्का ही फल मुझ को दिलवा दीजिये, तो मैं स्वर्ग को चली जाऊंगी और आप के इस उपकार को सदा मानती गाती रहूंगी।"

(८४२/१५) टीका। कबित्त।

फेरो नृप ढौंड़ी; सुनि, बनिक की लौंड़ी भूखी रही ही कनौड़ी, निशि जागी, उन मारियै। राजा ढिग आनि करिदियो ब्रतदान; गई तिया यों उड़ानि निज लोक

को पधारिये॥ महिमा अपार देखि,भूप ने बिचारी याको "कोउ अन्नखाय ताको बांधि मार डारिये"। याही के प्रभाव भाव भक्ति बिसतार भयो, नयो चोंज सुनो सब पुरी लै उधारिये॥ ८४॥(५२१-५४५)

वार्त्तिक तिलक।

यहसुन, राजा ने अपने नगर में डौंड़ी फिरवादी कि "कल जो कोई दिनरात भूखा रहगया हो सो राजा के समीप चले!!! उसपर महाराज अति प्रसन्न होंगे"। ऐसा ढिंढोरा सुनके एक बनिये की कनौड़ी टहलनी सामने आई, जिस्को किसी अपराध से बनिये ने बहुत पीटा और भोजनभी नहीं दिया था; इसी हेतु से वह भूखी और रातभर रोती जागी हुई थी। राजाने उसी लौंड़ी (टलनी) से संकल्पकराके उसअज्ञात ब्रत का फल अपूसरा को दिलादिया; इतनेही मात्र के प्रभाव से उस अप्सरा को दिव्य गति प्राप्त होगई, तथा उड़के वह निज लोक को चली भी गई॥

इस प्रकार एकादशी ब्रत का आश्चर्य्यजनक अमोघ माहात्म्य देखके, राजा ने अपने पुर और देश भर में आज्ञा देदी कि "एकादशी को यदि कोई अन्न खायगा, तो उस्को बांधके प्राणान्त दंड दिया जायगा"

यों सब लोग राजा की आज्ञा सेब्रत और जागरन तथा भगवन्नाम कीर्त्तन में तत्पर होगए॥

इसीब्रतके प्रभाव से राजा के पुर भर में भावभ-

क्ति का अति प्रचार हुआ; और नवीन अनोखी बात यह हुई कि अन्त में सब के सब मुक्तरूप होकर श्री भगवद्धाम को प्राप्त होगए॥

राजा रुक्माङ्गद की सुता

(८९२) टीका। कवित्त।

एकादशी ब्रत की सचाई लै दिखाई राजा; सुता की निकाई सुनो नीके चित्त लाइके। पिताघर आयो पति, भूख ने सतायो अति, मांगै तिया पास, नहीं दियो यह भाइ के॥ "आजु 'हरि बासर' सो ता सर न पूजे कोऊ; डर कहा मीच को" यों मानी सुख पाइ के। तजे उन प्रान, पाए बेगि भगवान, बधू हिये सरसान भई; कह्यो पन गाइ कै॥ ८५॥ (६२९-५४४)

वार्त्तिक तिलक।

श्री एकादशी ब्रत का प्रभाव और सचाई तो राजा ने प्रगट की, अब राजा की लड़की की महिमा वा प्रशंसा लिखते हैं सो भली भाँति से चित देके सुनिये।

उसका पति रुक्माङ्गद जी के घर (अपने सुसराल) में आया; उसी दिन एकादशी थी। राजपुत्र अति सुकुमार तो थाही उसको क्षुधा ने अत्यन्त बाधा किया; जब उसको किसी ने भोजन न दिया तब उसने अपनी स्त्री से यह कहा कि खाने बिना मेरे प्राण छूट जाएंगे; परन्तु तब भी उसने एकादशी के भावसे भोजन नहीं दिया, और बोली कि "आज हरिबासर है कि जिस्की

समानता को कोई और व्रत नहीं पहुँच सकता। आज के मृत्यु का क्या भय है ? कि जिस्में अभय परमपद की प्राप्ति है"। सुख पूर्वक ऐसी दृढ़ता को वह गहे रही॥

उसने भूख से प्राण छोड़ही तो दिये। उसी समय वैकुण्ठ से विमान आया और सबके देखते दिव्यरूप हो वह उसपर चढ़ भगवद्धाम को चला गया॥

यह देखके उनकी स्त्री का हृदय भक्ति से अत्यन्त सरस हुआ। प्रभुने प्रसन्न हो पारषदों को विमान समेत भेजकर आपको(उनकी प्रिया) को भी कृपा करके अपने धाम में बुला लिया॥

इस भांति उनके एकादशी व्रत का पन हमने गान किया॥

———:o:———

टीका (समुदाय)।

(८१७/४२) कवित्त।

सुनौ "हरिचंद" कथा, व्यथा बिन द्रव्य दियो, तथा नहीं राखी बेचि सुत तिया तन है।"सुरथ""सुधन्वा" जू सों दोष के करत मरे, "शंख" औ "लिखित" बिप्र भयो मैलो मन है॥ इन्द्र औ अगिन गये शिवि पे परीक्षा लेन, काटि दियो मांस रीझि सांचो जान्यो पन है। "भरत" "दधीच", आदि भागवत बीच गाए, सबनि सुहाए जिन दियो तन धन है॥ ८६॥ (६२९-५४३)

वार्त्तिक तिलक ।

महाराज श्रीहरिचश्चन्द्र जी की कथा सुनिये । दुःखरहित मनसे (श्रीबिश्वामित्र जी को) सम्पूर्ण द्रव्य दिया, तथा पुत्र अपनी रानी और अपना शरीर तक भी नहीं रक्खा तीनों को बेच डाला ॥

श्रीसुरथ जी तथा श्री सुधन्वा जी इन भक्त राज पुत्रों से शंख और लिखित मलीन मनवाले ब्राह्मण, द्वेष एवं भक्तद्रोह करते ही मर गए ॥

इन्द्र, सेन पक्षी का रूप धरके एवं अग्नि कपोत का रूप वनाके राजा शिवि जी की परीक्षा लेने के निमित्त गए । उनके धर्म की सचाई पर रीझके प्रगट होके इन्द्र और अग्नि ने बरदान दिया ॥

श्रीभरत जी श्रीदधीचि जी आदिक भक्तों की कथा श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में गान की हुई हैं ।

इन सब ने अपने तन और धन परमार्थ में देदिये इससे ये धर्म और भगवद्भक्ति की शोभा को प्राप्त हुए ॥

☞ इन सब की कथा नीचे लिखी जाती हैं देखिये ॥

:०:

श्रीहरिश्चन्द्र जी ।

राजा श्रीहरिश्चन्द्र जी सूर्य्यवंशी श्री अयोध्या जी के राजा धर्म कर्म निष्ठा में बड़े पक्के तथा प्रतापी थे । एक समय इनके कुलपूज्य पुरोहित श्री बशिष्ट जी महाराज कहीं गए थे इसी से श्रीबिश्वामित्र जी से इनने यज्ञ कराया जिनने दक्षिणा में राज्यादि तथा

तीनभार (इक्कीस मन) सोना भी संकल्प करालिया; और उक्त तीनभार सुवर्ण राजा से बड़ी कड़ाई सेमांगा।

श्रीवशिष्ठ जी आकर राजासे बोले कि "श्रीकाशी जी श्रीविश्वनाथपुरी है किसी प्राकृत राज्य के मध्य नहीं गिनाजाता सोतुम वहीं कुमार रोहिताश्व तथा रानी समेत अपने आप को बेचकर दक्षिणा का सोना मुनि को देदेसकतेहो, उस्में बिश्वामित्र जी कोई बखेड़ा नहीं लगा सकते"। तब, श्रीकाशी जी में जाकर राजा के पुत्र और धर्मपतनी एक ब्राह्मण के हाथ बिके और स्वयं राजा एक चाण्डाल के यहां बिका॥ यों पूर्ण दक्षिणा देडाली।

कालियाचाण्डाल ने इनको मृतक का कर लेनेको स्मसानघाट पर रखदिया॥

श्री कौशिक (बिश्वामित्र) जी ने सांप होकर रोहिताश्व को काटा, कुमार मरगया; रानी पुत्रके मृतशरीर को ले रोती पीटती हुई घाटपर गई। उस्से भी धर्म्मात्मा दुःखी राजा ने चाण्डाल(डोम) के लिये कर मांगाही। और कुछ तो थाही नहीं इस लिये इनने रानी के वस्त्र में से ही आधा फड़वा के लिया, अपना धर्म न छोड़ा। इन्द्र तथा विश्वामित्र जी ने जब राजा को यों दृढ़ पाया, तो वे पुनः दूसरी चाल चले अर्थात् काशी नरेश के पुत्र को मार कर, और हरिश्चन्द्र जीकी निर्दोष रानी को डाकिनी बताकर राज पुत्रके मृत्यु का

कलंक उसपर लगाया, यहां तक कि काशी नरेश ने राजा हरिश्चन्द्र ही को उस रानी के मारडालने की आज्ञा दी । 'इस अन्तिम परीक्षा में भी हरि कृपा से उत्तीर्ण धर्म्मात्मा श्री हरिश्चन्द्र जी' ने जोंही रानी के बध के अर्थ शस्त्र उठाया, वहीं श्रीसूर्य्य भगवान् ने, निज कुलभूषण पर प्रसन्न हो, आकाश वाणी की कि "धर्म्मात्मा हरिश्चन्द्र की जय;" एवं इन्द्रादि ने पुष्पवृष्टि भी की; विष्णु बिधाता महेश्वर ने साक्षात प्रगट होकर दर्शन दे राजा का हाथ रोक लिया; राजकुमार को भी जिला दिया; विष्णुभगवान ने भक्ति वरदान दिया; विश्वामित्र ने भी नरेश को अपनी सब करतूत कहके प्रशंसायुत श्री अयोध्या जी के राज्य करने की आज्ञा दी ।

श्रीसीतारामकृपासे राजाने भक्ति प्रचार और राज्य कर अपने उसी पुत्र को राज दिया; परम धाम को सिधार, जग में अपना और धर्म का यश फैलाया ॥

श्रीसुरथ; श्रीसुधन्वा जी ।

ये दोनों परम भागवत तथा सगे भाई थे; किसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि ये दोनों चम्पक पुरी के राजा "हंसध्वज" के पुत्र थे; औरों ने राजा नीलध्वज जी के पुत्र इन्हें लिखा है; अस्तु ।

इनके पिताने एक समय अर्जुन जी से युद्ध करने के हेतु यह आज्ञादी कि "सब सेना तुलसी माला तथा ऊर्द्धपुण्ड्र तिलक धारण करके रण भूमि में आवे और जो कदराई करेगा सो तप्ततेल के कड़ाह में छोड़ा जावेगा"।

परमभक्त राजकुमार श्रीसुधन्वा जी चलते समय श्रीमातुचरण कमल को दण्डवत करके निजधर्मपत्नी से विदा होने गये। स्त्री ने कर जोड़के प्रार्थना की कि "प्राण नाथ! मैं ने स्त्रीधर्म से छुट्टी पा आज ही स्नान किया है, तुमसे विशेष प्रेमालिङ्गन चाहती हूं; मेरे परितोष अनन्तर स्नान करके, तिलक माला शस्त्रादि सजके, तब हरिस्मरण करते हुए सानन्द समरभूमि में जाव"। श्रीसुधन्वा जी ने, जो "एक स्त्री व्रत धारी" थे, ऐसाही किया। इसीलिये वह धर्म कर्म निष्ठा में प्रसिद्ध हुए।

रणमें विलम्ब के साथ पहुँचने से निज आज्ञा भंग समझ राजा (इनका पिता) बड़ा अप्रसन्न हुआ और "शंख" तथा "लिखित" नाम के मनमलीन दो ब्राह्मण मन्त्रियों ने, द्वेषसे, राजा के उस क्रोध को और भड़कादिया। निदान निर्दोष राजकुमार श्रीसुधन्वा जी खौलते तेल के कड़ाह में डाल दिये गए। परन्तु वह तो परम भागवत थे, भक्तरक्षक हरि की कृपा से तप्त तेल उनको श्रीसरयू जल (शीतल सुखद) होगया जैसे श्रीप्रह्लाद जीको।

(दो०) पिता विवेक निधान बर, मातु दयायुत नेह। तासु सुअन किमि पाइहै अनत अटन तजि गेह॥

शंख और लिखित ने तेल के ताप की परीक्षा के लिये कड़ाह में एक सजल नारियलफल छुड़वाया जो पड़ते ही फूटा; और दो टुकड़े होकर हरि इच्छा से शंख तथा लिखित की खोपड़ियों पर ऐसे जालगे कि उनदोनों भक्तद्रोहियों के प्राण ही लेलिये।

(चौ०) कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥ जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥ भक्त द्रोह करि कोउ न बांचा। भक्तसुरक्षक हरि पन सांचा॥

दोनों भाइयों श्रीसुरथ तथा सुधन्वा जीने श्रीअर्जुन जी से (जिनके सारथी स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् थे,) भली भांति लड़के रणक्षेत्र में शरीर त्यागा। उनके सीसों को श्रीशिव जी ने अपने माला में रखलिया।

(छप्पे) भस्म अंग, मर्दन अनंग संतत असङ्ग, हर। सीस गंग, गिरा अर्द्धंग, भूखन भुजंग बर॥ गल मुण्डमाल, बिधुबाल माल, डमरू कपाल कर। बिबुध वृन्द नवकुमुद चन्द सुखकन्द शूलधर॥ त्रिपुरारि त्रिलोचन दिगवसन विषभोजन भवभय हरन। कह तुलसिदास सेवत सुलभ, शिव शिव शिव शंकरशरन॥

यों भगवत के सन्मुख तन तजके, परम भागवत दोनों भाई श्रीभगवत के धाम को गए।

श्रीभक्ति महारानी जी की जय॥

राजा श्रीशिवि जी।

दानशील धर्मधुरन्धर महाराज श्री "शिवि" जी दया-सिन्धु "धर्म कर्म निष्ठा" में प्रसिद्ध हैं, यहां तक कि इसमें देवतों के राजा इन्द्र जी ने इनकी परीक्षा लेनी चाही

इन्द्र ने आप तो सेन (बाज़) पक्षी का रूप धारण किया और अग्नि देव कपोत बने। सेन कपोत पर झपटा, तब कपोत भागकर श्रीशिवि जी के गोद में जा छुपा और बोला कि "महाराज! मैं आप के शरण हूं मुझे सेन के चंगुल से अभय देकर रक्षाकीजिये"; साथही सेन भी पहुंचा और कहाकि "यह पक्षी मेरा भक्ष्य है, मैं भूखा हूं; आप मेरे अहार में बाधा न डालिये इसको मुझे दीजिये"। राजा ने कहा "मैं नदूंगा"।

धर्म्माधर्म पर बाद विवाद के अनन्तर दोनों में प्रसन्नता पूर्वक यह बात ठहरी कि महाराज कपोत के तुल्य मांस अपने शरीर से सेन को दें। राजा कपोत को तुला के एक पल्ले पर बैठाके, दूसरे पल्ले पर अपने शरीर का मांस काट २ तुलवाने लगे। परन्तु समस्त शरीर का मांस भी उस कपोत के तुल्य न हुआ, कबूतर भारी होताही गया! अन्त को राजा जी ज्योंही अपना सीस देने पर उद्यत हुए, वहीं उसी क्षण अति प्रसन्न हो, सेन और कपोत का रूप छोड़ छोड़, प्रगट

होके, श्रीसुरेश इन्द्र जी तथा पावक देव ने दरशन दे, राजा को सीस काटने से रोका, और उनका तन जैसा था पुनः वैसाही हृष्ट पुष्ट कर दिया; फिर उनकी शरणागतवत्सलता दानशीलता दया दृढ़ता आदिक धर्म्मों की प्रशंसा कर, वे यह बरदान दे, चले गए, कि (दो॰) "जीवत भोगो अति विभव, तनु तजि हरिपुर जाहु। पान करो हरिभक्ति रस' पुनरागमन बिहाइ" ॥

श्रीभरत जी।

श्रीभरत जी के पिता का नाम श्रीऋषभ देव जी था, आप जो नौ जोगीश्वरों के बड़े भाई थे, बहुत दिन राज करने के अनन्तर अपने बड़े लड़के को राज देकर बहुत काल पर्य्यन्त मुक्तिनाथ क्षेत्र में गंडकी जी के तीर तप करते रहे।

एक दिन नदी तट बैठे थे; उसी समय एक गर्भवती हरिणी जलपीने आई; सो सिंहका गर्जना अकस्मात सुनके ऐसी घबड़ाहट में कूदी कि उसका गर्भपात होगया, और वह मरगई; उस्का बच्चा श्रीभरत जी के सामने नदी में बहचला; यह देख दयाबश इनने उस्को शीघ्र निकाला, तथा असहाय जान, कृपाकर, ये उस्को, निज आश्रम में ला पालने लगे।

उसमें इनका मन इतना लगा, उस्को इतना चाहने लगे कि उस मृगसावक की प्रीति में ये बहुतही आ-

सक्त होगए; यहां तक कि जब वह सयाना हो, मृगाओं के झुण्ड में मिल किसी ओर चला गया,तो उसके लिये ये अत्यन्त बिकल हुए। यह आख्यायिका श्रीमद्भागवत में पढ़ने सुनने योग्य है। हरे! हरे! मोह, माया, आशक्ति, इनकी बातें बिलक्षण और अपार हैं॥

जब इनका शरीर छूटा तो उसराग (स्नेह) तथा मन गति के कारन इनको पुनर्जन्म लेकर मृगाही होना पड़ा॥

जो भरत एक समय सारे भारत खंड के महाराज थे अब वह मृगा होकर कलिंजर के बन में रहने लगे; परन्तु पूर्व भजन और प्रभु की कृपा से हरिण तन में भी आप को पूर्व जन्म की सुधि तथा शुद्ध बुद्धि बनी की बनीही रही; इसी लिये आप अकेले ही रहा करते थे। कारण रहित कृपालु प्रभु ने उस मृग शरीर से छुड़ा कर आपको ब्राह्मण के घर में जन्म दिया। यहां भी 'भरत' नाम पड़ा। श्रीहरिकृपासे ज्ञान तथा दोनों जन्मों की सुधि इनको बनी रही।

(चौ०) "निशिदिन लगे रहत हरिध्याना। का जामत का होत जहाना॥ जिनकी हृदय ग्रन्थि सब छूटीं। सब इन्द्रिय हरि पद महँ जूटीं॥"

आपकी मति बचपन से ही बिरक्त और श्रीहरिभक्ति में अनुरक्त हुई। पूर्व घटना स्मरण कर आप किसी से मिलते न कोई संसारी काम यथार्थ कर देते किसी से बोलते भी न थे बरन किसी के प्रश्न का उत्तर तक नहीं देते थे।

(दो०) धन्य रहनि "जड़ भरत" की, धन्य तासु वैराग्य॥
जग से जड़ बनि राम पद, पगे धन्यतर भाग्य॥१॥

एक दिन भिल्लों का राजा इनको पकड़वा, अपनी इष्टदेवी काली के सामने लेजाकर खड्ग ले इन्हें बल देने को उद्यत हुआ। श्रीदुर्गा जी महारानी ने वही खड्ग छीनके उन सब दुष्टों को बध किया और श्रीभगवद्भक्त आप को जानकर आपसे अपना अपराध क्षमा कराया। भक्त भय हारिणी श्रीभगवती महा माया की जय

(चौ०) श्रीसियराम कृपा जाहीपर।
सुर नर मुनि प्रसन्न ताहीपर॥

राजा रहूगण (पृष्ठ २३०। २३१) की कथा में लिख आए हैं कि एकबेर उसने आप को पालकी में लगाया, आप चींटियां बचा कर पग धरते थे जिस्से पालकी उचकी तो आपसे उसने कड़ाई के साथ बात की; आपने ऐसे उत्तर दिये कि शीघ्र वह श्रीचरणों पर गिरा, तथा आपके सत्सङ्ग से ज्ञान विराग प्राप्त किया; सो यह सम्बाद श्रीभागवत में पढ़ने सुनने ही योग्य है। अस्तु॥

समय पा, योगाभ्यास से तनुत्याग, श्रीजड़भरत जी परम धाम को गए॥

श्रीदधीचि जी।

परमोदार दधीचि ऋषि का सुयश प्रसिद्ध ही है। वृत्रासुर के उत्पात से अकुलाके देवते भगवत के शरण

में गए, तब प्रभुने आज्ञादी कि "ऋषीश्वर दधीचि महाराज की हड्डी का वज्र बनाओ तो इस उपाय से असुर का नाश होगा; मुनि महादानी धर्म्मात्मा हैं, अस्थि मांगने पर 'नहीं' नहीं कहँगे"। ऐसाही किया। राजाने अपनी पीठ की अस्थि देडाली उसी का वज्र इन्द्र ने बनवाकर उसी से वृत्रासुर का बध किया॥

(चौ०) "ते नर बर थोड़े जग माहीं। मंगन लहहिँ न जिनके नाहीं॥ शिवि दधीचि हरिचन्द कहानी। सुनी न चितदे ते नहिँ दानी॥"

——:o:——

श्रीविन्ध्यावली जी।

(९८/८४२) टीका। कवित्त।

बिन्ध्यावली तिया सी न देखी कहूं तियो नैन, बांध्यो प्रभु पिया, देखि किया मन चोगुनो। "करि अभिमान, दान देन बैठ्यो तुमहीं को, कियो अपमान मैं तो मान्यें सुख सोगुनो"॥ त्रिभुवन छीनि लिये, दिये वैरी देवतान प्रान मात्र रहे, हरि आन्यें नहीं औगुनो। ऐसी भक्ति होइ जो पै जागो रहो सोइ, अहो! रहो! भव मांझ ऐपै लागै नहीं भौ गुनो॥८७॥ (६२९-५४२)।

वार्त्तिक तिलक।

जैसी राजा बलि (पृष्ठ ९१) की स्त्री श्रीबिन्ध्यावली जो थीं, वैसी स्त्री तो कहीं देखने सुनने में नहीं आती; कि श्रीवामन भगवान ने इनके प्रियपति को बाँध

डाला और इनने उनको बँधे हुए अपने नेत्रों से देखा तिसपर भी इनका मन मलीन न हुआ, वरंच प्रभु की कृपा समझ चित में चौगुना हर्ष बढ़ाया।

प्रभु से ये प्रार्थना करने लगीं कि "प्रभो! आपने बहुत अच्छा किया; ये अभिमान करके, त्रिभुवन के नाथ स्वयं आप को दान देने बैठे, आप की ही तो पृथ्वी, तिसको अपनी समझ के, अपनेको दानी मान, इनने जो आप को भिक्षुक माना, सो यही बड़ा अपमान किया। आपने इनका अभिमान छुड़ाया, इस्से मैं ने शतगुण सुख माना॥"

देखिये! त्रिभुवन को इन से छीनि के इनके शत्रु देवतों को देडाला और केवल प्राण मात्र इनके रह-गए, तब भी श्री विन्ध्यावली जी ने प्रभु में अवगुण नहीं आरोपणकिया वरंच गुण ही समझा।

अहा! जो कदाचित ऐसी प्रबल भक्ति जिस्के हो, सो जन चाहे भजन करता हुआ जागता रहे, चाहे प्रभु पर विश्वास कर निश्चिन्त सोता हुआ संसार ही में रहे, तथापि उस्को संसार के कोई गुण स्पर्श नहीं कर सकते। वह भक्त जीवन मुक्त ही है॥

अति सुमति रानी श्री विन्ध्यावली की प्रेमाभक्ति निष्ठा की प्रसंसा कौन कर सकता है?

———

श्रीमयूरध्वज जी; श्री ताम्रध्वज जी।

(८६/८४२) टीका। कवित्त।

अर्जुन के गर्व भयो, कृष्ण प्रभु जानि लयो, दयो रस भारी, याहि रोग ज्यौं मिटाइये। "मेरो एक भक्त आहि, तोको लै दिखाऊं ताहि, भए बिप्र वृद्ध, संग बाल, चलि जाइये॥ पहुंचत भाष्यो जाइ "मोरध्वज राजा कहाँ? वेगि सुधि देवो" काहू बात जा जनाइये। "सेवा" प्रभु करीं, नेकु रहौ, पांउ धरीं, जाइ कही तुम बैठो; कही, आग सी लगाइये" ॥ ८८ ॥ (६२९-५४१)

वार्त्तिक तिलक।

एक समय श्रीअर्जुन जी को अपनी भक्ति का अभिमान हुआ। इस बात को भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने जानकर मनमें बिचार किया कि "इनको हमने अपना भारी सख्य रस दिया तिस्का अभिमान इनको रोग सरीखा होगया, सो उस्को यत्न रूपी औषधि से मिटा डालूं"

ऐसा बिचारकर अर्जुन जी से बोले कि "हे सखे! मेरा एक भक्त है चलो मैं उस्को तुम्हें दिखा लाऊं। तुम ब्राह्मण का बालक बन जावो और मैं वृद्ध ब्राह्मण होके दोनों चलें"। ऐसाही किया।

राजा मोरध्वज के द्वार पर पहुंच के प्रतिहार से कहा कि "राजा कहाँ हैं? शीघ्र जाके जनावो कि दो बिप्र आए हैं" किसी ने जाके राजा से जनाया। मो-

रध्वज जी ने उत्तर दिया कि "प्रभु की पूजा कर रहाहूं; जाके कहो कि थोड़ा ठहरिये कृपाकर बैठ जाइये, अभी मैं आके आपके चरणों पर पड़ता हूं"

आकर प्रतिहार ने ऐसाही कहा; सो सुन्तेही, ब्राह्मण देवता के आग सी लग गई॥

(१००/८४२) टीका। कवित्त।

चले अनखाय पायँ गहि अटकाय जाय नृप को सुनाय ततकाल दौरे आए हैं। "बड़ी कृपा करी आज फरी चाह बेलि मेरी, निपट नबेल फल पायँ याते पाये हैं॥ दीजै आज्ञा मोहि सोई कीजे, सुख लीजे यही, पीजै बाणी रस, मेरे नैन ले सिराए हैं। सुनि क्रोध गयो, मोद भयो, सो परिक्षा हिये लिये चित चाव ऐसे वचन सुनाए हैं॥ ८१॥ (६२९–५४०)

किसी प्रति में पायँ नहीं है, 'पायो' पाठ है।
"अनखाय"=रिसाय; अनखसे। "सिराये"=ठंढे, शीतल, जुड़ाने, तृप्त॥

वार्त्तिक तिलक।

ब्राह्मण देवता रिसायके चल दिये। तब राजा के सेवकों ने उनके चरणों को पकड़ के बहुत बिनय कर उन्हें रोक रक्खा, और सब वृत्तान्त महाराज से जा सुनाया।

सुन्तेही उसी क्षण राजा दौड़े आए और प्रणाम करके हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगे कि "प्रभो! आपने बड़ी कृपा की; आज मेरी चाह रूपी बेलि फल युक्त हुई जिस्से अत्यन्त नवीन फल रूपी आपके पायँ (चरण)

मैं ने पाए। अब जिस हेतु आपने कृपाकी हो सो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं वही करके सुख लूटूं और आपके अमृत रस मय बचन श्रवण पुट से पान करूं; आपके दर्शनों से मेरी आंखें भली भांति शीतल हुईं।"

भक्त राज जीके ऐसे बचन सुन विप्र देव ने क्रोध को त्याग कर आनन्द पाया; फिर परीक्षा लेने का विचार जो आपके हृदय में है तिस्से चित में प्रसन्न होके राजा से यों बोले ॥

(१०१/८४२) टीका। कवित्त।

"देवे की प्रतिज्ञा करो", "करी जू प्रतिज्ञा हम, जाहि भांति सुख तुम्हैं, सोई मोको भाई है"।"मिल्यो मग सिंह यहि बालक को खाए जात, कही खावो मोहि नहीं यही सुखदाई है"। "काहू भांति छोड़ो"? "नृप आधो जो शरीर आवै, तौही याहि तजौं", कहि बात मो जनाई है। बोलि उठी तिया "अरधंगी मोहि जाइ देवो", पुत्र कहै "मोको लेवो", "और सुधि आई है" ॥ ९० ॥ (६२९-५३१)

"भाई"=सुहाई, नीक वा भली लगी, सुखदाई हुई।

वार्त्तिक तिलक।

ब्राह्मण—हे राजा! तुम देने की प्रतिज्ञा करो तोमैं कहूं।

राजा—मैं ने प्रतिज्ञा की; जिस प्रकार से आपको सुख हो, सोई मुझे परम प्रिय है; मैं वही करूंगा।

ब्राह्मण—हमको मार्ग में एक अद्भुत सिंह मिला, सो इस बालक को खाए जाता था। मैं ने उससे कहा कि "हे सिंह! तुम इस्को तो छोड़ दो और मुझे खा लो"। परन्तु सिंह बोला कि "मुझको इसी के मांस खाने से सुख होगा"। तब मैं ने पूछा कि "भला किसी प्रकार से तुम इस बालक को छोड़ सकते हो?" उसने उत्तर दिया कि "हां, यदि राजा मयूरध्वज का आधा शरीर पाऊं, तब ही तो इसको न खाऊंगा" इस भांति वार्त्ता उसने कही है।

श्रीमयूरध्वज जी कीरानी—(बिप्र से) मैं राजा की अर्द्धाङ्ग ही हूं, मुझे ही लेचलिये, उस्को दे दीजिये, खा जावे।

श्रीमयूरध्वजजीका पुत्र ताम्रध्वज—मैं राजा का आत्मज अतः दूसरा शरीर ही हूं, मुझेही उस सिंह को दे दीजिये कि खाले क्योंकि उस्को बालक का मांस बहुत प्रिय है।

ब्राह्मण—हां, उस्की कही हुई एक बात मैं भूल गया था सो अब सुधि आई है, सुनो।

($\frac{१०१}{८४२}$) टीका। कवित्त।

सुनो एक बात "सुत तिया लै क़रौंत गात चीरैं धीरैं भीरैं नाहिँ," पीछे उन भाषिये। कीन्ह्यो वाही भांति, अहो नासा लगि आयो जब, ढर्‌यो दृग नीर, भीर वाकर न चाखिये॥ चले अनखाय गहि पायँ सो सुनाये

बैन "नैन जल बायौं, अंग काम किहिं नाखिये"। सुनि
भरि आयो हियो, निज तनु श्याम कियो, दियो सुख
रूप, व्यथा गई, अभिलाषिये ॥ ९१ ॥ (६२९-५३८)

"करौंत"=आरा, अरकस। "भीरैं"=डरैं, कादर हों। "नाखिबो"=
पटकना। "बाकरि"=उसकरके, तिस्से।

वार्त्तिक तिलक।

उससिंह ने पीछे से एह एक बात कही सो भी सुनो
कि "आधा अंग योंही न लाना, बरन् इस भांति से चीर
के दाहिना अंग लाना कि आरा का एक छोर राजाका
पुत्र, तथा दूसरा छोर उनकी रानी पकड़े और दोनों
धीरे धीरे चीरें, पर तीनों मन को दृढ़ रक्खें कोई कद
राय नहीं" ॥

श्रीराम कृपासे तीनों ने ऐसाही किया।
अहहा! ये भगवत् कृपा पात्र धन्य हैं।

जब चीरते चीरते आरा नासिका पर्य्यन्त आया,
तब राजा की बाईं आंख से आंसू निकलने लगा।
यह देख ब्राह्मण देव बोल उठे कि "राजा! तुम कदरा
गए, रोनेलगे, तिस्से वह तुम्हारा मांस नहीं खाएगा और
इतना कह रिसियाके चलभीदिये।

ब्रह्मण्यशिरोमणि राजा ने बिप्र देव के चरण पक-
ड़के प्रार्थना की कि "हे द्विजदेवजी! देखिये मेरे दा-
हिने नेत्र में अश्रु बिन्दु का लेशभी नहीं है कि जो ब्रा-
ह्मण के अर्थ लगा; । हां बाईं आंख से आंसू इस का-

रण से चलताहै कि बाम अंग आप के कार्य्य में न आया, व्यर्थ ही फेंक दिया जायगा।"

यह भाव युक्त बचन सुन्तेही अपार करुणा से आप का हृदय भर आया, और अपने सुन्दर श्याम शरीर को प्रगट करके सपरिवार भक्तराज को दर्शन दिये तथा सिर पर कर स्पर्श कर घाव और व्यथा दोनों का नाश करके अभूत सुख दिया। राजा अति अभिलाष पूर्वक दर्शनानन्द में मग्न हो गए।

श्रीकृष्ण भगवान को यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि राजा कुछ बर दान मांगे।

(१०३/८९२) टीका। कवित्त।

"मो पै तो दियो न जाइ निपट रिझाइ लियो, तऊ रीझि दिये बिना मेरे हिये साल है। मांगौ बर कोटि, चोट बदलो न चूकत है, सूकत है मुख, सुधि आए वही हाल है।" बोल्यो भक्तराज "तुम बड़े महाराज, कोऊ थोरोऊ करत काज, मानो कृत जाल है। एक मोको दीजे दान", "दीयो जू बखानो बेगि", "साधु पै परीक्षा जन करो कलिकाल है" ॥९२॥ (६२९-५३७)

"तऊ"=तथापि तिसपरभी। "सूकत"=सूखता है। "जाल"=समूह।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीप्रभु ने भक्तराज से कहा कि "जैसा तुमने अपना शरीर चीर के दिया वैसा मुझसे तो नहीं दिया-जाता, और अब जो इस्का पलटा मैं तुमको दिया चा-

हता हूं तौभी इसके योग्य की तो कोई बस्तु है ही नहीं; इस्से सो भी मुझसे नहीं दिया जाता, क्योंकि तुमने मुझको अत्यन्त ही रिझा लिया।

तथापि कुछ रीझ (पारितोषिक) दिये बिना मेरे हिये का साल मिटता नहीं; अतः यदि करोड़ों बरदान मांगो तौ भी जो चोट मैंने तुम्हें दी है उसका पलटा चुक नहीं सकता; इसलिये कुछ अवश्य मांगो। हे प्रिय भक्त तुम्हारी उस दशा की सुधि आने से मेरा मुख सूख जाता है, और क्या कहूं।"

श्रीभक्त राज जी प्रेम से बिहूल हो हाथ जोड़ के बोले कि "नाथ! आप बड़े महाराज हैं जो कोई थोड़ा भी भला कार्य्य करे उसको आप अपनी कृतज्ञता से सुकृतों का पुंज मान लेते हैं (चौ॰) जेहि समान अतिशय नहिँ कोई। ताकर शील कस न अस होई॥

(श्लोक) * कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। नस्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥ १॥

बहुत अच्छा, आप एक बरदान मुझे दीजिये" प्रभु ने कहा कि "दिया, शीघ्र कहो क्या मांगते हो? तब परोपकारी श्रीमयूरध्वध जी ने यह बर मांग लिया

---

* यदि किसी प्रकार से कोई किंचित भी उपकार करे, तो उसीसे प्रभु अतिशय संतुष्ट हो जाते हैं। फिर जो सैकड़ों अपकार भी करे, तो उस जन में अपनपौ मान के उसके दोषों का स्मरण ही नहीं करते; ऐसा प्रभुका स्वभाव है (श्रीवाल्मीकिः)

कि "कलिकाल में भक्त सन्तों की परीक्षा मत लिया-कीजियेगा।"

श्रीअलर्क जी।

(१०५/८४२) टीका। कवित्त।

अलरक की कीरति में रांचों नित, सांचो हिये, किये उपदेशहू न छूटै बिष बासना। माता मन्दालसा की बड़ी यह प्रतिज्ञा सुनी "आवै जो उदर मांझ, फिरी गर्भ आस ना"॥ पति को निहोरो ताते रह्यो छोटो कोरो; ताको लैगए निकासि; मिलि काशी नृप शासना। मुद्रिका उघारि, औ निहारि दत्तात्रेय जू को, भए भवपार करी प्रभु की उपासना॥९३॥ (६२९-५३६)

"निहोरो"=प्रार्थना, विनय; "कोरो"=गोद का लड़का, कोछे का बालक। रांचौं=रँग जाता हूं।

वार्त्तिक तिलक।

श्री अलर्क जीकी माता श्रीमन्दालसा जीकी कथा पीछे (पृष्ठ २०४ से २०७ तक में) लिख आए हैं।

श्री अलर्क जीकी कीर्त्ति में मैं सच्चे हृदय से नित्य ही रँगता हूं। लोगों की विषय भोग वासना, उपदेश किये से भी नहीं छूटती परन्तु श्री रामकृपा से अलर्क जीकी सर्वथा छूट गई।

सुनिये, श्री अलर्क जीकी माता श्री मन्दालसा जी की यह बड़ी भारी दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि "जो जीव मेरे

गर्भ में आवे, उस्को फिर गर्भ में नहीं जाना पड़े अर्थात आसा तृष्णा आदि से छूटके वह मोक्ष पद को प्राप्त हो जावे"। "वद्धोहि को ? 'यो विषयानुराग':" "कोवा विमुक्तिर् ?" "विषये विरक्तिः"। सो अपनी प्रतिज्ञा उन ने पूर्ण की ही तो सही।

कई पुत्रों को उपदेश करके आपने विरक्त जीवन मुक्त कर दिया। जब सबसे छोटा पुत्र श्रीमन्दालसा जी के हुआ, तो उनके पति ने आप से बहुत विनय निहोरा किया कि "इस पुत्र को भी उपदेश देकर विरागी मत बनादो, इस्को राज्य तथा वंश के निमित्त गृहस्थरहने दो"।

यों, पति के विनय बश उस्को बन में न भेजा।

परन्तु पति समेत आप बन को चलीं और उसी समय एक श्लोक लिख मुद्रिका में रखके अलर्क जी को दे दिया कि तुम्हें जब कोई कष्ट पड़े तो इस्को खोलके देखना। (श्लोक) संगः सर्वात्मनात्याज्यः; यदित्यक्तुं न शक्यते। सद्भिरेव प्रकर्तव्यः; सत्सङ्गो भव भञ्जनः ॥१॥

बन में जा आपने अपने ज्येष्ठ पुत्रों से कहा कि "जिस्में मेरी प्रतिज्ञा भंग नहो इस लिये जाके किसी भांति अपने भाई अलर्क को भी विरक्त करके प्रभु के चरणों में लगादो"। आज्ञा मान, आके, उन्हों ने प्रथम अलर्क को बहुत उपदेश किया परन्तु उपदेश से विषय वासना नहीं छूटी। तब अपने मामू काशीराज को

सेना सहित लाके पुर को घेर लिया॥ इस आपदा के समय अलर्क जी ने मुद्रिका को खोल के देखा तो लिखा पाया कि "संसार के संग को सर्वथा त्याग करना चाहिये और जो त्याग न सके तो समीचीन महात्माओं का संग करे क्योंकि सत्सङ्ग भवरोग नाशक है" यह विचार श्री अलर्क जी राज को परित्याग कर रात्रि में निकल के श्री दत्तात्रेय जी से मिले।

एवं उनके उपदेश से भगवत की उपासना करके मोक्ष पद को प्राप्त हुए॥

श्री अलर्क जी ने अपनी आंखें निकालके एक वेद पाठी ब्राह्मण को उनके मांगने पर देदी थीं॥

अलर्कजी एक समय कालंजर के समीप वन में विचरने लगे; तो एक दिव्य सर देखा, जिसके तट में एक मृतक मनुष्य पड़ा था; इतने में दो पिशाचौं में झगड़ा होने लगा, एक कहताथा कि मैं खांऊंगा, दूसरा कहता था कि मैं।

अलर्क जीने पूछा क्यों विवाद करते हो? तब दोनों पिशाच बोले कि वस्तु एकही है और हम दोनों भूखे हैं; उदर कैसे भरे? श्री अलर्क जीने कहा कि "एक शव को खावे, और दूसरा मेरी देह को"
यह सुन प्रसन्न हो दोनों ने "वरं ब्रूहि" कहा।

श्री अलर्क जीने पूछा कि तुम दोनों कौन हो? तब उसी क्षण, एक श्री विष्णु, दूसरे शिव जी होके

बोले कि "हम विष्णु शिव हैं" अतः पर, स्तुति कर उनसे यह बर मांगा कि "सकल विश्व सुखी रहे, किसी वस्तु का कोई दुःखी न रहे," यही बर दीजिये।

इस पर दोनों ने आज्ञा की कि यह नहीं होसक्ता कर्म सब के पृथक २ हैं; परन्तु हमारी कृपा से अब यह सामर्थ्य तुझ में रहेगा कि जिस वाञ्छा से तेरे पास कोई आवेगा तू पूरी कर सकेगा; अन्त में तुझे मोक्ष प्राप्त होगा"।

इस प्रकार श्रीविष्णु जी और शिव जी, अलर्क जी की परीक्षा ले बरदे, निज निज स्थल को चले गए॥

(१०५/८४२) छप्पै।

तिन चरण धूरि मो भूरि सिर, जेजे हरि माया तरे॥ रिभु, इक्ष्वाकु रु ऐल, गाधि, रघु, रै, गै, शुचि शतधन्वा। अमूरति, अरु रंति, उतंग, भूरि, देवल, बैवस्वत मन्वा॥ नहुष, जजाति, दिलीप, पूरु, यदु, गुह, मान्धाता। पिप्पल, निमि, भरद्वाज, दक्ष, सभंग, सँघाता॥ संजय, समीक, उत्तानपाद, जाग्यवल्क, जस जग भरे। तिन चरण धूरि मो भूरि सिर, जेजे हरि माया तरे॥८॥ (१२/२१२)

"ऐल"=इला के पुत्र पुरूरवा। "सभंग सँघाता"=श्रीसभंग प्रभृति दण्डक बन के मुनिवृन्द।

वार्त्तिक तिलक।

उन श्री भगवद्भक्तों के चरणों की धूर बहुतसी बहुमान्यपूर्वक मेरे सीस पर है, कि जो जो भगवान् की माया के पार होगए हैं, और उन पवित्रात्माओं के सुयश सम्पूर्ण जगत में भर रहे हैं॥

१ श्री ऋभु जी
२ श्री इक्ष्वाकु जी
३ श्री ऐल (पुरूरवा) जी
४ श्री गाधि जी
५ श्री रघु जी महाराज
६ श्री रय जी
७ श्री गय जी
८ श्री शतधन्वा जी
९ श्री अमूरति जी
१० श्री रन्तिदेव जी
११ श्री उत्तंक जी
१२ श्री देवल जी
१३ श्री वैवस्वत मनु जी
१४ श्री नहुष जी
१५ श्री ययाति जी
१६ श्री दिलीप जी
१७ श्री पूरू जी
१८ श्री यदु जी
१९ श्री गुह (निषाद) जी
२० श्री मान्धाता जी
२१ श्री पिप्पलायन जी
२२ श्री निमि जी
२३ श्री भरद्वाज जी
२४ श्री दक्ष जी
२५ श्री शरभंग जी
२६ श्री संजय जी
२७ श्री समीक जी
२८ श्री उत्तानपद जी
२९ श्री याज्ञवल्क्य जी
(३०) इत्यादि, इत्यादि।

(श्लोक) इक्ष्वाकुरैल मुचुकुन्द विदेह गाधि रघ्वम्बरीष सगरा गय नाहु-षाद्याः। मान्धात्रलर्क शतधन्वनु रन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्त रयो दिलीपः॥१ सौभर्युतंक शिवि देवल पिप्पलाद सारस्वतोद्धव पराशर भूरिषेणः। येऽन्ये विभीषण हनूमदुपेन्द्र दत्त पार्थार्ष्टिषेण विदुर श्रुतिदेव वर्याः ॥२॥ ते वै विदन्त्यति तरंति च देव मायां स्त्री शूद्र हूण शवरा अपि पाप-जीवाः। यद्यद्भुत क्रम परायण शील शिक्षा स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥३॥ (श्रीमद्भागवते)

श्रीरन्तिदेव जी ।

(१०९/८४२) टीका । कवित्त ।

अहो ! रंतीदेव नृप सन्त दुसकंत बंस अतिही प्रशंस सो अकास वृत्ति लई है। भूखे को न देखिसके, आवै सो उठाइ देत, नेति नहिं करैं भूखे देह छीन भई है॥ चालीस-औ-आठ दिन पाछे जल अन्न आयो, दियो विप्र शूद्र नीच श्वान, यह नई है। हरि ही निहारे उन मांझ, तब आए प्रभु, भाए, जग दुख जिते भोगौं, भक्ति छई है ॥९४॥ (६२९–५३५)

"आकाश वृत्ति"=ऐसी वृत्ति कि जीविका के अर्थ कर्म चेष्टा शून्य; ऐसी वृति कि जो कुछ अनाहत अकस्मात (विन प्रबन्ध जैसे आ-काश से जल) आजावे, उसी को लेना। "छीन"=क्षीण, खिन्न, दुर्बल।

वार्त्तिक तिलक ।

राजा दुष्यन्त के वंश में महाराज श्रीरन्तिदेव जी अति आश्चर्य्य प्रशंसनीय सन्त हुए, कि जिन्होंने आ-काश वृत्ति जीविका ग्रहण की। तिस्पर भी उस आकाश वृत्ति में भी जो कुछ भोजन आ जाता था सो भी भूखों को दे दिया करते थे क्योंकि किसी को

भूखा नहीं देख सकते थे। अपने लिये यत्न वा संचय नहीं करते थे अतएव भूख से शरीर अति दुर्वल हो गया।

एक बेर अठतालीस उपवास हो चुकने पर अन्न जल हरि कृपा से आया। सो, प्रथम एक भूखे ब्राह्मण को खिलाया; फिर उसके पीछे एक भूखे शूद्र को दिया; पुनः एक नीच को, और फिर शेष भूखे श्वान को खिला पिला दिया। यह इनकी कृपालुता तथा सम दृष्टि की नवीन रीति है, क्योंकि सबों में वे सर्वात्मा हरि ही को देखते थे। जब जल पर्य्यन्त भी दे दिया और आप भूखे वरंच प्यासे रह गए, तब इनकी दया और सम दृष्टि देख के प्रभु ने आके दर्शन दिया परम कृतार्थ किया। प्रभु को प्रसन्न पा यह बर मांगा कि सब जीव मात्र का दुःख मैं ही भोगूं और वे सब के सब दुःखरहित हो जाँय॥ प्रभु अति प्रसन्न हो उनको स्त्री पुत्र तथा पुत्र बधूतीनो सहित विमान पर बैठाके निज लोक को ले गऐ॥

ऐसे विलक्षण सन्त थे तब तो उनकी भक्ति की महिमा जग में छा रही है॥

"दुसकंत" नाम दुष्यन्त जिनकी स्त्री शकुन्तला संज्ञक, प्रसिद्ध है॥

श्रीगुह निषाद जी।

जिस समय श्रीभरत जी महारज प्रभु के दरशन

को चित्रकूट जा रहे थे उस समय कुछ और संदेह होने के कारण, श्रीनिषाद जी ने पहिले यह चाहा था कि यद्यपि श्रीभरत जी की सेना अपार है तथापि अपनी अति अल्प सेना सहित अपने को श्रीसीताराम हेतु न्योछावर कर देना चाहिये सो यह संकल्पकर लड़ने के लिये इच्छा की थी। किंतु जब प्यारे भरत जी को मन कर्म बचन से श्रीसीताराम भक्त पाया, तब श्रीभरत जी की सेवा की।

पुनः जिस समय श्रीसर्कार रघुवंश मणि आनंद कंद, लंका पत्तन का विजय हस्त गत कर, श्रीभरद्वाज जी के आश्रम पहुँचे, उस क्षण निज दूत श्रीपवनसुत जी को अवध श्रीभरत जी की चेष्टा देखने को भेजा और निषाद जी से भी श्रीमान् अनंत ऐश्वर्य्य ने अपना सुखागमन निवेदन करने को श्रीहनुमान जी को आज्ञा दी। उसी समय "द्रुमिल राक्षस" को जो श्रीअयोध्या-निवासी जनों को दुःख देने को प्राप्त था, निषाद राज ने शृंगबेर पुरही में यह विचार रोक डाला, कि "यह दुष्ट स्वामिपुर को न जाने पावे, बरन बीचही में इस को यमद्वार दिखलाऊँ"। तीन सहस्र धनुर्धरों को साथ ले, "द्रुमिल" से श्रीनिषाद जी तीन दिन से युद्ध कर रहे थे; उस समय तक निषादराज द्रुमिल की सात सहस्र सेना मार चुके थे, शेष तीन सहस्र सेना थी; परन्तु निषाद राज थके थके तथा कुछ हत पराक्रम

प्रतीयमान होते थे। वहीं उसी क्षण पहुंचतेही श्री-रामदूत जी ने हांक दिया, कि जिसमें निषाद राज का बल संवर्द्धन हो "मैं श्रीरामदूत पहुंच गया।" यह हांक सुनाकर तीन सहस्र राक्षसों को लाङ्गूल में लपेट वायु मण्डल को पहुँचा दिया; और निषाद राज जी ने द्रुमिल के साथ मल्लयुद्ध करिके उसको पृथ्वी में पटक, उसके हृदय में शस्त्र चुभा दिया, जिस्से द्रुमिल का प्राणान्त होगया॥ इसके अनन्तर दोनों श्रीराम प्रेमी परस्पर मिले; और निषाद राज से स्वामि आ-गमन जना करके श्रीमारुति जी भरत जी के समीप चलेगये। श्रीनिषाद जी श्रीभरद्वाज जी के आश्रम को प्राणनाथ से मिलने चले॥

(छन्द)

पदकमलधोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम! राउरि आन दसरथसपथ सब सांची कहौं॥
बरु तीर मारहिं लषन पै जब लगि न पांव पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहौं॥१॥

(कवित्त) प्रभुरुख पाइके बुलाइ बाल घरनीको, बन्दिके चरण चहुंदिशि बैठे घेरि घेरि। छोटोसो कठौतो भरि आनि पानी गंगा जी को, धोइ पाय पियत पुनीत बारि फेरि फेरि॥ तुलसी सराहे ताको भाग सानुराग, सुर बरषि सुमन जय जयति कहैं टेरि टेरि॥१॥

त्रिबिध सनेहसानी बानी अमयानी सुनि, हँसे राघवजानकी लषनतन हेरिहेरि ॥१॥

(दो०) पदपखारि, जलपान करि, आपु सहित परिवार। पितर पारुकरि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउलेइपार १

(१०७) टीका। कवित्त।

भोलन को राजा "गुह" राम अभिराम प्रीति भयी बन बास, मिल्यो मारग में आइके। करौ यह राज जू विराजि सुख दीजै मोको, बोले चैनसाज तज्यें आज्ञा पितु पाइकै॥ दारुण वियोग अकुलात दृग अश्रुपात पाछे लोहु जात, वह सकै कौन गाइकै। रहे नैन मूंदि "रघुनाथ बिन देखौं कहा?" अहा! प्रेम रीति, मेरे हिये रही छाइकै ॥९५॥ (६२९-५३४)

"चैनसाज"=राज्य। "जात"=बहता था, भरता था, निकलताथा।

वार्त्तिक तिलक।

सम्पूर्ण बन बासी भिल्लों के राजा शृङ्गबेरपुर बासी श्रीगुहनिषादराज जी की, प्राणनाथ शोभाधाम श्रीरामचन्द्र कृपालु जी से अतिशय अभिराम प्रीति थी, कि जिनको प्राणनाथ आत्म समान सखा मानते कहते थे। सो जब श्रीप्रभु बन बिहार मिसु सुरमुनि जनों का दुःख छुड़ाने के लिये चलके, श्रीगंगाकूल में शृङ्गबेरपुर के समीप आए; तब निषाद जी श्रीप्रभु का बनगवन सुन, पगों से चलके, समाज सहित प्राणनाथ से मिले। प्रभु ने हृदय से लगा के अपने परम

समीप बैठा लिया। तब निषादराज हाथ जोड़ बोले कि " हे सुखरास रघुवीर जी ! चलिये, यह राज्य आपका ही है, यहीं विराज, राज्य करते हुए, मुझे सुख दीजिये; मैं आपका सेवक हूं, आप मेरे स्वामी हैं, मैं सब प्रकार से सेवा करूंगा।"

यह सुन, प्राणेश्वर श्रीरघुनन्दन जी ने उत्तर दिया कि " हे सखे ! इस बात को क्या कहना, है आपका राज्य तथा आप मेरे हैं ही, परन्तु मैं तो श्रीपिता जी की आज्ञा से राज्य भोग सुख सामग्री त्याग के चला हूं चौदह बर्ष पर्य्यन्त बन ही में बसूंगा "। इतना सुन्ते ही श्रीनिषादराज विहूल होगए। तब श्रीप्राणपति प्रभु बहुत प्रकार से इनको समझा के श्री-चित्रकूट में जा बसे।"

(दो०) गमन समय अंचल गह्यो, छाड़न कह्यो सुजान। प्राण पियारे! प्रथमही अंचल तजौं कि प्रान?

यहां श्रीनिषादराज जी अपने प्राणप्रिय मित्र के दारुण वियोग से अत्यन्त व्याकुल हुए; आंखों से अश्रुपात की धारा निरन्तर बहने लगी; यहां तक कि कुछ दिन पीछे नेत्रों से रक्त टपकने लगा। हा ! वह दशा कौन कह सकता है ! प्रेमनिधि निषाद जी अपनी आंखें मूंदेही रहाकरते थे, इस विचार से कि " मित्रवर प्राण प्रिय श्रीरघुनाथ जी के बिना और क्या देखूं ! "

अहा ! यह इनके परम प्रेम की रीति मेरे हृदय में छारही है मुख से कहते नहीं बनती ॥

(दो) " जासु संग सुख लहि रह्यों, सारे दुख बिसराइ। ता प्रियतम के विरह में छुटत न यह तनु हाइ !"

(सवैया)

प्रीति की रीति कछू नहिं राखत जाति न पांति नहीं कुल गारो। प्रेम के नेम कहूं नहिँ दीसत लाज न कानि, लग्यो सब खारो ॥ लीन भयो हरि सौं अभ्यन्तर, आठहु याम रहै मतवारो। "सुन्दर" कोउ न जानि सकै यह प्रेम के गांव को पैंडोहि न्यारो ॥

(पद) सदनमोरे, आवो हो बांके यार ! दशरथ राज कुमार ! कित गयो ? हाय ! बिहाय सेज को, करद करेजे मार ॥ हाय ! निहारत डगर तिहारी होइ गई भिनुसार। कित जाऊं ? पाऊं कहँ तुमको ? जग मो को अँधिआर ॥ तुम्हरे कारन, हम सब त्यागा, लाज काज घर बार। बिरह बारि बिच, बूड़त तुम विनु ! कौन लगै है पार ? सुधि लीजे; दीजे देखाय छबि; प्रीतम प्राण अधार ! जो नहिँ अइहौ, मैं मरि जइहौं, "जीत" पुकार पुकार ॥

(१०८/८४२) टीका। कवित्त।

चौदह बरस पाछे आए रघुनाथ नाथ; साथ के जे भील कहैं "आए प्रभु देखिये"। बोल्यो "अबपाऊँ कहां होति न प्रतीति क्यौंहूं प्रीति करि मिले राम,

कहि "मोको पेखिये॥ परसि पिछाने लपटाने सुख सागर समाने प्राण पाये, मानो भाल भाग लेखिये। प्रेम की जू बात क्योंहूं बानी में समात नाहिं अति अकुलात कहो कैसेके बिशेषिये॥९६॥ (६२९-५३३)

"पेखिये"=देखिये। "पिछाने"=पहिचाने। "क्योंहूं"=किसी भांति से भी।

वार्त्तिक तिलक।

इस प्रकार चौदह बर्ष व्यतीत हुए पर निषाद राज के नाथ श्रीरघुनाथ जी आ, पुष्पक विमान से उतर, श्री निषादराज से मिलने को पधारे; सो देख, इनके साथ के भिल्लोंने दौड़ के श्रीनिषाद जी से कहा कि "आप के प्रभु आए, आंखें खोलके दर्शन कीजिये।" तब आप बोले कि "मैं प्राणनाथ प्रभु को अब कहां पासकता हूं, मुझे किसी प्रकार से भी प्रतीति नहीं होती"।

इतने में स्वयं प्राणप्रिय मित्रवर जी आ, हाथों से उनको उठा, सप्रेम हृदय में लगा, कहने लगे कि "सखे! नयन उघार मुझको देखो॥ श्रीप्रभु के वचनामृत सुन, तथा दिव्य मङ्गल विग्रह का सुखद स्पर्श पहिचान, ये भली भाँति से लपट गए।

श्रीनिषादराज से मिलने का सुख श्रीभक्तवत्सल कृपालु जी को श्रीभरतजी के ही मिलन सुख के समान हुआ; और श्रीनिषाद राज जिस असीम आनन्द-

सिन्धु में मग्न हुए, सो सर्वथा अगाध और अपारही है। "मृतक शरीर प्राण जनु भेटे" और ये अपने भाल में लिखे सुन्दर भाग्य का पूर्ण उदय जानके धन्यतर कृतार्थ हुए॥

प्रेम की बातें वाणी में किसी प्रकार समातीं ही नहीं, प्रीति की वार्त्ता वर्णन करने के लिये बुद्धि बानी अतिशय अकुलाती है परन्तु किस विशेषण से उसकी व्याख्या की जासके॥

(दो०) प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
माथो बदले मिलत है, भावै सो लैजाय॥१॥
आंखड़ियन झाईं पड़ी, पन्थ निहारि निहारि।
जीभड़िया छालेपड़े, नाम पुकारि पुकारि॥२॥
छनक चढ़ै, छन ऊतरै, सो तो प्रेम न होइ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावैं सोइ॥३॥

श्रीऋभु जी।

श्रीऋभु जी ब्राह्मण के बालक थे एक दिन श्रीउमामहेश्वर जी के मन्दिर हो के चले जा रहे थे, शिव लिङ्ग को बहुत चिकना सुन्दर देख चित्त में पूजन की श्रद्धा हुई; सो एक फूल (जो उस समय इनके हाथ में था) उसको उस विग्रह पर रख के बोले कि "नमः शिवायै च नमः शिवाय"। आशुतोष औढरढरन महादानी श्रीगिरिजावर जी के मन्दिर से वाणी हुई कि "वरमांग"।

इन ने कर जोड़ के प्रार्थना की कि "महाप्रभो ! आप से भी बड़ा जो कोई परम पुरुष हो, आप कृपा करके उनका दर्शन इस अबोध बालक को अपनी कृपा से करा दीजिये" ।

(स०) देवनके शिरदेव बिराजत ईश्वरके शिर ईश्वर कहिये । लालनके शिर लाल निरंतर खूबनके शिर खूबनलहिये ॥ पाकनके शिर पाक शिरोमणि देख बिचार वही दृढ़ गहिये । सुन्दर एक सदा शिर ऊपर और कछू हमको नहिं चहिये ॥

इस भारी वर की याचना से श्री गिरजापति कुछ विचारने लगे। इतनेही में, अपने भक्तराज महाभागवत परमप्रिय देव देव महादेव के वचन के पूरा करने के हेतु, श्रीहरि स्वयं वहां प्रगट होगये । करुणासागर भक्तवत्सल त्रिभुवनपति जगदाधार शोभाधाम को देखतेही, श्रीशिवजी भी प्रत्यक्ष हो, प्रेम और हर्ष में चकित होते हुये द्विजबालक (श्रीऋभु जी) से बोले कि "वत्स! ले जिन दीनबन्धु ब्रह्मण्यदेव जगतत्राता प्राणेश्वर को तू ढूंढ़ता था, सो तेरे सुकृतियों के फल कारणरहित कृपालु यही हैं; तेरे भाग्य धन्य, तू धन्य, तेरी माता और तेरे गुरू धन्य" ॥

(सवैया)

होत बिनोद जितो अभिअंतर सो सुख आप में आपही पैये । बाहिर क्यों उमग्यो पुनि आवत कंठ ते

सुन्दर फेर पठैये। स्वाद निवेर निवेरयो न जात मनो गुड़ गूंगहि ज्यौं नित खैये। क्या कहिये कहते न बने कछु जो कहिये कहतेही लजैये॥

श्रीऋभुजी को भक्ति वरदान. देके दोनों अन्तर्धान होगये॥

श्री इक्ष्वाकु जी।

श्रीसूर्यवंश में महाराज श्रीइक्ष्वाकु जी बड़े ही प्रतापी हुये आपकी राजधानी यही साकेतपुरी अर्थात् श्रीअयोध्या जी थी आप तप वल से शरीर त्याग कर परमधाम को चलेगये,

आपने तप करके जब बरदान मांगा था तो, "मुसकाइ कह्यो हरि तेरेइ बंशमें खेलिहौं औध के अंगन में"

पुराणों में आपकी विचित्र कथा है। उसके लिखने की यहां कोई आवश्यता नहीं देखी।

श्रीऐल (पुरूरवा) जी

राजा पुरूरवाही का नाम ऐल है क्योंकि उनकी माता इला जी थीं, और पिता श्रीबुध जी श्रीइला जी की कथा पुराणों मैं विचित्र लिखी है जिसकी संक्षिप्त वार्ता यह है कि एक महीना यह स्त्री रहती थी और दूसरे महीने में पुरुष अर्थात् राजा सुद्युम्न, अस्तु।

सोई इला जी के पुत्र श्रीपुरूरवा जी उर्वशी अप्सरा

के संग और प्रेम में बहुत दिन तक मृत्युलोक और गन्धर्वलोक में रहे। पुनः जब पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आये तो पिछली बातें स्मरण होने से इनको बड़ा विराग हुवा जिस विराग का फल श्रीहरिपद अनुराग पाकर आप हरि कृपा से वैकुण्ठ को गये।

---:o:---

श्री गाधि जी।

राजा श्रीगाधि जी के ही पुत्र श्रीविश्वामित्र जी हैं जिनने साक्षात् प्रभु को अपनी वात्सल्य भक्ति से प्रसन्न किया कि जिनको प्रभु ने श्रीवशिष्ठ जी के समान आदर दिया, यह कथा श्री मानस रामायण जी में सब प्रेमियों ने देखीही है॥

गाधि जी की बेटी के पुत्र श्री यमदग्नि जी हैं॥

राजा गाधि बड़े भक्तिमान हुये॥

---:o:---

महाराज श्रीरघु जी।

श्रीअयोध्या जी के महाराज श्रीरघु जी का प्रताप चौदहो भुवन में छाया हुआ था॥

एक समय उनकी महारानी को देख एक ब्राह्मण वैसीही स्त्री पाने के लिये श्रीशिव जी को अपना मस्तक अर्पण कर देना चाहा। यह वार्त्ता सुन के महाराज ने अपनी स्त्री राज समेत उस ब्राह्मण देवता को दे दी और उसी विप्र के मनोरथ हेतु इन्द्र ब्रह्मा तथा स्वयं

श्रीवैकुण्ठनाथ से बहुत विनय प्रार्थना की कि जिससे प्रसन्न होके उस ब्राह्मण ने वैकुण्ठ में निवास पाया।

आप ऐसे प्रतापी हुये कि आपही के नाम पर वह वंश आज तक [रघुवंश के नाम से] प्रसिद्ध है और भाग्य की बड़ाई इससे अधिक और क्या कि श्रीसाकेत विहारी आपही के वंश में आके प्रगट हुये।

श्रीरय जी।

श्रीरय जी राजा पुरूरवा के पुत्र थे (उर्वशी अप्सरा जिनकी माता थी) (१) जय (२) विजय (३) रय (४) आयु (५) श्रुतायु (६) सत्यायु ये छः सहोदर भ्राता थे। "रय" इन में बड़े प्रतापी थे॥

—:०:—

श्रीगय जी।

महाराज श्रीप्रियव्रत जी के कुल में राजा "नक्त" के पुत्र श्रीद्रुति जी से हुये। एक बार यज्ञ में आपने ऐसा मनोरथ किया कि जिस प्रकार से देवता लोगों ने कृपा कर के प्रत्यक्ष हो के अपना२ भाग लिया, वैसे प्रभु भी अनुग्रह करके प्रगट हों, पर जब ऐसा न हुआ तो राजा ने अन्न जल त्याग दिया और प्रभु की प्रतीक्षा करते रहे।

सच्चे व्रत और प्रेम वाले पर हमारे प्रभु ने कब कृपा नहीं की है? करुणाकर भक्तवत्सल हरि मख में आही तो पहुंचे।

यज्ञ पूर्ण कर के राजा बद्रिकाश्रम जाय योगसे शरीर तज प्रभु के लोक में जा पहुंचे और उनकी धर्मपत्नी भी सती होकर पति से जा मिली ।

श्रीसतधन्वा जी ।

सतधन्वां की कथा (समन्तक मणि के सम्बन्ध में) श्रीमद्भागवत में विस्तारसे वर्णित है । इनको श्रीकृष्ण भगवान ने मारा और मुक्ति दी ।

श्रीउतंक जी ।

श्रीउतंग (उतङ्क) जी दण्डकबन बासी थे । उनके गुरू, स्वामी श्रीमतंग ऋषिजी, जब श्रीराम धाम जाने लगे तो उनको आज्ञा दी कि तुम इसी बन में भजन करो । यहीं श्रीसीतानाथ साकेत पति शार्ङ्गधर आवेंगे और कृपा करके तुम को दर्शन देगे सो वैसाही हुआ ।

श्रीदेवल जी; श्रीअमूर्त जी ।

श्रीदेवल जी, जो ब्राह्मण और मौनी थे, और श्री-हरिदास (अमूर्त) जी, ये दोनो बचपनही से त्यागी बड़भागी और रामानुरागी हुये ।

श्रीनहुष जी ।

एक नहुष श्रीसूर्य्यवंश में हुये हैं और दूसरे नहुष

श्रीचन्द्रवंश में। श्रीसूर्य्यवंशी नहुष जी श्रीअयोध्या जी के राजा थे। जब गौतम जी के शाप से वा ब्रह्म हत्या के भय से इन्द्र मशक सरिस लघु होके मान-सरोवर के कंज नाल में जा छिपे तब नहुष जी देवतों के राजा इन्द्र के स्थान पर बिठाये गये। वह उस समय अपने यान को मुनियों के कन्धे पर उठवा के इन्द्रानी के पास चला। उन ब्राह्मणों के शाप से सर्प होकर मृत्युलोक में गिरा और एक गिरि कन्दरा में काल बितानेलगा। भागवश श्रीयुधिष्ठिर जी उधर से जा निकले उनके पुण्य प्रभाव से शाप से उधार होके परम धाम को पाया।

श्रीययाति जी।

श्रीनाहुषजी अर्थात् श्रीनहुष जी के पुत्र श्रीययाति जी, आखेट को बनमें गये वहां श्रीशुक्राचार्य्य की बेटी देवजानी से बहुत बात चीत हुई; संक्षेप यह कि शुक्राचार्य्य जी ने देवजानी का विवाह राजा ययाति से करदिया। उनसे दो लड़केहुये।

श्रीशुक्राचार्य्य जी के शाप से वृद्ध हो गये, फिर अपने पुत्र की सहायता से आपने युवावस्था पाई, अन्त को घर छोड़ बन में गये।

निदान भगवत भजन के प्रभाव से परम धाम पाया।

श्रीदिलीप जी।

श्रीदिलीप जी सातो द्वीप के राजा थे; आप की राजधानी श्रीअयोध्या जी थी।

एक दिन रावण विप्र वेष बनाके आप के पास पहुंचा, उस समय महाराज पूजा कर रहे थे।

एक कुश और किंचित जल दक्षिण दिशा की ओर फेंका; यह देख रावण को संदेह हुआ और उसने पूछा कि आपने यह क्या किया? महाराज ने उत्तर दिया कि बन में गायें चररही थीं, उनको सिंह ने पकड़ना चाहा था। इसी लिये मैंने मंत्रित कर के वह तृण फेंका है, सो उस बाण ने बाघ को मार के गायों की रक्षा की और लंका में जाके रावण का घर जलाने लगा इस लिये उसके पीछे जल छोड़ दिया कि जिसने वह आग बुझा दी है।

यह सुनकर रावण झटपट चलदिया और जाकर देखा तो आप की सब बातें ठीक पाईं और आश्चर्य्य तथा शंका में डूबके फिर कभी यहां (श्रीअयोध्या जी) आने का नाम न लिया वरन् महाराज दिलीप के नाम से डरा करता था।

यशस्वी महाराज दिलीप जी ने अपने पुत्र श्रीभगीरथ जी को राज देकर वनजाय श्रीगंगा जी के हेतु तप करते २ तन तज दिया।

आप का मनोरथ श्रीभगीरथ जी ने पूरन किया कि जिनकी कथा पृष्ठ २३२ में लिखी जा चुकी है।

श्रीयदु जी।

श्रीयदु जी, राजा श्रीययाति के पुत्र थे देवजानी के गर्भ से।

श्रीदत्तात्रय जी महाराज ने कृपा कर के राजायदु के यहां आकर दर्शन दिया और इनके सतसङ्ग से राजा-यदु को विवेक उत्पन्न हुआ और राजतज बन में जा भगवत भजन कर परम धाम को गये।

आपही के वंश में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुये थे।

(१) श्री पुरुषोत्तम भगवान् के (२) श्री ब्रह्माजी; उनके (३) श्री अत्रिजी; जिनके (४) श्री चन्द्रजी; जिनके (५) श्री बुधजी; जिनके (६) श्री पुरूरवा जी; जिनके (७) आयु; जिनके (८) श्री नहुषजी; जिनके (९) श्री ययातिजी; (१०) उनके पुत्र श्री यदु जी और श्री "पुरु" जी थे॥
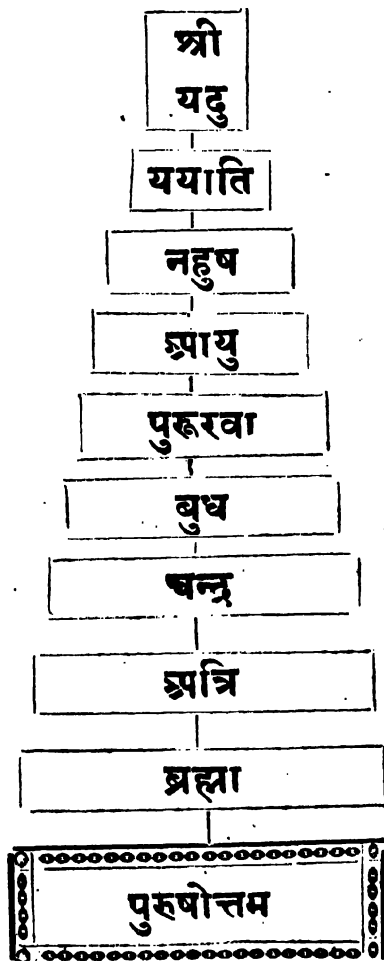
श्रीमानधाता जी ।

श्रीमानधाता जी श्रीअयोध्या जी के राजा बड़े प्रतापी और धर्म्मात्मा थे । श्री "सौभरी" ऋषि ने आप से मांगा कि "मुझे अपनी एक कन्या दीजिये," राजा ने उत्तर दिया कि "बहुत अच्छा, मेरी पचासो कन्याओं में से जो आप को बरे, आप उसको लेजाइये"

मुनि को देख के सबही ने उनको बरा; तब राजा ने पचासो कन्यांए मुनि को दान कर दीं ।

श्रीविदेहनिमि जी ।

महाराज श्री "निमि" जी विदेह ने जिनकी राज धानी श्रीमिथिलापुरी थी, यज्ञ करना चाहा; उसी समय उनके पुरोहित श्री १०८ वशिष्ठ जी महाराज को श्रीइन्द्र जी ने बोलालिया । जब महामुनीश्वर श्रीबशिष्ठ जी इन्द्रलोक से लौट आये, तब देखा कि राजा तो गौतम जी से यज्ञ करारहे हैं; क्रोध में आके राजा को शाप दिया कि तू विदेह हो जा; राजा ने भी वशिष्ठ जी को शापदिया कि आप भी विदेह हो जाइये । यह देख श्रीब्रह्मा जी ने वशिष्ठ जी को देह (शरीर) दिया; और राजा को यह आशीष कि "तुम्हारा बास सब की आंखौं की पलकों पर रहे" !

तब से, वहां के राजा "विदेह" कहलाने लगे ।

महाराज श्रीनिमि जी के पास एकदिन नवो योगेश्वर कृपाकर पहुंचे महाराज ने आदर सत्कार पूजा के उपरान्त, आप से कई प्रश्न पूछे; और, नव योगीश्वरों से एक २ करके सबका उत्तर पाया; कि जो विस्तार पूर्व्वक श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में है। उसको अवश्यही पढ़ना सुनना चाहिये। पृष्ट २२९

श्रीनिमि जी महाराज एक अंश से तो सब की पलकों पर बसते हैं, और एक रूप से श्रीसाकेत मे विराजते हैं।

श्रीभरद्वाज जी।

महामुनि श्री "भरद्वाज" जी का यश श्री "मानस रामचरित्र" में प्रसिद्ध है, कि जिनकेही मनोरम प्रश्न पर श्री "याज्ञवल्क" जी ने परम हित कारिणी कथा प्रगट की आप की महिमा कहांतक वर्णन कीजावे कि जिनके अतिथि श्रीराम प्राणप्रिय " भरत " जी हुये, पुनः स्वयं प्रभु श्रीजनकनन्दिनी जी और लाल लाड़ले श्रीलषण जी समेत बड़े प्रेम से इनके आश्रम में आए।

श्रीतीर्थराज प्रयाग में आप का पावन आश्रम आज भी प्रसिद्ध है।

श्रीदक्ष जी।

श्रीदक्ष जी ने एक पहाड़ पर भजन किया, भगवत ने प्रसन्न होकर दर्शन दे यह आज्ञा की कि "पहिले

गृह में रह के भोग विलास और प्रजा उत्पत्ति करलो तब मेरे धाम में आना"।

श्रीदक्ष जी के, कई बेर, दश दश सहस्र बेटे हुये और इनने सब को सृष्टि हेतु तप करने के लिये "नारायण सर" पर भेजा; परन्तु, "श्रीनारद उपदेशेउ आई, ते पुनि भवन न देखेउजाई"।

तब, श्रीब्रह्मा जी के उपदेश से श्रीदक्ष जी ने साठ कन्यायें उत्पन्न कीं; जिनकी कथा श्रीमद्भगवत में विस्तार पूर्व्वक है, अस्तु।

अन्ततः, श्री हरिहर कृपा से श्रीदक्ष जी ने परम गति पाई।

श्रीपुरु जी।

श्री "पुरु" जी श्रीयदु जी के भाई थे और भगवद्भक्त॥

श्रीभूरिषेन जी।

श्रीभूरिषेन जी बड़े भक्त थे॥

श्रीवैवस्वतमनु जी।

चौदह में प्रथम श्रीस्वायंभू मनु जी हैं कि जिनकी धर्मपत्नी श्रीसतरूपा जी हैं कि जिनकी कथा पृष्ठ ८६ में लिखी जा चुकी है। शेष तेरह मनु और हैं;

मनु और मन्वन्तर ।

अथ चौदहो मनु के नाम—

१ श्रीस्वायम्भू मनु जी	८ सावर्णि मनु
२ स्वारोचिष मनु	९ दक्ष सावर्णि मनु
३ उत्तम मनु	१० ब्रह्म सावर्णि मनु
४ तामस मनु	११ धर्म सावर्णि मनु
५ रैवत मनु	१२ रुद्र सावर्णि मनु
६ चाक्षुष मनु	१३ देव सावर्णि मनु
७ श्रीवैवस्वत मनु	१४ इन्द्र सावर्णि मनु

☞ जैसे सातो दिनों का एक " सप्ताह ", तथा बारहो महीनों का एक "बर्ष" हुवा करता है, वैसेही सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारों की एक "चौकड़ी" ("चतुर्युग") जानिये । हां तो ऐसे ऐसे सहस्र चतुर्युगों वा १००० चौकड़ियों का, केवल "एक-दिन-श्री-ब्रह्मा-जी-का" होता है; सो, ब्रह्मा जी के प्रत्येक दिन में चौदह मनु होजाया करते हैं। अर्थात् एक एक मनु, (१०००÷१४) कुछ ऊपर-एकहत्तर चतुर्युगों पर्य्यन्त रहा करते हैं। जब एक मनु की अवधि पूरी होती है तो उनके साथही साथ उस समय के इन्द्र, सप्तर्षि, मनुपुत्र, भगवदवतार, और देवता, ये छओ पहिले की जगह नए नए होते हैं। प्रत्येक समूह (इन छओं का), एक एक " मन्वन्तर " कहलाता है; जब चौदह मन्वन्तर हो चुकते हैं, अर्थात् चौदहो

(१) मनु (२) इन्द्र (३) सप्तर्षि (४) मनुपुत्र (५) भगवदवतार (६) देवता, की एक एक आवृत्ति हो चुकती है, तो तब, एक सहस्र चौकड़ियां व्यतीत होती हैं वा श्रीब्रह्मा जी का एक दिन पूरा होता है। ऐसे ऐसे दिनों से जब एक सौ बर्ष पूरे होते हैं, तब श्रीराम-इच्छासे पूर्व ब्रह्मा के स्थान में नए ब्रह्मा जी होते हैं। प्रभु की रचना की महिमा अपार तथा अकथनीय है।

(सवैया)

बेद थके कहि, तन्त्र थके कहि, ग्रन्थ थके निशि वासर गाते। शेष थके, शिव, इन्द्र थके, पुनि खोज कियो बहु भांति बिधाते॥ पीर थके, औ फ़कीर थके, पुनि धीर थके, बहुबोलिगिराते। "सुन्दर" मौन गही सिध, साधक, कौन कहै उसकी मुख बाते॥

श्रीशरभंग जी।

महामुनि श्री शरभंग जी की स्तुति जितनी की जाय थोड़ी है। आप कृतयुग से ही श्री सीताराम दर्शन के लिये तप कर रहे थे। इन्द्रने बहुत विघ्न किये पर श्रीराम कृपा से मुनि जी का मनोरथ सुफल हुआ ही॥

(चौ०) पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा।
सुन्दर अनुज जानकी संगा॥

(दो०) देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग। सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभंग॥

(चौ०) कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राज मराला॥ जात रहेउं विरंचि के धामा। सुनेउं स्रवन बन अइहहिं रामा॥ चितवत पंथ रहेउं दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥ नाथ! सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥ सो कछु देव! न मोहि निहोरा। निजपन राखेहु जनमन चोरा॥ तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलउं तुम्हहिं तनु त्यागी॥ जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहं देइ भगतिवर लीन्हा॥ एहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदय छाड़ि सब संगा॥

(दो०) सीता अनुज समेत प्रभु, नीलजलद तनु स्याम। मम हिय बसहु निरंतर, सगुनरूप श्रीराम॥

(चौ०) अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपा वैकुंठ सिधारा॥ तातें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति मन दयऊ॥ रिषि निकाय मुनि वर गति देखी। सुखी भये निज हृदयविसेखी॥ अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनतहित करुनाकंदा॥

श्रीसंजय जी।

सत्यबादी हरिभक्त श्री संजय जी, महर्षि श्री

"व्यास" जी के शिष्य और राजा "धृतराष्ट्र" के मन्त्री तथा पुरोहित थे । श्री प्रभु कृपा और व्यास जी के आशिष से इनको दिव्य दृष्टि मिली "श्रीभगवद्गीता" को पहिले श्रीसंजय जीही ने धृतराष्ट्र से कहा था । महा भारत में इनकी कथा बहुत विस्तार है । जब धृतराष्ट्र ने अपनी स्त्री गन्धारी समेत श्रीबिदुर जी के उपदेश से सप्तधारा गंगा के तट जाके प्राण त्याग किया, तब श्रीसंजय जी भी बिरक्त हो मुक्त होगये ॥

—:०:—

श्रीउत्तानपाद जी ।

श्रीमहाराज उत्तानपाद जी सब बिधि प्रशंसनीय हैं, कि जिनने भक्तराज श्री "ध्रुव" जी सा (पृष्ट १७४) पुत्र पाया । श्री ध्रुव जी को राज दे, बन जा, हरि का भजन कर आपने परांगति पाई ।

श्रीयाज्ञवल्क्य जी ।

श्रीसूर्य्य भगवान ने कि जिनसे श्रीयाज्ञवल्क्य जी ने विद्या प्रथमतः पढ़ी थी, अतिशय प्रसन्न होके यह आशिष दिया कि "जो तुमसे विवाद करेगा उस्का सीस स्वतः फट जावेगा ।"

आप महर्षियों में हैं । आपने श्रीभरद्वाज जी के प्रश्न के उत्तर में, कृपा करके श्रीपार्वती शिव सम्वाद

"मानस राम चरित" गाया है। आप की स्मृति भी प्रसिद्ध है ही। आप अत्यन्त प्रेमी महाभागवत परम विवेकी महानुभाव हैं॥ आपकृत उपदेश विख्यात है॥

श्रीसमीक जी; श्रीपिप्पलाद जी।

श्रीसमीक जी तथा महा भागवत श्रीपिप्पलाद जी बड़े ज्ञानी ध्यानी प्रेमी थे॥

:o:

(१०१/८४२) छप्पै।

निमि अरु नौ योगेश्वरा पाद त्राण की हौं शरण। कवि[१], हरि[२], करभाजन[३] भक्ति रत्नाकर भारी॥ अन्तरिक्ष[४], अरु चमस[५], अनन्यता पधति उधारी॥ प्रबुध[६], प्रेम की राशि; भूरिदा आबिर होता[७]। पिप्पल[८], द्रुमिल[९], प्रसिद्ध भवाब्धि पार के पोता॥ जयन्ती नन्दन जगत के त्रिविधि ताप आमय हरण। निमि अरु नव योगेश्वरा पाद त्राण की हौं शरण॥ ८॥ (११/२१२)

"पाद त्राण"=खड़ाऊं, पनही, जोड़ा, पगरखी।
भूरिदा=बहुत देनेवाला।

वार्त्तिक तिलक।

महाराज श्री निमि जी और नौ (९) योगेश्वरों के पादत्राणों के मैं शरणागत हूं और उनके पादत्राण मेरे रक्षक हैं। उन नवो योगेश्वरों के नाम और गुण कहते हैं। श्री कवि जी, श्रीहरि जी, और श्री करभाजन जी, जो नवधा प्रेमा परादि भक्तियों के महारत्नाकर [समुद्र] हैं। श्री अन्तरिक्ष जी और श्री चमस जी, जो भागवत धर्म अनन्य मार्ग के उद्धार करने वाले हैं। श्री प्रबुद्ध जी जो भगवत प्रेम की राशि ही हैं। श्री अविर्होता जी जो भक्ति ज्ञान वैराग्य के महा दानी हैं। श्री पिप्पलायन जी और श्री द्रुमिल जी, जो संसार सागर से पार जाने के अर्थ प्रसिद्ध महा नौका हैं॥

श्रीनिमि जी की कथा पृष्ठ २७८ में देखिये॥

१ श्री कवि जी,	६ श्री प्रबुध जी,
२ श्री हरि जी,	७ श्री आविर्होता जी,
३ श्री करभाजन जी,	८ श्री पिप्पलायन जी,
४ श्री अन्तरिक्ष जी,	९ श्री द्रुमिल जी,
५ श्री चमस जी,	(१०) श्री निमि जी महाराज

(११) श्री जयन्ती जी देवी।

[पृष्ठ १९६, पंक्ति ९। १०। ११ देखिये॥]

देवी श्री जयन्ती जी।

श्री ऋषभदेव जी (पृष्ठ ६१) की धर्म पत्नी परम

भागवती देवी श्री जयन्ती जी धन्य हैं, कि जिनके एक सौ पुत्रों में, परम आनन्द दायक ये नवो पुत्र संपूर्ण जगत के जनों के तीनो ताप तथा काम क्रोधादिक मानसिक महा रोगों के हरने हारे, और श्री भरत जी भगवत के प्यारे, हुए। धन्य धन्य, जय जय॥

दम्पति के उन एक सौ पुत्रों में से ८१ महिसुर (ब्राह्मण) और शेष महीश (अवनीश) हुए॥

(११८/१४२) छप्पय।

पद पराग करुणा करो, जे नेता "नवधा भगति" के॥ श्रवण[1] परीक्षित; सुमति ब्यास सावक सुकीरतन[2]। सुठि सुमिरन[3] प्रहलाद; पृथु पूजा[4]; कमला[5] चरनन मन॥ वन्दन[6] सुफलक सुवन; दास्य[7] दीपत्ति कपीश्वर। सख्यत्वे पारथ[8]; समर्थन आतम बलि[9] धर॥ उपजीवी इन नाम के एते त्राता अगति के। पद पराग करुणा करौ (जे) नेता नवधा भगति के॥ १०॥ (१४/२१३)

"दीपति"=दीप्ति; प्रकाश। वन्दन=नमस्कार; अभिवादन।
"नेता" के स्थान में, पाठान्तर नियन्ता भी है। "नेता"=प्रवर्तक प्राप्तकराने वाले। "सुफलक सुवन;=अक्रूर जी। व्यास सावक=व्यासजी के पुत्र परम [illegible] श्री शुक देव जी। पृष्ठ १७ का श्लोक देखिये॥

[श्लोक]

श्रीकृष्ण श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकी कीर्त्तने,
प्रह्लादः स्मरणेऽङ्घ्रि पद्मभजने लक्ष्मीः, पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवादने कपिपतिर्दास्ये च, सख्येऽर्जुनः, सर्व
स्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कैवल्यमेते विदुः ॥१॥

वार्त्तिक तिलक।

जो जो महानुभाव नवधा भक्ति के प्राप्त कराने वाले आचार्य्यरूप हो, सो आप सब मुझपर करुणा करके, अपने पद पंकजों की धूरी मुझ को दीजिए।

(१) श्रवण भक्ति निष्ठ मतिमान श्री परीक्षित जी;

(२) कीर्त्तन भक्ति निष्ठ वैयासकी महासुमति परम हंस श्री शुक जी;

(३) सुन्दर स्मरण भक्ति निष्ठ श्री प्रह्लाद जी;

(४) भगवत चरण सेवन भक्ति निष्ठा मानस वती महारानी कमला श्री लक्ष्मी जी;

(५) अर्चन पूजन भक्ति निष्ठ श्री पृथु जी;

(६) बन्दन भक्ति निष्ठ श्री अक्रूर जी;

(७) श्री सीतापति दास्य भक्ति निष्ठा दीप्ति युक्त कपीन्द्र श्री हनुमान जी।

(८) सख्य भक्ति निष्ठ प्रथा पुत्र श्री अर्जुन जी;

(९) आत्म निवेदन भक्ति निष्ठाधारी श्री बलि जी;

ये श्रवणादिक नवो नाम वाली भक्तियां ही जिनकी प्राणाधार जीविका हैं, सो नवो महा भागवत, सब गति मति हीन जनों के रक्षक हैं॥

स्वामी श्री ६ राम रसरंगमणि जी का छप्पय, कि जिन से इस दीन ने भक्तमाल पढ़ी है।

(छ०) नवधा भक्ति निधान ये, राम प्राण प्रिय भक्त दश ॥ श्रवण समीरकुमार, कीरतन कुश लव निर्भर। शुचि सुमिरन रत भरत, चरण सेवन अङ्गद कर ॥ पूजन शबरी, शुभ सुमन्त्र बन्दन अधिकारी। लखन दास्य, सुग्रीव सख्य सुख लूट्यो भारी। आत्म समर्पण गीधपति, रसरङ्ग मणी करि लिये यश। नवधा भक्ति निधान ये राम प्राणप्रिय भक्त दश ॥

श्री परीक्षित जी।

(१११/८४२) टीका। कवित्त।

श्रवणरसिक कहूं सुने न परीक्षित से, पान हूं करत लागी कोटि गुण प्यास है। मुनि मन मांझ क्योहूं आवत न ध्यावत हूं वहीं गर्भ मध्य देखि आयो रूप रास है ॥ कही शुकदेव जू सों टेव मेरी लीजै जानि, प्रानलागे कथा, नहीं तक्षक को त्रास है। कीजिये परिक्षा उर आनी मति सानी अहो! बानी विरमानी जहां जीवन निरास है ॥ ९७ ॥ (६२९-५३२)

"टेव"=बान, प्रकृति, स्वभाव। "विरमानी"=ठहर गई, रुकी।

वार्त्तिक तिलक।

राजा परीक्षित के समान भगवतकथा श्रवण रसिक कहीं सुनने में नहीं आता। श्रवण पुटन से हरि

कथा सुधा पान करते हुए भी प्यास कोटि गुनी बढ़ती ही जाती थी । ऐसा क्यों न हो ? देखिये जो प्रभु मुनियों के ध्यान करने से भी उनके मन में किसी प्रकार से नहीं आते, उन्हीं रूपरास भगवान को गर्भ के मध्य में आप दर्शन कर आए हैं। श्री भागवत सुनते समय श्री शुक जी से कहा कि "मेरी प्रकृति जान लीजिये कि प्रभु की कथा ही में मेरे प्राण लगे हैं। मुझ को तक्षक का कुछ भय नहीं है। चाहे आप मेरी परीक्षा ले लीजिये;" यह सुन श्री शुकदेव जी अपने हृदय में यह बात लाए कि राजा सत्य कहते हैं कथा में इनकी मति सनि गई है ।

अहो ! श्री परीक्षित जी की क्या प्रशंसा की जावे कि ज्योंही श्री शुकदेव जी की वाणी समाप्त हुई, उसी क्षण शरीर को त्याग दिया परमधाम चले गए॥

श्री परीक्षित जी की कथा पृष्ठ १९१ में भी लिखी जा चुकी है कि ("जिनके हरि नित उर बसैं") ॥

परम हंस श्री शुकदेव जी ।

(१ १ २ / ८ ४ ३) टीका । कवित्त ।

गर्भ ते निकसि चले बनही में कीयो वास, व्यास से पिता को नाहिं उत्तरहु दियो है । दशम श्लोक सुनि गुनि मति हरि गई, लई नई रीति, पढ़ि भागवत लियो है ॥ रूप गुन भरि सद्योजात कैसे करि; आए सभानृप

ढरि भीज्यो प्रेम रस हियो है। पूछे भक्त भूप ठौरठौर परें भौंर, जाइ, गाइ उठे जबे मानो रंगभर कियो है ॥ ९८ (६२९—५३१)

ढरि'=चलिके, ढरक के, कृपा करके।

वार्त्तिक तिलक।

परम हंस श्री शुकदेव जी की कथा (पृष्ठ ५ तथा ९२ में) यहां तक तो लिखी जाचुकी है कि शुक का बच्चा श्री व्यास जी की स्त्री के मुख द्वारा उदर में प्रवेश कर गया। बारह बर्ष उनके उदर में ही आप रहे। पुनः देवतों मुनीश्वरों की प्रार्थना से आप गर्भ से निकल के उसी क्षण चल दिये और जाके बन ही में बसे। महर्षि श्री व्यास जी सरीखे पिता को (पृष्ठ ५) "पुत्र! पुत्र!!" पुकारने पर स्वयं उत्तर तक न दिया, किन्तु वृक्षों से ही कहला के प्रबोध कर दिया।

तब श्री व्यास जी ने एक अनुरागका जाल फेंका अर्थात् भगवद्यश के श्लोक सिखाकर लड़कों को (श्री अगस्त्य जी के शिष्यों को) बन में आपकी ओर भेजा। किसी दिन एक लड़के को अपूर्व भगवद्यश का एक* श्लोक भागवत के तृतीयस्कन्ध का गाते सुनके आप की मति हर गई। भगवत प्रेम में आप ऐसे पगे कि उस लड़के से पता पूछकर श्रीव्यास जी के पास आकर

---

* अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

नवीन रीति ग्रहण कर (अर्थात् जिनने उत्तर भी न दिया था सो) अब पास में रह के श्रीमद्भागवत को पढ़ा॥

तब संपूर्ण श्री भागवत में जो श्री भगवत रूप और गुणों का वर्णन था, सो सब इनके मन में भरके उसके आनन्द का भार इतना हो गया कि जो किसी प्रकार से सहा नहीं जाता था।

एवं, जब ऋषिपुत्र के शाप से राजा परीक्षित जी राज तज के श्रीगंगा कूल में मुनियों के वृन्द समेत सभा में बैठे, और भक्त राजा जी ठौर ठौर के मुनीश्वरों से अपनी सुगति का उपाय पूछ रहे थे; मुनीश्वर लोग इस विचार के चक्कर (भंवर) में पड़े थे कि राजा को क्या उपदेश देना चाहिये।

उसी क्षण उस सभा में, श्री परीक्षित जी के भाग्य बश, श्री शुकदेव जी, कि जिन का हृदय श्री भगवत प्रेमरस से भीगा हुआ है, सो परोपकारता की ढरन से ढरके, आ पहुंचे और राजा से कहा कि तुम भगवत यश सुनो। यह कह श्री "भागवत" कथा गा चले, मानो प्रेमरंग की झड़ी सी लगा दी। श्री भागवत, श्री परीक्षित महाराज को श्री शुकजी ने ऐसा सुनाया कि सातही दिन में महाराज ने परम पद ही पालिया॥

श्रीव्यास जी तथा सुरगुरु श्री बृहस्पति जी की आज्ञा से श्रीशुकजीने, विज्ञान सिन्धु श्री जनक जी महाराज से उपदेश लिया।

एक समय किसी तीर्थ पर देवाङ्गनाएं वस्त्र रहित

स्नान कर रही थीं परमहंस श्री शुकदेव जी अकस्मात उधरही से जा निकले, उन देवियों ने आप से तो लज्जा न की, परन्तु व्यास जी को देखतेही शीघ्रता एवं लज्जा पूर्वक वस्त्र धारण करने लगीं। और, व्यास जी की शंका का उत्तर उन बड़भागियों ने यह दिया कि "प्रभो! आप से अथवा सब से लज्जा तो सामान्यतः अवश्य है ही, रही वार्त्ता यह कि परमहंस श्रीशुकदेव जी से लज्जित क्यों न हुईं? सो उनको तो स्त्री पुरुष का भेदही नहीं, वे तो सब को भगवत्मयही देखते हैं; उनको इतनी भी सुधि नहीं कि हम को लज्जा आई वा नहीं, सवस्त्र हैं वा नग्न, वे तो भगवद्रूप में छके केवल उसी में मग्न हैं॥"

श्री प्रह्लाद जी।

(१/८ १/४ ३/२) टीका। कवित्त।

सुमिरन सांचो कियो, लियो देखि सबहीं में एक भगवान कैसे काटै तरवार है। काटिबो खड़ग जलबोरिबो सकति जाकी, ताहि को निहारै चहुंओर सो अपार है॥ पूछेते बतायो खंभ, तहांही दिखायो रूप, प्रगट अनूप भक्त बाणीहीं सो प्यार है। दुष्ट डार्यो मारि, गरे आंतैंलई डारि; तऊ क्रोध को न पार, कहा कियो यों बिचार है॥ ९९॥ (६२९-५३०) "सकति"=शक्ति।

"आगेहु रामहि, पीछेहु रामहि, व्यापक रामहि हैं बन ग्रामै"।
"सुन्दर राम दशोदिशि पूरण स्वर्गेहु राम पतालहु रामै"॥

वार्तिक तिलक।

महाभागवताग्रगण्य श्री प्रह्लाद जी की कथा "द्वादश भक्त राजों" के साथ पृष्ठ ८६। ८९ में लिखीजा चुकीहै। इन्ने श्री राम नाम का सच्चा स्मरण किया; जिस स्मरण से इनको पूर्ण परब्रह्म दृष्टि प्राप्त हुई। कि जिस दृष्टि से चराचर में एक भगवान् ही को देखा। यह भजन और स्मरण देखके भक्त द्रोही हिरण्यकशिपु ने इनके बध के अनेक प्रयत्न किये; अग्नि में जलाया, जल में डुबाया, तथा खड्ग का प्रहार भी कराया; परन्तु इन को खड्ग कैसे काट सकता था। क्योंकि खड्ग में काटने की शक्ति अग्नि में जलाने की एवं जल में डुबाने की शक्ति जिस परमात्मा श्री राम जी की है, उन्ही को आपचारो ओर अग्नि जल खड्गादिकों में अपार प्रीति प्रतीत से देखते थे।

अन्त में हिरण्यकशिपु ने पूछा कि "तेरा राम कहां है?" तो आपने उत्तर दिया कि "प्रभु सर्वत्र हैं, (दो०) तोमें, मोमें खड़ग में, खम्भहु में हैं राम। मोहि दीखैं, तोहि नाहिँ, पितु! बिना जपे हरि नाम॥"

ऐसा सुन दुष्ट ने पुनः पूछा कि "क्या इस खंभे में भी है?" आपने उत्तर दिया कि "हां, निस्सन्देह हैं" तिसपर, उसने महा क्रोध करके उस खंभे में एक घूसा (मुष्टिक) मारा।

तब आपने भक्त की प्रियबाणी को सत्य करने वाले

प्रभु, उसके मुष्टि मारतेही, उस खंभे में से महा अट्टहास शब्द करके अद्भुत रूप से (अर्थात् आधा "नर" का और आधा "सिंह" का शरीर धारण कर) प्रगट हो उस दुष्ट को मार डाला। फिर उसकी आँतें निकाल के अपने गले में डाल लीं; पर इतने पर भी आप का अपार क्रोध बनाही रहा, शान्त नही हुवा, न जानें मन में क्या विचार आ गया॥

(१/८ १/४ ४/२) टीका। कवित्त।

डरे शिव अज आदि, देख्यो नहीं क्रोध ऐसो, आवत न ढिग कोऊ लछिमीहूं त्रास है। तब तो पठायो प्रह्लाद अहलाद महा, अहो भक्ति भाव पग्यो आयो प्रभु पास है। गोदमें उठाइलियो, शीसपर हाथ दियो, हियो हुलसायो, कही वाणी विनयरास है। आई जगदया लगि पर्‍यो श्री नृसिंह जू को, अर्‍यो यों छुटावो, कर्‍यो माया ज्ञान नास है॥ १०० ॥ (६२९—५२९)

"ढिग"=समीप, पास, लगे। "अर्‍यो"=हठ पड़े, अड़ गए।
"लगिपर्‍यो"=मुंह लगू हुए, लट्टू हुए, अरुझि पर्‍यो, उलझ पड़े,।

वार्तिक तिलक।

श्री नरहरि भगवान् का वह क्रोध देख के, औरों की तो बात ही क्या है श्री ब्रह्माशिवादिकभी डर गए क्योंकि इन्होंने प्रभु का ऐसा क्रोध कदापि देखाही न था। कोई समीप नहीं जा सकते थे, वरंच श्री लक्ष्मी जी भी भय से प्रभु के पास नहीं जा सकीं।

तब तो श्री ब्रह्मादिक ने श्री प्रह्लाद जी से कहा कि "वत्स! तुम प्रभु के पास जाके क्रोध की शान्ति करावो" यह सुन आश्चर्य भक्ति भाव के महान आह्लाद में पगे हुए श्री प्रह्लाद जी श्री प्रभु के पास बे खटके गये।

श्री भक्तवत्सल जी ने प्रसन्न हो दोनों हाथों से उठ के आप को गोद में बिठलालिया, और मस्तक आघ्राण कर सीस पर अखण्ड अभयप्रद हस्त फेरा।

तदनन्तर, श्री प्रह्लाद जी का हृदय अकथनीय आनंद से हुलास को प्राप्त हुआ; और प्रेमराशिसानी बाणी से स्तुति प्रार्थना करने लगे। प्रभु ने आज्ञा की कि "वत्स! कुछ बर मांग"॥

आप बोले कि प्रभो! मैं वरदान नहीं चाहता हूं।

परन्तु पुनः आज्ञा पाय आप को जगत के जीवों पर दया आ गई; इस्से चरणों में लग के और हठ करके यही बर मांगा कि नाथ! इस आप की माया ने सब जीवों का ज्ञान हर लिया है इसलिये अपनी माया से जीवों को छुड़ाइये, जिस्में आप का भजन करें॥

(सवैया)

राम सुनाम बिना, रसरंग मनी, मुख जानि लजौं मैं लजौं रे। चातक ज्योंघन, रंक भजै धन, त्यों प्रभु राम भजौं मैं भजौं रे॥ काक कुसंगति छोड़ि सुसंगति हंस सुबेष सजौं मैं सजौं रे। जानकीजीवन राम को नाम कभूं न तजौं न तजौं न तजौं रे॥१॥

काढ़ि कृपान कृपा न कहूं पितु कालकराल बिलोकि न भागे। "राम कहां?" "सब ठाउँ हैं" "खंभ में"? "हां" सुनिहाँक नृकेहरि जागे॥ बैरी बिदारि भए बिकराल, कहे प्रहलाद हि के अनुरागे। प्रीति प्रतीति बढ़ी, तुलसी, तबते सब पाहन पूजन लागे॥२॥

(दो०) नाम नाद भजि, वाद तजि, चखि सुप्रेम रस स्वाद।
धन्य धन्य, रस रङ्गमणि, राम भक्त प्रह्लाद॥

महाबीर श्रीहनुमान जी।

(ओं नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय)

"श्रीहरिवल्लभों" (पृष्ठ १०३–१०७) में भी, परम प्रिय श्रीबीरमारुति जी की कथा कही जा चुकी है; फिर यहां "नवधा भक्ति" की निष्ठा में आप का यश श्रीग्रन्थकर्त्ता ने गाया है; और पुनः आगे, १६ वें छप्पै (मूल २०) में भी, "श्रीरघुबीर सहचर" महाबीर पवनात्मज जी का सुयश देखिये॥ उसी प्रसंग में आप के जन्म की कथा भी पढ़के परमानन्द लाभ कीजिये॥ (चौ०) "सुमिरि" पवन सुत पावन नामू। अपने बश करि राखे रामू॥ और, आपकी "श्रवण" निष्ठभक्ति इस वार्त्ता से प्रसिद्ध ही है कि जब श्री अवधेश राघवेन्द्र जी महाराज निज साकेत धाम को जाने लगे, आप को आज्ञा दी कि "तात! तुम यहीं रहो"; तिस्पर आपने कहा कि "प्रभो! जो आज्ञा, परन्तु यह बर-

दान मिले कि कदापि किसी काल में श्रीरामायण मुझे सुनानेवालों का अभाव नहीं हो।" प्रभु बोले कि "अच्छा, ऐसाही होगा, सदैव मेरी कथा तुम्हारे श्रवण गोचर होती रहेगी; नर नाग गन्धर्व सुर, मेरे यश तुम प्रति गायाही करेंगे, तथा भाग्यशालिनि अप्सराएं निरन्तर मेरे चरित्र तुम्हें सुनातीही रहेंगी॥" निदान, आप किस रस के आचार्य्य नहीं हैं? सब ही के हैं॥

(चौ०) दुर्गम काज जगत में जेते। सुगम अनुग्रह कपि के तेते॥ सीयदुलारे रामपियारे। सन्त भक्त के कपि रखवारे॥ नहिं कोउ हनुमत सम बड़भागी। सीताराम चरण अनुरागी॥ मंगल मूरति मारुतनन्दन सकल अमंगल मूल निकन्दन॥

(सो०) सेइय श्रीहनुमान, भुक्ति-मुक्ति-हरिभक्ति-प्रद।
जनरक्षक, भगवान, बीर, धीर, करुणायतन॥

—:०:—

श्रीअर्जुनजी; श्रीपृथुजी।

"हरि वल्लभों" (पृष्ठ १७८) में भी, श्रीअर्जुन जी की कथा हो चुकी है; और यहां (इस छप्पय में) आपको श्रीग्रन्थकारस्वामीने "नवधा भक्ति" (सख्यरस) के प्रसंग में लिखा है॥ (श्लोक) "सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ &c. &c. प्रियोऽसि मे॥"

(२) भगवत के अवतारों (पृष्ठ ६१) में तथा "जिनके

हरि नित उर बसैं" तिन भाग्यभाजनों (पृष्ठ १९९) में भी महाराज श्रीपृथु जी की चर्चा हो चुकी है। किसी २ महात्मा ने आपको "श्रवण" निष्ठा में लिखा है; और यहां आपको श्रीनाभास्वामी जी, प्रमुख, ने "पूजन" निष्ठा में वर्णन किया है।

☞ पृष्ठ २९५ में जिस "नहुष" की वार्त्ता लिखी गई है, सो 'चन्द्रवंशी नहुष' जानिये। सूर्य्यवंशी नहीं॥

पृष्ठ २९१ की १९ (उन्नीसवीं) पंक्ति में,—तथा कई श्लोक दशमस्कन्ध के,—इतने शब्द और वहां चाहिये जो रहगए हैं।

श्री अक्रूर जी।

(११५/८४२) टीका। कवित्त।

चले अक्रूर मधुपुरीतें,विसूर, नैन चली जल धारा, कबदेखौं छवि पूर को। सगुन मनावै, एक देखिधोई भावैं, देहसुधि बिसरावै, लोटै, लखि पगधूर को। बंदन प्रबीन, चाह निपट नबीन भई, दई शुकदेव कहि जीवन की मूर को। मिले राम कृष्ण, झिले, पाइके मनोरथ को हिले दृगरूप कियो हियो चूर चूर को॥१०१॥(६२९-५२८)

"विसूरना"=रूप चिन्तवन करना। "झिले"=आगे बढ़े, लपके। "हिले"=प्रवेश किया; हिल गए, हिताए, परके, सस्नेह मिले।

वार्त्तिक तिलक।

श्री अक्रूर जी कंस के भेजे हुए मथुरा जी से (श्री

ब्रज की ओर) अति बिरह उतकगठा से चले, यों विचारते हुए कि (पद) जे पद पद्म सदा शिव के रह, सिन्धुसुता उरते नहिं टारे। सूरदास तेई पद पंकज, त्रिबिध ताप दुख हरन हमारे। (दो०) ब्रज बाला जे पद कमल, रहीं सदा उर लाइ। तेइ पद पंकज देखिहौं, हौं इन्ह नैनन्ह जाइ॥ श्रीकृष्ण बलदेव जी का रूप चिन्तवन करतेही आंखों से प्रेम जल की धारा बहने लगी; और श्याम गौर छविपूर्ण दोनों भाइयों के दर्शन का मनोरथ भी हृदय में भर आया। सगुन मनाते जाते थे; केवल दर्शन ही सुहाता था, इस्से अपने शरीर का भान भूल जाया करते थे।

इसी दशा से जब श्रीब्रज के समीप पहुंचे, तो मार्ग की धूरि में "कमल बज्र ध्वज अंकुशादि चिन्ह" युक्त भगवत के चरण उघटे हुए देखके उनको दगडवत कर आप उन्हीं चरण चिन्हों में लोटने लगे और इन्हें प्रीति चाह अतिशय नवीन उत्पन्न हुई इसी से इनकी "जीवन की जड़ी बन्दन भक्ति प्रवीणता" श्रीशुकदेव जी ने श्री भागवत में भली भाँति कही है।

श्री वृन्दावन में आप आ पहुंचे; श्री बलराम जी तथा श्री कृष्ण जी का दर्शन कर, अपना मनोरथ पूर्ण देखा आगे बढ़, जा मिले; छवि सागर में इनके नेत्र मगन हो गए और हृदय प्रेम से चूर चूर हो गया॥

प्रेम पूरित अन्तःकरण से शुभमार्ग में जिनका चि-

न्तवन करते चले आते थे, यहां आकर, उनके और विचित्र चरित्रों के अतिरिक्त, यह भी देखा कि (स०) "सुत-दारा औ गेहकी नेह सबै तजि जाहि विरागी निरन्तर ध्यावैं। यम नेम औ धारणा आसन आदि करें नित योगी समाधि लगावैं॥ जेहि ज्ञान औ ध्यान तें जाने कोऊ सो अनादि अनन्त अखण्ड बतावैं। ताहि हि गोप की छोहरियां छँछिया भर छाँछ पै नांच नचावैं॥" जिससे आप असीम सुख को प्राप्त हुए।

श्री अक्रूर जी की चरचा श्री "हरि बल्लभों" (पृष्ठ १७०) में भी हो आई है और यहां "नवधा भक्ति" के प्रसंग में॥

——:०:——

श्री बलि जी।

(१२६/८५२) टीका। कवित्त।

दियो सरबसु, करि अति अनुराग बलि, पागिगयो हियो प्रह्लाद सुधि आई है। गुरु भरमावे, नीति कहि समुझावे, बोल उर में न आवे केती भीति उपजाई है। कह्यो जोई कियो सांचो भाव पनलियो, अहो! दियो डर हरिहूंने, मति न चलाई है। रीझे प्रभु, रहेद्वार, भये बश हरि मानी, श्रीशुक बखानी, प्रीति रीति सोई गाई है॥१०२॥ (६२९—५२७)

भरमावे=घुमावे फिरावे, इधर उधर करे, बहकावे, टाल मटाल करे, हेर फेर करे। "चलाई"=चली, टकसी, हटी, डोली॥

वार्तिक तिलक।

श्री बलि जी ने अति अनुराग पूर्वक श्री वामन भगवान् को अपना सर्वस्व दे डाला; यद्यपि इनके गुरु शुक्राचार्य्य ने इनको बहुत भरमाया; और यह भी जता दिया कि ये देवतों के पक्षपाती विष्णु हैं; तथापि इनने न माना, वरंच इनको अपने पितामह श्री प्रह्लाद जी की प्रेमा भक्ति की सुधि आ गई। इससे श्री बलि जी का हृदय प्रभु के अनुराग में पग गया।

(वि०प०)"जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही। तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी। बलि गुरु तजेउ, कन्त ब्रजबनितनि, भयो मुदमंगलकारी। नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहांलों। अंजन कहा? आंखि जो फूटैं, बहुतक कहौं कहांलौं। तुलसी, सो सब भांति परमहित पूज्य प्राणते प्यारो। जाते होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥"

पुनः शुक्राचार्य्य ने बहुत प्रकार से राजनीति समझाई तथा अनेक भय भी दिखाए परन्तु शुक्र का बचन आप के मन में एक भी न जमा; किन्तु जो कुछ प्रभु से प्रतिज्ञा की था, सोई बात की। सच्चे भाव से अपना दृढ़ प्रण (पन) गहे ही रहे।

श्री हरि ने भी बहुत डराया, पर इनने अपनी मति

हरिकृपासे स्थिर ही रक्खो; अर्थात् अपना देह आत्मा सब प्रभु को समर्पण कर दिया ।

छन्दइन्दव ।

"कै यह देह सदासुख सम्पति कै यह देह विपत्ति परोजू । कै यह देह निरोगरहो नित कै यह देहहि रोग परोजू । कै यह देह हुताशन पैठहु कै यह देह हिमाले गरोजू । सुन्दर रामहिं सौंपिदियो जब, तब यह देह जियो कि मरोजू" ॥

प्रभु इनकी सत्यसन्धता तथा आत्म निवेदन भक्ति देख, अत्यन्त ही रीझ, इनके द्वारपाल बन के सदा द्वार पर ही रहने लगे और अपने मन में हार मान, आप के बश ही हो गए । सो परम हंस श्रीशुक जी ने श्री भागवत में अच्छे प्रकार से बखान किया है । सोई श्री बलि प्रीति रीति हमने भी गान की है ।

श्री बलिजी की कथा "द्वादश भक्तों" (पृष्ठ ९१) में भी लिखी जा चुकी है और यहां "आत्म समर्पण" में ॥

(१/८ १/४ ७/२) छप्पै ।

हरिप्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान ॥ शङ्कर[१], शुक[२], सनकादि[३], कपिल[४] नारद[५], हनुमाना[६] । विष्वकसेन[७], प्रह्लाद[८], बलि[९], भीषम[१०], जग जाना । अर्जुन[११], ध्रुव[१२], अम्बरीष[१३], विभीषण[१४],

महिमा भारी। अनुरागी अक्रूर[१५], सदा उद्धव[१६], अधिकारी। भगवन्त भुक्त अवशिष्ठकी कीरति कहन सुजान। हरिप्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान ॥११॥ (१५/२११)

वार्तिक तिलक ।

श्रीहरि के प्रसाद के रसस्वाद लेनेवाले, और श्रीभगवत के भोजन किये हुए शेष अमृतान्न की कीर्त्ति महिमा कहने में परम सुजान, इतने भक्त प्रमाण हैं—श्रीशङ्कर जी श्री शुक जी सनकादिक चारो भाई श्री कपिल जी श्रीनारद जी श्रीरामानन्य हनुमान जी श्री विष्वक्सेन जी, श्री प्रह्लाद जी श्री बलि जी, और प्रसिद्ध देवव्रत श्री भीष्म जी, श्री अर्जुन जी श्री ध्रुव जी श्री अम्बरीष जी, महा महिमायुक्त श्री विभीषण जी, अनुरागी श्री अक्रूर जी, सदा प्रेमाधिकारी श्री उद्धव जी।

☞ तात्पर्य्य यह है कि भगवत का उच्छिष्ट प्रसाद इन भक्तों को अर्पण करना चाहिये, उसमें प्रमाण पद्मपुराण का (श्लोक) "बलि र्विभीषणो भीष्मः कपिलो नारदोऽर्जुनः। प्रह्लादो जनको व्यासो अम्बरीषः पृथुस्तथा ॥१॥ विष्वक्सेनो ध्रुवोऽक्रूरो सनकाद्याः शुकादयः। वासुदेव प्रसादान्नं सर्वे गृह्णन्तु वैष्णवाः ॥ २ ॥

१ श्री शिव जी, पृष्ठ* ८१ | ३ श्री सनकादि जी, ८५
२ श्री शुकदेव जी, पृष्ठ ९२ | ४ श्री कपिलदेव जी, पृष्ठ ८६

☞ जिस जिस पृष्ट में जिन जिन भक्तों की चर्चा हो आई है, उस पृष्ट का अंक ऊपर उनके नाम के सामने, लिखे गए हैं।

$\left(\frac{११८}{८४१}\right)$ छप्पै।

ध्यान चतुर्भुज चित धस्यो, तिन्हैं शरण हौं अनुसरौं। अगस्त्य पुलस्त्य पुलह च्यवन वशिष्ठ सौभरि ऋषि। कर्द्दम अत्रि रिचीक गर्ग गौतम सुव्यासशिषि॥ लोमश भृगु दालभ्य अङ्गिराशृङ्गि प्रकाशी। मांडव्य विश्वामित्र दुर्वासा, सहस अठासी॥ जाबालि यमदग्नि मायादर्श कश्यप परवत पराशर पद रज धरौं। ध्यान चतुर्भुज चित धस्यो, तिन्हैं शरण हौं अनुसरौं॥१२॥ $\left(\frac{१६}{२१३}\right)$

वार्तिक तिलक।

श्री भगवान के चतुर्भुज रूप का ध्यान जिन भक्त ऋषियों ने अपने चित्त में धारण किया, मैं उनके

शरण में प्राप्त हूं और उन्ही के चरणों की धूरि अपने सीस में धरता हूं—

१ श्री अगस्त्य जी	१५ श्री दालभ्य जी
२ श्री पुलस्त्य जी	१६ श्री अङ्गिरा जी
३ श्री पुलह जी	१७ श्री ऋष्यशृङ्ग जी
४ श्रीच्यवन जी	१८ श्री मांडव्य जी
५ श्री वशिष्ठ जी	१९ श्री विश्वामित्र जी
६ श्री सौभरी जी	२० श्री दुर्वासा जी
७ श्री कर्द्दम जी	२१ श्री जाबाली जी
८ श्री अत्रि जी	२२ श्री यमदग्नि जी
९ श्री ऋचीक जी	२३ श्री मायादर्श (मारकण्डेय) जी
१० श्री गर्ग जी	२४ श्री कश्यप जी
११ श्री गौतम जी	२५ श्री पर्वत जी
१२श्री(संजयजी)व्यासशिष्य	२६ श्री पराशर जी
१३ श्री लोमश जी	(२७)अठासी सहस्र (८८०००)
१४ श्री भृगु जी	

श्रीअगस्त्य जी।

श्री सीतारामकृपापात्र शिरोमणि ऋषीश्वर श्री१०८ अगस्त्य भगवान् को, कि जिनका दूसरा नाम "श्री घटयोनि वा कुम्भज जी" भी है, अन्य महर्षियों के ही सरिस नहीं, वरंच इनको श्री प्रभु का दूसरा व्यक्ति ही समझना चाहिये; किमधिकम्? एवं, आप की

सखी "श्री लोपामुद्रा जी", श्रीजनकनन्दिनी जी की अतिशय कृपांपात्र सखी हैं। आप दोनों की जय।

श्रीअगस्त भगवान् की उत्पत्ति घड़े से हुई; वरुण देवता तथा मित्र जी दोनों के तेज़ एक कलश में रक्खे हुए थे, श्रीब्रह्मा जी की इच्छा से उसी घट से आप निकले। और ऐसा भी कहा है कि एक राजा ने पुत्र-काम यज्ञ कराया; उस से जो क्षीरान्न मिला, उसको उसने एक कलश में रख दिया (वह अपनी रानी को न खिला सका); उसी घड़े से आप प्रगट हुए।

आप की बनाई "श्री अगस्त संहिता" प्रसिद्ध ही है।

साकेतपति शार्ङ्गधर दिव्य अखण्डैक नित्यकिशोर मूर्त्ति व्यापक परात्पर भगवत सच्चिदानन्द घन शोभाधाम श्रीजानकीवल्लभरामचन्द्र जी की उपासना पूजा इत्यादि के बड़े भारी आचार्य्य श्रीअगस्त भगवान् हैं। आपने सर्व जगत पर कैसी कृपा की बरषा की है, वर्णन नहीं हो सकता।

पांच छः कारणों से एक समय आप सम्पूर्ण विशाल समुद्र ही को पान कर गए थे; सो कथा विख्यात है ही। (चौ०) कहँ कुम्भज, कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ विदित सकल संसारा॥

आज भी आप का नामही लेते महा अजीर्ण कोसों भागता है।

श्रीपार्वती जी और महादेव जी के बिबाह उत्सव में

जब गिरिराज हिमाद्री के हां देवतों दानवों आदिक के इकट्ठे होने पर उनके बोझ से धरती उत्तर की ओर नीची हो गई, तो सब की प्रार्थना से परम समर्थ श्रीअगस्ति जी दक्षिण को चले गए; तब आप ही के प्रभाव से पृथ्वी दक्षिण की ओर नीची हो गई॥

अन्न दान न करके केवल मणि सुवर्ण वसन भूषणादि दान करने पर भी एक व्यक्ति बड़ी दुर्गति को प्राप्त हुआ था; सो उसका उद्धार महामुनि श्रीअगस्ति जी ही महाराज ने कराया। और उसके दिये भूषणों से आपने श्री प्रभु की पूजा की। श्री सीताराम नाम का माहात्म्य, श्रीअगस्त जी ने कहा भी है और श्री शेष जी की सभा में देवतों तथा मुनियों को आपने नामप्रभाव दिखा भी दिया है॥

देवतों की प्रार्थना पर श्रीअगस्त भगवान् ने ही मन्दराचल (विन्ध्यगिरि) को आज्ञा दी जिसके अनुसार वह अचल आज तक वैसा ही पड़ा का पड़ाही है जैसा आप को साष्टाङ्ग दण्डवत करने के समय गिरा था।

श्री हनुमान जी, श्रीशिव जी, और श्रीब्रह्मा जी, जिस प्रकार से श्रीअगस्त जी महाराज की महिमा जान्ते हैं, वैसी और कोई क्या जानेगा? आप के शिष्य श्रीसुतीक्ष्णादि की ही भक्ति प्रीति की व्याख्या तो अपार है फिर स्वयं आप की तो वार्त्ताही क्या?

लंका में, सर्कार पर कृपा करके राक्षस प्रेरित अस्त्र शस्त्रों से रक्षा की है; और श्री आदित्य हृदय पढ़ाया है कि जिसकी महिमा प्रसिद्ध ही है।

(चौ०) दीन दयाल दिवाकर देवा। कर मुनिमनुज सुरासुर सेवा॥ हिम तम करि केहरि करमाली। दहन दोष दुख दुरित रुजाली॥ कोक कोकनद लोक प्रकाशी। तेजप्रताप रूप रस राशी॥ सारथि पंगु दिव्य रथ गामी। विधिशंकर हरि मूरति स्वामी॥ बेदपुराण प्रगट यश जागै। तुलसी राम भक्ति वर माँगै॥

अरण्य में, प्रभु ने स्वयं आप के आश्रम में जाके आप को दर्शन दिया है।

श्री अयोध्या जी में राज्याभिषेक के अनन्तर श्री-अगस्त्त जी से प्रभु ने अनेक कथा, तथा श्रीमहाबीर हनुमान जी के सुयश सुने हैं।

श्रीअगस्त्य गुण ग्राम, वेद तथा पुराणों में विदित है। श्रीसीताराम जी की पूजा भक्ति के आचार्य महा-मुनि अगस्त्य भगवान् की जय जय॥

[सवैया] पूरण ब्रह्म बताय दियो जिन एक अखंड है व्यापकसारे। रागरुद्वेष करै अब कौन सो जोई है मूल सोई सबडारे॥ संशय शोक मिट्यो मनको सब-तत्त्व बिचारि कह्यो निरधारे। "सुन्दर" शुद्धकिये मल-धोयकै है गुरुको उर ध्यान हमारे॥

श्री पुलस्त जी

श्रीपुलस्तजी, श्रीब्रह्मा जी के पुत्र हैं । गृहस्थाश्रममें रह, पुत्र उत्पादन कर, बेटों को विद्या पढ़ा, आपने मोक्षपद का साधन किया ॥

श्रीपुलह्जी ।

श्रीपुलह जी श्रीपुलस्त जी के भाई हैं । इन ने भी अपने भ्राता ही के सरिस आचरण किये ॥

श्रीच्यवन जी ।

श्रीच्यवन जी, बन में रह, भगवान के ध्यान समाधि में ऐसे निमग्न हो गए कि उनके शरीर भर में दीमकों ने मिट्टी का ढेर (बालमीक) लगा दिया ।

उसी बन में राजा शर्याति आखेट को गया । उस्को कन्या तथा कुछ सेना भी साथ थी । उस कन्या ने उसी मिट्टी के ढेर (बलमीक) में कुछ चमकती सी वस्तु देख के कौतुक बश उसमें लकड़ी खोद दी । उसमें से रुधिर निकल आया । लड़की बहुत डरी और चुपचाप अपनी सेना में भाग आई ।

मुनि के उद्वेग पाने से, राजा तथा उसके सब साथियों का अपान वायु रुक गया । इस प्रकार से सबको अतिकष्ट होने के कारण को, बुद्धिमान राजा

ने यह ठीक ठीक अनुमान कर लिया कि "किसी ने यहां के किसी तपस्वी का कोई अपराध अवश्य किया है; तब राजा इसकी पूछ जांच करने लगा।

राजकन्या ने विनय किया कि "पिता जी! मुझ बालिका की अज्ञता से एक तपस्वी के नेत्रों में लकड़ी चुभ गई है। मुझे उसका बड़ा ही पश्चाताप तथा भय है।"

श्रीमुनि जी की सेवा में [उस कन्या को साथ लिये] जाके, नृपति ने, स्तुति प्रार्थना की। मुनि प्रसन्न हुए। श्रीराम कृपा से सब का कष्ट जाता रहा।

राजा, मुनि महाराज को वह कन्या दान कर, अपनी राजधानी श्री अयोध्या जी में लौट आए।

स्वपत्नी के तोषार्थ, श्रीच्यवन ऋषी जी हरि-कृपा से अश्वनी कुमार की सहायता से युवा अवस्था को प्राप्त हो, विषय भोग करने लगे।

यद्यपि मुनि जी शरीर से तो इतने बड़े भोगी थे, तथापि वास्तव में मन के निर्दोष और परम विरक्त ही थे, क्योंकि भोगाभोग सुख दुख से निर्द्वन्द्व थे।
(श्लोक) सुखदुःखे समेकृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पाप मवाप्स्यसि ॥ १ ॥

(दो०) "तुलसी" सीताराम पद, लगा रहै जो नेह।
तौ घर घट बन बाट में, कहूं रहै किन देह ॥

(सवैया)

क्षीणरु पुष्ट शरीर को धर्म्म जो शीतहु उष्ण जरामृतठाने। भूख तृषा गुण प्राण को व्यापत

शोकरु मोहहु भय मन आने। बुद्धि बिचार करे निशि बासर। चित्त चितेसे अहं अभिमाने। सर्वको प्रेरक सर्व को साक्षि जु "सुन्दर" आप को न्यारोहि जाने ॥ १ ॥
एकही कूप ते नीरहि सींचत ईख अफीम हि अम्ब अनारा। होत वही जलस्वाद अनेकनि मिष्टकटूकनि खट्टकखारा। त्योंहिं उपाधि संयोगते आतम दीसत आयमिल्यो सबिकारा। काढ़िलिये सुबिबेक बिचार सो "सुन्दर" शुद्धस्वरूप है न्यारा ॥ २ ॥

भगवत कृपा से दम्पति भगवद्भजन से
(चौ०) रघुपति चरण प्रीति अति जिनहीं।
त्रिषय भोग बश करै कि तिनहीं॥
न चूके वरंच भजन प्रभाव से भगवद्धाम को गए।

श्रीवशिष्ठ जी।

"बड़ वसिष्ठ सम को जग माहीं"॥

मुनीश्वर अनन्तश्री वशिष्ठ जी महाराज श्रीब्रह्मा जी के पुत्र, श्री रघुकुल के गुरु हैं। आप प्रायः सब शास्त्रों के आचार्य्य हैं। स्वर्ग और भूमि के बीच आकाश में बहुत दिन स्थित रह के आप ने युगल सरकार का भजन किया है।

"सो गुसाईं बिधिगति जिन छेंकी"।

आपने भजन प्रभाव से एक दूसरे ब्रह्माण्ड में जाके वहां के ब्रह्मा जी से मिले हैं।

उपदेश आदि के लिये आप कई शरीर धारण किये हुए कई स्थान पर रहते हैं; जैसे, (१)ब्रह्मलोक में; (२) धर्म्मराज की सभा और (३) श्रीअवध में । (४)"सप्त ऋषियों" में भी आप हैं । इत्यादि

श्रीविश्वामित्र जी अपार तप करने पर भी "ब्रह्मर्षि" तो तब हुए, कि जब आप (भगवान् श्री१०८ वशिष्ठ जी) ने उनको "ब्रह्मर्षि" कहा। परमाचार्य्य जगद्गुरु महर्षि श्री १०८ वशिष्ठ जी महाराज की, तथा अपने २ श्रीगुरु महाराज की, महिमा को जो विचारै सो परम बड़भागी है ।

(क०) जगमें न कोऊ हितकारी गुरुदेवसों ॥ बूड़त भव-सागर में आयके बँधावैधीर पारहूलगायदेत नावको ज्यों खेव सों । परउपकारी सब जीवनके सारेकाज कबहूँ न आवै जाके गुणनको छेवसों । बचन सुना-यकर भ्रमसब दूरि करै "सुन्दर" दिखायदेत अलख अभेवसों । औरहूसुनेहि हम नीके करि देखे शोधि जगमें न कोऊ हितकारीगुरु देवसों ॥ १ ॥

गुरुकी तो महिमा है अधिकगोबिंदते ॥ गोबिंदके कियेजीव जात हैं रसातल को गुरु उपदेशे सोतो छूटे यमफंदते। गोबिंद के किये जीव बशपरे कर्म-नके गुरुके निवाज सूं तो फिरतसुछंदते । गोबिंदके कियेजीव बूड़तभवसागर में "सुन्दर" कहत गुरु काढ़ै दुखद्वंदते । कहांलौं बनाय कछु मुखते कहूं जू और,

गुरुकी तो महिमा है अधिक गोबिंदसे ॥ २ ॥

आप का "योग वाशिष्ठ" संज्ञक ग्रन्थ प्रसिद्ध ही है॥

(दो०) "श्रीवशिष्ठ मुनिनाथ यश, कहौं कवन मुँह लाय। जिन्हें स्वयं श्री राम ही, लीन्हो गुरू बनाय ॥१॥

(चौ०) "राम! सुनहु" मुनि कह कर जोरी। "कृपा सिन्धु! बिनती कछु मोरी॥ महिमा अमित वेद नहिं जाना। मैं केहि भांति कहउँ भगवाना!॥ उपरोहिती कर्म अति मन्दा। वेद पुरान सुमृति कर निन्दा॥ जब न लेउँ मैं तब विधि मोही। कहा 'लाभ आगे सुत! तोही॥ परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुलभूषन भूपा' ॥

(दो०) तब मैं हृदय विचारा, जोग जज्ञ ब्रत दान। जाकहँ करिय सो पइहउं, धर्म न एहि सम आन॥

(चौ०) तवपद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर॥ दक्ष सकललच्छनजुत सोई। जाके पदसरोजरति होई॥ [दो०] नाथ! एक वर मांगउं, राम! कृपा करि देहु। 'जनम जनम प्रभुपदकमल, कबहुं घटइ जनि नेहु' ॥"

श्रीसौभरि जी।

श्रीसौभरि जी की कुछ कथा, श्री मान्धाता जी की कथा के अन्तर्गत (पृष्ठ २७८ में) आचुकी है।

श्रीसौभरी जी को जल में मछलियों का विलास देख के विषय वासना हुई। श्रीमान्धाता जी (पृष्ठ२७८) की कन्यायों को तपबल से अपना युवा स्वरूप दिखा के प्रसन्न कर, उनके पितासे मांगलिया; और अपने तप प्रभाव से बड़ा विभव रचके उनमें उन पचासों सहित बास किया। बहुत दिन भोग विलास करने पर मोह निशा से नींद टूटी और राम कृपा से तब मुनिजी महाराज पश्चाताप करने तथा सोचने विचारने लगे कि-(दो०) दीप शिखा सम युवति जन, मन जनि होसि पतंग। भजसि राम तजि काम मद, करसि सदा सत संग॥

(सवैया)

हे तृष्णा! अब तो करितोषा॥ बाद वृथाभटके निशिबासर दूरिकियो कबहूं नहिं धोषा। तू हति-यारिनि पापिनिकोढ़िनि सांच कहूं मतिमानहिं रोषा। तोहिंमिले तबते भयो बंधन तू मरिहै तबहीं होयमोषा। "सुन्दर" और कहा कहिये त्वहिं हे तृष्णा! अबतो-करितोषा॥ १

हे तृष्णा! त्वहिं नेक न लाजा॥ तूही भ्रमाय प्रदेश पठावत बूड़तजाय समुद्र जहाजा। तूही भ्रमाय पहाड़ चढ़ावत बाद वृथा मरिजाय अकाजा। तैं सब लोक नचायभलीबिधि भांड़किये सबरंकहुराजा।

"सुन्दर" एतो दुखाय कहीं अब हे तृष्णा ! त्वहिं नेक न लाजा ॥ २ ॥

भौंह कमान सयान सुठान जो नारि बिलोकनि बाण ते बांचे । कोप कृसानु गुमान अवा घट जे, जिनके मन आंच न आंचे ॥ लोभ सबै नट के वश ह्वै, कपि ज्यों जग में बहु नाच न नांचे । नीकेहैं साधु सबै, "तुलसी," पै तेई रघुबीर के सेवक सांचे ॥ ३ ॥ (वि० प०) अबलो नसानी अब न नसैहौं ॥ &c. &c. ॥

इनकी उन स्त्रियों को भी विराग उत्पन्न हुआ; श्रीसीतारामजी का भजन करके आपने और उन सब की सब ने परमधाम पाया ॥

श्री कर्दम जी ।

श्रीकर्दमजी श्रीब्रह्मा जी की छाया से प्रगट हुए। श्री ब्रह्मा जी ने सृष्टि की आज्ञा दी, पर इनको इनके तीब्र वैराग्य ने गृहस्थाश्रम अंगीकार करने न दिया । और वे बन में जाकर तप करने लगे । प्रभु ने दर्शन दिया । रामचरण पंकज जब देखे । तब निज जन्म सफल करि लेखे ॥ प्रभुने आज्ञा की कि "परसों स्वायम्भू मनु तुम्हारे पास आकर अपनी लड़की देवहूति (पृष्ट २०३) तुम्हें देंगे; स्वीकार कर लेना । 'ताके मैं लैहौं अवतारा । करिहौं योग ज्ञान परचारा' ॥"

श्री देवहूति जी की सेवा से प्रसन्न होकर, आप (श्री-कर्दम जी) ने विश्वकर्मा से एक विमान बनवाया तथा श्रीदेवहूति जी की सेवा के अर्थ सहस्र सुन्दरियां भी प्रगट कीं। सब समेत विमान में बसके भोग विलास करते लोकों में विचरने लगे। श्रीदेवहूति जी को अति सुख दिया।

(दो०) धर्मशील हरिजनन के, दिन सुखसंयुत जाहिँ।
सदासुखीअति मीनगण, जिमि अगाध जल माहिँ॥

दम्पति से श्री कपिल भगवान (पृष्ट ६१) ने अवतार लिया; और ९ (नव) लड़कियां भी हुईं। जिनकाविवाह श्रीब्रह्मा जी के ९ (नव) बेटों से हुआ-

(१) श्रीअरुन्धती जी से श्रीवसिष्ठजी महाराज का;
(२) श्रीकला, मरीचि जी;
(४) श्रीश्रद्धा, अङ्गिरा जी;
(६) श्रीगति, पुलह जी;
(८) श्रीख्याति, भृगु जी;
(३) श्रीअनुसूया, अत्रि जी
(५) श्रीहवी, पुलस्त जी;
(७) श्रीक्रिया, क्रतु जी,
(९) श्रीशान्ति, अथर्वनजी॥

श्रीकर्द्दम जी, अपनी धर्म्मपत्नी देवहूती जी को यह आशिष देकर कि "भगवान् श्रीकपिलदेव (तुम्हारे पुत्र) अपनी माता का (तुम्हारा) भवबन्धन छुड़ावेंगे", आप परम विरक्त हो, बन में जा, भगवत चरण-कमल के परम अनुरक्त हुए॥

श्री अत्रि जी; श्रीअनुसूया जी।

श्रीअत्रिजी श्रीब्रह्माजी के पुत्र हैं। आपने

अपनी धर्मपत्नी श्रीअनुसूया जी सहित महेन्द्राचल पर (श्रीचित्रकूट में) तप किया।

आप निज तपबल से श्रीसुरसरिधार मन्दाकिनी जी, पयसरनी जी, को लाईं।

श्रीअत्रिजी ने चाहा कि जगदीश मेरे पुत्र हों। हरि ने विधि हर युत कृपा करके दर्शन तथा बरदान दिया कि "बहुत अच्छा, श्रीअनुसूया जी के गर्भ से हमतीनों के अंशावतार होंगे"। सो, वैसाही हुआ, अर्थात् (१) श्रीविष्णु भगवान् के अंश से "दत्तात्रेय जी (पृष्ठ६१); (२) श्रीब्रह्मा जी के अंश से "चन्द्रमा" मुनि जी; और (३) रुद्रांश से श्री दुर्वासा जी।

श्रीअनुसूयाजी और श्री अत्रि जी को अभिलाषा हुई कि श्रीसीताराम जी के दरशन पाऊं।

लाल लाड़ले श्री लखन जी सहित भक्तवत्सल श्रीसीताराम जी ने आप के आश्रम पर जा दर्शन दिया। सो श्री "रामचरितमानस" से सब प्रेमियों को विदित ही है॥

श्री गर्ग जी।

श्रीगर्गाचार्य्य जी ने बड़ा तप किया। बहुतों को विद्या पढ़ाई। यदुवंश के पुरोहित और श्रीकृष्ण भगवान् के गुरु हैं। श्रीगर्ग संहिता में श्रीकृष्ण भगवान् के अति मनोहर चरित लिखे हैं। "गर्ग संहिता" विख्यात ग्रन्थ, सुन्ने योग्य है॥

श्री गौतम जी।

श्रीसरयू के तट पर जहां, (गोदना सेमरिया), कार्त्तिक पूनो को बहुत सन्त और लोग एकट्ठे होते हैं और अहल्या जी की सुन्दर मूर्त्ति है, वही श्री-गौतम जी का आश्रम है। आप "न्यायशास्त्र" के आचार्य्य हैं।

गुणवती आदरणीया सुशीला परमसुन्दरी श्रीअहल्या जी "पंच कन्याओं" (१ अहल्या; २ द्रौपदी; ३ तारा; ४ कुन्ती; ५ मन्दोदरी) में से, प्रसिद्ध हैं ही; बहुतों ने आप की चाह की तब श्रीब्रह्मा जी ने आज्ञा दी कि "जो एक दण्ड (२४ मिनिट) भर में त्रिभुवन की परिक्रमा कर आवे उसीको यह कन्या दी जावे।"

श्रीगौतम जी की सालिग्राम जी में अलौकिक निष्ठा थी; उनके सालग्राम जी ने आज्ञा की कि तू मेरी प्रदक्षिणा कर ले; इन ने ऐसाही किया। इन्द्रादि जो अपने अपने बाहन ऐरावतादि पर सहर्ष चले थे, सब ने अपने अपने आगेही श्री गौतम जी को जाते हुए देखा और सब ने उनका अग्रगण्य होना स्वीकार किया। इन्द्रादि हाथ मलते रह गए, और श्रीगौतम जी का विवाह श्रीअहल्या जी से, हो गया। श्रीगौतम जी की कृपा से श्री अहल्या जी को प्रभु ने दर्शन दिया।

एक समय बड़े दुःकाल में पंचवटी से भाग के मुनिवृन्द श्रीगौतम जी के आश्रम में आए। तप बल से आप सब का आतिथ्य और बहुत सत्कार करते रहे।

आप के ही पुत्र महामुनि श्रीशतानन्द महाराज जी हैं, कि जो परमपुनीत श्रीनिमिवंश के गुरु हैं॥

श्रीशुकदेव जी।

श्री व्यासशिष्य अर्थात् परमहंस श्रीशुकदेवजी की कथा पृष्ठ ५। ९२ में देखिये। गऊ के दूध दुहने में प्रायः जितना काल लगता है, आप उससे अधिक काल पर्य्यन्त एक समय कहीं नहीं बिलम्बते रुकते हैं। आप अमर हैं॥

श्रीलोमश जी।

श्रीलोमश जी के आयु की दीर्घता प्रख्यात ही है।

श्रीलोमश जी यमुना जी के तट पर तप कर रहे थे, श्रीकृष्ण भगवान् का बाल चरित देख के भ्रम वश हुए कि "ये परमेश्वर कैसे कहे जाते हैं?" अतः हरि ने उनको अपने स्वांस से खींच कर अपने में अनेक ब्रह्माण्ड तथा अनेक लोमश और बहुत से अद्‌भुत चरित्र दिखाए, जिसे कल्पान्त पर्य्यन्त देखते देखते ये अति घबराए, व्याकुल हुए; तब कृपासिन्धु ने इनको स्वांस ही द्वारा बाहर कर दिया। इनको वे कई कल्पान्त केवल एक क्षण मात्र सरीखा जान पड़ा।

भ्रम से छूट प्रभु की स्तुति की; भक्ति बरदान लिया।

इनने भगवत् की माया देखनी चाही, और श्री-मन्नारायण से अपना मनोरथ निवेदन किया। भगवत की इच्छा से प्रलयादि देखा; जब बहुत बिकल हुए, हरि ने माया अलग की। तब इनने ज्यों का त्यों अपने को पाया और सब अद्भुत चरित्र को एक क्षण मात्र का खेल जाना। बड़ी स्तुति की। "चिरंजीवी मुनि" यह नाम और वर पाया।

एक समय अपने चिरंजीवित्व वा दीर्घायुता से अकुला कर इनने अपना मृत्यु भगवान् से मांगा। प्रभु ने उत्तर दिया कि "यदि जलब्रह्म की वा ब्राह्मण की निन्दा करो तो उस महा पातक से मर सकते हो।" इनने कहा कि आश्रम में जाता हूं वहां पहुंच कर ऐसाही करूंगा। मार्ग में भगवत इच्छा से इनने थोड़ा सा जल देखा जिस्में शूकर के लोटने से अतिशय मलीनता आगई थी, और एक स्त्री भी देखी जिस्के गोद में दो बालक थे। इनके देखतेही देखते उसने पहिले एक बालक को दूध पिलाया फिर अपना स्तन धोकर तब दूसरे बच्चे को। लोमश जी ने इस्का कारण पूछा; उसने कहा कि "यह एक पुत्र तो ब्राह्मण के तेज से है, और वह दूसरा दुसाध [नीच जाति] से अर्थात् मेरे पति से जन्मा है; अतएव ब्राह्मणोद्भव को धोए स्तन का दूध पिलाया है।"

श्रीलोमश मुनि जी का नियम था कि ब्राह्मण का चरणोदक नित्य अवश्य लेते थे। दूसरा जल वा दूसरा ब्राह्मण वहां मिला नहीं; मुनि महाराज ने उसी जल से उसी ब्रह्मवीर्य्य-से-उत्पन्न बालक का चरणामृत ले लिया॥ उसी देशकाल में, प्रभु प्रगट हो बोले कि "तुमने जब ऐसे जल को भी आदर दिया और ऐसे ब्राह्मण के चरण सरोज की भी भक्ति की, तो तुम जल वा विप्र के निन्दक कब हो सकते हो? मैं तुमसे अति प्रसन्न हूं और आसीस देता हूं कि विप्रप्रसाद से तुम 'चिरंजीव' ही बने रहोगे।"

(चौ०) जे नर विप्ररेणु सिर धरहीं।
ते जनु सकल विभव वश करहीं॥

रेमन! आजकल के एकप्रकार के बुद्धिमानों की बातें न सुन, नहीं तो ब्राह्मणों के चरणरज की यह महिमा तुझे भूल ही जावेगी "हरितोषक ब्रत द्विज सेवकाई"॥

(चौ०) पुण्य एक जग महँ, नहिँ दूजा।
मन क्रम वचन विप्र पद पूजा॥

श्री ऋचीक जी।

भृगुवंशी "श्री ऋचीक जी" ने श्रीगाधिजी से उनकी सुता (श्री विश्वामित्र जी की बहिनि) श्री "सत्यवती" जी को माँगा। उनने विचारा कि 'कन्या

तो छोटी है और मुनि बूढ़े हैं, परन्तु सीधे २ "नहीं" कहने में मुनि के क्रोध का भय है; अतः उनने इनको कहा कि "यदि आप १००० [एक सहस्र] श्यामकर्ण घोड़े लाइये तो मैं आप को अपनी कन्या दूं"। वह इस बात को असम्भव जान्ते थे।

पर, मुनि ने, "श्रीवरुण जी" से मांग के, सहस्र श्यामकर्ण घोड़े बिना प्रयास उनके सामने प्रस्तुत करदिये; तब तो उन्हे लड़की देनी ही पड़ी। मुनि जी श्री सत्यवती सी धर्मपत्नी पा अतीव प्रसन्न हुए।

अपनी सास (श्रीगाधिजी-की स्त्री) की, तथा अपनी धर्मपत्नी की प्रार्थना से, आपने दोनों को क्षीरान्न मन्त्रित करके दिया, कि जिस्में उनकी प्रिया को ब्राह्मण और उनकी सास को क्षत्री प्रसव हो। परन्तु ईश्वर की इच्छा से मां बेटी ने अपना अपना भाग क्षीरान्न पलट दिया। आपने यह बात जान ली, और अपनी स्त्री से कहा कि तुमने अयोग्य कार्य्य किया, अब तुम्हारे सत्वगुणी पुत्र नहीं होगा किन्तु राजस-तामस-प्रकृति-का होगा।

पुनः, श्रीसत्यवती जी की प्रार्थना के अनुरूप आपने यह बर दिया कि "अच्छा, पुत्र तो राम कृपा से समदर्शी परन्तु पौत्र बड़ा क्रोधी होगा"। इसी आशीर्वाद से पुत्र तो श्रीसीताराम कृपा से श्री यम-

दग्नि जी सरिस किन्तु पौत्र परशुराम जी सरीखा हुए; तथा गाधिजी के पुत्र श्री विश्वामित्र जी इव। अस्तु।

श्री ऋचीक मुनि जी बड़े प्रभावशाली और भगवत भक्त थे। आप के समागम से गाधिजी भी हरिभक्त हो गए॥

[सवैया]

संतनको जु प्रभाव है ऐसो॥ जो कोउ आवत है उनके ढिग ताहि सुनावत शब्द संदेसो। ताहिको तैसही औषध लावत जाहिको रोगहि जानत जैसो॥ कर्म कलंकहि काटत हैं सब शुद्ध करैं पुनि कंचन पैसो। सुन्दर तत्व बिचारत हैं नित संतन को जु प्रभाव है ऐसो॥

श्रीभृगु जी।

श्रीभृगु ऋषि जी श्रीनारदजी के उपदेश से बड़े भगवद्भक्त हुए। ये बहुत सी विद्याओं के आचार्य्य हैं। इनने परीक्षा के अर्थ भगवान् की छाती में लात मार कर ब्राह्मणों की महिमा और भगवत का अपार सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मण्यदेवत्व यश प्रगट किया है। प्रभु ने इनको त्रिकालदर्शी ऐसा आसीस दिया है॥

श्री भृगु जी का माहात्म्य प्रगट ही है कि—

(श्लोक) "महर्षीणां भृगुरहं, गिरामस्म्येकमक्षरम्।

याज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः" ॥ १ ॥
श्रीगीता जी में भगवत ने श्रीमुख से कहा है कि 'मैं महर्षियों में "भृगु" हूं; शब्दों में एकाक्षरी मंत्र ॐ [ओम्] हूं; यज्ञोंमें जप यज्ञ हूं; और पहाड़ों में गिरिराजहिमालय हूं॥'

श्रीदाल्भ्य जी।

विप्रवर श्रीदाल्भ्य जी ने भगवान् श्रीदत्तात्रेय जी के उपदेश से श्रीसीताराम जी का भजन किया। प्रभु ने दर्शन दिया। हरि आशिष से दाल्भ्य संहिता दैहिक दैविक भौतिक तीनों तापों को छुड़ानेवाली और सर्वकार्य्य सिद्ध करनेवाली है॥

श्रीअङ्गिराजी।

श्रीअङ्गिरा जी ने श्रीनारद जी के उपदेश से वासुदेव भगवान् की पूजा की। इनके बृहस्पति जी पुत्र हुए, जिनको अपनी जगह पर समझ के, भगवत का ध्यान करते हुए आपने भगवद्धाम पाया॥

श्री ऋषिशृङ्ग जी।

श्रीऋषिशृङ्ग जी श्रीविभाण्डक मुनि के पुत्र हैं। इनने अपने पिता से विद्या पढ़ी। ये नित्य विपिन

ही में रहा करते थे, ग्राम पुरी नगर को स्वप्न में भी नहीं देखा था। बड़ेही वैराग्यवान थे।

बंग देश से पश्चिम जो देश (जिसमें विहार) है उसको ही "अङ्ग" देश कहते हैं; उसकी राजधानी अभी तक पटना नगर है। वहां के राजा "श्रीरोमपाद" जी थे, उन में और चक्रवर्त्ति महाराजाधिराज अवधेश श्रीदशरथ जी में परस्पर बड़ी मित्रता थी। श्रीरोमपाद जी की कन्या श्रीशान्ता जी थीं, जो प्रभु श्रीरामचन्द्र जी की भगिनी (बहिन) प्रसिद्ध* हैं। अस्तु।

अङ्ग देश में दुःकाल पड़ा; ज्योतिषियों ने बताया कि यदि श्री शृङ्गीऋषि जी आवैं तो यह महा अवर्षण मिटे, जल बरसे।

निदान वेश्याओं ने बड़ी युक्ति की और बन से आप को पटने लाईं। दुर्भिक्ष मिट गया। और विभाण्डक मुनि के भय से श्रीरोमपाद जी ने अपनी कन्या का विवाह श्रीशृङ्गिऋषि जी से कर दिया। और इस प्रकार इनके पिता को प्रसन्न किया॥

जब श्री चक्रवर्त्ति महाराज को बंश न होने से खेद हुआ, तो—

(चौ०) सृंगी रिषि हिँ बसिष्ठ बुलावा। पुत्र काम

* (श्लो०) श्रीमान् दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्। अपत्यकृतिकां राज्ञे लोमपादाय यां ददौ।

सुभ जज्ञ करावा ॥ तब, (दो०) विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार। निज इच्छा निर्मित तनु मायागुनगो पार ॥

श्रीमाण्डव्य जी।

श्रीमाण्डव्य मुनि श्रीभगवत के अनुराग में रँगे प्रेम में मग्न ध्यान समाधि में थे, उनकी कुटी के पासही चोर सब चोरी के द्रव्य को बांट रहे थे। राजा सुकेतु के भट वहां पहुंचे, एक चोरने फुर्ती से एक मणिमाला मुनि के गले में छोड़ दी। भटों ने मुनि समेत कई चोरों को पकड़, न्याय कर्त्ता तथा राजा की आज्ञा से सब के सब को सूली पर चढ़ा दिया। मुनि हरिस्मरण में मग्न थे इस्की कुछ सुधि न हुई।

सब चोर मर गए, पर मुनि की फांसी तीन बेर टूट २ गई। राजा ने, "एक चोर का मुनि के वेष में होना तथा सूरी पर चढ़के भी उसका जीते ही बचना" सुनके, उस्को अपने सामने लाने की आज्ञा दी। चोर के भ्रम में, वा कर्मचारियों के अत्याचार में, अथवा पूर्व कर्म के फन्दे में, पड़े हुए श्री माण्डव्य जी, राजा के सामने लाये गए।

मुनि जी को पहिचान, थर थर कांपता हुआ राजा सिंहासन सेउठ शीघ्र आप के पदपंकज पर सीस धर

हाथ जोड़ सजल नयन हो अपराध की क्षमा मांगने लगा। महामुनि ने धीरे से कहा कि "राजा! तेरा कुछ दोष नहीं; यह यमराज की चूक है; मैं अभी जाके इसका उत्तर उस्सेही पूछता हूं"।

मुनि के क्रोध से डर यमराज ने हाथ जोड़ कहा कि "मुनिनाथ! यह आप के पूर्व जन्म की बाल अवस्था के दोष का फल था, कारण जो आपने एक पतंगे (फरफुंदे) के शरीर में नीचे से ऊपर तक एक कांटा छेद दिया था"।

आप बोले "रेमूर्ख! अज्ञान बालक को भी तूने न छोड़ा, जिस्का दोष धर्म्मशास्त्र भी ग्रहण नहीं करता। जा, शूद्र के योनि में जन्म ले, दासी पुत्र हो"। वही श्री-यमराज जी श्रीविदुर जी हुए बड़े भगवद् भक्त॥

"मुनि शाप जो दीन्हा अति भलकीन्हा॥"

श्रीमाण्डव्य मुनि भगवत भजन कर, शरीर तज, परम धाम को गए॥

श्रीविश्वामित्र जी।

श्रीविश्वामित्र जी राजा थे, राजा गाधि के पुत्र। एक बेर राजा बिश्वामित्र नगर ग्राम देखते बन में गए। मुनीश्वर श्रीबशिष्ठ जी का आश्रम देखा। वहां इनकी सेना सहित भारी सत्कार और पहुनई हुई। यह नन्दिनी

वा सबला नाम गऊ का प्रताप जानकर राजा ने गऊ मांगी, पर ब्रह्मर्षिशिरोमणि ने नहीं कर दी। राजा ने युद्ध किया। परन्तु, यद्यपि उसकी बड़ी भारी सेना थी तथापि राजा जीत न सका, पराजय पाया। तब ब्रह्मर्षि की महिमा समझ उसने चाहा कि ब्राह्मण बनूं; इसलिये अपार तप किया; और अन्त को, श्री वशिष्ठ जी महाराज की कृपा से, श्रीवसिष्ठ जी से विश्वामित्र जी "ब्रह्मर्षि" पद पाके बहुत प्रसन्न हुए।

☞ ३२६ तीन सौ छब्बीसवां पृष्ठ देखिये—

कानपुर के जिले में बल्हौर स्टेशन से मकनपुर को जाना होता है, उसी मण्डलमें "शृङ्गीरामपुर" ग्राम है;

ऐसी प्रख्याति है कि मकनपुर "विभाण्डक ऋषि" का स्थान है उसमें लोग यह प्रमाणित करते हैं कि जब राजा के कर्मचारियों से प्रेरित वेश्यायें बड़ी नौका पर आरूढ़ हो मधुर गान नृत्य करती हुईं बाजे के साथ वहां आ पहुंचीं, उस समय श्रीविभाण्डक जी कहीं दूर जाने के लिये अपने पुत्र के सर्वोपद्रव से रक्षार्थ एक मेड़रा ◯ खींच कर चले गये थे। धीरे २ गङ्गा तट पर नाव आन पहुंची। शृङ्गीऋषि जी मधुर अपूर्व गान सुनकर मेड़री को उल्लंघन करके देखने चले॥ श्रीशृङ्गी जी तो स्त्री जाति पुंजाति का भेदही नहीं जानते थे, तट पर जाकर खड़े २ गान सुनते रहे। इस भांति तीन दिन जाते आते रहे। नौका पर लगे गमलों के वृक्षों के फल की जगह लड्डू लटकाये गये थे एक वेश्या ने उस में से कुछ फल लेकर ऋषि को भेंट किया और कहा कि हमारे देश के ये फल हैं; ऋषि ने लाकर अपने स्थान के भी फल उन्हें उपहार किये। चौथे दिन एक वेश्या ने कहा कि हमारे देश की यह रीति है कि अपने प्रेमियों से प्रेमी लोग भेंटते हैं। शृङ्गी जी तो कुछ जानतेही न थे, आलिङ्गन के साथही कुछ ऋषि का चित्त उस ओर खिँच गया, तदनन्तर वे नौका पर भी गान सुनने जाने लगे एक दिन ऋषि को राग सुनने में मग्न देख शनैः नौका छोड़ दी गई- परंच ऋषिको नौका के भीतर न जानपड़ा कि हम कहीं जाते हैं क्योंकि कभी उन्होंने नौका देखी न थी॥ स्वस्थान में जब नाव कई दिनों के पीछे आ गई-तब ऋषि लोग शृङ्गी जी को लेने गये-फिर अवधेश मिटा-भागी की कथा तो विख्यातही है-

उसी बिभाण्डक के मेहरा(•)के स्थान में स्त्री जाने से भस्म हो जाती थी इस चमत्कार को देख मुसलमानों ने स्वराज्य के समय उस पर अधिकार कर लिया ॥ अब भी स्त्री जाति मात्र को भीतर जाने की आज्ञा नहीं है, यद्यापि वहां बड़ा मेला लगता है परन्तु मेला दूसरेही अभिप्राय से होता है-बाणिज्य विशेष होती है ॥

श्रीविश्वामित्र जी कों अब यह लालसा बाढ़ी कि—सियपियपद सरोज जब देखौं। सुकृत समूह सफल तब लेखौं ॥ इस मनोरथ से यज्ञ करने लगे, पर ताड़का राक्षसी और उसके पुत्र सुबाहु आदि ने उपद्रव और उत्पात करना आरंभ किया।

(चौ०) तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥ एहु मिस देखहुं प्रभुपद जाई। करि, बिनती आनउं दोउ भाई ॥

(सो०) पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनिभय हरन। कृपा सिन्धु मति धीर, अखिल विश्वकारन करन ॥

प्रभु ने आपसे अस्त्रादि विद्या पढ़ी, और आपको अनन्त श्रीगुरु बशिष्ठ जी सम आदर दिया। जय, जय ॥

श्रीबिश्वामित्र जी की स्तुति और क्या की जावे ? इस्से इति है कि (चौ०) जिन्हके चरन सरोरुहु लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥ तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरुपद कमल पलोटत प्रीते ॥

श्री दुर्वासा जी।

श्रीअत्रि जी की कथा (पृष्ठ ३१८) में लिखी जा

चुकी है कि श्री दुर्वासा जी उनके पुत्र और रुद्र के अवतार हैं। श्री ब्रह्मा जी प्रायः इन्ह के द्वारा, लोगों को शाप दिलाया करते थे। इनकी कथा पुराणों में बहुत हैं। समर्थ की ईर्षा कौन कर सकता है? भगवत के जितने काम हैं गूढ़ हैं उनका भेद जानना कठिन है॥

श्री अम्बरीष जी के (पृष्ठ १२६) तथा श्रीद्रौपदीजी के (पृष्ठ १८८) सुयश के प्रसङ्ग में कुछ इनकी चरचा इस ग्रन्थ में भी हो चुकी है।

साठ सहस्र वर्ष तप किया, पूरे होने पर श्रीनन्द जी के घर आए; माता श्री यशोमति जी ने प्रेम से अति उत्तम दधि, जिस्में से भगवत को पवाया था, आप को भी पवाया। श्रीदुर्वासा जी ने, अति प्रसन्न होकर, उनको "गोपाल कवच" पढ़ा दिया और वरदान दिया कि इस कवच को जो पढ़ेगा वा इस्से जिस्को झार देगा सो तीनों तापों से बचेगा॥

श्री याज्ञवल्क्य जी।

आप बड़े प्रतापी मुनि हैं। आपने पहिले श्री सूर्य्यनारायण से विद्या पढ़ी। किसी कारण से सूर्य्य भगवान् अप्रसन्न हुए तो इनने सब विद्या उगल दी (वमन कर दिया)। यह पराक्रम देख प्रसन्न हो श्री रविदेव ने वर दिया कि जो तुम से वाद विवाद करेगा उस्का

सीस फट जागा। पृष्ठ २८४ देखिये ॥

कह चुके हैं कि आपने श्रीराम चरित मानस (तथा अद्भुत रामायण) श्री भरद्वाज जी को सुनाए हैं।

श्री जाबाली जी।

आप श्री अवधेश जी के मंत्रियों में से थे।

श्री यमदग्नि जी।

श्रीयमदग्नि ऋषि, भक्तिसहितअग्निहोत्र यज्ञ किया करते थे और इनकी स्त्री श्री रेणुका जी आपकी सेवा करती थीं। एक दिन, अति अप्रसन्न होके, आपने अपने पुत्र श्रीपरशुराम जी से आज्ञा की कि तू अपनी माता (रेणुका) का, तथा अपने दोनोँ बड़े भाइयों के, सीस अपने परशु से उतार ले।

श्रीपरशुराम जी ने पिता की आज्ञा मान ली [दो०] "अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन। ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति ऐन॥

आपने बहुत प्रसन्न हो पुत्र से कहा बरमाँग। परशुराम जी ने माँगा कि "एक तो इन तीनों को जिला दीजिये, दूसरा यह वरदान दीजिये कि ये तीनों मुझ से सदैव अति प्रसन्न रहा करें॥

श्रीसीताराम कृपा से ऐसाही हुआ।

श्री कश्यप जी।

श्रीकश्यप जी श्री मरीचि मुनि के पुत्र हैं। भगवत ने आप को दर्शन दे आज्ञा की कि सृष्टि उत्पन्न करो।

कश्यप जी से बहुत कुल प्रगट हुए हैं कि जो "कश्यप गोत्र" प्रसिद्ध है॥

एक काश्यपी कल्प हुआ था जिस्में सब सृष्टि कश्यप जी से ही हुई थी।

श्रीमार्कण्डेय जी।

श्रीमार्कण्डेय जी ने प्रभु से विनय की कि मुझे अपनी माया दिखाइये। देखा कि जल बाढ़ आया और प्रलय हो गया, सर्वत्र जलमय, और कहीं कुछ नहीं। अपने को उस जल में इधर उधर बहते डूबते उतराते पाया। अनेक वर्ष पर्य्यन्त ऐसाही बीतने पर, एक बट वृक्ष के एक पत्ते पर बालक स्वरूप प्रभु का दर्शन पा, स्वांस द्वारा उनके उदर में जा, वहां अनेक अद्भुत देख, पुनिबाहर आ, बड़ी स्तुति कर, हरिकृपासे, हरि-की-उस-माया से निकले॥

श्रीमायादर्श जी।

कोई कहते हैं कि मायादर्श एक भक्तविशेष का ही नाम है। पर उनका पता तो कहीं चलता मिलता नहीं।

बहुतेरे बताते हैं कि मायादर्शी श्रीलोमश जी, वा श्रीमार्कण्डेय जी हैं; क्योंकि दोनों ने माया देखी है। इन महात्मा की कथा पृष्ठ ३२० और ३३३ में देखिये

श्रीपर्वत जी।

"अद्भुत रामायण" में लिखा है कि एक कल्प में इन्ही के शाप से श्रीलक्ष्मीनारायण जी ने अवतार लेकर रावण कुम्भकर्ण का बध किया।

श्रीपराशर जी।

श्रीब्रह्मा जी के पुत्र श्रीवशिष्ठ जी उनके पुत्र श्री शक्ति जी उनके पुत्र श्रीपराशर जी हैं। प्रभु ने दर्शन दे के आज्ञा की कि "मैं तुम्हारापुत्र हूंगा।"

श्रीपराशर जी ही के पुत्र श्रीव्यास भगवान् (पृष्ठ ६१) हैं, जिनने पुराण बनाए हैं॥

(१११/८३२) छप्पय।

साधन साध्य सत्रह पुरान, फल रूपी श्री भागवत॥ ब्रह्म[1] विष्णु,[2] शिव,[3] लिङ्ग,[4] पद्म,[5] स्कन्द[6] विस्तारा। वामन,[7] मीन,[8] बराह,[9] अग्नि,[10] कूरम[11] ऊदारा॥ गरुड़,[12] नारदी[13] भविष्य,[14] ब्रह्मवैवर्त,[15] श्रवण

शुचि। मार्कंडे,[१६] ब्रह्माण्ड,[१७] कथा नाना उपजै रूचि॥ परम धर्म श्री मुख कथित चतुःश्लोकी निगम सत। साधन साध्य सत्रह पुराण, फल रूपी श्रीभागवत[१८] ॥ १३ ॥ ($\frac{१७}{२१३}$)

वार्तिक तिलक।

सत्रहो पुराण, साधन रूप हैं; और अठारहवां पुराण श्रीमद्भागवत साध्यफलरूपी है। तदन्तर्गत स्वयं श्री भगवत मुख कथित परधर्म (भगवद्धर्म्म) रूप "चतुश्लोकी भागवत" तो वेदों का सारांशही है। और वे १८ पुराण कैसे हैं कि कोई कोई अति विस्तार हैं, और सब उदार, परम पवित्र, और श्रवण करने से धर्मरुचिउत्पादक विचित्र हैं॥

(सात्विक)		(राजस)	
१ विष्णु पु० श्लोक	२३०००	७ ब्रह्माण्ड पु०,	१२०००
२ नारद पु०,	२५०००	८ ब्रह्मवैवर्त्त पु०,	१८०००
३ श्रीभागवत,	१८०००	९ मार्कण्डेय पु०,	९५००
४ गरुड पु०,	१९०००	१० भविष्य पु०,	१४५००
५ पद्म पु०,	५५०००	११ वामन पु०,	१००००
६ बाराह पु०,	२४०००	१२ ब्रह्म पु०,	१००००
	१६४०००	(तामस)	७४०००
		१३ मत्स्य पु०,	१४०००
		१४ कूर्म्म पु०,	१७०००

(श्लोक) "वैष्णवं, नारदीयञ्च, तथा भागवतं

शुभम् । गारुड़ञ्च, तथा पाद्मं, वाराहं शुभदर्शने ॥१॥ षडेतानि पुराणानि सात्त्विकानि मतानि मे । ब्रह्माण्डं, ब्रह्मवैवर्त्तं, मार्कण्डेयं तथैवच । भविष्यं, वामनं, ब्राह्मं, राजसानि निबोध मे ॥ २ ॥ मात्स्यं, कौर्म्मं, तथा लैङ्गं, शैवं, स्कान्दं तथैवच । आग्नेयञ्च, षडेतानि तामसानि निबोधमे ॥३॥"

१५	लिङ्ग पु०,	११०००
१६	शिव पु०, *	२४०००
१७	स्कन्द पु०,	८१०००
१८	अग्नि पु०,	१५०००
		१६२०००

सा० १६४००० श्लोक
रा० ७४००० श्लोक
ता० १६२००० श्लोक
जोड़ ४,००,०,०० श्लोक
चार लाख श्लोक

* कोई २ तो "माहेश्वर" नाम का एक उपपुराण कहते हैं, "शिव पुराण" नहीं बताते। वरंच २४००० श्लोक का "वायु पुराण" लिखते हैं ॥

☞ अठारहो पुराणों के श्लोकों की गिन्ती चार लाख (४०००००) प्रसिद्ध ही है ॥

(१२० / ८४२) छप्पय ।

दश आठ स्मृति जिन उच्चरी, तिन पद सरसिज भाल मो ॥ मनुस्मृति,[१] अत्रै[२], वैष्णवी,[३] हारितक, यामी[५] । याज्ञवल्क्य,[६] अंगिरा,[७] शनैश्चर,[८] साम-र्तक,[९] नामी ॥ कात्यायनि,[१०] सांखल्य,[११] गौतमी,[१२] वासिष्ठी,[१३] दाखी,[१४] सुरगुरु,[१५]

आतातापि[१६] (आतातप), पराशर,[१७] क्रत[१८] मुनि भाखी ॥ आशा पास उदार धी, परलोक लोक साधन सो। दश आठ स्मृति जिन उच्चरी, तिन पदसरसिज भाल मो ॥ १४ ॥ (१८/२१३)

वार्त्तिक तिलक ।

अठारह स्मृतियां जिन महानुभावों ने कही हैं, उनके चरण कमल मेरे भाल (ललाट) के भूषण हैं; सो वे स्मृतियां कैसी हैं कि आसा रूपी कठिन पास (फांस) के छुड़ाने के लिये उदार बुद्धि देने वाली और लोक परलोक की साधन रूपा हैं—

१ मनु स्मृति,	१० कात्यायनस्मृति
२ आत्रेयस्मृति,	११ सांखल्यस्मृति
३ वैष्णवस्मृति,	१२ गौतमस्मृति,
४ हारितस्मृति,	१३ वाशिष्ठस्मृति
५ याम्यस्मृति,	१४ दाक्ष्यस्मृति,
६ याज्ञवल्क्यस्मृति,	१५ बार्हस्पत्यस्मृति,
७ आङ्गिरसस्मृति,	१६ आतातपस्मृति,
८ शनैश्चरस्मृति;	१७ पाराशरस्मृति,
९ साम्बर्तकस्मृति,	१८ क्रतुस्मृति ।

इन अठारह के अतिरिक्त और कई प्रसिद्ध स्मृतियों (धर्मशास्त्रों) के नाम—

व्यास, आपस्तम्ब, औशनस वा, उशना (शुक्र), शांडिल्य, भरद्वाज, काश्यप, शंख, लिखित, इत्यादि।

वसिष्ठ, हारित, पाराशर, भारद्वाज, और काश्यप इत्यादिक कई एक स्मृतियां "सात्विका" कही जाती हैं; आत्रेय, याज्ञवल्क्य, दाक्ष्य, कात्यायनि, इत्यादिक, "राजस"; एवं गौतम, बार्हस्पत्य, सांवर्त, याम्य, इत्यादिक "तामस" कहलाती हैं॥

"दस आठ स्मृति जिन उच्चरी तिन" के नाम—

१ श्रीमनु जी	१० श्रीकात्यायनजी
२ श्रीअत्रि जी	११ श्री शांखल्य
३ श्रीविष्णु जी	१२ श्रीगौतम जी
४ श्रीहारित जी	१३ श्रीवसिष्ठ जी
५ श्रीयमराज जी	१४ श्रीदक्ष जी
६ श्रीयाज्ञवल्क्य जी	१५ श्रीबृहस्पति जी
७ श्रीअङ्गिरा जी	१६ श्रीशातातप जी
८ श्रीशनैश्चर जी	१७ श्रीपराशर जी
९ श्रीसम्वर्त जी	१८ श्रीक्रतुमुनि जी।

(१/८ २/४ १/३) छप्पै।

पावैं भक्ति अनपायिनी, जेरामसचिव सुमिरन करैं। धृष्टी, विजय, नीतिपर शुचिर विनीता। राष्टर वर्धन, निपुण, सुराष्टर परम पुनीता। अशोक, सदा

आनन्द धर्मपालक, तत्ववेत्ता। मंत्रीवर्ज सुमंत्र, चतुर्जुग मंत्री जेता। अनायास रघुपति प्रसन्न, भवसागर दुस्तर तरैं। पावैं भक्ति अनपायिनी जे राम सचिव सुमिरण करैं॥ १५॥ (१८/२११)

"चतुर्युगमन्त्रीजेता"=चारोयुगों के भूत वर्तमान भविष्य मन्त्रियों को जीतनेवाले।

श्रीरामसचिव (मन्त्रिवर्ग)।

वार्त्तिक तिलक।

अनन्त श्री महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्र जी के मन्त्रिवर्गों को, जो भक्त जन प्रभातादिकालों में नित्य स्मरण करते हैं, सो अचल श्रीरामभक्ति पाते हैं; और अपने परमभक्त सचिवों के स्मरण करने से श्रीरघुपति अनायास (विन परिश्रम) ही प्रसन्न होते हैं; अतः श्रीप्रभु की प्रसन्नता से दुस्तर संसार समुद्र को भी तर जाते हैं—श्रीधृष्टि जी,[1] श्री जयन्त[2] जी, श्रीविजय[3] जी, ये तीनों अतिशय नीतियुक्त, परम पवित्र, तथा शिक्षित और नम्र; श्रीराष्ट्रवर्द्धन[4] जी उभय लोक कृत्यों में परम प्रवीण; श्रीसुराष्ट्र[5] जी अतिशय पुनीत; श्री अशोक[6] जी सदा प्रेमानन्द युक्त; श्रीधर्मपालक[7] जी भगवत तत्त्वज्ञानी; इन सचिवों में

वर्य्य (परम श्रेष्ठ), अपनी बुद्धिविज्ञता सुनीतियुक्तता से चारों युगों के मन्त्रियों को जीतनेवाले श्रीसुमन्त्रजी ॥

१ श्रीधृष्टि जी	५ श्रीसुराष्ट्र जी
२ श्रीजयन्त जी	६ श्रीअशोक जी
३ श्री विजय जी	७ श्रीधर्मपालक जी
४ श्रीराष्ट्रवर्द्धन जी	८ श्रीसुमन्त्र जी

(श्लोक) धृष्टि र्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः ।
÷अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमो महान् ॥ १ ॥
(श्रीवाल्मीकि)÷पाठभेद–"अशोको"

श्रीसुमन्त्र जी ।

श्री ६ सुमन्त्र जी के विवेक, महा विरह, प्रेम, धैर्य्य आदिक गुण, श्री मानस राम चरित से सबको विदित ही हैं । "तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी" ।

(चौपाई) मन्त्रि हि राम उठाइ प्रबोधा ।
"तात ! धरम मत सब तुम्ह सोधा" ॥ इत्यादि ॥

(१ १ २ / ८ ४ २) छप्पै ।

शुभदृष्टि वृष्टि मोपर करौ, जे सहचर रघुवीर के ॥ दिनकरसुत हरि राज, बालि बच्छ, केशरि औरस । दधिमुख दुविद, मयंद, ऋच्छपति सम, को पौरस ॥ उल्का सुभट, सुषेन, दरी मुख, कुमुद,

नील,नल। सरभ रु, गवै, गवाच्छ, पनस, गँध मादन, अतिबल,। पद्म अठारह यूथपाल, राम काजभट भीरके। शुभदृष्टि वृष्टि मोपर करौ, जे सहचर रघुबीर के॥ १६॥ (३० / २११)

"भीर"=भीड़; समूह; समीप।

श्रीरामसहचर वर्ग।

वार्त्तिक तिलक।

जगद्विजयी श्रीरघुबीर के संग चलनेवाले जो जो सखावर्ग हो, सो आप सब मुझ पर कृपा प्रसन्नता युक्त शुभ दृष्टि की वर्षा कीजिये। श्रीदिनेशपुत्रकपिराजा श्रीसुग्रीव जी, बालिपुत्र श्रीअङ्गद जी, श्रीकेशरी नन्दन हनुमान जी, श्री दधिमुख जी, श्रीद्विविद जी, श्रीमैन्द जी, और जिनके समान दूसरे का पुरुषार्थ नहीं ऐसे ऋक्ष राज श्रीजाम्बवान जी, परम सुभट श्रीउल्कामुख जी, श्रीसुषेण जी, श्रीदरीमुख जी, श्रीकुमुद जी, श्रीनील जी, श्रीनल जी, श्रीशरभ जी, श्रीगवय जी, श्रीगवाक्ष जी, श्रीपनस जी, अतिशय बली श्रीगन्धमादन जी, इत्यादिक अठारह पद्म यूथ पति; और भी सेना समूह के सम्पूर्ण भट श्रीराम कार्य्य करने वाले भी, मुझपर कृपा दृष्टि की वर्षा कीजिये॥

१ श्रीसुग्रीव जी	१० श्री दरीमुख जी
२ श्रीहनुमान जी	११ श्री कुमुद जी
३ श्री अङ्गद जी	१२ श्री नील जी
४ श्रीजाम्बवान् जी	१३ श्री नल जी
५ श्रीदधिमुख जी	१४ श्री शरभ जी
६ श्रीद्विविद जी	१५ श्री गवय जी
७ श्रीमैन्द जी	१६ श्री गवाक्ष जी
८ श्रीउलकासुभट जी	१७ श्री पनस जी
९ श्रीसुषेण जी	१८ श्रीगन्धमादन जी

महावीर श्रीहनुमान जी।

जब श्रीसीताराम जी राजसिंहासन पर विराजे, और चारो दिशाओं से सब मुनि लोग दर्शन के लिये श्री अयोध्या जी में इकट्ठे हुए, तब प्रभु ने श्री अगस्त जी महाराज से पूछा कि (चौ०) "सौरज, धीरज, धीरज, नीती। बरबिक्रम, दक्षता, प्रतीती ॥ तिमि प्रभाव, प्रज्ञता, प्रमाना। हनुमत हिय किय अयन निदाना ॥ हनुमत चारु चरित विस्तारा। सुखद सुनाइय मोहिउदारा ॥" तथा नैमिष क्षेत्र में ऋषियों ने श्रीसूत जी से पूछा कि (दो०) "एकादश रुद्रहि कहत महाशंभु अवतार। ताकी जग जीवन कथा, कहौ सूत विस्तार ॥" इसके उत्तर में—

(सो०) कह अगस्त भगवान, "सत्य कहहु रघुबीर तुम।
नहिँ हनुमान समान, गति मति बलहू में कोऊ॥"१

कहेउ सूत, "सुख मूल, कहौं चरित्र पवित्र अब।
हरण सकल अघशूल, चित लगाय ऋषि गण सुनो॥"२

श्रीकेशरीप्रिया शुभव्रतरता परमविनीता श्रीअञ्जना जी एक समय धीरे धीरे विचरती हुईं बन और पर्वत की शोभा देख रही थीं, उसी समय श्रीपवन देव के उद्वेग से आप का वस्त्र उड़ने लगा था; इससे आपने वायु देव पर क्रोध करना चाहा। परन्तु श्रीमरुत देव जी ने कोमलबाणी से आप को, श्रीरामकृपा से श्रीब्रह्मा जी का विचार सुना कर, बहुत कुछ समझाया—

"तूं भयमानहि मति मन माहीं। हम तव तन व्रत हिंसब नाहीं"॥ और "होइहिँ महाबलवान बुद्धि-निधान सुत मेरे दिये। अति तेजमान महान सत्व पराक्रमी ममसम तिये"॥ "बीरज बिलंघन बेगवान सु मोहुतें अधिकाइके। अस तनय लहि तिहुंलोक तेरी सुयश रहिहै छाइके॥"

पुनि और और देवते भी आके उसी देशकाल में आप से बोले-

(छन्द)

भय छाड़ि संशय तजो, चिन्ता त्यागि मन धीरज धरो।
पिय-त्रास, लोक-बिवाद को सन्देह चितसे परिहरो॥

आए महाशिव गर्भ तब ये देव मुनि चिन्ता हरे।
करि वेगि निशिचर कुल निधन, विधिधेनु की रक्षा करें॥१॥
मन पवन खग से गति अधिक, पद कंज जे चितलावहीं।
धरि चरण निज सुर सीस पै, साकेत पद नर पावहीं॥
सियनाह सेवा करन हित जग माहिं यह अवतार है।
सेवे सिया रघुनाथ के पद कंज गुण से पार है ॥२॥
(दो०) धर्मशील विद्या निपुण, सकल कला परबीन।
आचारज ये होयँगे, रहै विश्व आधीन ॥"

(सो०) सुर सब भेद जनाय, गए सकल निज२ भवन।
सुनो सजन चितलाय, अग्र कथा भव भय हरन ॥
महामरुत की मूल, तेज गर्भ उर धारिकै।
सुख संपति अनुकूल, अंजनि निबसीं गिरि गुहा ॥

निदान, शरद ऋतु, कार्तिक मास, कृष्णपक्ष चतुर्दशी, भौम वार, स्वाति नक्षत्र, मेष लग्न, उच्च उच्च स्थानों में सब ग्रह, एवं सर्व योगों तथा समय के सब विधि अनुकूल होने पर—

(दो०) निशा दिवस के सन्धि में, मुदमंगल दातार।
महाशम्भु परगट भए, हरन हेत भवभार ॥१॥
खल अरविन्द विनासकर, सुजन कुमुद आनन्द।
अंजनि उर अंभोधि ते, उदित भए कपिचन्द ॥२॥
धन्यधाम अरु धन्यथल, धन्य तात अरुमात।
धन्य वंश जेहि वंश में, जन्मे तिहुपुर त्रात ॥३॥

करहिं वेदधुनि विप्रगण, जे जे शब्द विशेष।
सुख समाज तेहिकाल को, कहि न सकैं शत शेष ॥४॥

(क०) मङ्गल सु मास, कल कातिक सरद बास, मंगल प्रथम पक्ष, चौदसि सोहाई है। मंगल सु बार, महामंगल नखत स्वाती, संध्या समय, मंगल लगन मेष आई है॥ मंगल सुथल, जल, अनल, सु मंगल भे, अनिल, अकास झरी फूल की लगाई है। मंगल स्वरूप हनुमन्त जन्म मंगल की, बाजे रस रंग जग मंगल बधाई है ॥ १ ॥

भोरे, सूर्य्य को देख, श्रीअंजनीनन्दन, बालभाव से लाल फल अनुमान करके उछले कि रवि को मुखमें रखलें। यह प्रभाव देख, देव दानव सब विस्मयवन्त हुए। रवि के तेज को विचार के श्री पवन देव भी पुत्र के पीछे पीछे शीतलता करते हुए जा रहे थे। एवं, श्रीदिवाकर भगवान ने भी इन्हे श्रीरामकृपापात्र जानकर अपने ताप का लेशभी इनको नहीं लगने दिया।

उसी दिन सूर्य्य ग्रहण का योग था, इसलिये राहु श्रीभानु भगवान के समीप गया। वहां श्रीपवनसुत को देख, भयमान राहु वहां से लौट, सुरेश से जा कहने लगा कि आप ही ने सूर्य्य तथा चन्द्र को मेरा ग्राह्य निर्मित किया। फिर आज आपने मेरा भाग दूसरे को क्यों दे दिया है? यह सुन सुरपति अपने

ऐरावत नाम (स्वेत) हस्तीपर चढ़ के शीघ्रही वहां पहुँचे कि जहां सूर्य्यदेव और मारुती थे।

श्रीअंजनानन्दन जी राहु को नील फल मान सूर्य्य को छोड़ पहिले तो उसी की ओर लपके, परन्तु ऐरावत को देख स्वेत फल अनुमान कर के, राहु को भी छोड़ ऐरावत ही की ओर लपके। यह देख इन्द्र ने विन बिचारे ही वज्र चलाही तो दिया। राहु के कुसंग का यह फल देखिये। निदान. वह वज्र श्रीप्रभंजनसुत के अंग में आ लगा। उस पविप्रहार से व्यथित हो श्री पवनज जी पर्वत पर आ गिरे, जिस्से आप के बाएं हनु में कुछ चोट पहुँचा। श्रीमरुत देव ने पुत्र को गोद में उठा लिया। कोप करके, सारे जगत से प्रभंजन देवने अपनी गति खींच ली।

तब तो प्राण के राजा श्री पवन जी के रुकने से, समस्त जीवों को अत्यन्त क्लेश हुआ। सुर मुनि नर नाग गन्धर्व असुर सब के सब, स्वांस उस्वांस प्राण अपान के निरोध से, विकल होगए; शरीर की सन्धियां अति पीड़ित हो गईं। कोई कुछ कर्म धर्म करने योग न रहा। देखिये! एक इन्द्र के अपराध से त्रिलोक दुखी हो गया। कुमन्त्र तथा कुसंग स कहां कष्ट नहीं पहुँचता है?

सब प्रजाओं ने इन्द्र के साथ २ श्रीब्रह्मा जी के

पास जा पुकारा। श्रीबिधाता जी सब को साथ लिये वहां आए जहां श्रीपवन देव श्रीमहाबीर जी को गोद में लिये आप का मुख अवलोकन कर रहे थे। जगत पिता श्रीविधि जी को अपने निकट देखतेही, श्री-मरुतदेवने उठके अपने सीस और प्रियपुत्र दोनों को श्रीविरंचि जी के चरणारविन्द पर रक्खा। प्रभु ने कृपा करके बालक के सीस पर ज्योंही निज हस्तकमल फेरा, त्योंही आप सुखी हो गए; तथा आपकी प्रसन्नता के साथ साथही त्रैलोक्य के प्राणी भी सब सुखी हुए।

श्रीइन्द्र जी ने एक अपूर्व माला श्रीमारुती जी के गले में पहिरा के, और "हनुमान" आपका नाम रख के, आसीस दिया कि अब से मेरे बज्र से इनको कभी कुछ भय नहीं। श्रीगिरिजा पति जी ने भक्ति बर दे अपने शूल से आप को निर्भय किया; तथा, श्रीविधि जी ने निज ब्रह्मास्त्र से, श्रीकुबेर जी ने अपने गदा से, श्रीयम जी ने यमदण्ड से; एवं श्री-दुर्गा जी ने अपने खड्ग से, बरुण जी ने निज पास से; और विश्वकर्म्मा जी ने अपने सब आयुधों से अभयत्व दिया। श्रीसूर्य्य भगवान् ने अपने तेज का $\frac{1}{100}$ (शतांश,) अनुग्रह किया; और कहा कि "मैं इन्हें शास्त्र पढ़ा दूंगा"। पुनः, सब ने अनेक विचित्र अद्भुत बरदान आपको दिये, जिनका विस्तृत बर्णन कहां तक किया जावे।

(दो०) देखि सुरन के बरन ते भूषित हनुमत काहिं पुनि बोले बिधि पवन प्रति श्रति प्रसन्न मन माहिं॥ (चौ०) यहिके सेवा बस रघुनाथा। यहिके बेगि बिकैहैं हाथा॥ मारुत! तव, यहसुतको पाई। रहिहै सुयश तिहूं-पुर छाई॥ (दो०) श्रस कहि बिधि श्रमरन सहित, दै दै बर बरदान। गवने पवनहि पूछि सब, श्रपने श्रपने थान॥ १॥ कारण रुद्र श्रनेक के, "महाशंभु" पर धाम। समय समान स्वरूप करि, सेवहिं सीता-राम॥ २॥ तेज प्रभु रुचि पाइके, प्रबिसे पवन स्वरूप। "श्रंजनिमारुत-सुत" भए, कपि बपु बिरचि श्रनूप॥३॥ गिरि सुमेरु के मुनि सकल, सादर सदन बुलाय। पूजि पगन मेले ललन, भोजन बिबिध कराय॥४॥ तब श्रानन्दित अंजना, केसरि बसि निज गेह। दम्पति सुतहि दुलारहीं, दिन प्रति सहित सनेह॥५॥

श्राप के जन्म के चरित्र, स्वामी श्री ६ रामरस रङ्ग मणि जी प्रणीत "श्रीहनुमत यश तरंगिनी" में, कि जिसको परम प्रसिद्ध महानुभाव सन्तमण्डलभूषण स्वामी श्री ६ "श्रीमतीशरणगोमतीदास" महाराज जी ने छपवाकर श्रपने श्रीहनुमत निवास से प्रकाशित किया है, तथा श्रीरामनामानुरागी मुन्शी श्रीरामश्रम्बे सहाय जी कृत श्रीकाशी जी की छपी "श्रीहनुमत जन्म विलास" में भी देखिये॥

श्री मारुती जी के सुयश श्रीवाल्मीकीय में एवं श्रीगोस्वामीतुलसीदास जी कृत जगत विख्यात ग्रन्थों में प्रेमी जन पढ़ते सुन्ते हैं ही ॥ और एक चुटकुला यहां पृष्ठ १०३ में भी देखही आए हैं ॥

(वि०) जयति अंजनी गर्भ अम्बोधिसम्भूत &c.

(दो०) नमो नमो श्रीमारुती, जाके बश श्रीराम।
करहु कृपा निशिदिन जपौं श्रीसियसियपिय नाम ॥

श्रीअङ्गद जी।

श्रीसीतारामपदकंज में प्रेम करने ही से लोक परलोक की कोई वार्ता ऐसी नहीं रह जाती जिस्में मतिमान प्रेमी कुशल न हो। श्रीअङ्गद जी, किष्किन्धाधिप बालि के योग्य पुत्र, अपने पिता सम बली ने, लंका की रणभूमि में किस कुशलता से प्रशंसित पराक्रम किये कि ज़िस्की सराहना स्वयं प्रभु ही श्रीमुख से करते हैं। (चौ०) कह रघुबीर "देखु रण सीता! लछिमन यहां हतेउ इन्द्रजीता॥ हनूमान अंगद के मारे। रन महिं पड़े निसाचर भारे"॥ त्रैलोक्यविजयी रावण की सभा में, कि जहां भयबश इन्द्रादिक देवताओं की बुद्धि क्षोभित हो जाया करती थी, किस उत्साह, दृढ़ता, पराक्रम तथा प्रतीति के साथ अपनी बुद्धि को दरसाया कि लङ्कानिवासियोंने आपको श्री हनुमान जी ही अनुमान किया।

(सवैया)

अति कोप से रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक सशोकित शोर मचा। तमके घननाद से बीर प्रचारिके, हारि निशाचर सैन पचा॥ न टरै पग मेरु हु ते गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा। तुलसी सब शूर सराहत हैं, "जग में बलशालि है बालि बचा"॥

(दो०) रिपु बल धरषि हरषि कपि, बालितनय बलपुंज।
पुलक शरीर नयन जल, गहे रामपद कंज॥

श्रीअवध में आने पर जब सब बिदा होने लगे और आप का अवसर आया, तो यहां रहने के निमित आपका हठ आग्रह एवं विनय करना ही आप के गूढ़ सच्चे प्रेम का यथार्थ चित्र नेत्रों के सामने खींचे देता है॥

(दो०) अङ्गद बचन विनीत सुनि, रघुपति करुणासीव। प्रभु उठाइ उरलाएउ, सजल नयन राजीव॥१॥
निज उर माला वसन मणि, बालि तनय पहिराइ। बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥ २॥

श्रीअङ्गद जी की माता, श्रीतारा जी, जो "पंच कन्या" में से हैं, अतिशय सुन्दरी, बुद्धिमती, पतिव्रता, गुणमयी, तथा श्रीसीताराम भक्ता हैं। इनकी प्रशंसनीय वार्ता श्रीबाल्मीकीय में देखने योग्य ही है॥

श्रीजाम्बवन्त जी।

श्रीजाम्बवान जी श्रीब्रह्मा जी के अवतार हैं।

आपकी चर्चा पृष्ठ १०७ में भी हो आई है ॥

(दो०) जानि समय सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरखा ते सेवक भए, चतुरानन जँबवान ॥
(चौ०) जामवन्त मन्त्री मतिमाना।
अति विजयी बल बुद्धि निधाना ॥
नामनिष्ठ अति दृढ़ विश्वासी।
सेतु समय अस बचन प्रकासी ॥
(सो०) सुनहु भानुकुलकेतु! जामवन्त करजोरि कह।
नाथ! नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिँ ॥

श्रीनल जी और श्री नील जी।

(चौ०) नाथ! "नील, नल" कपि दोउ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई ॥ तिन्ह के परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥

(सो०) सिन्धु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ। अब बिलम्ब केहि काम, करहु सेतु, उतरै कटक ॥

(चौ०) शैल बिशाल आनि कपि देहीं। कन्दुक इव नल नील ते लेहीं ॥ देखि सेतु अति सुन्दर रचना। बिहँसि कृपा निधि बोले बचना ॥ जे 'रामेश्वर" दरशन करिहहिँ। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिँ। होइ अकाम जो छलतजि सेइहि। भक्ति मोरि तेहि शङ्कर देइहि ॥ (दो०) श्री रघुबीर प्रताप ते सिन्धु

तरे पाषान। ते मति मन्द जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥

यूथेश्वर दोनों भ्राता नल जी और श्री नीलजी का भी, लङ्का की लड़ाई में श्री कृपा से जो पराक्रम देखने में आया; सो, श्रीबाल्मीकीय में वर्णित और प्रशंसनीय है॥

और, श्री अवधपति राम जी महाराज के सिंहासनस्थ होने पर, "चीन" देशीय राजा, "वीरसिंह" ने अपनी वीरता प्रकट करने के लिये, श्रीराघव से युद्ध (दूत द्वारा) माँगा; तब श्रीराम जी युद्धोन्मुख हुये। उसी समय खड़े हो प्रणाम करके, आज्ञा ले के, निज शत्रुभंजनी सेना सहित श्रीनलनील जी ने चीन पर चढ़ाई की।

वहाँ जाय, रात्रिदिवस पचीस दिन संग्राम करके वीरसिंह का बध किया; और श्रीराम जी की दोहाई फिराई। पुनः शरणागत आने पर, श्रीरामाज्ञा पाके, "वीरसिंह" के पुत्र "इन्द्रमणि" को चीनी राजसिंहासनासीन करके तब श्री नल नील जी, श्रीरामपार्श्व में प्राप्त हुये।

श्रीराघव दया सागर जी उक्त वीरों से अंक भरि भेंटे; और अन्त में निज पद का लाभ दे, कृतार्थ किया॥

(१२३/८४२) छप्पय।

ब्रज बड़े गोप "पर्जन्य" के, सुत नीके नव नन्द॥ धरानन्द[१], ध्रुवनन्द[२], तृतिय

उपनन्द[३], सु नागर। चतुर्थ तहां अभि-
नन्द[४]; नन्द[५] सुखसिन्धु उजागर॥ सुठि
सुनन्द[६] पशुपाल, निर्मल निश्चय अभि-
नन्दन। कर्मा[७] धर्मा[८] नन्द; अनुज बल्लभ[९]
जगबन्दन॥ आस पास वा बगर के, जहँ
बिहरत पशुप सुछन्द। ब्रज बड़े गोप
"पर्जन्य" के, सुत नीके नव नन्द॥१७॥ (२१/२३१)

"बगर"=टोला, पुरवा; फैलाव॥

भिन्न भिन्न ग्रन्थों में, कई नाम भिन्न पाए जाते हैं जैसे "बल्लभनन्द" के स्थान में "नन्दन" वा "अभिनन्दन," एवमादि॥
बहुत सी हाथ की लिखी पुरानी प्रतियों को मिला के जो पाठ अधिक पोथियोंमें मिला, सोही लिखा है॥

नवो नन्द जी।

वार्तिक तिलक।

गोकुल (ब्रज) में, (१) सुजन्य जी (२) श्रीपर्जन्य जी (४) अपर्जन्य और (४) राजन्य, ये चारो गोप सहोदर भ्राता थे; तिनमें तीन भाइयों के वंश का तो वर्णन नहीं; पर श्री "पर्जन्य" जी नवो नन्दों के बड़े (नाम वृद्ध पिता) थे; इन्हीं के सुन्दर सुत नवो नन्द जी थे; अर्थात् श्री धरानन्द जी, श्रीध्रुवानन्द जी, तीसरे परम प्रवीण (सुनागर) श्रीउपनन्द जी; तिनमें चौथे

श्रीअभिनन्द जी; और सुख के समुद्र परम प्रसिद्ध महर श्रीनन्द जी। गौओं के विशेष पालक, निर्मल, निश्चय करके प्रभु को आनन्द देनेहारे श्रीसुनन्द जी; श्रीकर्मानन्द जी तथा श्री धर्मानन्द जी; और इन आठों के छोटे भाई जगत में वन्दनीय श्रीवल्लभ जी। जहां गोपाल लोग स्वच्छन्दता से बिहरते थे, तिस बगर के आस पास में नवो नन्द बिराजते थे॥ (मैं उनके चरण की धूरि चाहता हूं)॥

१ श्रीधरानन्द जी,	६ श्री सुनन्द जी,
२ श्रीध्रुवनन्द जी,	७ श्री कर्मानन्द जी,
१ श्रीउपनन्द जी,	८ श्री धर्मानन्द जी,
४ श्रीअभिनन्द जी,	९ श्री बल्लभनन्द जी,
५ श्रीनन्द जी, सुख सिन्धु	पाठ भेद कई हैं॥

जो, श्रीकृष्णभगवान् के ही पिता चचा हैं, भला उनकी बड़ाई कहां तक की जा सकती है॥

(१२४/८४२) छप्पै।

बाल बृद्ध नर नारि गोप, हौं अर्थी उन पाद रज॥ नन्द गोप, उपनंद, ध्रुव धरानँद, महरि जसोदा। कीरतिदा "वृषभानु" कुँअरि सहचरि (विहरति) मन मोदा॥ मधु, मंगल, सुबल, सुबाहु,

भोज, अर्जुन, श्रीदामा। मंडल ग्वाल अनेक श्याम संगी बहु नामा॥ घोष निवासनि की कृपा, सुर नर बांछत आदि अज। बाल वृद्ध नर नारि गोप, हौं अर्थी उन पाद रज॥ १८॥ (२२/२१३)

"आदि अज"=अजादि, विरंचिप्रमुख, विधि प्रभृति, ब्रह्मा आदि। "महरी"=बड़ी, महर की स्त्री। "घोष"=अहिरों का टोला, घोसियों का पुरवा; अहीर, घोसी, ग्वाल, गोप।

गोपवृन्द।

वार्तिक तिलक।

जिन घोषनिवासियों (गोप गोपियों) की कृपा को ब्रह्मादिक सुर और नर लोग चाहते हैं, तिन बालक वृद्ध और स्त्री पुरुष गोपों के पाद रज का मैं अर्थी हूं, अर्थात् जांचता हूं। उनमें मुख्यों के नाम-(१) महर श्रीनन्द गोप जी, (२) श्री उपनन्द जी, (३) श्रीध्रुवनन्द जी, (४) श्रीधरानन्द जी, (५) महरी श्रीयशोदा जी, (६) स्मरण मात्र से कीर्ति देनेवाली श्रीवृषभानु जी की स्त्री श्री"कीर्त्ति" जी, (७) श्रीवृषभानु जी; (८) सदा प्रसन्न आनन्दयुक्त मन वाली सखियों के सहित श्रीवृषभानु नन्दिनी श्रीराधिका जी, (९) श्रीमधु जी, (१०) श्रीमंगल जी, (११) श्रीसुबल जी, (१२) श्रीसुबाहु जी, (१३) श्रीभोज जी, (१४) श्रीअर्जुनगोप

जी, (१५) श्री "श्रीदामा" जी, तथा (१६) श्रीश्यामसुन्दर जी के साथी, अनेक नाम वाले, अनेक ग्वालमण्डलों के पद रज को मैं चाहता हूं॥

धन्य गोकुल ब्रज; धन्य धन्य वहां के बासी; और धन्य धन्य उन सब की चरणरज॥

श्रीयशोदा जी।

महरि श्रीयशोदा जी की कथा श्रीमद्भागवत, सुखसागर, ब्रजबिलास तथा प्रेमसागर प्रभृति ग्रन्थों में अति प्रसिद्ध है। विशेष कुछ लिखने की आवश्यकता क्या है। हरिमाताकी स्तुति क्या कोई साधारण वार्त्ता है॥

रानीश्रीकीर्त्तिजी; श्रीवृषभानु जी।

श्रीकृष्णप्रिया जगत जननि सुरमुनिवन्दिता भक्तजन इष्टदेवता "श्रीराधा जी" केही मातु पिता, यही तो सब स्तुतियों की अवधि है; वात्सल्य रस के सुखों की खानि के भाग्य की प्रशंसा और बड़ाई कौन कर सकता है और क्योंकर सम्भव है॥

श्रीसहचरियां; ग्वाल मंडल।

प्रिया जी (श्रीराधाजी) की सहचरियों की स्तुति प्रार्थना किये बिन, जो कोई श्रीप्रिया प्रियतम के चरणों की भक्ति चाहे, उस्की बुद्धि अल्प है।

जिन ग्वालिन तथा ग्वाल मण्डल को भगवान् ने अपना करके जाना माना, और श्रीब्रह्मा ऐसे बड़ों के बड़े ने जिनकी कृपा चाही, उनके चरणसरोज की रज अपने मस्तक पर धरने की बांछा करनी अतिशय बड़भागी का चिन्ह है ॥

(१२५/८४२) छप्पै।

ब्रजराजसुवन सँग सदन बन, अनुग सदा तत्पर रहैं॥ रक्तक,[1] पत्रक,[2] और पत्रि,[3] सबही मन भावैं। मधुकण्ठौ,[4] मधुवर्त्त,[5] रसाल,[6] बिशाल,[7] सुहावैं॥ प्रेमकन्द[8] मकरन्द[9] सदा, चन्द्रहासा[11]। पयद[12] बकुल,[13] रसदान,[14] सारद,[15] बुद्धिप्रकासा[16]॥ सेवासमय विचारिकै, चारु चतुर चित-की लहैं। ब्रजराज सुवन सँग सदन बन, अनुग सदा तत्पर रहैं॥ १९ ॥ (२३/२१२)

"चित्त की लहैं"=मन की रुचि को समझ जाते हैं ॥

श्रीब्रजचन्द्र जी के (१६) षोडश सखा।

वार्त्तिक तिलक।

ब्रजराजश्रीनन्द जी के पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ साथ घर में और सब बन में ये सब षोडश

सेवक सदा सेवा में तत्पर रहते हैं। (१) रक्तकजी (२) पत्रक जी तथा (३) पत्रीजी, ये तीनों प्रभु के मन में भाते हैं; (४) मधुकगठ जी (५) मधुवर्त्त जी (६) रसाल जी (७) विशाल जी, प्रभु को बहुत सुहाते हैं; (८) प्रेमकन्द जी (९) मकरन्द जी (१०) सदा आनन्द जी (११) चन्द्रहास जी; (१२) पयद जी (१३) बकुल जी (१४) रसदान जी (१५) शारद जी और (१६) बुद्धि प्रकाश जी। येसोलहो चारु चतुर अनुग अपनी अपनी सेवा का समय विचार के श्रीनन्दनन्दन जी के चित्त की रुचि को जान लेते हैं, सोई २ सेवा किया करते हैं॥

इन के भाग्य की बड़ाई किससे हो सकती है?

---

(१२६) छप्पै।

सप्त दीप में दास जे, ते मेरे सिर ताज॥ जम्बू[१], और पलच्छ[२], सालमलि[३], बहुत राजऋषि। कुश[४], पबित्र, पुनि क्रौंच[५], कौन महिमा जानै लिषि॥ साक[६] विपुल विस्तार, प्रसिध नामी अति पुहकर[७]। पर्वत "लोकालोक", ओक "टापू कंचनधर"॥ हरिभृत बसत जे जे जहां, तिन सो नित प्रति काज।

"सप्तदीप" में दास जे, ते मेरे सिर ताज ॥ २० ॥ ($\frac{२४}{२१३}$)

"ताज"=टोपी, मुकुट। "ओक"=स्थान, आश्रम।

सप्तद्वीप के भक्त।

वार्त्तिक तिलक।

सातो द्वीपों में, जितने श्री भगवत् दास जहां२ हैं सो सब, मेरे मस्तक के मुकुट हैं। (१) जम्बू द्वीप (२) प्लक्ष द्वीप (३) शाल्मलिद्वीप इन में बहुत से राजर्षि भगवत भक्त हैं; (४) परमपवित्र कुशाद्वीप, तथा (५) क्रौंचद्वीप में जो भक्त समूह हैं तिनकी महिमा जो अनेक पुराणों में लिखी हुई है सो कौन जान सकता है (६) बहुत विस्तारवाला शाकद्वीप और (७) उस्से भी अति प्रसिद्ध नामी बड़ा पुष्कर द्वीप; तथा, लोकालोक पर्वत एवं कांचनधर टापू के स्थानों और आश्रमों में जहां जहां जो जो, श्री भगवत के सेवक बसते हैं उन्हीं से नित्य ही मेरा प्रयोजन है; वेही मेरे सीस के मुकुट मणि हैं॥

(चौ०) मोरे मन प्रभु अस विश्वासा।
राम ते अधिक राम के दासा॥

१ जम्बू द्वीप*
२ प्लक्ष द्वीप
३ शाल्मली द्वीप
४ कुश द्वीप
५ क्रौंच द्वीप
६ शाक द्वीप
७ पुष्कर द्वीप
(इति "सप्तद्वीप")

*अपना यह "भारतबर्ष" देश, जम्बूद्वीप ही में है ।

प्रथम (जम्बू) द्वीप से, दूसरा दूना है; उससे उत्तर उत्तर दूना । अर्थात् द्वितीय से तृतीय दूना, नाम प्रथम से चौगुना है; एवं चौथा प्रथम से आठ गुना बड़ा है; पांचवां सोलह गुना; छठा बत्तीस गुना; और सातवां (पुष्कर) द्वीप प्रथम (जम्बू) द्वीप से चौंसठ गुण बड़ाहै ।

*प्रत्येक द्वीप में शतावधि योजन का एक एक वृक्ष है, सो उसी केनाम से वह द्वीप भी पुकारा जाता है जैसे (१) जामुन, (२) पाकड़ि, (३) सेमर, (४) कुश, इत्यादि का ॥

"कांचनधर" टापू तथा "लोकालोक पर्वत," इन सातो द्वीपों से बाहर हैं॥

(१/८ २/४ ७/२) छप्पय ।

मध्य दीप नव खंड में, भक्त जिते, मम भूप॥ इलाबर्त्त,[१] अधीस संकर्षन, अनुग सदा शिव । रमनक,[२] मछ, मनु दास; हिरन्य[३] कूरम, अर्जम इव॥ कुरू,[४] बराह, भू भृत्य; बर्षहरि,[५] सिंह, प्रह्लादा । किंपुरूष,[६] राम, कपि; भरत,[७] नरायन, बीना नादा ॥ भद्रासु,[८] ग्रीवहय, भद्रस्त्रव; केतु,[९] काम, कमला अनूप । मध्य दीप नव खंड में, भक्त जिते, मम भूप ॥ २१ ॥ (२५/२११)

"मध्य दीप"=जम्बू द्वीप । "मछ"=मत्स्य, मच्छ, मीन ।

"बीनानादा"=श्रीनारदजी ॥

जम्बूद्वीप के भक्त।

वार्तिक तिलक।

मध्यद्वीप अर्थात् "जम्बूद्वीप" के नवो खण्डों में जितने श्रीभगवत-के-भक्त हैं, वे सब मेरे राजा हैं, (मैं उन सब का सुयशकहनेवाला बन्दी हूं)॥

नवो खण्डों के अधीश्वर भगवद्रूपों के, तथा उनके मुख्य भक्तसेवकों के, नाम कहते हैं। (१) इलावर्त्त खण्ड के अधिपति, भगवान् श्रीसंकर्षण जी हैं, और उनके सेवक श्रीसदाशिव जी हैं; (२) रमणकखण्ड के स्वामी श्रीमत्स्य भगवान् और उनके भृत्य श्री मनु जी (सत्यव्रत); एवं (३) हिरण्य खण्ड के अधीश्वर श्रीकूर्म भगवान्, और उनके दास श्रीअर्यमा जी (४) कुरु खण्ड के पति श्री बाराह भगवान् और उनकी सेवा-करनेवाली श्री भूमि देवी जी; (५) हरिवर्ष खण्ड के स्वामी, भगवान् श्रीनृसिंह जी, और उनके भक्त-राज श्री प्रह्लाद जी; (६) किम्पुरुष खण्ड के महाराज, स्वयं श्रीसीतापतिरामचन्द्र जी; और आप के प्रिय-दास, कपिनायक-श्रीहनुमान-जी हैं; (७) भरतखण्ड के पालक बदरिकाश्रम वासी श्रीनारायण जी, और उनके पुजारी वीणा-नाद-कारी श्रीनारद जू; (८) भद्राश्वखण्ड के ईश्वर श्रीहयग्रीव भगवान्, और उनके सेवक श्री भद्रश्रवा जी; (९) केतुमाल खण्ड के स्वामी श्रीकाम-

देव भगवान्, और उनकी पूजा-करने-वाली उपमारहित श्री कमला जी हैं॥

गिन्ती	जम्बू द्वीप के नवो खण्ड	अधीश भगवान्	पुजारी
१	इलावर्त्तखंड	संकर्षणभगवा०	सदाशिव
२	रमणक खंड	मत्स्य भगवान्	श्रीमनु जी
३	हिरण्य खंड	कूर्म भगवान्	श्रीअर्यमा जी
४	(उत्तर) कुरु खंड	बाराह भगवान्	श्रीभूदेवीजी
५	केतुमाल खंड	कामदेव भगवा०	श्रीलक्ष्मी जी
६	भद्रास्व खंड	हयग्रीव भगवान्	श्रीभद्रश्रवजी
७	हरिवर्ष खण्ड	नृसिंह भगवान्	श्रीप्रह्लाद जी
८	किम्पुरुष खंड	श्रीसीताराम जी	श्रीहनुमान जी
९	भरत खण्ड*	श्रीनारायणजी	श्रीनारद जी

*(अथ देश काल) यह तो विदित है ही कि हम सब इसी खण्ड (जंबू द्वीप भरत खंड) के आर्य्यावर्त्त देश में हैं। भरतखंड को "भारतवर्ष" भी पुकारते हैं; तथा इसी को विदेशी "हिन्दूस्तान्" [هندوستان] एवं "इण्डिया" [India] भी कहते हैं। और यह मन्वन्तर जिसमें हम सब वर्तमान हैं, "वैवस्वत मन्वन्तर" है।

इस मन्वन्तर के अट्ठाईसवें चतुर्युग का यह "कलि"युग है; जिसके ४३२००० वर्षों में से केवल प्रथम ही चरण का ५००५ [पाच सहस्र पांचवां] सम्बत्सर, अर्थात् विक्रमी सम्बत १९६१ यह है। अस्तु।

इन्ही श्री वैवस्वत मनुजी के वंश में, "श्री दशरथ चक्रवर्त्ती जी" हुए, जिनके पुत्र हो स्वयं साकेत विहारी शार्ङ्गधर श्रीसीतापति रामचन्द्र महाराज जी प्रगट हुए हैं।

५८ वें पृष्ठ प्रथम छप्पै (पाचवें मूल) में, ग्रन्थकर्त्ता स्वामी मन्व-न्तरों की बन्दना कर आए हैं, जिन में से श्रीवैवस्वत मनुजी [वर्त्तमान] की बन्दना, आप इस आठवीं षटपदी नाम बारहवें मूल [पृष्ठ २५९] में करते हैं॥

इसी (किम्पुरुष) खण्ड ही में महारानी श्रीमिथिलेशलली जी की, तथा श्री जानकी जीवन जी की सेवा, श्रीसीताअंजनीदुलारे जी कई ("कपिमहावीर," "श्रीरामदूत," "श्रीमारुतिवीर कला," श्रीचारुशीला," इत्यादिक,) रूप से सदैव करते हैं। एवं, वहीं, मुमुक्षु जनों को श्रीकेशरीनन्दन कपीश जी, श्रीरामायणीय कथा और श्रीसीतारामाराधन सिखला के मुक्त कराते हैं॥

(१२८/८४१) छप्पय।

स्वेत दीप में दास जे, श्रवण सुनो तिनकी कथा॥ श्रीनारायण (को) बदन निरन्तर ताही देखैं। पलक परै जो बीच कोटि जमजातन लेखैं॥ तिनके दरशन काज गए तहँ बीणाधारी। श्याम दई कर सैन उलटि अब नहिँ अधिकारी॥ नारायण आख्यान दृढ़, तहँ प्रसंग नाह्नि तथा। स्वेत द्वीप में दास जे, श्रवण सुनो तिनकी कथा॥ २२॥ (२६/२११)

वार्त्तिक तिलक।

"श्वेतद्वीप" में जो श्रीभगवान् के दास बसते हैं, तिनकी कथा कान लगा के सुनिये। वे दास, श्वेतद्वीप वासी श्रीमन्नारायण के मुखचन्द्र को सदा देखाही करते हैं, और नेत्रों में जो पलक पड़ते हैं उस अन्तर को कोटिन यमयातना के सरीखा दुःख मान्ते हैं।

उन भगवत-दर्शनानन्द-निष्ठों के दर्शन तथा ज्ञानोपदेश करने के हेतु बीणाधारी श्री नारद जी गए; तब श्रीमन्नारायण जी ने श्रीनारद जी के मन की रुचि जान के, हाथ के सैन से निवारण किया कि "आप उलटे पांव फिर जाइये, ये हमारे रूप-माधुरी-के-निष्ठ लोग आपके ज्ञानोपदेश के अधिकारी नहीं हैं॥"

नारायण के रूपाशक्ति प्रेमाभक्ति का आख्यान जैसा वर्णित है सोही वहां के भक्तों को भली भांति दृढ़ है। जैसी अन्यत्र के भागवतों की ज्ञानमिश्रा भक्ति में प्रवृत्ति है, वैसा प्रसंग श्वेतद्वीप में नहीं है, वहां वाले तो केवल शुद्ध माधुर्य्य रूप के ही उपासक हैं॥

श्वेतद्वीप के भक्त।

(१२१/८४२) टीका कवित्त।

श्वेतदीप वासी, सदा रूप के उपासी; गए नारद बिलासी, उपदेश आसा लागी है। दई प्रभु सैन जिनि

आयो इहि ऐन, दृग देखैं सदा चैन, मति गति अनु-
रागी है॥ फिरे दुख पाइ, जाइ कही श्री बैकुण्ठनाथ,
साथ लिये चले लखो भक्ति अंग पागी है। देख्यो
एक सर, खग रह्यो ध्यान धरि, ऋषि पूछैं कहो हरि,
कह्यो "बड़ो बड़भागी है" ॥ १०३ ॥ (६२९—५२६)

वार्तिक तिलक।

श्वेतद्वीप के बासी भक्त जन सदा श्री भगवत रूप
ही के उपासक हैं; वहां एक समय ज्ञानोपदेश करने की
आसा करके सत्संगविलासी श्रीनारद जी गए; उनके
मन की गति जान के प्रभु ने सैन से आज्ञा की कि
"इस स्थान में मत आओ, क्योंकि ये भक्त हमारे
रूप अनूप ही को देख कर परम आनन्द मानते हैं,
और रूपही के अत्यन्त अनुरागी हैं, इनको अब
ज्ञान उपदेश का प्रयोजन नहीं है"।

यह सुन, उदास हो के, श्रीनारद जी फिरे, और
श्रीबैकुण्ठनाथ भगवान् के हां जाके सब वार्त्ता निवेदन
की। भगवान् बोले कि ठीक तो है; और, उनको
अपने साथ ले चल के कहा कि "चलो, हम दिखादें
कि, यथार्थ में उन भक्तों के अंग अंग रोम रोम
सब प्रेम भक्ति से पगे हैं"।

दोनों श्वेतद्वीप में पहुँचे। वहां एक सरोवर में
एक भक्त पक्षी प्रभु का ध्यान धरे हुए बैठा था; देख

के श्रीनारद जी ने श्रीवैकुण्ठनाथ जी से प्रश्न किया कि प्रभो! यह खग ऐसा शान्त क्यों बैठा है?" श्री हरि ने उत्तर दिया कि "यह भक्त खग अति बड़भागी है" ॥

(१३१) टीका। कवित्त।

वर्ष हजार बीते, भए नहीं चित चीते, प्यासोई रहत, ऐपै पानी नहीं पीजिये। पावै जो प्रसाद जब जीभ सो सवाद लेत, लेत नहीं और, याकी मति रस भींजिये॥ लीजै बात मानि, जल पान करि डारि दियो, लियो चोंच भरि, दृग भरि बुधि धीजिये। अचरज देखि, चष लगे न निमेष किहूं, चहूं दिशि फिरयो; अब सेवा याकी कीजिये॥ १०४॥ (६२९—५२५)

"नहि चित चीते"=चित चिन्ता नहीं; ध्यान न दिया। "निमेषन लगे"=एक टक। "चहूँ दिशि फिरि"=परिक्रमा करके।

वार्त्तिक तिलक।

"नारद! देखो, इसको एक सहस्र (१०००) वर्ष बीत गए, इसके चित्त में चिन्ता नहीं, यह इतने दिनों से प्यासा ही रहता है परन्तु जल नहीं पीता, केवल मेरे ध्यामामृत ही से जीता है; क्योंकि जब यह मेरा प्रसाद पाता है तबही जीभ से खानपान का स्वाद लेता है; इसकी मति भक्तिरस में ऐसी भीग गई है कि प्रसाद बिना और वस्तु का ग्रहण ही नहीं करता। मेरी इस

बात को सत्य मानो; देखो, मैं प्रसाद करके जल इसको देता हूं, उसको पियेगा" । प्रभु ने आप जल पीके प्रसाद उसके आगे रख दिया, तब तुरन्त ही उसने भर चोंच पान कर लिया; प्रेमानन्द का जल भी उसकी आंखों में भर आया तथा मति प्रसन्नता से पूर्ण हो गई ।

(श्लोक) यज्ञशिष्टाशिनःसन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
ते त्वघं भुञ्जते पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥
(भ० गी० ३।१३)

वैष्णवे भगवद्भक्तौ प्रसादे हरिनाम्नि च ।
अल्पपुण्यवतां राजन् बिश्वासो नैव जायते ॥

इस आश्चर्य्य भक्ति को देख के श्रीनारद जी के नेत्रों में किसी प्रकार से निमेष नहीं पड़े उसकी ओर देखतेही रह गए; फिर चारो ओर फिर करके उसकी प्रदक्षिणा की । और प्रभु से बोले कि "मेरा तो जी चाहता है कि मैं इसकी सेवा किया करूं ॥"

(१२३१/८२४) टीका कवित्त ।

चलो आगे देखौ, कोऊ रहै न परेखौ; भाव भक्ति करि लेखौ; गए द्वीप; हरि गाइये । आयो एक जन धाई, आरती समय बिहाई, खैंचि लिये प्राण, फिरि बधू याकी आइये ॥ वही इन कही, पति देख्यो नहीं, मही पस्यो; हस्यो याको जीव, तन गिस्यो; मन भाइये । ऐसे,

पुत्र आदि आए, सांचे हित में दिखाए, फेरिके जिवाए, ऋषि गाए चित लाइये ॥ १०५ ॥ (६२९—५२४]

"परेखौ"=जांच, परचो, परीक्षा। "लेखौ"=लेखा करो, मानो, गिन्ती में लाओ ॥

वार्त्तिक तिलक।

यह सुन श्री भगवान् बोले कि "चलो, अभी आगे और देखो; कोई परीक्षा रह न जाय, जिस्में उन भक्तों की सब दशा देख के तुम भावपूर्वक उनकी भक्ति को लेखा में लाओ" यों बातें करते हुवे, उस (श्वेत) द्वीप के मध्य मन्दिर में दोनों गए, कि जहां सब भक्त लोग हरि के गुण और नाम ही प्रेम से गा रहे हैं।

देखते क्या हैं कि एक आर्ती दर्शन का नेमी दौड़ता हुआ आया परन्तु आर्ती का समय बीत गया था। आर्ती का दर्शन न पाने के बिरह से उसने प्राण को खींचके छोड़ ही दिया।

उसके पीछे ही उस्की धर्मपत्नी भी आई और पूछने लगी कि क्या आर्ती हो गई ? आपने कहा कि हां, होगई वरन् तेरे पति को भी दर्शन नहीं हुआ! देख, प्राणत्याग के धरती पर गिरा पड़ा है। आर्ती बिरह ने इस्के भी प्राण हर लिये, उस्का भी मृतक शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इन दोनों का नेम प्रेम देख प्रभु के और नारदजी के मन में यह अत्यन्त भाया।

इसी प्रकार से, उनके पुत्रादि सब आए और आर्ती के दर्शन विना प्राण त्याग त्याग गिर गिर पड़े।

इस भांति, प्रभु ने इन सच्चे भक्तों का प्रेम नेम नारद जी को दिखाया; जिस्से श्रीनारद जी का प्रबोध हुआ।

पुनः जब आर्ती होने लगी तो उस समय प्रभु ने उन सब को सजीव कर आर्ती दर्शन का आनन्द दिया।

यह आख्यान, श्वेतद्वीप माहात्म्य में ऋषियों ने गाया है। इनके प्रेम भक्ति में सब को चित लगाना चाहिये॥

(११२/८१२) छप्पय।

उरगअष्टकुल द्वारपाल सावधान हरि-धाम थिति॥ इला पत्र,[१] मुख अनन्त[२] अनन्त कीरति विसतारत। पद्म,[३] संकु,[४] पन प्रगट ध्यान उरते नहिं टारत॥ अंशुकम्बल,[५] बासुकी,[६] अजित आज्ञा अनुबरती। करकोटक[७] तक्षक[८] सुभट सेवा सिर धरती॥ आगमोक्त शिव संहिता "अगर" एकरस भजन रति। उरग अष्टकुल द्वार पाल सावधान हरिधाम थिति॥२३॥ (२७/२१३)

"श्वेत द्वीप" को भूमंडल पर एक बैकुण्ठ ही जानिये ॥

पृष्ठ ३३१ (श्रीयाज्ञवल्क्य जी)। १८।१९ वीं पंक्ति में "एक मुनि" के स्थान में "सूर्य्यनारायण," और "वह मुनि" की जगह "सूर्य भगवान्" भूल है। चाहिये कि-"आप ने पहिले किसी एक मुनि से विद्या पढ़ी किसी कारण से वह मुनि अप्रसन्न हुए तो इनने सब विद्या उगलदी। यह प्रभाव देख प्रसन्न हो, श्रीसूर्य्य नारायण ने आप को विद्या तथा बरदान दिया इ०. इ०. ॥"

अष्टकुल नाग।

वार्त्तिक तिलक

इन अष्टकुली महासर्पों की श्रीभगवत के धाम में स्थिति है, श्रीहरि मन्दिर के द्वार पालक हैं, और निज निज सेवा में सदा सावधान रहते हैं—

(१) एलापत्र जी और (२) अनन्त (शेष) जी, अपने मुखों से श्री अनन्त (श्रीभगवान्) की कमनीय कीर्त्ति विस्तार पूर्वक सदा वर्णन करते हैं। (३) पद्मजी तथा (४) संकुजी की प्रतिज्ञा (पन) प्रगट है कि श्रीप्रभु के स्वरूप का ध्यान निज हृदय से क्षणमात्र नहीं टारते हैं (५) अशुकम्बल जी और (६) वासुकी जी श्रीअजित महाराज की आज्ञा के सर्वदा अनुवर्त्ती रहते हैं। (७) कर्कोटक जी तथा (८) तक्षक जी ये दोनों सुभट श्रीप्रभु की सेवा रूपा भूमि अपने सीसपर निरन्तर धारण किए रहते हैं।

स्वामी श्रीअग्रदेव जी कहते हैं कि यह शिवसंहिता तंत्र (आगम) में कहा गया है, ये अष्टकुली महानागों

की श्रीभगवत के भजन में सदा एक रस प्रीति (रति) रहती है॥

(श्लोक) " * * * * * ।

तेषां, प्रधानभूतास्ते, शेष,[१] वासुकि,[२] तक्षकाः[३] ॥१॥
शंखः,[४] श्वेतो,[५] महापद्मः[६] कम्बला[७]श्वतरौ[८] तथा।
एला पत्र,[९] स्तथा नागः,[१०] कर्कोटक,[११] धनंजयौ[१२] ॥२॥

[विष्णु पुराण, अंश १, अध्याय २१]

इनकी चर्चा "श्रीरामतापनीयोपनिषद्" में भी है॥

१. एलापत्र	७. कर्कोटक
२. अनन्त [शेष]	८. तक्षक
३. महापद्म	९ धनंजय
४. अश्वतर	१० नाग
५. कंबल	११ श्वेत
६. वासुकि	१२ शंख

प्रिय पाठक! आप राग्य धर्मशीलों के गृह गृह सब यज्ञादिकों में पुरोहित लोग अवश्य ही "अष्टकुली नाग" की (और २ देवतों के समूह में) पूजा करते कराते हैं; वे नाग ये ही हैं जिनकी बन्दना प्रार्थना श्रीग्रन्थकार स्वामी श्रीभक्तमाल के इस पूर्व खण्ड के अंत में कर रहे हैं।

अंत में इसलिये कि ये "द्वारपाल" हैं; इनकी कृपा बिन भीतर प्रवेश नहीं हो सकता; भीतर जाने

वाले को प्रथम आपही की कृपा की आवश्यकता होती है॥

चित्र मय तथा मन्त्रमय "श्रीयन्त्र राज" * का दर्शन अवश्य कीजिये, देखिये कि यन्त्र कोट के बाहर ये द्वादश उरग कैसे शोभते विराजते हैं।

———:o:———

* श्रीअयोध्या जी में यन्त्रराज जी अनेक ठिकाने नित्य पूजे जाते हैं श्रीकनकभवननिवासी परमहंस श्रीसीताशरण जी महाराज के पास, तथा इन्ही की कृपा से छपरे के वकील श्रीजानकी नगर निवासी बाबू दुर्गा प्रसाद जी के पास जो श्रीयन्त्र राज जी हैं, अवश्य दर्शनीय हैं॥

श्रीयन्त्र राज जी के भीतर वे हरिवल्लभ लोग कई (सात) आवृत्तियों में विराजते हैं कि जिनकी बंदना तथा यशकीर्त्तनादि ऊपर, चार दोहों, २३ छप्पयों, और १०५ कवित्तों (प्रायः चार सौ पृष्ठों) में वर्णित हैं; सब के बीच में श्रीयुगल सर्कार विराजमान हैं।

"धन्यते नर यहि ध्यान जे रहत सदा लवलीन"॥

अनुमान से ऐसा भी निश्चय होता है कि यह छप्पै (षट पदी) "अपने गुरुस्वामी श्रीअग्रदेव जी" कृत, श्री नाभास्वामी जी ने अति मंगल जान के यहां स्थापन किया है, जैसे पृष्ठ ५८ की प्रथम षटपदी (मूल ५) को भी॥

———

☞ "बाल मराल कि मन्दर लेहीं॥"

प्रार्थना। श्री "भक्तिरसबोधिनी" की भाषा समझना कठिन है तिसपर भी उसका तिलक करना इस अबोध

बालक के लिये विशेषतः क्लिष्टतर है। परन्तु जो कुछ बड़ों से पढ़ा सुना उसमें से संतों की कृपा से जो कुछ मति अनुसार हो सका सो, परम प्रेमी श्रीबलदेव नारायण सिंह जी की अतिशय आग्रह से, लिख कर पाठकों के कर कमल में निवेदन कर रहा हूं। चूक क्षमा करके, कृपा पूर्वक सुधार लिया जावे, भक्तिवर दिया जावे॥

यही विनय पुनः पुनः॥

(दोहा) नमो नमो श्रीमारुती, जाके बश श्रीराम।
करहु कृपा निशि दिन जपों, श्रीसियसियपिय नाम॥१॥
भक्त भक्ति भगवंत गुरु, चतुरनाम, बपु एक।
पुनि पुनि पद बंदन करौं, बिनशै विघ्न अनेक॥२॥
(श्लोक) श्रीरामं, रामभक्तिं च, रामभक्तांस्था गुरून्।
वाक्काय, मनसा, प्रेम्णा, प्रणमामि पुनः पुनः॥

इति श्रीभक्तमाल "सत्ययुग त्रेता और द्वापर के भक्तों का वर्णन" नाम पूर्वनामावली तमाप्ता॥ शुभमस्तु॥

श्रीसीतारामार्पणम्

॥ श्रीहनुमते नमः॥

संम्बत् १९६१ सन् १९०४ श्रीअयोध्या प्रमोदवन॥

॥ श्रीः ॥

ॐ नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय।

श्रीभक्तमाल।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर पर्य्यन्त—

मूल दोहे (सत्रह में से)	४
मूल छप्पै (१९५ में से)	२३
मूल (१७+१९५+१=२१३ में से)	२७
टीका। कवित्त (६२९ में से)	१०५
८४२ (=२१३+६२९) में से	१३२
भक्त (पौने तीन सौ)	२७५
न्योछावर ... ... (सवादोरुपए)	२।)
पृष्ट	३७३
फ़र्मा	४७

Registered

Under Act XXV of 1867:

(Office of the Registrar & Superintendent,

Govt. Book Depot. U. P., Allahabad)—

(I.) No. 682 Dated the 1st July 1905.

(II.) No. 1468 Dated the 6th December 1904.

(कलियुग भक्तावली आरम्भ, पृष्ट ३७५ वें से)

श्रीअयोध्याजी, अगहन, सम्बत १९६१

C. P. Press, Benares.

॥ श्रीगणेशायनमः । श्रीहनुमते नमः ॥

छप्पै	भक्त
७	१३
८	१६
९	२६
१०	२०
११	२०
१२	२१
१३	१०
१६	२७
१७	१८
१८	१८
१९	८
२०	१८
२१	९
२२	१६
२३	१६
२४	१
२६	२
२७	८

सब=२७५

श्रीमतेरामानन्दाय नमः ।

गोस्वामी श्री१०८ नाभा जी महाराज ने सत्ययुग त्रेता द्वापर पर्य्यन्त के भक्त, २७ (सत्ताईस्वें) मूल (२३ वें छप्पै) तक वर्णन किये हैं; इसमें २७५ (पौनेतीन-सौ) भक्तों के नाम हैं।

किस किस मूल (छप्पय) में कितने कितने भक्तों की चर्चा है, सोही इस सूचीयन्त्र में देख लीजिये, ग्रन्थमे प्रत्येक छन्द पर अंक तो लगे ही हैं।

सब भक्तों के नाम "सूचीपत्र" में तो लिखे जा चुके ही हैं, तथापि वर्णमाला के (अकारादि) क्रम से भी सब नामों की पूरी सूची श्रीसीतारामकृपासे दी-जावेगी।

"भक्तिसुधाबिन्दु स्वाद" के ३७३ पृष्ठों में, इन्हीं के चरित्र वर्णित हैं।

पृष्ठ (३७४ वां तो यही है) ३७५ वें से कलियुग के भक्त श्रीसीतारमकृपासे गाए जावेंगे॥

श्रीअयोध्या जी
अगहनसुदी पंचमी, १९६१ } सीतारामशरण भगवान्प्रसाद

श्रीमतेरामानुजायनमः । श्रीमतेरामानन्दायनमः ।

श्रीभक्तमाल सटीक ।

(कलियुग भक्तावली ।)

(१/८ ३/४ ३/२) छप्पै ।

चौबीस प्रथम हरि बपु धरे, त्यों चतु-
र्व्यूह कलियुग प्रगट ॥ "श्रीरामानुज[१]"
उदार, सुधानिधि, अवनि कल्पतरु ।
"विष्णु स्वामि[२]" बोहित्थ सिन्धुसंसार
पारकरु । "मध्वाचारज[३]" मेघ भक्ति सर

ऊसर भरिया। "निम्बादित्य[४]" आदित्य कुहर अज्ञान जु हरिया ॥ जनम करम भागवत धरम सम्प्रदाय थापी अघट । चौबीस प्रथम हरि बपु धरे, त्यों चतु-र्व्यूह कलियुग प्रगट ॥ २४ ॥ ($\frac{२८}{२१३}$)

"बपुधरे"=अवतारलिये, अवतीर्ण हुए, प्रगटे ॥ "थापी"=स्थापित किया ।

($\frac{१}{८}\frac{३}{४}\frac{५}{२}$) दोहा ।

"रमा" पद्धति, रामानुज; विष्णु स्वामि, "त्रिपुरारि"। निम्बादित्य, "सनाकादिका;" मधुकर, गुरु "मुखचारि" ॥५॥* (२९)

* चौथा दोहा मूल पृष्ठ ४८ में है; और पांचवां दोहा (वा उन्तीसवां मूल) यही दोहा है, जिसकी चरचा ५१ वें पृष्ठ (पंक्ति ७।८) में हुई है ॥

चारों सम्प्रदाय ।

१	श्री "श्री" सम्प्रदाय	श्रीरामानुज स्वामी सं०
२	श्री शिव सम्प्रदाय	श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय
३	श्रीसनकादिक सम्प्रदाय	श्रीनिम्बार्क स्वामी सं०
४	श्री ब्रह्म सम्प्रदाय	श्रीमध्वाचार्य्य सम्प्र०

वार्तिक तिलक।

(१) यतीन्द्र स्वामी श्री ६ रामानुज महाराज जी भाष्यकार, बड़े ही उदार, श्रीसीतारामभक्ति रूपी अमृत के सागर, कल्पवृक्ष के समान जगत में सर्वकामप्रद;

(२) श्रीविष्णु स्वामी जी महाराज, संसार समुद्र से पार करनेवाले दीर्घ नाव (जहाज़) ;

(३) श्रीमध्वाचार्य्यजी महाराज, ऊसरके सूखेसर समान जीवों के हृदय में श्री भक्ति रूपी जल बर्षा-करके भरनेवाले घन; और

(४) श्रीनिम्बार्कजी महाराज, जनों के अज्ञान रूपी कुहेसे को नाश करके उनके हृदयमें ज्ञान तथा भक्ति प्रकाश करनेवाले सूर्य्य;

भागवत जन्म, भागवत कर्म, भागवत धर्म, तथा भगवतधर्म्मों के चारो सम्प्रदाय, आपही चारोके स्था-पित कियेहुए अचल हैं।

जैसे भगवान् पहिले चौबीस रूपसे अवतरे, वैसेही भगवतही कलियुगमें इन चारो आचार्य्य रूप प्रगट हो चारो भागवत सम्प्रदाय स्थापन किये हैं॥

स्वामी श्रीरामानुज की पद्धति, श्रीलक्ष्मी जी की और श्रीविष्णु स्वामी जी की पद्धति श्रीशिव जी की है। श्रीनिम्बार्क पद्धति के आचार्य्य श्रीसनकादिक हैं; और, श्रीमध्वाचार्य्य जी का मार्ग, श्री गुरु ब्रह्मा जी की पद्धति है॥

श्रीनिम्बादित्य जी ।

($\frac{१}{८}\frac{३}{४}\frac{५}{२}$) । टीका कवित्त ।

निंबादित्य नाम जाते भयो अभिराम कथा, आयो एक दंडी ग्राम, न्योतो करी, आए हैं । पाक को अबार भई, संध्या मानिलई जती, "रतीहूं न पाऊँ" वेद वचन सुनाए हैं ॥ आंगन में नींब, तापै आदित दिखायो वाहि, भोजन करायो, पाछे निशि चिन्ह पाए हैं । प्रगट प्रभाव देखि, जान्यो भक्ति भाव अग, दांव पाइ, नांव पर्‌यो, हर्‌यो मन, गाए हैं ॥ १०६ ॥ (६२९-५२३)

"दाव"=पेच, अवसर, अवकाश, सन्धि, सुगमता । रत्ती=$\frac{१}{८}$माशा

वार्तिक तिलक ।

भागवत धर्मप्रचारक स्वामी श्री निम्बादित्य (निम्बार्क) जी के ग्राम में एक समय एक दंडी स्वामी आए; आपने उनका न्योता किया, संन्यासीजी इनके स्थानमें आए । शिष्टाचार तथा रसोई में संध्या (वरंच अधिक विलम्ब) होगई; यतीजी ने वेदबचन का प्रमाण देकर कहा कि "रात्रि में रतीमात्र भी मैं पाता नहीं हूं" ।

यह सुन, आपको दया आई कि 'मेरेराम जी के हां अतिथि उपवास करे, (और मेरीही असावधानता से!) यह विचारकर आपने कहा कि इस आंगन में जो "निम्ब" का वृक्ष है, उसपर देखिये कि अभी ("अर्क" वा

"आदित्य" अर्थात्) सूर्य्य देव विराजते हैं, और ऐसाही दिखाके दंडी जी को सन्तुष्टता पूर्वक प्रसाद पवादिया। पीछे, (दो तीन घड़ी) रात्रिके चिन्ह पाकर, दंडीजी ने आपका प्रभाव प्रगट देखा; तथा जगतमें सर्वत्र इनकी भक्तिभाव की दाव एवं महिमा प्रख्यात होगई, और इसीसे आपका यह नाम (निम्बार्क) विख्यात हुआ।

इसीसे मेरा मन हर गया, और मैंने श्रद्धा पूर्वक आपका यश गानकिया॥

आप, दक्षिणमें "श्रीगोदावरीगंगा" के तट "मुँगेर" नाम के ग्राम के वासी महाराष्ट्र ब्राह्मण "अरुण"जी और माता "जयन्ती जी" के, पुत्र हैं।

भगवान् ने "श्रीहंस" (पृष्ठ ६१) अवतार लेके श्रीसनकादिक को उपदेशकिया और श्रीसनकादिक से श्री नारद जी ने पाया, जिस्से यह सम्प्रदाय "सनकादिक सम्प्रदाय" कहलाता है; उसीको स्वामीजी ने श्रीनारद जी से पाके, प्रचलित किया; जिस्से वही, श्रीनिम्बार्क (निम्बादित्य) सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुवा। गोलोक बासी श्रीकृष्ण भगवान् की माधुर्य्य उपासना, इस संप्रदाय की मुख्य बात है। आपकी गादी (१) अरुण और (२) सलेमाबाद इत्यादिक नगरों में हैं॥ निम्बार्क सम्प्रदाय तथा श्री श्रीसम्प्रदाय की "श्रीगुरु-परम्परा" आगे देखिये—

स्वामी श्रीरामानुज
महापूर्णाचार्य्य
श्रीयामुनाचार्य्य
श्रीपरांकुश मुनि
श्रीराममिश्र
श्रीपुण्डरीकाक्ष
श्रीनाथ मुनि
श्रीवोपदेवजी
श्रीशठकोपजी
श्रीविष्वकसेनजी
श्रीलक्ष्मीजी
श्रीमन्नारायण भगवान्
श्रीनिम्बार्क स्वामी
श्रीनारदजी
श्रीसनकादिक
श्रीहंसभगवान्
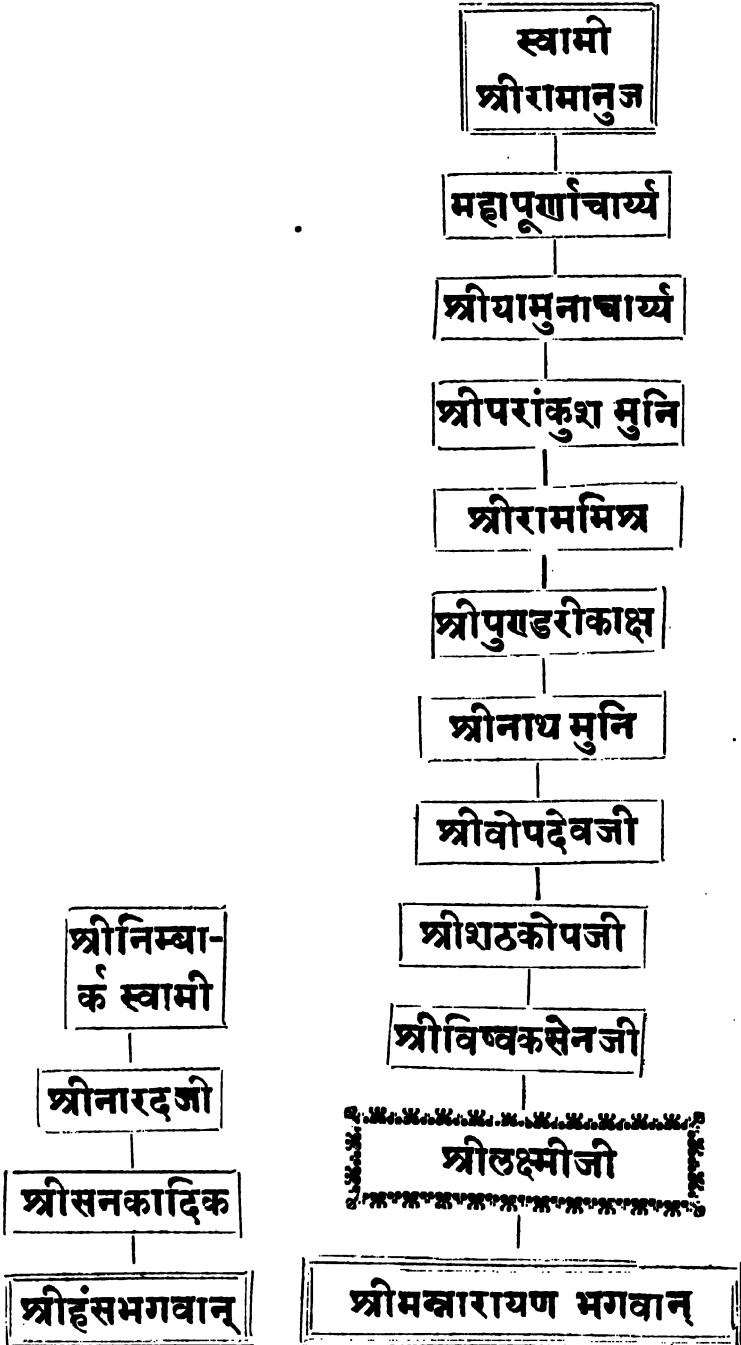
स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी।

(१/८ ३/४ ६/२) छप्पै।

सम्प्रदाइ शिरोमणि "सिन्धुजा[२]" रच्यो भक्ति वित्तान॥ "विष्वक्सेन[३]" मुनिवर्य्य, सुपुनि "सठकोप[४]" प्रनीता। "वोपदेव" भागवत लुप्त उधर्‍यो नवनीता॥ मङ्गल मुनि "श्रीनाथ[५]" "पुण्डरीकाक्ष[६]" परम जस। "राम मिश्र[७]" रस रासि; प्रगट परताप "परांकुस"॥ "यामुन[८]," मुनि[९] "रामानुज[१०]" तिमिर हरन उदय भान। सम्प्रदाइ शिरोमणि सिन्धुजा रच्यो भक्ति वित्तान॥ २५॥ (३०/२१३)

(१/८ ३/४ ७/२) छप्पै।

सहस्र आस्य उपदेश करि, जगत उधारन जतन कियो॥ गोपुर ह्वै आरूढ़, ऊंच स्वर, मन्त्र उचार्‍यो। सूते नर परे जागि, बहत्तरि श्रवणनि धार्‍यो॥ तितनेई गुरुदेव पधति भई न्यारी न्यारी। कुरु-

तारक शिष्य प्रथम भक्ति बपु मंगलकारी॥ कृपणपाल करुणा समुद्र, "रामानुज" सम नहिँ बियो। सहस्त्र आस्य उपदेश करि, जगत उधारन जतन कियो ॥२६॥ (३१/२१२)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीसिन्धुजी (नाम श्रीलक्ष्मी) महारानीजी का सम्प्रदाय, सब सम्प्रदायोंका शिरोमणि, और संसारताप से बचाने के निमित्त भक्ति के मण्डप का चँदोआ रचा हुआ है। श्रीश्रीजी महारानीसे, श्रीविष्वक्सेन जी भगवतपार्षद; फिर उनसे पुण्यपुंज मुनिवर्य्य नम्रता-नीतिशील "श्रीशठकोप" जी; श्री "वोपदेव" जी कि जिनने श्रीमद्भागवत रूपी लुप्त मक्खन का उद्धार किया; मंगल स्वरूप "श्रीनाथमुनि" जी; तथा परम यशस्वी श्री "पुण्डरीकाक्ष" जी; भक्तिरस के राशि श्री "राममिश्र" जी; श्रीपरांकुश जी, कि जिनका प्रताप प्रगट है; स्वामी श्री६ "यामुनाचार्य्य" जी; तथा भाष्यकार स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी, कि जो संसार के मोहान्धकार हरनेवाले सूर्य्य उदय हुए॥

ऊंचे गोपुर (वृहद्द्वारकोइल) पर चढ़के, अतिउच्चस्वरसे, श्रीमन्त्रजी का उच्चारण किया, सोये हुये लोग

जाग पड़े; बहत्तर ने अपने अपने श्रवण में रामकृपा से धारण किया; इसीसे उतनी ही अर्थात् बहत्तर न्यारी न्यारी पद्धतियां गुरुदेव की हुईं; जिन में प्रथम शिष्य श्रीकुरुतारक (श्रीकुरेश जी) को, मंगलकारी श्री भक्ति प्रेम रूप ही जानिये। दीनपालक और करुणा के सागर, स्वामी श्री १०८ "रामानुज" जी के सरिस दूसरा कोई नहीं। आपने सहस्र मुखसे उपदेश करके जगतके उद्धारार्थ उपाय (प्रयत्न) किया॥

(१३८/४२) टीका। कवित्त।

आस्य सो बदन नाम, सहस हजार मुख, शेष अवतार जानो, वही सुधि आई है। गुरु उपदेशि मन्त्र, कह्यो "नीके राख्यो" अन्त्र, जपतहि श्याम जू ने मूरति दिखाई है॥ करुणानिधान कही "सब भगवत पावैं" चढ़ि दरवाजे सो पुकार्यो धुनि छाई है। सनि शिष्य लियो यों बहत्तर हि सिद्ध भए नए भक्ति चोज, यह रीति लैके गाई है॥ १०७॥ (६२९-५२२)

"आस्य"=मुँह, बदन; "सहस=१०००

वार्तिक तिलक।

आस्य नाम वदन (मुँह), सहस नाम सहस्र (१०००) यह जान लेना चाहिये कि आप सहस्र मुख श्री शेष के अवतार हैं। श्रीगुरु "गोष्ठी पूर्णाचार्य्य" जी ने आपको मन्त्र देकर आज्ञा की कि "बड़े यत्न से अन्तःकरण में गुप्त तथा नीके रक्खो"।

जपते ही श्रीभगवान् श्याम सुन्दर श्रीरामचन्द्र ने दर्शन दिये। मन्त्र का यह प्रभाव देख, आप की करुणा का लहर उठा, जीवों पर दया आई, जी में कहा कि सब लोग प्रभु को जिस्से पावें सो मन्त्र सबको सुना देना चाहिये। यों विचारकर, रातके समय गोपुर (फाटक) पर चढ़गए और वहां ही से चिल्लाके मन्त्रोच्चारण किया; अपूर्व ध्वनि छागई॥

यह शिक्षा पा, ७२ बहत्तर सिद्ध होगए। "जिसे चाहे पिया सोती जगावे"॥ प्रत्येक की पद्धति न्यारी न्यारी हुई। यह चोज, यह नई रीति गाने योग्य है कि उधर परहित के लिये आपने श्रीगुरुआज्ञा-उल्लंघन पापभार अपने सीस पर धर लिया, और इधर भाव-ग्राही गुरु तथा भगवान् ने इस्से अपनी अतिशय प्रसन्नता प्रगट की॥

(चौ०) "रहति न प्रभुचित चूक किये की।
करत सुरति सौ बार हिये की॥"

(१३१/८४२) टीका कवित्त।

गए "नीलाचल" जगन्नाथ जू के देखिबे कों, देख्यो अनाचार, सब पंडा दूरि किये हैं। संग लै हजार शिष्य रंग भरि सेवा करैं, धरैं हिये भाव गूढ़ दरसाई दिये हैं। बोले प्रभु "वेई आवैं, करे अंगीकार मैं तो; प्यार ही को लेत, कभूं औगुन न लिये हैं"। तऊ दृढ़ कीनी; फिरि कही, नहीं कान दीनी; लीनी वेद वाणी

विधि कैसे जात छिये हैं ॥ १०८ ॥ (६२९—५२१)

"नीलाचल"=नीलगिरि, उड़ैसा प्रदेश में, जिसपर श्रीजगन्नाथजी का मन्दिर है। "रंगभरि"=प्रेम में पूर्ण होके, पूरी प्रीति से, स्नेह में भरके। "करे"=किये, कर चुके। "नहिं कान दीनी"=ध्यान नहीं दिया, उसके अनुसार चले नहीं। "छिये जात हैं"=क्षय वा नष्ट किये जाते हैं।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन के लिये (उड़ैसा, पुरुषोत्तम पुरी में) एक बेर आप सहस्र शिष्यों सहित गए वहां धोनेमाँजने तथा बरतन चौका आदिक विचार आचार का बड़ा अभाव पण्डों में देखकर, अनाचार को छुड़ाना चाहा; पण्डों को सेवा से अलग करके बड़े प्रेमसे पूजा सेवा करने लगे; महानुभावों के भाव बड़े गूढ़ होते हैं, उनका कहनाही क्या है।

परन्तु सीधे पंडे दुखी हुए।

नेम से अधिक प्रेम के चाहनेवाले प्रभुने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि "मैं पंडोंको अंगीकार कर चुकाहूं मैं कदापि दोषों पर दृष्टि नहीं देता, प्रेम ही को ग्रहण किया करताहूं; वेही लोग आकर सेवा करें"।

तब भी, आप अपने आचार की रीति में दृढ़ही रहे। श्रीजगन्नाथ जी ने पुनः पुनः आज्ञा की, पर आपने एक न सुनी; बरन प्रार्थना की कि प्रभो! देखिये आपकी सेवा-बिधि बेदमें कैसी वर्णित है, भला मैं उन्हें क्यों-कर छोड़सकताहूं॥

(१४०/८४२) टीका कवित्त।

जोरावर भक्त सों बसाइ नहीं, कही किती, रती हूं न लावैं मन चोज दरसायो है। गरुड़ को आज्ञा दई, सोई मानि लई उन, शिष्यनि समेत निज देश छोड़ि आयो है॥ जागि के निहारे, ठौर और ही, मगन भए, दए यों प्रगट करि गूढ़ भाव पायो है। वेई सब सेवा करैं, श्याम मन सदा हरैं, धरैं सांचो प्रेम, हिय प्रभु जू दिखायो है॥ १०१॥ (६२९–५२०)

"ज़ोरावर्"=बलवन्त, बली, प्रबल। "रती"=,रत्ती, एक माशेका १/८ (आठवां) भाग, अति अल्प, कुछ भी नहीं। "किती"=कितनीही।

वार्तिक तिलक।

प्रेमयुक्तनेम का बल भी कैसा भारी है, कि जिस्से स्वयं प्रभु भी हार मान जाते हैं। प्रभुने कितनीही कही, परन्तु आपके प्रेमभरे हृदय में एक भी नलगी।

अन्ततः, श्रीजगन्नाथ जी ने श्रीगरुड़ जी को आज्ञा दी कि "इनको सब सेवकों सहित रात्रिमें श्रीरंगपुरी पहुँचा आओ"। श्रीखगेशजी ने वैसाही किया। नींद टूटी तो अपने सब को श्रीजगन्नाथपुरी में न पाकर श्रीरङ्गधाम में देख के, शीलसंकोचसिन्धु प्रभु के स्वभाव तथा गूढ़ भाव को देख कर, आप प्रेम में डूब गए।

वहां, वेही पंडा लोग फिर सेवापूजा करनेलगे। सेवा के विरहवियोग के अनन्तर जो पुनः सेवाकी प्राप्ति हुई, इस्से उनकी प्रीति दूनी होगई। प्रभु को सदैव अपनी पूजा से अतिही प्रसन्न रखने लगे।

स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी का समय—

	कलि	विक्रमी	ईस्वी	शक	गत वर्ष
जन्म	४११८	१०७४	१०१७	९३९	७६७
परधाम	४२३८	११९४	११३७ *	१०५९	८८७ ‡
वर्त्तमान	५००५	१९६१	१९०४	१८२६	वय १२० वर्ष

"कल्यऽब्देषु प्रयाते ग्रहहव[२]सुनिशा[१]नाथ च[१]न्द्राब्धि[४]-सङ्ख्येष्वायाते पिंगलाब्दे सवितरि च गते मेषराशिं मृगांके ॥ आर्द्रास्थे कान्तिमत्यां हरितकुलमणेः केशवाख्यद्विजाग्र्याच्छ्रीमत्यां भूतपुर्य्यामथ, धरणितले ऽभूत्स रामानुजार्य्यः ॥ १ ॥" ("विष्णुचिन्ह" ग्रन्थे)

‡ आपके जन्म को "आठसौ बर्ष से अधिक (८८७)" हुए।

* ऐतिहासिकतत्त्वबेत्ता "हरप्रसाद शास्त्री एम० ए०" ने भी ११३७ ही (ईस्वी) आपके परधाम का समय लिखा है; Dr. W. W. Hunter M. A. तथा "A.C. Mukerji, M. A.; मुन्शी श्री तपस्वी राम जी, और R. C. Datta; इन सब ही ने "12th. century (ईस्वी बारहवीं शताब्दी)" लिखी है ॥ Dr. W. W. Hunter ने ११३७ की जगह सीधे सीधे ११५० लिख दिया है; केवल १३ वर्ष मात्र का भेद (इतने में), भेद ही क्या ? अपने ग्रन्थों से ११३७ ही ठीक है ॥

श्रीयतीन्द्र जी के यश श्री "प्रपन्नामृत" में देखिये ॥

भाष्यकार सम्प्रदाय शिरोमणि (श्री लक्ष्मीपद्धति) के प्रसिद्धकर्त्ता, संसारसागर के लिये दीर्घनाव, भक्त जनों के कल्पतरु, श्रीभक्ति रूपी भूमिको स्थिर रखने के लिये दिग्गज, भागवतधर्म के प्रचार तथा प्रकाश के हेतु सूर्य्य के समान, स्वामी अनंतश्री यतीन्द्र रामानुज महाराज जी के रूप से श्रीशेष जी, भगवान् की आज्ञा से, पृथ्वी पर द्राविड़ देश में कांचीपुरी के पास श्रीकावेरी गंगा के तट "भूतनगरी" ग्राम में, श्रीहारीत ऋषीश्वर के वंश (गोत्र) में, "श्रीकेशवजज्वा" नामक याज्ञिक ब्राह्मण की धर्म पत्नी "श्रीकांतिमती" जी के गर्भ-से, पिंगल नाम संवत्सर में मेष शंक्रान्ति के पीछे आर्द्रा नक्षत्र में चैत शुक्र पंचमी गुरुवार को, अवतीर्ण हुए। श्रीकेशवजज्वाजी के गुरु श्री "शैलपूर्ण" जी ने आपके संस्कार किये। कांचीपुरी में पंडित यादवगिरि से १६ सोलह वर्ष की अवस्था में वेदांत पढ़ते थे। उसी अवस्था में उनके पिता का बैकुण्ठ बास हुआ।

वहां के राजा की सुता एक ब्रह्मराक्षस से पीड़ित थी; राजा के बुलाने से यादव पंडित, अपने शिष्य श्री १०८ रामानुज जी समेत, वहां गया। ब्रह्मराक्षस ने कहा "तुझसे मैं नहीं जानेका, पर यदि तेरे यह शिष्य श्रीरामानुज जी अपना चरणामृत मुझे दें तो

मैं अभी इसको छोड़दूं"। राजा के विनय से श्री स्वामी जी ने अपना चरणतीर्थ ब्रह्मराक्षस को दिया वह कृतकृत्य हो गया। लड़की सुखी होगई।

इस बात में, और "कप्यास" शब्द के अर्थ निरूपण, में तथा अद्वैतमत के खंडन में आपका महा प्रभाव देख, मत्सर से भर, उक्त पण्डित यादव आपका शत्रु बरन आपके प्राण का गाहक हो गया। वह अपने एक निज शिष्य से सम्मति करके, चुपचाप त्रिबेणी में डुबा देने के निमित्त, आपको तीर्थ यात्रामिसु श्रीप्रयाग जी ले चला।

आपके मौसेरे भाई "गोविन्दजी" भी उसी पण्डित से पढ़ते थे; श्री रामकृपा से इनको उस दुष्ट पण्डित की गुप्त इच्छा जान्ने में आगई; इनने आपको सावधान कर दिया। आप मार्गके एक बन में छुप रहे और श्री "असहायों-के-परम-रक्षक" जी का स्मरण करने लगे॥

करुणासिन्धु भक्तवत्सल श्रीलक्ष्मीनारायण जी ने, व्याधा भिल्ल और भिल्लिनी के वेष से आपके पास उस बन में रातभर रहके आपकी रक्षा की और प्रातःकाल आपके हाथों से एक कूप का जल पीके वे दोनों अन्तर्धान होगए; और आपने अपने को कान्चीपुरी में पाया; श्रीजनरक्षक भगवान् का धन्यबाद कर घर जा, माता के चरणों के दर्शन कर इनसे सारा वृतान्त सुनाया।

श्रीमातु कान्तिमती जी ने उपदेश दिया कि "वत्स! कान्चीपुरी सत्यव्रत क्षेत्र" में श्री "कान्ची पूरण"

नाम वैष्णव महात्मा (श्रीयामुनाचार्य्य जी के शिष्य) श्रीलक्ष्मीनारायण जी के अनन्योपासक हैं। बेटा! तू जाके उनसे मिल सब प्रसंग सुना और महात्माजी जो आज्ञा दें सो करना ॥"

आपने वैसाही किया। श्रीकानूची पूरण जी ने बताया कि "वत्स! वे भिल्लिनी तथा व्याध के वेष में स्वयं श्रीलक्ष्मीनारायणजी थे, जिनने कृपा करके तुझे उस कूपके जलका माहात्म्य लखाया है। इसका आशय यह है कि उस कूप के जल से तू प्रभु की (श्री वरदराजंभगवान् की) सेवा कर, तेरे सकल मनोरथ पूरे होंगे, प्रभु तुझपर विशेष कृपा करेंगे"। यह सुन, आनन्दमग्नहो, धन्यबाद दे, आपने ऐसाही किया।

श्रीआलवन्दारस्तोत्र के कर्त्ता श्रीयामुनाचार्य्य महाराज जी जो श्रीरङ्ग भगवान् की सेवा में उस समय थे, आपको (श्रीरामानुज स्वामी को) बड़े योग्य बालक समझकर अपने एक शिष्य को आपके लाने के लिये भेजा। आज्ञानुसार आप श्रीरङ्ग नगर को चले।

परन्तु आठ दिनके भीतर ही श्रीरंग भगवान् की आज्ञा पा श्री ६ यामुनाचार्य्य स्वामी शरीरत्याग कर परमधामको चले गए। इसकारण यहां आनेपर आपने श्रीस्वामी जी महाराज का दर्शन न पाया; केवल शरीर मात्र को श्रीकावेरी तट पर बड़ी भीड़भाड़ के मध्य देखकर प्रणाम किया। बड़े शोक मग्न हुए।

श्रीस्वामीजी की तीन उङ्गलियां मुड़ी देखकर आपने कहा कि "इसका तात्पर्य्य यदि अमुक तीन बातें हैं, तो अङ्गुलियां खुल जावें"। इस बचन के उच्चारण के साथही तीनों अँगुलियां एक एक करके खुलही तो गईं; और इसी आश्चर्य्य संघट के समय से सब लोग आपका अधिकतर आदर करने लगे॥ वे तीनों बातें ये थीं-

(१) श्रीसंप्रदाय प्रचार।

(२) ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करना।

(३) ईश्वर जीव माया की व्याख्या करनी।

आपने श्री६यामुनाचार्य्य जी के पांच शिष्यों से उपदेश लिये, अर्थात्—

(१)श्रीमहापूर्णजी से, पंच संस्कारयुत श्रीनारायणमन्त्र;

(२)श्रीकाञ्चीपूर्ण जीसे, श्रीवरदराज की सेवा विधि;

(३) श्रीगोष्ठीपूर्णजी से, श्रीराम षड़क्षर मन्त्रराज;

(४) श्रीशैलपूर्णजी से, श्रीरामायण जी के अर्थ;

(५) श्रीमालाधर जी से, सहस्रगीति के अर्थ।

इसके पश्चात विरक्त हो आपने त्रिदंड धारण किया।

(चौ०) "धरे त्रिदण्ड उदण्ड पानि में।
रति अछिन्नजानकी जानि में"॥

आप श्रीरंगनगर में पहुँच, श्रीरंगभगवान् की सेवा में रहने लगे।

यह वार्त्ता तो पूर्व ही लिखी जा चुकी है कि रात

की गोपुर पर चढ़के मन्त्र उच्चस्वर से उच्चारण करके आपने जीवों को कृतार्थ कर दिया॥ (पृष्ट ३८२ पंक्ति २१) श्रीजगन्नाथपुरी का चरित भी ऊपर ही कहा गया है (क०१०८।१०९ पृष्ट ३८५।३८६)

ऊपर के लिखे तीनों कार्य्यों में लगे और पूरा किया।

दिग्विजय में अनेक प्रदेशों को कृतार्थ और लाखों मनुष्यों को श्रीभगवान् के शरणागत कर दिया। आपके अति प्रिय शिष्य "श्री कूरेश जी" ने तथा "पण्डित यादव की माताजी ने भी अपने पुत्र को (उक्त पण्डित को) बहुत कुछ उपदेश किया कि "यतीन्द्र महाराज का शिष्य होजा, नहीं तो तेरा कल्याण नहीं।" तब वह आप का शरणागत हुआ, आपने उसके पंचसंस्कार कर गोविन्द प्रपन्न उनका नाम रक्खा।

बारहसहस्र सेवक साथ रहा करते थे; चौहत्तर वा पचहत्तर तो मुख्य शिष्य थे, जिनसे जगत में शरणागति उपदेश का प्रचार हुआ।

दिल्लीपति यवन के यहां से एक भगवन्मूर्त्ति लाकर आपने विराजमान किया। उस बादशाह की लड़की भी भगवत प्रेमिन होकर परम पद को गई।

एक स्त्रीभक्त विषयी को जिस प्रकार से आपने हरि सम्मुख करके "धनुर्दास" नाम रक्खा, वह चरित्र; तथा, विषयी बनिये को सुमति प्राप्त होने के वृत्तान्त भी, सुन्ने ही योग्य हैं।

आपके सुयश अपार हैं। "प्रपन्नामृत" नामक ग्रंथ में, आपके जन्म से भगवद्धाम यात्रा पर्य्यंत के मुख्य मुख्य चरित्र सब, संक्षेप से, वर्णित हैं। अपने सम्प्रदाय के प्रत्येक मूर्त्ति को अवश्य देखना सुन्ना चाहिये। आप १२० (एकसौ वीस) वर्ष पृथ्वी पर विराजते रहे।

☞ आप कलि सम्वतसर ४२३८, विक्रमी सम्बत् ११९४ (कलियुग की पांचवी सहस्राब्दी में,) अर्थात् विक्रमी ११९४ तक इस भूमि पर वर्त्तमान थे॥ ऐसा महानुभावों ने तथा ऐतिहासिक विज्ञों ने लिखा है॥

श्रीविष्णुस्वामीजी।

श्रीशिव जी ने यह सम्प्रदाय पहिले श्रीप्रेमानन्द (परमानन्द) मुनि जी को उपदेश किया; इसी से यह "शिव (रुद्र) सम्प्रदाय" कहाजाता है। श्री-"परमानन्द मुनि" जी श्री"विष्णुकांची" पुरी में हुए। आप श्रीवरदराज महाराज के मन्दिर में पूजासेवा किया करतेथे। भगवान् श्रीवरदराज प्रसन्न होके श्री-शिव जी को आज्ञा दी, जिनने मन्त्र उपदेश करके (सातवर्ष के) बालक रूप का ध्यान बताया। इस सम्प्रदाय का श्रीविष्णु स्वामी जी ने प्रचार किया, कि जो दक्षिण देश में ब्राह्मणवंश में हुए। इसलिये "विष्णुस्वामी सम्प्रदाय" प्रसिद्ध हुवा॥

परम्परा में आप श्रीवरदराजभगवान् से पचासवें, श्रीशिव जी से ४९ वें, श्रीप्रेमानन्द मुनि से ४८ वें हैं॥

आप के परहित तथा उदार चित्त को समझ श्री जगन्नाथ जी ने अपने मन्दिर में चारद्वार कर दिये॥

श्रीमध्वाचार्य्यजी।

पहिले, भगवत ने यह (माध्व) सम्प्रदाय श्री-ब्रह्मा जी को उपदेश किया।

फिर इस्का प्रचार श्रीमध्वाचार्य्य स्वामीजी से हुआ। श्री मध्वाचार्य्य जी द्राविड़ देश में कांचीपुरी से पश्चिमदक्षिण (नैऋत्य) कोने पर "उरपी कृष्णा" ग्राम में ब्राह्मण हुए। आपने पंजाब देश में राजा को परिचय दे, उस्का अभिमान नष्ट कर, उस्को उस्के दल समेत हरिसम्मुख कर दिया।

श्रीमध्वाचार्य्य
|
श्रीनरहर्य्याचार्य्य
|
सुबुद्धाचार्य्य
|
श्रीवेदव्यास
|
श्रीनारदजी
|
श्रीब्रह्माजी
|
श्रीहंसभगवान्

(१/८ ४/४ १/२) छप्पै।
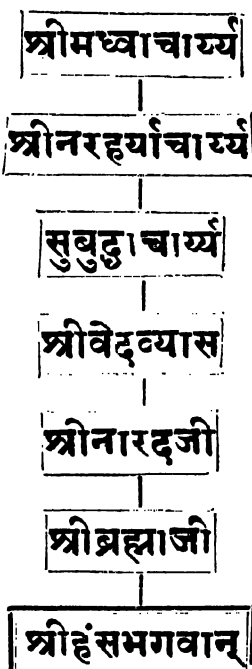
चतुर महन्त

चतुर महंत दिग्गज चतुर, भक्तिभूमिदा-बेरहैं॥ "श्रुति[१] प्रज्ञा" "श्रुति[२] देव" "ऋ-

षभ" "पुह्कर" इभ ऐसे। "श्रुतिधामा[३]" "श्रुति उदधि[४]" "पराजित" "वामन" जैसे॥ श्रीरामानुज गुरुबंधु विदित जगमङ्गलकारी। "शिव संहिता"-प्रणीत ज्ञान सनकादिक सारो॥ इन्दिरा पद्धति उदार धी सभा साखि सारँग कहैं। चतुर महंत दिग्गज चतुर, भक्तिभूमि दाबे रहैं॥२७॥(३२/२१२)

"सारो" = इव, सरिस, नाईं, सरीखा, समान। "इभ" = वारण, करि, सिन्धुर, गयन्द, गज, हस्ती, हाथी। "सारङ्ग" = मत्त गजेन्द्र। पपीहा। भ्रमर। रामगुणगायक। भक्त॥ "इन्दिरा पद्धति" - श्री श्री सम्प्रदाय, श्रीलक्ष्मी जी का मार्ग। "दिग्गज चतुर" - चारो दिशाओं के हाथी, नाम (१) ऋषभ (२) पुहकर (३) पराजित (४) वामन।

१.	श्रुतिप्रज्ञा	ऋषभ
२.	श्रुतिदेव	पुष्कर
३.	श्रुतिधामा	पराजित
४.	श्रुतिउदधि	वामन

वार्तिक तिलक।

चारो महान्त, चारो दिग्गजों की भांति, भक्तिरूपी धरती को दबाए रहते हैं। श्रीश्रुतिप्रज्ञाजी तथा श्री श्रुतिदेव जी, "ऋषभ" और "पुष्कर" नाम के दिशागजों के सरिस हैं; एवं श्रीश्रुतिधामाजी तथा श्रीश्रुतिउदधि जी, "पराजित" और "वामन" सरीखा हैं।

ये चारी महानुभाव, स्वामी अनन्तश्री रामानुज महाराज जी के गुरु भाई जगत के बड़े मंगलकारी और जगत में प्रसिद्ध हैं। शिवसंहिता में जैसा वर्णन है, उसी रीति से सनकादिक चारो भाइयों के समान एकतुल्य ज्ञानी हैं। श्रीलक्ष्मी जी के सम्प्रदाय में अति उदार बुद्धिवाले हैं। सन्त सभा के (पक्षपातरहित) साक्षी सज्जन, इन चारो भक्तिरक्षकों को श्रीरामानुरागमें मत्त गजराज ही कहा करते थे; अतएव अपने भजन सदाचारों से भक्ति रूपी भूमि को ऐसा दबाए रखते हैं कि किंचित डगने डोलने नहीं पाती॥

(१४२/८४२) छप्पै।

(श्री) आचारजजामात की कथा सुनत हरि होइ रति॥ कोउ मालाधारी मृतक बह्यो सरिता में आयो। दाह कृत्य ज्यों बन्धु न्योति सब कुटुँब बुलायो॥ नाक सकोचहिँ विप्र तबहिँ हरिपुर जन आए। जेंवत देखे सबनि, जात काहू नहिँ पाए॥ "लालाचारज" लक्षधा प्रचुर भई महिमा जगति। (श्री) आचारजजामात की कथा सुनत हरि होइ रति॥ २८॥(१३/२१३)

"लक्षधा"=लक्षगुण, लाख गुना। "जामात"=सुता का पति, दामाद, जमाई। "हरिपुर"=बैकुण्ठ। "जगति" लोक में।

श्रीलालाचार्य्यजी।

वार्त्तिक तिलक।

कोई मालाधारी मृतकशरीर नदी में बहता हुआ जा रहा था; श्रीलालाचार्य्य जी ने गुरभाई सरीखा उसकी दाहक्रिया इत्यादि करके, ब्राह्मणों तथा सब कुटुम्बों को न्योता देके बुलाया। भूसुर लोगों ने अनजाने मृतक के भण्डारे को जानकर नाकसिकोड़ भोजन नहीं स्वीकार किया; तब बैकुण्ठ से हरिजन लोग हरिकृपा से आके प्रसाद पाने लगे। उनको जेंवते तो सबों ने देखा परन्तु जाते हुए उनको किसी ने नहीं देखा। इससे श्रीलालाचार्य्यजी का माहात्म्य जगत में लाखों गुना अधिक प्रसिद्ध हो गया। आचार्य्य स्वामी श्रीरामानुज जी महाराज के जामात की यह कथा जो सुनेगा तिसकी श्री भगवत तथा वेषधारी भागवतों में अवश्य प्रीति होगी॥

(१४३/८४२) टीका। कवित्त।

आचारज को जामात, बात ताकी सुनो नीके, पायो उपदेश "सन्त बन्धु करि मानिये। कीजै कोटि गुनी प्रीति," ऐपै न बनति रीति तातें इति करी याते घटती न आनिये॥ मालाधारी साधु तनु सरिता में बह्यो आयो, ल्यायो घर फेरिकै विमान सब जानिये। गावत बजावत लै नीर तीर दाह कियो, हियो दुख पायो सुख पायो समाधानिये॥ ११० ॥ (६२९—५११)

"इति"=मर्यादा, सीमा।

वार्तिक तिलक।

स्वामी श्री१०८ रामानुज जी के जामात श्रीलालाचार्य्य की कथा भली भांति सुनिये। श्रीगुरुमहाराज ने उपदेश किया कि "सन्तों को अपने भाई मानना और भाई से कोटि गुनी प्रीति उनसे करनी" तब श्रीलालाचार्य्य जी ने कहा कि "स्वामिन् आज्ञा तो हुई परन्तु कोटि गुनी प्रीति रीति बनती तो नहीं" तब श्री गुरूस्वामी ने कहा कि, "(ताते) भाई की प्रीति से, सन्तों में न्यून न होने पावै इति।

एक बेर आपने एक मालाधारी मृतक शरीर नदी में बहते हुए पाया। वेष से सन्त जानके उसमें भ्राता तनु का भाव मानके उसे घर ला, विमान पर विठा गाते बजाते फिर उस नदी के तीर ले जाके उसकी दाह क्रिया की।

(१४४/८४२) टीका। कवित्त।

कियो सो महोच्छो, ज्ञाति विप्रन को न्योतो दियो, लियो आए नाहिं कियो शंका दुःखदाइयें। भए एक ठौरे, माया कीनी सब बौरे कछु कहैं बात औरे मरी देह वही आइयें॥ याते नहीं खात, वाकी जानत न जाति, पांति बड़ो उतपात घर ल्याइ जाइ दाहियें। मग अवलोकि उत पस्यो सुनि शोक हिये जिये आइ पूछैं गुरु कैसेके निबाहियें॥ १११॥ (६२९-५१८)

"मायाकीनी"=बखेड़ा गठा, झंझट खड़ा किया, जाल फैलाया। "मग अवलोकि" = बाट हेरके, मार्ग देखके, प्रतीक्षा करके। "लियो"= न्योतो लियो। "कहैं बात और"=दूसरी ही वार्त्ता कहने लगे। "पूछौं गुरु"=श्री गुरु जी से पूछूं। "कैसेकैं?" = किस प्रकार से?

वार्त्तिक तिलक।

इनने अपने भाई सरीखा उसकी तेरहीं का महोत्सव किया; ब्राह्मणों और अपने जातिवर्ग को नेवता दिया; उनने नेवता तो लेलिया, परन्तु आए नहीं; क्योंकि इन महात्मा जी की दुखदेनेवाली शंका उन्हों ने की; और जात्याभिमान रूपी मद से बावरे वे सब इकट्ठे होके और की और ही कहने लगे कि "देखो उसमृतकका शरीर नदी में बहके आया था, उसको घर लाके, घाट पर लेजाके, उसको जलाया, कर्म किया; उसकी जाति पांति कुछ भी जानते नहीं, सो यह बात तो बड़ेही उत्पात की है"। ऐसा गठ के कहा कि "हम सब भोजन नहीं करेंगे"।

श्रीलालाचार्य्य जी ने उनकी प्रतीक्षा की; पर जब वे न आए और उनकी दुष्ट सम्मति सुन्ने में आई, तब आपका हृदय शोकाकुल हुवा। जी में यह बात आई कि चलूं, श्री१०८ गुरुदेव स्वामीसे पूछूं कि अब किस भांति मेरा निर्वाह होवे?

(१४५/८४२) टीका। कवित्त।

चले श्रीआचारज पै वारिज बदन देखि, करि साष्टाङ्ग, बात कहि सो जनाइये। "जाओ निहशंक, वे प्रसाद

को न जानैं रंक; जानैं जे प्रभाव, श्रावैं बेगि सुखदाइये॥"
देखे नभ भूमि द्वार ऐहैं निरधार जन बैकुंठनिवासी
पांति ढिग ह्वैके श्राइये। इन्हैं श्रब जान देवो जनि कछू
कहो श्रहो गहो करी हांसी जब घर जाँइ खाइये ॥११२॥
(६२९—५१७)

"रङ्क" = श्रीभगवद्भक्तिसंपत्ति से हीन, दरिद्री। "अहो"=हे भाइयो!

वार्तिक तिलक।

ये श्रीश्राचार्य्यजीमहाराज (भाष्यकारस्वामी) से प्रार्थना करने को चले; जाके मुखकमल का दर्शन कर सप्रेम सादर साष्टाङ्ग दण्डवत किये; श्रौर वे सब बातें निवेदन कीं। श्रापने श्राज्ञा की कि "उन श्रभागे कँगलों को श्री-भगवत-प्रसाद का माहात्म्य विदित नहीं; (श्लो०) "प्रतिमामन्त्रतीर्थेषु भेषजे बैष्णवे गुरौ। यादृशी भावना यस्य, सिद्धि र्भवति तादृशी॥" तुम निःशंक जाश्रो निश्चिन्त रहो; क्योंकि जो दिव्य महानुभाव श्रीप्रसाद का श्रनुपम प्रभाव जानते हैं, वेही सुखदाई शीघ्र कृपा करके श्रावेंगे"। श्री श्राचार्य्य स्वामी ने इतना कहके श्राकाश की श्रोर देख के फिर भूमि को देखा। तात्पर्य्य यह कि बैकुण्ठवासी पार्षदों का ध्यान स्मरण करके श्राकाश के श्रोर देख के मही में श्रावाहन किया। फिर कहा कि "जावो श्रीबैकुण्ठनिवासी भगवतजन नभमार्ग से निराधार उतरके तुम्हारे द्वार होके गृह में श्रावेंगे।"

ऐसी आज्ञा सुन शिरपर धारण कर साष्टाङ्ग करके अपने गृह में आए। उसी समय श्रीबैकुण्ठनिबासी जनों की पंक्ति उन विमुखों के निकट होके श्रीलालाचार्य्य जी के गृह में आई। वे अभक्त लोग देखके परस्पर कहनेलगे कि "हे भाइयो! अभी इन सबों को जाने दो, कुछ कहो मत, फिर जब भोजन करके अपने घर जाने लगैं तब पकड़ के अपने समीप बिठा के अच्छे प्रकार हांसी निन्दा करो" ॥

[१/८ ४/४ ६/२) टीका। कवित्त।

आए देखि पारषद्, गयो गिरि भूमि सद, हद करी कृपा यह, जानि निज जन को। पायो लै प्रसाद स्वाद कहि अहलाद भयो, नयो लयो मोद जान्यो सांचो सन्त पन को ॥ विदा ह्वै पधारे नभ, मग में सिधारे; विप्र देखत विचारे द्वार, व्यथा भई मन को। गयो अभिमान आनि मन्दिर मगन भए नए द्रुग लाज; बीनि बीनि लेत कनको ॥ ११३ ॥ (६२९—५१६)

"सद"=सज्जन, (श्रीलालाचार्य्य जी) "हद"= हति॥

वार्तिक तिलक।

श्रीलालाचार्य्य जी ने अपने गृह में श्रीभगवतपार्षदों को आए देख भूमि में गिर के, साष्टाङ्ग दण्डवत किये, और हाथ जोड़ आप कहने लगे कि "आप सबों ने इस दीन को अपना जन जान के इसके ऊपर निःसीम कृपा की"।

पार्षदों ने प्रसाद लेके पाया (भोजन किया), और उसके स्वाद का बखान कर कर श्रीलालाचार्य्य जी को बड़ाही आनन्द दिया; इनने ऐसा यह मोद प्रमोद पाया कि जो अपूर्व था और पहिले कभी भी प्राप्त न हुआ था। तब भली भांति जाना कि सन्तों का प्रण कैसा सच्चा होता है।

सर्वज्ञ श्रीपार्षदवृन्द विदा होके आकाशमार्गसे चले ब्राह्मण लोग मग में द्वार पर खड़े खड़े देखतेही रहे। जब जाना कि वे तो आकाश मार्ग से लौटे चले जा रहे हैं, बैकुण्ठसे आए थे, तब उन सबों के मन में बड़ाही पश्चात्ताप हुआ; अब उनका जात्यभिमान गया। और आखें नीची हुईं, नम्र तथा लज्जित हुए, और श्रीलालाचार्य्यजी के गृह में आके प्रेमानन्द में मग्न भी हुए।

अवशिष्ट प्रसाद के कण, जो भूमि में गिरे पड़े थे, उनको चुनचुन के पाने लगे॥

[१४७/८४२] टीका। कवित।

पाइ लपटाइ अंग धूरि में लुटाए कहैं "करी मन भायो," और दीन बहु भाष्यो है। कही भक्तराज "तुम कृपा मैं समाज पायो, गायो जो पुराणन में रूप नैन चाख्यो है"॥ छाड़ो उपहास अब करो निज दास हमैं, पूजे हिए आस मन अति अभिलाष्यो है। किये परशंस मानो हंस ये परम कोऊ ऐसे जस लाख भांति घर घर राख्यो है॥ ११४॥ (६२९—५१५)

वार्त्तिक तिलक।

वे ब्राह्मण श्रीलालाचार्य जी के चरण कमलों में लपट गए, वहां की धूरि में लोटने लगे, और यों बोले कि "आप महात्मा हैं जिस प्रकार से हम आपको प्रिय लगें सो वैसा कीजिये, अर्थात् शिष्य करके भगवद्भक्त कीजिये"। इसी प्रकार से बहुत सी दीनता पूर्वक बातें कहीं। श्रीभक्तराज (लालाचार्य्य) जी ने कहा कि "आपही के न आने से तो इस दिव्य समाज की सेवा का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ; अतः आपकी कृपा का मैं धन्यवाद करताहूं कि जिस्से मैंने उन भगवतपार्षदों के रूप के दर्शन पाए कि जिनका पुराणों में बखान सुना था।"

तब उन विप्रों ने पुनः प्रार्थना की कि "अब आप हमारी हँसी तो कीजिये नहीं; बरन दया करके हम को अपना दास बना लीजिये। हम सबों के मन की यह अति अभिलाषा पूर्ण कीजिये"। तब श्री लालाचार्य्य जी ने सबों को श्रीमंत्र तिलक आदिक पंचसंस्कार करके लोक बेद में परमप्रशंसनीय हंसों के समान बेष तथा बिबेक युक्त कर दिया। इत्यादि। इसी प्रकार श्रीलालाचार्य्य जी के यश, लक्ष बिधि के, देश में घर घर सब कोई मन में तथा मुख में भी, रक्खे अर्थात् गान किए॥

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी।

आप ब्राह्मण थे; लड़कपन सेही बड़े वैरागी तथा नामानुरागी रहे, और अपने मन में वैष्णवों में जाति भेद नहीं रखते थे। आप देशों में विचरके भगवन्नाम का उपदेश किया करते तथा भक्ति ही को भारी आचार समझते थे। नीलाचल के मार्ग में एक अति प्रेमी श्वपच को साष्टाङ्ग करते पाके उठाकर उसको अपने हृदय में लगा लिया और अपने पट से उसके अंग की धूरी झाड़ डाली। उसके हाथों में महाप्रसाद था सो लेके सादर पागए। रात भर उस प्रेमी श्वपच को अपने साथ रखके सबेरे अतिशयआदर-पूर्वक विदा किया। श्रीजगदीश दर्शन कर, सुयशभाजन रहे, और परधाम को गए॥

श्रीश्रुतिदेव जी।

आप बहुतसे सन्तों का समाज साथ में लिये, श्री रामनाम कीर्त्तनपूर्वक विचरते, और सब लोगों को कृतार्थ किया करते थे। एक समय एक अभक्त राजा के नगर में पहुँचे जहां कोई नदी तालाब नहीं, केवल वापी तथा कूएं ही राजबाटिकाओं में थे।

जब साधु लोग उपवन के कूपों में स्नान करने गए, मालियों ने उनको रोक दिया। सन्त दुखी हो स्वामी जी से कष्ट निवेदन करने लगे। आपने कहा कि बिना

स्नानही नामकीर्त्तन कर लो और तब इस नगर को छोड़ चलो। यह आज्ञा सुन इधर सन्त हरिभजन में लगे, उधर कूपों तथा वापियों में जल ही नहीं। मालियों ने जाके राजा से सब वार्त्ता सुनाई; नरेश ने मन्त्रियों से पूछा; सचिव लोगों ने पूछपाछ बूझ-विचार कर निवेदन किया कि "महाराज! यहां साधु-समाज आया है, सन्तों की ही कृपासे यह जलाभाव-का-कष्ट जा सकेगा, इस समाज के मुखिया श्रीश्रुति-देव नाम महात्मा हैं, उन्हीं से प्रार्थना करनी चाहिये"। ऐसाही किया गया।

सब प्रजाओं सहित राजा श्रीस्वामी जी के शरणागत हो कृतार्थ हुए। स्वामीजी महाराज उस देश को हरिभक्त बनाकर दूसरी ओर चले। ऐसे ऐसे चरित्र आपके अनेक हैं॥

श्रीश्रुतिधामजी।

आप परमोदार थे और भगवत तथा भगवद्भक्तों में अभेद बुद्धि रखतेथे; भेष (ऊर्द्ध पुण्ड्र, कंठी, माला, छाप) की महिमा भली भांति जानते मानते थे। आपके गुणों की गिन्ती कौन कर सके? एक समय साधुसमाज सहित श्रीप्रयागजी जा स्नान कर त्रिवेणी पर हरि कथा कहरहे थे; एक सन्त ने पूछा कि "महाराज इस संगम पर श्रीसरस्वति जी का नामही मात्र तो सुना जाता है देखने में तो आतीं ही नहीं" आप यह

सुन ध्यान में मग्न हो गए; शीघ्रही सबों ने देखा कि श्रीस्वेत गंगाधार, श्रीश्यामयमुनाधार के बीच तेज मय अरुणाधार श्रीसरस्वती जी का भी वहीं दर्शनीय है। मकर के वासी दौड़के स्नान करने लगे। सन्तों ने स्वामी जी से निवेदन कियां; आप भी उठ प्रणाम कर साधुओं सहित स्नान करने लगे। ऐसे अनेक सुयशों के साथ आप जगत में प्रसिद्ध रहे।

श्रीअतिउदधिजी।

सब सद्गुणों के समुद्र एक दिन श्रीगंगा जी की ओर जाते थे मार्ग में एक राजा की बाटिका में रात्रि-निवास किया। उस रात को राजा के भवन में चोरी हुई; चोरोंने भागके उसी उपवन में आपको ध्यान में पा, एक माला पहिरादी। कोतवाल के भटों ने उन्हें देखा; वे आपको पकड़ ले गए; राजाने बन्दीघर में भेजदिया, तब शीघ्र ही नरेश सीसकीपीड़ा से व्याकुलहुआ, किसीप्रकार न छूटी, तब सचिव के कहने से राजा त्राहि त्राहि कर आपके चरणोंपर गिरा। आप ने तब आखें खोलीं और सारा समाचार सुना। राजा को पीड़ा-रहित कर, श्री राममन्त्र दे, कृतार्थ किया।

कहां तक आपके यश गाए जासकें॥

ये चारो महात्मा गुरुभाई हैं। पृष्ट ३९५ देखिये॥

[१४८/८४२] छप्पै।

श्रीमारग उपदेश कृति श्रवण सुनौ आख्यान शुचि॥ गुरु गमन कियो परदेश, शिष्य सुरधुनि दृढ़ाई। इक मंजन इक पान एक हृदय बन्दना कराई॥ गुरु गंगा में प्रविशि शिष्य को बेगि बुलायो। बिष्णुपदी भय जान, कमल पत्रन पर धायो॥ "पादपद्म" ता दिन प्रगट, सब प्रसन्न मन परम रुचि। श्रीमारग उपदेश कृति श्रवण सुनौ आख्यान शुचि॥ २९॥ (३४/२१३)

वार्त्तिक तिलक।

गुरु, और शिष्य (पादपद्म जी)।

एक और श्रीसम्प्रदायवाले भागवत का पवित्र वृत्तान्त सुनिये। इनके गुरु परदेश चले; इनको श्रीगंगा जी में गुरु का भाव दृढ़ रखनेकेलिये उपदेश दिया; इनने श्रीगुरु आज्ञा को हृदय में दृढ़ धारण कर लिया। तब कोई शिष्य स्नान किया करें, कोई पान किया करें; परन्तु ये गुरुभक्त जी तो केवल हृदय से ही बन्दन प्रणाम मात्र करते थे। जब श्रीगुरु जी आए, शिष्यों से सब बातें सुनीं, तब इनकी भक्तिमहिमा प्रगट करने के हेतु श्रीगंगाजीमें जलके भीतर जाके वहीं शिष्य

को (इनको) शीघ्र बुलाया; इनने श्रीविष्णुपदी (गंगा) जी के जलपर अपना चरण रखने में संकोच किया; श्रीरामकृपासे जलमें कमल के पत्तों पर पांव धरते दौड़ते हुए जा पहुँचे। उसी दिन से आपका नाम "पादपद्म" जी हुआ; सब बड़े प्रसन्न हुए और श्रीगंगा जी में तथा इन महात्मा में सब की भारी श्रद्धा हुई॥

[१२९/८४२] टीका । कवित्त ।

देवधुनीतीर सो कुटीर, बहु साधु रहैं, रहै गुरुभक्त एक, न्यारो नहिं ह्वै सकै। चले प्रभु गांव "जिनि तजो बलि जांव" करी कही दास सेवा गंगा में ही कैसे छ्वै सकै॥ क्रिया सब कूप करै, विष्णुपदी ध्यान धरै; रोषभरे सन्त ओखी भाव नहीं भै सकै। आए ईश जानि दुखमानि सो बखान कियो आनि मन जानि बात अंग कैसे ध्वै सकै॥ ११५॥ (६२९–५१४)

वार्त्तिक तिलक ।

इनके गुरु की कुटी श्रीगंगा जी के तट पर थी; उसमें बहुत सन्त रहा करते थे साधु सेवा हुआ करती थी। ये बड़े गुरुभक्त थे, और श्री गुरुचरणकमल से कभी अलग नहीं रह सकते थे। एक समय गुरु महाराज किसी ग्राम को चले; इनने प्रार्थना की कि "कृपासिंधे! इस दास को मत छोड़िये मैं आप की बलिहारी जाऊं"। श्रीगुरुमहाराज ने बड़ाई की और आज्ञा दी कि "तुम यहां ही रहो, भगवद्दासों की सेवा करो, तथा

श्रीगंगा जी को मेरा स्वरूप ही मानो, उनमें गुरु भाव रक्खो"। आप यह आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सके; और मन में विचार किया कि "श्रीसुरसरि जी में अपने चरणों का स्परस क्योंकर होने दूं" इसीसे श्रीगंगा जी में स्नान तक भी नहीं करते थे, शरीर की सब क्रिया स्नानादिक कूपजल से ही किया करते थे, और श्रीसुरसरि जी को श्रीगुरुरूप मानके प्रणाम और हृदय में ही ध्यान धरते थे। प्रायः सन्त इनपर रोष रखते क्योंकि इनके हृदयके भावको वेलोग पहुंच (जान) नहीं सकते थे। जब श्रीगुरुजी आए, तब सब दुखित हो उन सब ने इनके गंगास्नान न करने की वार्ता कही। स्वामीजी बातके मर्मको समझ गए कि इसने सच्चा गुरुभाव रखकर यह सकोच किया होगा कि श्रीगंगा जीमें अपना अपावन शरीर कैसे धोऊं पदस्पर्श कैसेकरूं॥

[५९०] टीका। । कवित्त।

चले लेके न्हान संग, गंग में प्रवेश कियो, रंग भरि बोले सो "अंगोछा बेगि ल्याइये"। करत बिचार शोच सागर न वारा पार, गंगा जू प्रगट कह्यो "कंजन पर आइये"॥ चले ई अधर पग धरै सो मधुर जाइ प्रभु हाथ दियो, लियो, तीर भीर छाइये। निकसत धाइ चाइ पाइ लपटाइ गए, बड़ो परताप यह निशि दिन गाइये ॥ ११६ ॥ (६२९—५१३)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरुजी इनको साथ लेके, (इनकीभक्तिमहिमा को प्रगट करने के निमित्त,) श्रीगंगा स्नान को चले; श्रीगंगाजल के भीतर गए और अत्यन्त प्रेम में पगके शिष्य को (इनको) आज्ञा की कि "मेरी अँगोछा शीघ्र लाकेदो"। ये बड़ेही अपार शोच विचार में पड़े कि इत तो श्रीगंगा जी उत श्रीगुरुजी और दोनों ही में इनकी भावभक्ति अपूर्व ठहरी; अपार असमंजस में पड़े। इतने में तुरन्त ही श्रीगंगाजी इनको प्रगट देखपड़ीं और कृपा करके बोलीं कि "यह देखो तुम्हारे पाससे गुरु जी के समीप तक कमल के पत्ते प्रगट हो गए, तुम निस्सन्देह इन्ही पत्तों ही पर पांव रखते हुए बे-खटके चले आओ"।

आज्ञानुसार ये अधर पर अर्थात् उन्हींकमलपत्रों पर पांव रखते हुए दौड़े और वहां पहुंचके श्रीगुरुकरकंज में अँगोछा दी, और आपने आनन्द पूर्वक उसको लिया। यह परिचय, यह आश्चर्य्य, यह गुरुभक्ति माहात्म्य, यह श्रीगंगाजी की कृपा! देखने के लिये तट पर भारी भीड़ एकट्ठी हो गई। जों ही ये तीर पर लौटे, लोग दौड़दौड़के इनके चरणों में लपटलपट गए; और इस महत प्रताप को उस दिनसे सब लोग दिनरात गान करते रहे॥

[१५१/८४२] छप्पै।

श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसस्यो॥ "देवाचारज" द्वितीय महा महिमा "हरियानँद"। तस्य "राघवानन्द" भए भक्तन को मानँद॥ पत्रावलम्ब पृथिवी करी व काशी स्थाई। चारि बरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाई। तिनके "रामानँद" प्रगट, विश्व मंगल जिन्ह वपु धस्यो। श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसस्यो॥ ३०॥ (३५/२१३)

[१५२/८४२] छप्पै।

श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥ अनन्तानन्द[१], कबीर[२], सुखा[३], सुरसुरा[४], पद्मावति[५] नरहरि[६]। पीपा[७], भावानन्द[८], रैदास[९], धना[१०] सेना[११], सुरसुर की[१२] घरहरि॥ औरौ शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर। विश्वमंगल आधार सर्वानँद दशधा के आगर॥ बहुत काल बपुधारिकै, प्रणत

जनन कौं पार दियो। श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥ ३१ ॥ (३१/२१२)

"करीव"=करीब, समीप; करके। "करी"=किया। "व"=और। "वपुधर्यो"=देह धरी, अवतीर्ण हुए, प्रगटे, अवतारलिया।

"द्वितीय"=अर्थात, प्रथम महामहिमायुक्त श्री६ देवाचार्य्य (देवाधिपाचार्य्य), और, द्वितीय महामहिमा-से-युक्त श्री१०८ हरियानन्द स्वामी।

वार्त्तिक तिलक।

अनन्त श्री रामानुज स्वामी के संप्रदाय का अमृत रूपी प्रताप भूमंडल में शिष्य प्रशिष्यादि द्वारा, जीवों के मरणादि दुःखों को नाश करता हुआ अतिशय फैल गया और फैलताही जाता है; तात्पर्य्य यह है कि जो कि श्रीरामानुज स्वामी जी को, प्रथम छप्पै में, "उदारसुधानिधि" कह आए सोई अब दिखाते हैं।

स्वामीअनन्तश्री रामानुजजी की "७४ गादियां" जो विख्यात हैं, उनमें मुख्यगादी श्री ६ देवाचार्य्य (देवाधिपाचार्य्य) जी की है; आपके अनेक शिष्यों प्रशिष्यों के नाम, ग्रन्थ विस्तृत होने के कारण, प्रगट न करके ग्रन्थकार स्वामी ने इस छप्पै में गुरुपरंपरा में से केवल "महामहिमा युक्त" दोनों महानुभावों के ही नाम लिखे; अर्थात् (१) श्री ६ देवाचार्य्य स्वामी जी महाराज, (२) तथा श्री ६ हर्यानन्दाचार्य्य =प्रबोधानन्द=रघ्यानन्द) स्वामी जी।

सो, बीच के भी शिष्यों प्रशिष्यों के नाम लिखे जाते हैं—

श्रीराममंत्र-गुरु-परंपरा में, जो जो बड़े प्रतापी हुए, अब उनके नाम कहते हैं—

(श्लो०) लक्ष्मी नाथ समारम्भां नाथयामुन मध्यमाम्।
अस्मदाचार्य्य पर्य्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम्॥ १॥

श्रीरामानुज स्वामी[१] जी के मुख्य दो शिष्य हुए श्रीकुरेश (कुरुतारक, श्रीकुरुकेश) स्वामी जी तथा श्रीगोविन्दाचार्य्य[२] जी; *

उन के शिष्य श्रीपराशर[३] भट्ट जी, तिनके शिष्य श्रीलोकाचार्य्य[४] जी: उनके शिष्य महा महिमा से युक्त श्रीदेवाचार्य्य[५] (देवाधिपा चार्य्य) जी; उनके श्रीशैलेशाचार्य्य[६] जी; उनके श्रीबरबर मुनि[७] जी; उनके श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्य[८] जी; उनके श्री गङ्गाधर[९] जी; उनके श्रीसदाचार्य्य[१०] जी; उनके श्रीरामेश्वराचार्य्य[११] जी; उनके श्रीद्वारानन्द[१२] जी; उनके श्रीदेवानन्द[१३] जी; उनके श्रीश्यामानन्द[१४] जी; उनके श्री श्रुतानन्द[१५] जी; उनके श्रीचिदानन्द[१६] जी; उनके श्रीपूर्णानन्द[१७] जी; उनके श्री श्रियानन्द[१८] जी; और, इनके शिष्य महामहिमा से युक्त श्री१०८ हरिय्यानन्द (हर्य्यानन्दा चार्य्य) स्वामी जी।

* श्रीगोविन्दाचार्य्य जी प्रथम गृहस्थाश्रम में श्रीशैलपूर्णस्वामी के शिष्य थे परन्तु श्रीरामानुजस्वामी जी से त्रिदण्ड सन्यास ग्रहण करके विरक्त शिष्य हुए॥ श्री १०८ अग्र स्वामी जी की "रहस्य त्रय" की जो संस्कृत टीका १९३५ में श्रीकाशी जी में छपी है उससे भी यह परम्परा ठीक ठीक मिलती है॥

१. श्री १०८ स्वामी जी
२. {श्रीकुरेशजी / श्रीगोविन्दाचार्य्यजी}
३. श्रीपराशरभट्टजी
४. श्रीलोकाचार्य्य जी
५. श्री देवाधिपाचार्य्य जी
६. श्रीशैलेशाचार्य्यजी
७. श्रीबरबर मुनिजी
८. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्य जी
९. श्रीगङ्गाधर जी
१०. श्रीसदाचार्य्य जी
११. श्रीरामेश्वराचार्य्य जी
१२. श्रीद्वारानन्द जी
१३. श्रीदेवानन्दजी
१४. श्रीश्यामानन्द जी
१५. श्रीश्रुतानन्द जी
१६. श्रीचिदानन्द जी
१७. श्रीपूर्णानन्द जी
१८. श्रीश्रियानन्द जी
१९. श्रीहर्य्यानन्द जी
२०. श्री १०८ राघवानन्दाचार्य्य स्वामी जी
२१. अनन्तश्रीभगवान् रामानन्द जी

स्वामी अनन्तश्री रामानन्द जी।

(श्लोक) नम आचार्य्यवर्य्याय रामानन्दाय धी मते।
मोक्षमार्गप्रकाशाय चतुर्वर्गप्रदाय च ॥१॥

महामहिमा से युक्त श्री हर्य्यानन्दाचार्य्य [१९] स्वामी, उनके शिष्य समस्त भगवद्भक्तों के मानदेनेवाले श्री १०८ राघवानन्दाचार्य्य [२०] जी; जो, पहिले, बैष्णवों के वृन्द साथ लेके, भरत खण्ड की संपूर्ण पृथ्वी में विचरके, भगवत विमुखों को जीत, अपने विजयपत्र के अवलम्ब में भूमि को करके, काशी जी में स्थिर विराजमान हुए; और चारो वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र,) तथा चारो आश्रमी (ब्रह्मचारी, गृहस्थ,

बानप्रस्थ तपस्वी, संन्यासी) इन सबों को उत्तम उपदेश देकर श्रीराम भक्ति में दृढ़ स्थित कर दिया।

इन्हीं श्रीराघवानन्द[२०] स्वामी जी के शिष्य, साक्षात् श्रीरामराघव जी आपही, श्रीरामानन्द[२१] रूप से प्रगट हुए, कि जो बिश्व (संसार) भर के मङ्गल की मूर्त्ति ही हैं, अर्थात् सब संसार के जीवों का जिनने मङ्गल किया।

इस प्रकार श्री१०८रामानुज की "पद्धति"(शुभमार्ग) का प्रताप, भूमि मण्डल में अमृत रूप हो के फैल रहा और फैलता जाता है।

श्रीरामानन्द स्वामी जी ने श्री रघुनाथ जी की नांईं, संसार रूपी समुद्र में, जगत के जीवों को उतर जाने के हेतु, दूसरा सेतु (पुल) बांध दिया। तात्पर्य यह है कि जैसा अद्भुत जगत्समुद्र था उसी प्रकार का अद्भुत सेतु भी बनाया। आपके मुख्य शिष्य सोई दृढ़ खंभे हुए, और पौत्रशिष्य, ("प्रशिष्य") प्रपौत्रादिशिष्यगण, सोई इस सेतु के सर्बाङ्ग हुए।

"बहुतकाल" पर्य्यन्त शरीर को धारण करके, आप ने "प्रणत" (शरणागत) जन समूहों को श्रीरामतारक रूपी सेतु पर चढ़ा के, संसार सागर के पार उतार, श्रीरामधाम में निवास दिये॥

भवसिन्धुसेतु के खंभे रूपीउन मुख्य शिष्यों के नाम—

(ज्येष्ठ) श्री अनन्तानन्द[१] जी; श्रीकबीर[२] जी, श्रीसु-

खानन्द[3]जी, श्रीसुरसुरानन्द[4]जी, श्रीपद्मावती[5]जी, श्री नरहरियानन्द[6]जी, श्री पीपा[7]जी, श्रीभावानन्द[8]जी, श्रीरमादास (श्रीरैदास[9]जी), श्रीधना[10]जी, श्रीसेना[11]जी, श्रीसुरसुरानन्द-जी-की-स्त्री "सुरसरी"[12]जी।

और भी शिष्य अर्थात् श्रीगालवानन्द[13]जी; और प्रशिष्य श्रीयोगानन्द[14]जी, जिन सबों के नाम भी श्रीनाभास्वामी जी आपही आगे कहेंगे; जो श्रीरामप्रेम प्रकाश-युक्त एक से एक अधिक चढ़ बढ़ के हुए। विश्वके मङ्गल करने-वाले जो श्रीरामानन्द स्वामी तिन की कृपा का आधार पा के सब "आनन्द" युक्त नामवाले श्रीअनन्तानन्दादि शिष्य, परमानन्दरूपा (दशधा) प्रेमा पराभक्ति के स्थान, श्रीरामभक्ताग्रगण्य परमप्रवीण हुए॥

(श्लो०) राघवानन्द एतस्य रामानन्दस्ततो ऽभवत्। सा-
र्द्धद्वादशशिष्याः स्युः श्रीरामानन्दसद्गुरोः ॥१५॥
द्वादशादित्यसंकाशास्संसारतिमिरापहाः ।
श्रीमदनन्तानन्द[1]स्तु सुरसुरानन्द[2] स्तथा ॥१६॥
नरहरियानन्द[3]स्तु योगानन्द[4]स्तथैवच ।
सुखा[5]भावा[6]गालवं[7] च सप्रीते नाम नन्दनाः॥१७॥
कबीर[8]श्च रमादासः[9]सेना[10] पीपा[11]धना[12]स्तथा।
पद्मावती१२½ तदर्द्धं च षड़ेते च जितेन्द्रियाः॥१८॥
येषां शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याप्ता भारतभारती ॥"

श्री १०८ अग्रस्वामी कृत "रहस्य त्रय" की संस्कृत टीका, (श्री काशी १९३५ की छपी), के ये साढ़े चार श्लोक हैं॥

[१] श्रीअनन्तानन्दजी। ["सिद्ध परमप्रेमी रघुनाथा।
सियजू हाथ धरे जिन्ह माथा॥"]

[२] श्री१०८ सुरसुरानन्दजी। ["सन्तप्रसाद प्रभाव विद, प्रथमहि पाए स्वाद। सोइ याहू तन सत करी, महिमा महाप्रसाद॥"]

[३] श्रीसुखानन्दजी। ["आचारज गुरु भक्ति निधाना।
निरत मन्त्र मन्त्रार्थ बिधाना॥"]

[४] श्रीनरहरियानन्द जी। ["रामभक्त कुल कैरव चन्दा॥"]

[५] श्री६ पीपा जी। ["जगत विदित सियराम पद, पीपा प्रेम प्रताप। लगी भागवतभुजन महँ, जिन्ह की लाई छाप॥"]

[६] श्रीकबीरजी। ["छाके राम नाम रस स्वादा॥"]

[७] श्रीपद्मावति जी।

[८] श्रीभावानन्दजी। ["निरत रामसेवा मतिमाना।
गूढ़ प्रेम विश्राम निधाना॥"]

[९] श्रीसेनाजी। ["सदा सन्तसेवा मति पागी।
भक्तियोग युत अति बड़ भागी॥"]

[१०] श्रीधना जी। ["सुमति सन्तसेवा लयलीना।
सदाचार गुरु- भक्त प्रवीना॥"]

[११] श्रीरैदास जी। ["रमादास शासन मति दासी। सदा भागवत धर्म प्रकासी॥ निःकिंचन उदार गुरु सेवी। भाविक राम तत्त्व को भेवी॥"]

[१२] देवी श्रीसुरसरी जी श्रीसुरसुरानन्दजी की स्त्री। ["विषयविगत रघुबर रति सानी। गुरपदभक्ता तन मन बानी॥ परम पुरुष गुनि राम बिहारी। और सबै जग जान्यो नारी"]

[१३] श्रीगालवानन्द जी। ["उपदेशक वेदान्त वित,
योगी रतरघुनन्द।"] यह नाम इस छप्पै में नहीं है॥

[१४] श्रीयोगानन्द जी। ["योग निधान निरत रघुराई॥"]

☞ श्रीयोगानन्दजी श्रीअनन्तानन्द जी के शिष्य हैं॥

गिनती	जिस ने अवतार लिया	जिस नाम से मृत्युलोक में ख्यात हैं	जन्म समय						
			महीना	पक्ष	तिथि	दिन	लग्न	नक्षत्र	योग
१	विधाता	श्रीअनन्तानन्द	कार्त्तिक	शुक्ल	१५	शनि	धन	कृत्तिका	
२	शिवशंभु	सुखानन्द	वैसाख	शुक्ल	६	शुक्र	तुला	सतभिषा	
३	श्री नारद	श्रीसुरसुरानन्द	वैसाख	कृष्ण	६	गुरु	वृष		
४	सनत्कुमार	नरहरियानन्द	वैसाख	कृष्ण	३	शुक्र	मेष	अनुराधा	व्यतीपात
५	मनु	पीपा	चैत्र	शुक्ल	१५	बुध	धन	उत्तरा-फालगुणी	
६	प्रह्लाद	कबीर	चैत्र	कृष्ण	८	मंगल	सिंह	मृगसिरा	शोभन

७	श्रीजनक	भावानन्द	बैसाख	कृष्णा	६	चन्द्र	कर्क	मूल
८	भीष्म	सेना	माधव	कृष्णा	१२	रवि	तुला	पूर्वा
९	बलि	धना	माधव	कृष्णा	८	शनि	वृश्चिक	पूर्वाषाढ़
१०	यमराज	रमादास (रैदास)	चैत्र	शुक्ल	२	शुक्र	मेष	चित्रा
११	श्रीपद्मा	पद्मावती	चैत्र	शुक्ल	१३	गुरु	कर्क	उत्तराफा०
१२	...	सुरसरी	...	...	...	...	...	...
(१३)	शुकदेव	गालवानन्द	चैत्र	कृष्णा	११	सोम	धन	धनिष्ठा
(१४)	कपिल	योगानन्द*	बैसाख	कृष्णा	७	बुध	कर्क	मूल

* श्रीयोगानन्द जी श्री पौत्र शिष्य हैं अर्थात् श्री अनन्तानन्द जी के शिष्य हैं॥

(कवित) प्रगट प्रयाग भाग कश्यप ज्यों भूसुर के सातैं माघकृष्णा मारतण्ड से अरामी हैं। काशी-से-अ्रकाश में प्रकाश सुखरास किए, बारहो सु शिष्य मानों कला[१२] तेजधामी हैं। कलि-की-कुचाल-निशा खण्डे हैं पखंड-तम, दुरिगे अभक्त चोर पंथ-घोर बामी हैं। फैल्यो बेष घाम, धाम धाम सन्त कंज खिले "मणीरसरङ्ग" रवि रामानन्द स्वामी हैं॥ १॥

स्वामी श्री१०८ रामानन्द जी दयालु श्रीप्रयागराज में कश्यप जी के समान भगवद्धर्मयुक्त बड़भागी कान्य-कुब्ज ब्राह्मण "पुण्यसदन" के गृह में, बिक्रमीय सम्बत् १३५६ के माघ कृष्णा सप्तमी तिथि में, सूर्य्य के समान सबों के सुखदाता, सात दण्ड दिन चढ़े चित्रा नक्षत्र सिद्ध योग कुम्भ लग्न में गुरुबार को, "श्रीसुशीला देवी" जी से प्रगट हुए।

(दो०)चारि सहस शतचारि भी, गत कलिकाल मलीन।
तेहि अवसर नर लोक हरि, निवसनहित चित दीन॥

कलियुग के ४४०० बर्ष गतहो चुकने के अनन्तर—

बिक्रमी	शाके	ईस्वी	कलि
†१३५६	१२२२	१३००*	४४००

*Dr. W. W. Hunter, M. A. और A. C. Mukerji M. A. B. L. ने भी यही लिखा है।

† और श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय ने भी सम्बत् १३५६ ही लिखे हैं।

(श्लो०) "रामानन्दमहामुनिस्समभवद्रागेषु रामा-वनी (१३५६) युक्ते विक्रमवत्सरे घटतनौ माघासिते त्व।ष्ठभे॥ सप्तम्यां गुरुवासरे युजितथासिद्धौ प्रयागा-श्रमाच्छ्रीमद्भूसुरराज पुण्यसदनाद्रामावतारः कृती"॥

(चौ०) विमल सलिल, निर्मल नभ आसा। शुचि सन्तन मन मोद हुलासा॥ प्रगटे रवि इव करुणाकन्दा सन्तसरोजन प्रद-आनन्दा॥ (छ०) अवतरे परेशा मनहुं दिनेशा सुत द्विजेश तनुधारी। पूजित शिव-शेषा शुभ उपदेशा तारकमन्त्र प्रचारी॥ कलिकलुष विनाशी प्रेमप्रकाशी सुखराशी दुखहारी। प्रभुइच्छा-चारी स्ववश विहारी जगजीवन उपकारी॥ रक्षक श्रुतिसेतू सतकुलकेतू बन्दित सदा अमानं। निगमादि-सुगीतं चरित पुनीतं भवभय शमन निदानं॥ सेवितवरचरणं चातुरवरणं शरणदकृपानिधानं। प्रद "मणिरसरंग" हिं सियबर संगहिं प्रेमभक्ति बरदानं॥

(चौ०) बपु बुधिविमल बढ़ैं केहि भांती। जसशशि, पाइ पक्षसित-राती॥ आठ बर्ष के भे मतिवाना। भयो यज्ञ उपवीत विधाना॥

आठ बर्ष की अवस्था में विद्या आरंभकर चार बर्ष में ही ऐसे पण्डित होगए कि प्रयाग निवासी पण्डित लोग अब आपको अधिक नहीं पढ़ा सकते थे। तब बारह बर्ष की अवस्था में प्रभु श्रीकाशी जी आए।

(चौ०) तहां वेद बेदान्त विशेषा। सकल किये करतल अवशेषा॥ आप सन्यासी के शिष्य होके "स्मार्त" रीति से अपने धर्म कर्म में प्रवृत्त हुए। प्रथम आपका नाम श्रीरामदत्त ऐसा था; किसी दण्डी विद्वान् के समीप रहके ब्रह्मचर्य्य युक्त विद्या पढ़ते थे॥ एक दिवस स्वामी श्रीराघवानन्द जी के पास प्राप्त होके प्रणाम किया; आप कृपा दृष्टि से देख भावी बार्ता को जान के कहने लगे कि "तुम्हारे शरीर का तो आयुष भी पूर्ण हो चुका पर अभी लों तुम हरि शरणागत न हुए!" । यह सुन, आके, उन दण्डी जी से सब बात आपने कही। दंडी विज्ञ तो थेही उस बात को सत्य बिचार के बोले कि "बात तो सत्य है परन्तु उपाय मेरे किये न हो सकेगा तुम उन्ही महानुभाव जी के शरणागत होके शरीर की रक्षा करो"। ऐसा हितोपदेश पा के, आप ने श्रीस्वामीराघवानन्द जी को साष्टाङ्ग प्रणामकर बिनय किया कि "हे प्रभो यह शरीर और आत्मा आपको अर्पण है इस्की दोनें लोक में रक्षा कीजिये" तब श्रीस्वामी जी ने श्रीरामषडक्षर मंत्र आदि पंच संस्कार कर रामानन्द नाम दिया और प्राणायाम आदिक रीति बता, उतारने की युक्ति भी सिखा के समाधि में स्थित कर दिया; काल आया देख के चला गया। थोड़ेही काल में आप समाधिस्थ हो गए यह कुछ बड़ी बड़ाई नहीं है क्योंकि आप

थोड़ेही काल में आप जो समाधिस्थ हो गए यह कुछ बड़ी बड़ाई नहीं है क्योंकि आप तो स्वयं प्रभु के अवतार ही हैं; परन्तु यह सब लीला है, सो भी उचित ही है ॥

कुछ काल में आप समाधि से उतर के श्रीमंत्र जाप और गुरू सेवा में तत्पर हुए। श्रीराघवानन्द स्वामी जी महाराज तथा भगवान् रामानन्द जी के परस्पर सत्सङ्ग की शोभा क्या कही जावे; (दो०) "दोउ महान मिलि सोहहीं, सम बसिष्ठ रघुनाथ। उपमा अपर समुद्र जस, सहित ब्रह्मद्रव पाथ ॥"

स्वामी श्री१०८ रामानन्दजीने बहुत तीर्थाटन किया। "श्रीकृष्ण-चैतन्य-चिरंजीवी" ("श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु" नहीं) की दया से अष्ट सिद्धि को प्राप्त हुए।

(चौ०) जगत गुरू, आचारज भूपा। रामानन्द राम के रूपा ॥

आप जब पुनः श्रीगुरू दर्शन को गए तो आचारी गुरुभाइयों ने आचार विचार का आग्रह न देख इनको दंड करने के लिये गुरु महाराज से कहा। परन्तु श्रीगुरु जी ने तो आपको यह आज्ञा दी कि "तुम अपना सम्प्रदाय ही अलग प्रचलित करो।"

ऐसाही किया; सो "रामावत" वा "रामानन्दीय" सम्प्रदाय आपका प्रसिद्ध ही है। (दो०) स्वामिहि सेवा वश किये रामानन्द उदार। दै सरवस गुरु रामपुर गवने दशएं द्वार ॥

आप की गुरू सेवा, भजन, साधुगुण, तेज, प्रताप, देख, और श्रीप्रभु के अवतार जान, अपनी सब भजन-संपत्ति सौंप के, अपनी इच्छा ही से दशम द्वार से गमन करके कृपालु श्री राघवानन्द जी श्री-रामधाम में प्राप्त हुए।

तब सूर्य्य रूपी श्रीरामानन्द जी काशी रूप आकाश में प्रकाशमान, और पूर्व छप्पै विषे कथित श्रीअनन्तानन्दादि आपके शिष्य हुए। वेई तेज के स्थान कला शोभित हुई। इसप्रकार श्रीरामानन्द सूर्य्य ने प्रगट होके कलियुग की कुचालरात्रि को नाश किया तथा प्रबल पाखण्ड रूपी उस-रात्रि-के-अंधकार को भी नाश किया; तब अभक्त भगवत-विमुख छुप रहे ॥

और, आप के शिष्य प्रशिष्य भागवत बेषधारी बैष्णव धूप (घाम) प्रकाश के सरीखा चारो धामों में स्थान स्थान में भर गए। एवं महात्मा सन्त समूह कमलों के सम विकाशमान हुए। ऐसे सूर्य्यरूपी श्री-रामानन्दस्वामी उदित हुए ॥

(क०) "मन्द कलिकाल की कुचाल ते अमन्द पाप फैले पंथ निन्द वेद भक्ति हूं निकन्द के। देखे रघु-नन्द जब सबै जन्तु द्वन्द दले लीन्हे अवतार तब दायक अनन्द के ॥ सेतु बिसतारे मंत्र तारक प्रचारे किए जीव भवपारे देह धारक स्वच्छन्द के। सन्तसिंधु चन्द ऐसे

करुणा के कंद "रसरङ्ग मणि" बंद पद स्वामी रामानंद के ॥ २ ॥ रामानंद स्वामी से भए न कोई और होने जिनको विदित तीनौ लोक में प्रताप है। काम क्रोध लोभ मोह मत्सरादि सुखडादखड मर्दन को केशरी ज्यों राजैं करिदाप हैं। विमुख पाखण्डी आन धर्मी तमतोम रवि, अभिमान सागर को कुंभज से आप हैं। रामभक्ति शालिक्षेत्र पोषिबे को बारिद से आश्रित प्रपन्नन के एक माई बाप हैं ॥ ३ ॥"

(चौ०) छायो लोक प्रताप प्रकाशा। कलिकर तब पातक तम नाशा॥ घोर कुपंथ चोर बिलखाने। कुमुद कर्मकांडी सकुचाने ॥ रामभक्ति सरसीरुह बृन्दा। रवि लखि भे विकशित सानन्दा॥

(चौ०) सहित तेरहो शिष्य अरामी। राजत श्री रामानँद स्वामी॥ शिष्यशिष्य उपशिष्य समेता। शोभित पूजित कृपानिकेता॥ नित प्रति राम कथा सतसंगा। कहत, बहत जनु दूसरि गंगा॥ तारत जीवन मरत महेसू। सतनु तरत स्वामी उपदेशू॥

अस प्रभु भगवत रामानन्दा। परम धरमतनु जन सुखकन्दा॥ हिय विचार किय कृपा निकेतू। महि दिग विजय करन के हेतु॥ संग शिष्य परशिष्य अनन्ता। तिमि तिहुं सम्प्रदाइ बहुसन्ता॥ आगे फहरत ध्वजा निशाना। तेंहि पर बैठ बीर हनुमाना॥ "जै जै सियाराम"

धुनिछाई। चले विजय कर शंख बजाई॥ (दो०) खंडन किये कुपन्थ ये, यथा योग दै दंड। सत मारग आने तिनहिं, करि उपदेश अखंड॥ चारिउ वरण आस्रम माहीं। कीन्हे "रामभक्त" सबकाहीं॥ राम मन्त्र मन्त्रार्थ विधाना। यथायोग दीन्हे मतिवाना॥ यहिविधि करि दिगविजय उदंडा। थापे 'रघुपतिभक्तिअखंडा'॥ प्रभु जेहि हेतु लिये अवतारा। सत्यसन्ध सोइ किये प्रचारा॥ रामानन्द प्रताप अपारा। को कवि लहै कथन करि पारा॥

"भारी प्रभाव प्रताप रामानन्द को, को कहिसकै? जो परम प्रभु अवतार शारद वदत जस-जाको जकै॥"

"श्रीरामरूप अनूप रामानन्द स्वामी हैं सदा। शुचि ज्ञान दायक ध्यान लायक हरन मल माया मदा॥" (सो०) शारदशसी समान, कीरति रामानन्द की। पावन पुण्य महान, नाशनि पातक वृन्द की॥

(श्री राम रस रंगमणि)

परमाचार्य्य स्वामी श्री रामानन्द जी का यह चरित "श्री अगस्त्य संहिता भविष्योत्तरखण्ड" में पांच अध्याय से वर्णित है सो श्री काशी कुंज गली के पास "हजारी लाल-गणेश प्रसाद" केहां मिलता है, सूर्य्य प्रभाकर शिला यंत्र सं० १९३५ में छपा। उसी से भाषा में "श्रीरामानन्द यशावली" नामक ग्रन्थ बना है श्रीराम अनन्यसखा, परमहंस श्री ६ सीताशरण जी महाराज ने, श्री ५ रामरसरङ्गमणि जी महाराज से "श्रीरामानन्द यशावली" के नाम से भाषाप्रबन्ध कराके छपवाया है, उससे, तथा मुन्शी श्री ६ तपस्वीराम जी कृत "रमूज़े मिह्रोवफ़ा" से लेके, संक्षेपतः यह कथा लिखी गई।

(श्लो०) नम आचार्य्यवर्य्याय रामानन्दाय धीमते। मोक्षमार्गप्रकाशाय चतुर्वर्गप्रदाय च॥१॥ पाखण्डे न विदूषितान्स्वविमुखा ञ्ज्ञात्वा कलौ वैजनान् । तत्क-ण्याणा परः कृपापरवशस्साकेतवासी स्वयम् ॥ रामा-नन्दसुसंज्ञया प्रयजने श्रीपुण्यसद्म द्विजाज् जातस्तं-विनमामि नारदयुतं श्रीरामचंद्रं हरिम् ॥ २ ॥ श्रीपुण्य-सदनस्तात स्सुशीला जननी तथा ॥ यस्यासीद्रामानन्द-न्तं जगद्गुरुं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥

(सो०) रामभक्ति दातार, ज्ञान विराग विधायनी। सुनतहि भली प्रकार, सुखद मोह तम हारिनी ॥ (कथा)

बहुत काल बपुधारण कीन्हे। भूमहँ भक्ति भाव भर दीन्हे॥

आपका परधाम गमन	सम्वत विक्रमी	गत कलि	ईसवी सन
	१४६७	४५११	१४११
	वैसाख शुक्ल तृतीया		

पृथ्वी पर आप १११ * बर्ष पर्य्यन्त विराजमान रहे ।

श्लोक। वेदाङ्केन्दुधरासंख्ये (११९४) वर्षे वैक्रमराजके । श्रीमद्रामानुजाचार्यो ह्यन्तर्धानमगा त्स्वयं ॥१॥ श्रीम-द्विक्रमवत्सरेऽश्वरसवारीशेन्दुसंख्ये (१४६७) धरां । त्य-क्त्वामाधवमासकेसुदितृतीयायांतिथावुज्वलं॥ धर्मं भा-गवतं विमुक्तिफलकं विन्यस्यजीवेषु वै । रामानन्दसु-देशिकस्समगमत्साकेतलोकं परम् ॥२॥

"बहुत काल"। जिनका आयु १६ ही वर्ष की अवस्था में, पूर्ण हो चुका था सो महामुनि यदि १११ वर्ष विराजमान रहे तो "बहुत काल" इसको कहने में शंकाही क्या?
प्रसिद्ध ही है कि आपका समय सिकंदर लोदी (१४४८ ईस्वी,) से पूर्व था ॥

"वर्ष सप्त शत" जो लिखा है (श्री रघुराज सिंह जी ने,) सो न जानूं कैसे? १३५६ से ७०० तो २०५६ में होंगे; यह अभी भी सम्वत् १९६२ ही है। स्वामी जी को अन्तर्धान हुए सैकड़ों वर्ष बीत चुके। नजानूं उनने ७०० किस अभिप्राय से लिखा? इस श्लोक से तो १११ ही (१४६७-१३५६ = १११) वर्ष स्पष्ट है ॥ इसके अतिरिक्त दो और ने भी "१०० वर्ष से ऊपर" लिखा है ॥ इतिहासों से ("१४०० ईसवी") सम्वत १४५७ प्रगट है ॥ वह भी इसके समीप मिलता है ॥

---

(१) श्रीअगस्त संहिता भविष्योत्तरखण्ड की कथा तो प्रसिद्ध है ही ॥
(२) ऐसा भी लिखा है कि "एक कल्प में कलि ४४४७ की भाद्रकृष्णाष्टमी को, श्री १०८ रामानन्द स्वामी श्रीकपिलदेव भगवान् के अवतार, गालवाश्रम के समीप गौड़ ब्राह्मण के पुत्र हो प्रगट हुए; १०८ वर्ष की अवस्था में कलि के ४५५५ वर्ष गत होने पर परधाम को सिधारे ॥"
(३) और भविष्य पुराण के "तृतीय प्रतिसर्गपर्व" के चतुर्थखण्ड में लिखा है कि आप श्रीसूर्य्य भगवान के अवतार, 'देवल' मुनि के पुत्र होंगे–
भविष्य पुराण में ये (छः) श्लोक आप के यश में हैं–

"इतिश्रुत्वारवेर्गाथांवैशाख्यांदेवराट्स्वयम् । प्रत्यक्षं भास्करंदेवं ददर्शसहितं सुरैः ॥१॥ भक्तिनम्रान्सुरान्दृष्ट्वाभगवांस्तिमिरापहः । उवाचवचनंरम्यं देवकार्य्यपरं शुभम् ॥ २ ॥ ममांशात्तनयोभूमौ भविष्यतिसुरोत्तम । सूतउवाच ॥ इत्युक्त्वास्वस्यबिंवस्यतेजोराशिं समन्ततः॥३ समुत्पाद्यकृतं काश्यांरामानन्दस्ततोभवत् । देवलस्यच विप्रस्यकान्यकुब्जस्यवैसुतः ॥४॥ बाल्यात्प्रभृतिसज्ज्ञानी

रामनामपरायणः। पित्रामात्रायदात्यक्तोराघवं शरणं गतः॥५॥ तदातुभगवान्साक्षाच्चतुर्दशकलोहरिः। सीतापतिस्तद्धृदयेनिवासं कृतवान्मुदा॥६॥

इतितेकथितं विप्रमित्रदेवांशतोयथा। रामानन्दस्तुवलवान्हरिभक्ते श्चसंभवः॥७॥ इति भविष्यपुराणे तृतीयेप्रतिसर्गपर्वणि सप्तमाध्यायेश्लोकाः॥

आप अभक्तों से कभी वार्तालाप (वरन् चार-आंखें भी) नहीं करते थे, परन्तु इतने पर भी, यदि भक्ति भाव देखते बूझते थे चाहे किसी जाति में क्यों न हो तो उस्का बड़ाही आदर करते थे॥

श्रीकाशीजी में आपकी खड़ाऊं श्रीपंचगंगाघाट पर अभीतक विराजमान हैं॥

आपने श्रीगंगासागर संगम कपिलदेव स्थान को प्रगट किया जो लुप्त हो गया था।

(दो०) रामानन्द उदार अति, कलिमल नाशनहार। सेवत भक्ति समेतशुभ भुक्तिमुक्ति दातार॥ आचारजवर दिगविजय, जे जन सुनहिं सप्रेम। विजय विभूति विवेक ते, लहहिं भक्ति युतक्षेम॥ (चौ०) अस प्रभु जगपावन बपुधारी। कृपासिन्धु दासन हितकारी॥ ताते तासु जन्म दिन माहीं। जन्म महोत्सव रचै उछाहीं॥

श्रीअयोध्यावासी प्रायः श्रीरामानन्दीय हैं ही,

और अनेक जगहों में आपका ब्रत तथा उत्सव होताही है, तथापि श्रीसीताराम कृपासे (१) श्रीकनकभवन के परमहंस श्री६सीताशरण जी महाराज, (२) प्रमोदवन-भूषण पण्डित श्री६रामवल्लभाशरण महाराज जी, (३) और श्रीरामकोट जन्मस्थान में, इन तीनों स्थानों में श्रीरामानन्दजन्मोत्सव विशेष करके होता है ॥

	श्रीरामानुज जी		श्रीरामानन्दजी	
	जन्म	परधाम	जन्म	परधाम
कलि(गत)	४११८	४२३८	४४००	४५११
विक्रमीय सम्बत	१०७४	११९४	१३५६	१४६७
ईसवीसन	१०१७	११३७	१३००	१४११
कितनेबर्ष विराजे	१२०		१११	
१९६२ पर्य्यन्त कितने बर्ष	८८८	७६८	६०६	४९५

दोनों आचार्य्यों के बीच अन्तर १६२ बर्ष

पृष्ट ४२० तथा ४२७ देखिये ॥

१. श्रीमन्नारायण
२. श्रीलक्ष्मी जी
३. श्रीविष्वक्सेन जी
४. श्री पराङ्कुशमुनिप्रथम, (कारसूनु श्रीशठकोप जी)
५. श्रीबोपदेव जी
६. श्रीनाथमुनि जी
७. श्रीपुण्डरीकाक्षजी
८. श्रीराममिश्र जी
९. श्रीपरांकुश मुनिजी (द्वितीय)
१०. श्रीयामुनाचार्य्य जी
११. श्रीमहापूर्णाचार्य्य जी
१२. श्रीरामानुजाचार्य्य स्वामी
१३. { श्रीकुरेश वा कुरुतारक जी / श्रीगोविन्दाचार्य्य जी }
१४. श्रीपराशरभट्ट जी
१५. श्रीलोकाचार्य्य जी
१६. श्रीदेवाचार्य्य जी
१७. श्री शैलेशाचार्य्य जी
१८. श्रीवरवर मुनि जी
१९. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्य जी
२०. श्रीगंगाधर जी
२१. श्रीसदाचार्य्य जी
२२. श्रीरामेश्वराचार्य्य जी
२३. श्रीद्वारानन्द जी
२४. श्रीदेवानन्द जी
२५. श्रीश्यामानन्द जी
२६. श्रीश्रुतानन्द जी
२७. श्रीचिदानन्द जी
२८. श्रीपूर्णानन्द जी
२९. श्रीश्रियानन्द जी
३०. श्रीहरियानन्द स्वामी (प्रधानानन्द)
३१. श्रीराघवानन्दाचार्य्य स्वामी जी
३२. भगवान् रामानन्द ॥

---

३२. भगवान् रामानन्द
३३. श्रीसुरसुरानन्द जी
३४. श्रीबलियानन्द जी
३५. श्रीसेवरिया स्वामी जी
३६. श्रीबिहारी दास जी
३७. श्रीरामदास जी
३८. श्रीबिनोदानन्द जी
३९. श्रीधरनीदास जी
४०. श्रीकरुणानिधान जी
४१. श्रीकेवलराम जी
४२. श्रीरामप्रसादीदास जी
४३. श्रीरामसेवकदासजी (परसा)
४४. स्वामी श्री १०८ रामचरण दास महाराज मौद्गल्य ऋषि जी

॥१॥ [श्लोक] "लक्ष्मी नाथ समारंभां नाथ यामुन मध्यमाम् । अस्मदाचार्य्य पर्य्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम् ॥" दीन सीतारामशरण भगवान् प्रसाद ॥

(स० ना० सिं०)

(२) मुन्शी श्री तुलसी राम जी तथा श्री प्रताप सिंह जी (और H. H. Wilson आदिक इंग्रेजों) ने, श्री१०८ रामानन्द स्वामीजी को श्री रामानुज स्वामी जी से "पांचवां" ही लिखा है; अर्थात् " (१) श्री रामानुज स्वामी (२) श्री देवाचार्य्य जी (३) श्रीहर्य्यानन्द (प्रधानानन्द) जी (४) श्री राघवानन्द जी, और (५) अनन्त श्री रामानन्द स्वामी जी " और बीच के महानुभावों के नामों को उनने छोड़ दिया है ॥

(३) अनन्त श्री रामानन्द भगवान् के जन्म का समय तो अनेक (आठ, नव) ग्रन्थों में पाया जाता है; परन्तु आप कितने दिन संसार में विराजे? कब परमधाम को गए? कठिनता यदि है तो इसी के ठहराने में ॥

(४) ☞ आप के पिता का नाम, श्री रामानन्द यशावली में "श्री भूरिकर्मा जी" लिखा है। 'भूरिकर्मा' तथा "पुण्य सदन" (श्रीअगस्त-संहिता) एक ही बात है ॥

(५) ४२८ वें पृष्ट की १३ वीं पंक्ति में अंक २ के अन्तर्गत, महीन अक्षरों में जो टिप्पनी चार पंक्तियां लिखी गई हैं, "(४४४७ की, भाद्राष्टमी, गौड़ब्राह्मण, १०८ वर्ष, इत्यादि,) " सो जिस पत्रे में से पाया गया उस पुस्तक की न तो पूरी प्रति ही हाथ लगी, और न उस पोथी का नाम ही जाना जा सका।

(६) श्रीअगस्त संहिता और भविष्य पुराण की कथा की तो इस प्रकार से एकता हो जाती है कि सूर्य्य मण्डल के अन्तर श्रीराम जी विराजे हैं ही, (श्लोक। "सूर्य्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्। नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरु तत्परम्" ॥ १ ॥ इससे, सूर्य्य मंडल ही से, जन-हृदय-तिमिर-नाशक श्रीरामांश अवतार हुआ ॥ और काशी से जन्मस्थान की भिन्नता यों नहीं कि श्रीकाशी जी में श्रीगुरुशरणागत होने से अपर जन्म ही जानिये क्योंकि ऐसा कहा ही जाता है। अर्थ विचार से "देवल" तथा पुण्यसदन (भूरिकर्मा) की एकता भी मानिये। शंका न कीजिये। दोनों ग्रन्थों (श्रीअगस्त संहिता तथा भविष्यपुराण) की कथा एक ही समझिये ॥

महामुनि श्रीदेवाधिपाचार्य्य स्वामी।

महामहिमायुक्त श्रीदेवाचार्य्य महाराज जी एक समय श्रीकाशी यात्रा के मार्ग में किसी ग्राम में एक वृक्ष के समीप दशम स्कन्ध (श्रीभागवत) कह रहे थे; कथा में "यमलार्जुन" का प्रसंग था; ज्योंही अध्याय पूरा हुआ कि उसीक्षण पास का वृक्ष, किसी प्रतक्ष कारण के बिनाही, अकस्मात गिर पड़ा अड़ररधाम! और साथही आश्चर्य्यमय यह घटना भी हुई कि एक विमान और एक पुरुष सब सन्तों ने देखा; उस मनुष्य ने आप के चरणसरोज की बन्दना करके कहा कि मैं बड़ाही पापी, नरक से हो आके, यही वृक्ष होके, यहां था; इस समय श्री हरि कथा के श्रवण से मैं निष्पाप हो, श्री भगवत कृपा से इस विमान पर चढ़ परधाम को जाता हूं, यह आप केही दर्शनों का प्रभाव है॥

श्रीहरियानन्द आचार्य्य स्वामी।

हरि-आनन्द में सदा छके हुए श्री६ हरियानन्द जी ने एक समय पुरुषोत्तमपुरि में जा आषाढ शुक्ल द्वितीया को रथारूढ़ श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन किये; चलते चलते रथ रुक गया था; खींचे ठेले से हिलता बढ़ता न था। आपने पुकारके कहा कि "सब कोई रथ को छोड़ दो, श्रीजगदीश कृपा से रथ आपही चलेगा" ऐसाही हुआ, सौ पग तक रथ आपही दौड़ा

गया। जय जय कार ध्वनि छा गई। ऐसे ऐसे इतिहास आप के यश के अनेक हैं ॥

(छ०) चरणकमल बन्दौं कृपालु हरियानँद स्वामी। सर्बसु सीताराम रहसि दशधा अनुगामी ॥ बालमीक वर शुद्ध सत्व माधुर्य्य रसालय। दरसी रहसि अनादि पूर्व रसिकन की आलय ॥ नित सदाचार मैं रसिकता अति अद्भुत गति जानिये। जानकि वल्लभ कृपा लहि शिष प्रति शिष्य बखानिये ॥ (श्रीयुगलप्रिया, रसिक भक्तमाल)

आचार्य्य स्वामी श्री १०८ राघवानन्द जी।

कुछ तो आप का प्रताप, स्वामी अनन्तश्री रामानन्द जी के चरित में लिखा ही जा चुका है (पृष्ट ४१४) एक समय एक राजा ने अपने लड़के को शिष्य करने के लिये बहुत प्रार्थना कहला भेजी; उसी क्षण और दो जनों की भी प्रार्थना विनय सुनके, कृपासिन्धु जी एकही समय तीनों ठाम तीन रूप से गए। उस दिन तो किसी ने यह भेद न पाया, पर दूसरे दिन सब वार्त्ता प्रसिद्ध हो ही तो गई ॥

आपके चरित का पार भला कौन पासकता है, कि जिनके शिष्य स्वयं प्रभु (भगवान् रामानन्द) ही हुए ॥

(छ०) रसिक राघवानन्द बसैं काशी प्रस्थाना। गुरु रूप शिव लये दये रसिकाई ध्याना॥ काल करालहि हटकि शिष्य किय रामानन्दा। प्रगटी भक्ति अनादि अवध गोपुर स्वच्छन्दा। आचारज को रूप धरि जगत उधारन जतन किय। महिमा महाप्रसाद की प्रगटि रसिक जन सुक्ख दिय॥ (श्रीयुगलप्रिया, रसिक भक्तमाल)

(१५१ / ८ ४ २) छप्पै।

अनन्तानन्द पद परसिकैं लोक पाल से ते भए॥ योगानन्द[१] गयेश[२] करमचन्द[३] अलह[४] पैहारी[५]। सारी रामदास[६] श्रीरंग[७] अवधि गुण महिमा भारी॥ तिनके नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन। रघुबर यदुबर गाइ विमल कीरति संच्यो धन॥ हरि भक्ति सिन्धु बेला रचे पानि पद्मजा सिर दए। अनन्तानन्द पद परसिकै लोकपाल से ते भए॥ ३२॥ (३७/२१३)

"मेहा" पाठन्तर "महा" भी है। "मेह"=मेघ। "बेला"=मर्य्यादा; बेरा, नावबेरा; इति। "पद्मजा"=श्रीलक्ष्मीजी।

वार्तिक तिलक ।

श्री अनन्तानन्द जी ।

श्रीअनन्तानन्द जी महाराज के चरणसरोज के बिमल रज को स्पर्श करके, अर्थात् चरणशरण होके, लोकपालों के सदृश जीवों के लोक परलोक में रक्षक श्रीभक्त ये सब हुए—श्रीयोगानन्द जी[१]; श्रीगयेशजी[२]; श्रीकर्मचन्द जी[३]; श्रीअल्ह जी[४]; श्रीपयहारी कृष्णदास जी[५]; श्रीसारीरामदास जी[६]; श्री श्रीरंग जी[७]; ये सब सद्गुणों के तथा भारीमहिमा के सीमा हुए। तिन्ह के* शिष्य मङ्गल स्वरूप आनन्द के मेघ श्री नरहरिदास जी प्रगट हुए, जिन्हने, श्रीरघुबर कृपाल जी तथा श्रीयदुबर जी, (दोनों) के सुयश गान करके, निर्मल कीर्त्ति रूपी धन का संचय किया ॥ श्रीअनन्तानन्द जी ने ये शिष्य † ऐसे किये कि जो हरि भक्ति रूपी समुद्र के बेला (मर्य्यादा) ही हुए; और पद्मजा अर्थात् श्रीजानकी जी महारानी ने, आपके भजन से प्रसन्नतापूर्वक प्रगट होके श्रीअभयकरकमल आपके मस्तक पर रक्खा ॥

*तिन्ह के अर्थात् श्रीअनन्तानन्दजीमहाराज केशिष्य; और, कोई २ महात्मा ऐसा भी लिखते हैं कि श्रीश्रीरंग जी के शिष्य।

(कवित्त) "रामानन्द स्वामी जू के शिष्य श्री अनन्तानन्द, शीतल सु चन्दन से, भक्तन अनन्दकर। सन्तन के मानद, परामँद मगन मन मानसी स्वरूप छवि सरसिमरालवर॥ जनक लली की कृपापात्र चारुशीला अली, रूप में अभिन्न भुंजैं रंगभूमि लीला पर। ऊपर समाधि; उर अमित अगाध नैन अँसुवा स्रवत, उमगत मानों सुधासर ॥" (रसिक भक्तमाल)

† अथवा, यह भी संभव है कि, श्रीअनन्तानन्दजी ने "भक्तिसिन्धु-

बेला" नामक कोई ग्रन्थ ही रचा हो। अथवा, श्रीसीताराम जी की भक्ति रूपी अगाधसिन्धु में बिहार करानेवाले बेला अर्थात् बेरा (नाव-बेरा) रूपी ये शिष्य सब हुए। इन महात्माओं से भक्ति की इति है॥

कहते हैं कि आप एक बेर संभर प्रदेश में पहुँचे वहां के राजमाली ने आपके साथ के सन्तों को बिही के फल लेने से रोक दिया। दुःखित हो सन्तों ने आप से कहा; दूसरे दिन बिही एक भी न पाया गया। राजा ने सब वृत्तान्त सुन के कारण जाना।

श्रीस्वामी जी के शरणागत हुआ। इस प्रकार से वह सारा देश भगवतभक्त हो गया॥

श्रीश्रीरंगजी।

(१५४/८७२) टीका कवित्त।

द्योसा एक गांव तहां श्रीरंग सुनांव हुतो, बनिक सरावगी की कथा लै बखानिये। रहतो गुलाम गयो धर्मराज धाम, उहां भयो बड़ो दूत कही "सुनु अरे बानिये! आए बनिजारे लैन देख तूं दिखावैं चैन, बैल शृङ्ग मध्य पैठि मारे पहिचानिये। बिनु हरि भक्ति सब जगत की यही गति, भयो हरि भक्त श्रीअनन्त पद ध्यानिये॥ ११६॥ (६२९-५१३)

वार्त्तिक तिलक।

जयपुर में 'देवसा' नामक एक ग्राम है, वहां प्रथम सरावगी मत के बनिये के घर में जन्म श्रीरङ्गजी का

था; इनके श्रीरामभक्त होने की कथा यों है, कि इनके गृह में एक टहलुआ था, वह मरके श्री धर्मराज जी के लोक में एक बड़ा यमदूत हुआ ।

वह एक दिन इसी देउसा गावँ में, यमराज का भेजा आया; और पूर्व परिचय से श्रीरङ्ग के सामने प्रत्यक्ष होके बोला कि "रे बनिया ! सुन, तुझे एक कौतुक दिखाता हूं; देख ये जो बनजारे यहां अन्ना-दिक लेने आए हैं, उनमें से एक का प्राण लेने मैं आयाहूं; सो उसी के बैल की सींग पर बैठ के मैं अभी अभी उसको मारे डालता हूं, तू देख के समझ लेना और जान कि श्रीसीताराम जी की भक्ति बिना सब जगत के लोगों की इसी प्रकार की नीच मृत्यु होती है । इस घटना को प्रत्यक्ष देख चुकने पर यदि तुझे हरिकृपा से चेत हो आवे तो श्रीअनन्तानन्दस्वामी का शरण लेना ॥"

श्रीरङ्ग जी उस ठिकाने उस समय गये और देखा कि बनजारे को उसी के बैल ने अपनी सींगों से, इन के देखतेही देखते, पेट चीर के मार डाला ।

यह घटना देख, इनको वस्तुतः भय तथा ज्ञानबैराग्य हुआ; और, अपने कुल के सब अनाचारों को त्याग के, श्रीअनन्तानन्दस्वामी के चरणशरण में आ, श्री राममन्त्रादिक पंच संस्कार ग्रहण कर, गृहस्थाश्रम ही में रहके, आप बड़े महात्मा और परम भक्त हो गए ॥

(११५/८४२) टीका। कवित्त।

सुतको दिखाई देत भूत, नित सूख्यो जात, पूछें, कही बात, जाइ वाके ठौर सोयो है। आयो निशि मारिबे को धायो यह रोष भख्यो, "देवो गति मोकों" उनि बोलिकै सुनायो है॥ "जाति को सोनार पर नारि लगि प्रेत भयौं, लयों तेरी शरण मैं ढूंढि जग पायो है"। दियो चरणामृत लै, कियो दिव्य रूप वाको अतिहीं अनूप, सुनो भक्ति भाव गायो है॥ ११८॥ (६२९-५११)

वार्त्तिक तिलक।

कुछ कालान्तर की बात है कि श्रीरंग जी के पुत्र को एक प्रेत रात में दिखाई देता था; जिसके भय से वह लड़का सूखा जाता था; आपने उससे दुर्बलता का कारण पूछा। लड़के ने बात सब कही।

जहां वह पुत्र सोता था वहीं स्वयं आप भी जा सोए; प्रेत जिस समय आया करता था अपने उसी समय पर आही तो पहुंचा। आप क्रोध युक्त हो, कोई आयुध लेके, उसे मारने दौड़े।

उस प्रेत ने कहा कि "मुझे आप इस दुष्ट योनि से छुड़ा के शुभ गति दीजिये; मैं इसी ग्राम का अमुक सोनार था, परस्त्री में प्रीति करने से प्रेत हुआ हूं। मैं अपनी गति के लिये संसार में ढूंढ़ता ढूंढ़ता आपही को समर्थ जान के शरणागत हुआ हूं।

यह सुनतेही, आपने दया करके श्री चरणामृत देके,

उसको उस अधम योनि से छुड़ाके दिव्य रूप कर दिया।

आपके पास श्रीपीपा जी भी कृपा करके आए थे सो कथा श्रीपीपाचरित में आवेगी॥

सुनिये, श्रीश्रीरङ्ग जी की भक्ति भाव का अत्यन्त अनूप प्रभाव इस प्रकार से गान किया गया है॥ और आप के चरित्र बहुत हैं पर यहां इतनेही कहे गए॥

(१५९/८४२) छप्पै।

निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन परिहरि पय पानकियो॥ जाके सिर कर धस्यो, तासु कर तर नहिँ अड्ड्यो। अर्प्यो पद निर्वान सोक निर्भय करि छड्ड्यो॥ तेज पुंज बल भजन महा मुनि ऊरधरेता। सेवत चरण सरोज राय राना भुवि जेता॥ दाहिमा वंश दिनकर उदय, सन्त कमल हिय सुख दियो। निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो॥ ३३॥ (३८/२११)

"निर्वाण"=मोक्ष, मुक्ति। "निर्वेद"=वैराग्य, विराग।

"भूविजेता"=पृथ्वी को जीतनेवाले। "ऊर्द्धरेता"=जिसका वीर्य्य कभी न गिरे, ब्रह्माण्ड पर चला जावे। पाठान्तर "सोव" (उसको)

पैहारी श्रीकृष्णदास जी।

वार्तिक तिलक।

कलियुग में तीव्र-वैराग्य-की-सीमा श्रीकृष्णदास जी महाराज अन्न को त्याग के केवल दूध ही पिया करते थे। और योग ज्ञान भक्ति निधान सिद्ध कैसे हुए कि जिस जनके सीस पर करकमल रक्खा, उसके हाथों के नीचे आपने अपना हाथ नहीं ओड़ा (पसारा) अर्थात् उससे कभी कुछ न लिया।

और उस जन को संसार के सब शोकों से निर्भय ही कर छोड़ा, तथा अन्त में मोक्षपद दिया।

तेज के पुंज, श्रीरामभजन के महा बल से युक्त, महामुनि और ऊर्द्धरेता थे। जिनके चरणसरोज की सेवा, पृथ्वी के जीतनेवाले अनेक राजा राना किया करते थे। "दाहिवां ब्राह्मणों" के बंशमें सूर्य्य सम उदित होकर कमलरूपी समस्त सन्तों के हृदय को आपने आनन्द दिया प्रफुल्लित किया॥

जोकि आपने सर्वदा अन्न को त्याग के दुग्ध ही पान किया, अतएव आपकी पयहारी (पयोहारी) संज्ञा प्रसिद्ध हुई है।

जोकि आपने किसी शिष्य से कदापि कुछ न लिया; और अपने शिष्यों को जीवनमुक्त ही कर दिया, इसीसे टीकाकार श्रीप्रियादास जी ने आदि ही में (पृष्ठ ४४, कवित्त १ में) यह पद लिखा है कि—

"गुरु गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहां गाई श्रीपैहारी जी की रीति रंग भरी है"।

(दो०) गुरू तो ऐसा चाहिये शिख सों कछू न लेय।
शिष्यहुं ऐसा चाहिये तन मन धन सब देय ॥ १ ॥

(१५७) टीका कवित्त ।

जाके शिर कर धस्यो, तातर न छोड़यो हाथ दीनो बड़ो बर, राजा कुल्हू को जु साखिये। परवत कंदरा में दरशन दीयो आनि दियो भाव साधु हरि सेवा अभिलाखिये ॥ गिरी जो जलेबी थार मांझ ते उठाई बाल, भयो हिये शाल बिन अरपित चाखिये। लै करि खड्ग ताहि मारन उपाइ कियो, जियो संत ओट, फिरि मोल करि राखिये ॥ ११९ ॥ (६२१–५१०)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीपयहारीजी ने जिस शिष्यके माथे पर हाथ रक्खा उस्के हाथों के नीचे अपना हाथ कभी न पसारा (न छोड़ा); और बड़ा भारी वर 'भक्ति-मुक्ति' सो दिया; उस्में कुल्हू देश का राजा साक्षी है, कि जिस्को आपने आके परवत के कन्दरे में दर्शन औरराज्य दे, शिष्य कर, भावभक्ति से उस्को पूर्ण कर दिया, कि जिससे श्रीसीताराम जी तथा भक्त सन्तों की सेवा सदा किया करता था; उस्से तृप्त नहीं होता था। वरञ्च सेवाभिलाष ही से भरा रहता था ॥

एक समय सन्तों का भण्डारा था; उसी में जिलाबियों का थार श्रीसीतारामजी के मन्दिर में जा रहा था, उसीथार में से दो एक जिलेबी गिर पड़ीं; सो भक्त राजा के छोटे से बालक ने उठा के मुख में डाल लीं

राजा को देखतेही हृदय में अति सन्ताप हुआ कि यह हमारा सुत होके, बिन भगवदर्पण की हुई जिलाबियां इसने खालीं। इस्से खड्ग लेके उस्को मार डालना चाहा; तब सन्तों ने जाके उस्को मांग के अपना करके, उस्की रक्षा की॥ फिर सन्तोंने कहा कि यह बालक अब हमारा हो गया; इस्का मूल्य हम को देके इस्को तुम अपने ही पास रक्खो॥

(१५६/८१६) टीका कवित्त।

नृपसुत भक्त बड़ो अब लौं बिराजमान साधु सनमान में न दूसरो बखानिये। संत बधू गर्भ देखि उभै पनवारे दिये, कही अर्भ इष्ट मेरो ऐसी उर आनिये॥ कोऊ भेषधारी सो ब्योहारी पग दासिन को कही कृपा करो कहा जानैं और प्रानिये। ऐपै तजिदेबो क्रिया देखि जग बुरो होत जोति बहु दई दाम राम मति सानिये॥ १२०॥ (६२१-५०१)

"पनवारे"=पत्र, पत्तल। "पगदासिन" पनही, पगरखी, जूतियां। "जोति बहु दई"-हृदय में बहुत प्रकाश दिया, बहुत ज्योति दी; बहुत जोति युक्त दाम सुवर्ण दिया; जोतने बोने को भूमि तथा-खेती की सामग्रियां दीं। "अबलौं - अब तक अर्थात् श्रीप्रियादास जी के समय तक "अर्भ=अर्भक, बालक॥

वार्त्तिक तिलक।

कुल्हू के राजा का पुत्र बड़ा भक्त, साधुओं की सेवा सन्मान करने में अद्वितीय "अबतक विराजमान" है

भंडारे में एक गृहस्थाश्रमी सन्त की बधू को गर्भवती देख, उसको दोहरा पातर (दो पनवारे) देकर, आपने यह कहा कि इस गर्भ में जो बालक है, वह मेरा इष्ट अर्थात् भगवद्भक्त है, उसके लिये मैं इस दूसरे पत्र के पदार्थ अर्पण करताहूं।

कालान्तर में बस्तुतः उस गर्भ से हरि भक्त पुत्र ही हुआ।

एक मनुष्य सन्तों का बेष बनाए, पगरखियां (पनहियां) बेचा करता और अति दरिद्रही बना रहता था। भक्त राजा को उसपर दया आगई उससे बोले कि "आप तो कृपा करके कंटकादि से रक्षा करने के हेतु यह व्यापार करते हैं, परन्तु और जीव इस बात को कैसे जान सकें? सब जगत-के-लोगों को यह व्यवहार देखके अति अनुचित लगता है, अतः इस कर्म को त्याग दीजिये"। ऐसा कहकर बहुत जोति, भूमि जोतने बोने खेती करने को, (अथवा) बहुत जोति युक्त दाम सुवर्ण, तथा और द्रव्य देकर फिर कहा कि "श्रीसीताराम जी के चरणों में मन लगा के भजन कीजिये"।

वह वैष्णव-वेष-धारी उस कर्म को तजकर श्रीरामजी में लग गया और सन्तों की सेवा सन्मान करने लगा॥ भक्तराज की दया की जय, श्रीपेहारी जी महाराज के प्रभाव की जय॥

उस राजा के बंश का राजकुमार ("नृपसुत") श्रीप्रियादास जी महाराज के समय (सम्वत १७६९) पर्यन्त विराजमान था॥

पुनः, श्रीपैहारी जी ने गलता तथा आमेर के कनफटे वैष्णवद्रोही-योगियों को अपनी सिद्धता से उस मठ से निकाला—

रात भर रहने के लिये उस जगह आप गये थे परन्तु उन बिमुख योगियों ने कहा "यहां से उठ जाव" तब आप ने अपनी धूनी की आग कपड़े में बांध ली और दूसरी ठौर जा बैठे, वहीं आग कपड़े में से रख दी। कपड़े का न जलना देख के योगियों का महंत बाघ बन कर आप पर झपटा। आप ने कहा "तू कैसा गधा है" तुरंत वह गधा हो गया और अपने बल से मनुष्य न बन सका। और सब योगियों के कान के मुद्रे कानों से निकल २ आप के पास पहुंच के ढेर लग गये। आमेर का राजा पृथ्वीराज आप की सेवा में जाकर बड़ी प्रार्थना करने लगा तब आपने गधे को फिर आदमी बना के आज्ञा दी कि इस जगह को तुम सब छोड़ के अलग रहो और लकड़ियां इस धूनी में पहुंचाया करो। उन सबों ने स्वीकार किया और राजा पृथ्वीराज भी श्री पैहारी जी का चेला हो गया; और तभी से गलता आप की प्रसिद्ध गादी हुई॥

बन में गऊ आप से आप दूध श्री पैहारी जी को देती थीं। आप ने आमेर की एक गणिका को भी चेताया था जिसने परम गति पाई॥

श्रीयोगानन्द जी ।

आप भी अनन्तानन्द जी के शिष्य थे। और महात्माओं ने आप को सांख्य शास्त्र के कर्त्ता श्री कपिल भगवान का अवतार भी लिखा है इसी से आप योगानन्द नाम से प्रख्यात हुये ॥

श्रीगयेश जी ।

श्री गयेश जी श्री अनन्तानन्द जी के कृपापात्र अर्थात् श्री रामानन्द स्वामी जी के पौत्र शिष्य थे। आप की भक्ति की प्रशंसा किस से हो सक्ती है ॥

श्री कर्मचन्द जी ।

श्रीअनन्तानन्द जी महाराज के शिष्य श्री कर्मचंद जी बड़े नामानुरागी साधु सेवी तथा गुरुनिष्ठ थे ॥

श्रीअल्ह जी ।

श्रीअल्ह जी श्री अनन्तानन्द जी के शिष्य थे। आप की कथा (आंब की डाल झुक आने की, ५४ वें मूल; २४८ वें कवित्त, में) आगे आवेगी ॥

दूसरे श्री अल्ह जी, श्री कोल्ह जी के भाई का वर्णन, १३९ वें मूल में होगा ॥ तथा श्री कर्मचन्दजी के पुत्र श्री दिवाकर जी की ॥

श्री सारीरामदास जी ।

कोई "सारीरामदासजी" एक ही नाम लिखते हैं,

और किसीने "सारीदास" और "रामदास" दो व्यक्ति कहे हैं, अस्तु, आप श्री अनन्तानन्द जी महाराज के शिष्य (पृष्ट ४३६) थे। एक समय आप कृपा करके श्रीचित्रकूट जी के पास "त्वरी" नाम के ग्राम में, वहां के लोगों को विशेष करके चेताने गए, क्योंकि उस गांववाले बैष्णवों-के-द्रोही थे।

एक के द्वारपर आप पहुंचे, उस अभागे ने खड़े भी न रहने दिया; आप नदी तट पर जा ठहरे। उसी दिन वहां के राजा का पुत्र मर गया। जब उस्को लोग नदी तट पर ले गये तो आप ने उन लोगों से कहा कि "यदि तुम्हारा राजा और ग्रामबासी लोग आज से वैष्णव सेवा की प्रतिज्ञा करैं तो अनन्त शक्ति वाले करुणाकर श्री सीताराम जी से हम इस लड़के को पुर्नजीवित होने की प्रार्थना करें।"

ग्राम बासियों सहित राजा ने सुबुद्धि मन्त्रियों के कहने से वही दृढ़ प्रतिज्ञा की; तब साधु चरणामृत (अपना पदतीर्थ) देकर आप ने उस लड़के को जिला दिया।

इस प्रकार से उस प्रदेश को आपने चेता कर हरिभक्त कर दिया।

(चौ०) "सन्त बिटप सरिता गिरि धरनी, परहित हेतु सबन्ह की करनी॥ हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥"

सन्त कृपा की जय॥

३७ वें मूल (पृष्ठ ४३५।४३६) में श्री अनन्तानन्द जी के शिष्यों के नाम कह आए हैं

१. श्रीयोगानन्द जी	५. श्रीपैहारी कृष्णदास जी
२. श्रीगएश जी	६. श्रीसारीरामदास जी
३. श्रीकर्मचन्द जी	७. श्री श्रीरंग जी
४. श्रीअल्ह जी	

सो, इनकी चर्चा ऊपर हो चुकी. अब श्रीनरहरिदास जी की वार्ता सुनिये । और तब, श्री पैहारी जी के शिष्यों के नाम ३९ वें मूल में ॥

श्रीनरहरिदास जी ।

किसी किसी ने श्रीनरहरि दास जी को श्री श्रीरंग जी का शिष्य लिखा है; और कोई कोई आप को, श्री-अनन्तानन्द जी का पौत्र शिष्य नहीं, वरंच स्वयं श्री अनन्तानन्द जी ही का शिष्य लिखते हैं ।

किसी का लेख है कि यही महाराज श्रीनरहरिदास जी श्री गोस्वामी तुलसी दास जी के गुरु थे; और किसी का मत है कि नहीं, श्री गोस्वामी जी के गुरु श्रीनरहरिदास जी तो, और ही थे, वे श्री गोपाल दास जी बाराहक्षेत्र बासी के शिष्य थे ।

अस्तु, श्रीनरहरिदास जी एक समय श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को गए, वहां आपने सोचा कि "श्री-ठाकुर जी को यदि साष्टाङ्ग दण्डवत करूं तो दर्शन से उतने समय तक असह्य विक्षेप होगा," इस्से आप उलटे हो पड़ रहे; पण्डों ने यह अनाचार देख उनके

पांव पकड़ घसीट के मन्दिर के बाहर कर दिया। पर, श्री जगन्नाथ जी की कृपा युक्त आज्ञा से सभों ने आपका बड़ा आदर सन्मान किया॥

(१५९/८४२) छप्पै।

पैहारी परसाद तें, शिष्य सबै भये पार कर॥ कील्ह[१], अगर[२], केवल[३], चरण[४], ब्रतहठी नरायन[५],। सूरज[६], पुरुषा[७], पृथू[८] तिपुर[९] हरि भक्ति परायन॥ पद्मनाभ[१०], गोपाल[११], टेक[१२], टीला[१३], गदाधारी[१४],। देवा[१५], हेम[१६], कल्यान[१७], गंगा[१८] गंगासम नारी॥ बिष्णु दास[१९], कंन्हर[२०], रंगा[२१], चांदन[२२], सबीरो[२३] गोबिँद पर। पैहारी परसाद तें, शिष्य सबैं भये पार कर॥ ३४॥ (३९/२१३)

"गोबिँदपर"=श्रीगोबिन्दपरायण, हरिभक्त।

वार्त्तिक तिलक।

पयहारी श्रीकृष्णदास जी के ये सब शिष्य, श्रीगुरुप्रसाद से, जीवों को संसारसागर से पार उतारनेवाले और श्रीसीतारामभक्ति में परम परायण हुए—

१. स्वामी श्रीकील्हदेव जी
२. स्वामी श्री ६ अग्रदेव जी
३. श्रीकेवलदास जी
४. श्रीचरण दास जी
५. श्रीव्रतहठी नारायण जी
६. श्रीसूर्य्यदास जी
७. श्रीपुरुषा जी (पुरुषोत्तमदास)
८. श्रीपृथु दास जी
९. श्रीत्रिपुर दास जी (त्रिपुरहरि)
१०. श्रीपद्म नाभजी
११. श्रीगोपालदास जी
१२. श्रीटेकराम जी
१३. श्रीटीलाजी
१४. श्रीगदाधारी (गदाधरदास) जी
१५. श्रीदेवा पण्डा जी
१६. श्रीहेमदास जी
१७. श्रीकल्याण दास जी
१८. स्त्रीशरीर श्रीगंगाबाई जी, श्रीगङ्गाजी के समान; अथवा, श्रीगङ्गा दास जी तथा श्रीगंगादास की स्त्री श्रीगंगा जी के सदृश।
१९. श्रीविष्णुदास जी
२०. श्रीकान्हर दास जी
२१. श्रीरंगा राम जी
२२. श्रीचांदन जी
२३. श्रीसबीरी जी ॥

एक महात्मा ने लिखा है कि (२४) श्री गोविन्द दास नाम के भी एक शिष्य श्रीपैहारी जी के थे ॥

(३६० / ८४२) छप्पै।

गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं कालबश ॥ रामचरण चिंतवनि, रहति निशि दिन लौ लागी। सर्ब भूत शिर नमित, सूर, भजनानँद भागी॥ सांख्य योग मत सुदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल। ब्रह्मरंध्र करि गौन भये हरि तन करनी बल ॥ सुमेर--देव-सुत जग

बिदित, भू बिस्तास्यो बिमल यश। गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं कालबश ॥ ३५ ॥ (४०/२११)

"गांगेय" = श्री भीष्म जी। "गंज्यो नहीं"=नहीं नाश किया। "योग"=अष्टाङ्ग साधन करके मूढ़ विक्षिप्त घोर शान्त और अनुरोध इन पांचो चित्त-की-वृत्तियों को समेट के, केवल संप्रज्ञात योग में जाके परमात्मा में प्राप्त होके असंप्रज्ञात समाधि में स्थित हो जाना।

"सांख्य" शास्त्र – चौबीस तत्वमय प्रकृति को जान के उससे पृथक पुरुष को जानना।

वार्तिक तिलक।

श्रीकील्हदेव जी।

जैसे श्रीगंगा जी के पुत्र श्रीभीष्म जी को मृत्यु ने अपनी इच्छा से विनाश नहीं किया, तैसे ही स्वामी श्री कील्ह देव जी को काल अपने वश नहीं कर सका; क्योंकि आप की यह दशा थी कि, श्रीराम सच्चिद नन्द जी के चरणकमल के स्मरण चिन्तवन में रात्रि दिन तैल धारावत एक रस लय लगी रहा करती थी। सम्पूर्ण प्राणी मात्र का सीस आप को देख के नमित हो जाता था; आप भी सर्व प्राणियों में श्री सीताराम जी को अन्तर्यामी जान के सब को सीस नवाते थे; और, आप माया मोह के दल को नाश करने में सूरवीर सन्त, भजनानन्द के भोक्ता, भाग्यशाली थे। सांख्य शास्त्र तथा योगशास्त्र इन दोनों मतों के सिद्धान्तों का सुदृढ़ अनुभव आप को ऐसा था कि जैसे अपने-

हाथ में बर्तमान आंवले के फल का यथार्थ ज्ञान होता है।

अन्त में अपनी इच्छा ही से सुषुमना मार्ग होकर, ब्रह्मरंध्र बेधके, हरि कृपा से अपनी करनी के बल से श्री रामरूप हो गए; अर्थात् सारूप्यमुक्ति को प्राप्त हुए।

श्रीसुमेर देव जी के पुत्र (श्री कील्ह देव जी) ने सर्ब जगत में बिख्यात, इस प्रकार का बिमल यश भूमण्डल में फैलाया कि, जैसे श्रीभीष्म देव जी ने दक्षिणायन में शरीर नहीं त्यागा बरंच हरिकृपाश्रिता अपनी इच्छा ही से श्री भगवद् धाम को गए; तैसेही, यद्यपि कालसर्प ने आपको तीन बेर काटा, तथापि मृत्यु की तो बात ही क्या है, किंचित बिष मात्र तक न चढ़ा॥

यद्यपि श्रीकील्हदेव स्वामी जी विरक्त थे तथापि आपको "सुमेर-देव-सुत" कहने का तात्पर्य्य यह है, कि इनके सम्बन्ध से उनका नाम कहके, श्री १०८ नाभास्वामी जी ने श्रीसुमेरदेव जी को भी भक्तमाल के भक्तों में गिन्ती किया, सो आगे टीकाकार भगवद्धाम जाना श्री सुमेरदेव जी का बर्णन करैंहीगे॥

(१६१/८४२) टीका। कवित्त।

श्री सुमेरदेव पिता सूबे गुजरात हुतें भयो तनु पात, सो बिमान चढ़ि चले हैं। बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंहराजा ढिग, देखे नभ तात, उठि कही "भले, भले, हैं"॥ पूछे नृप "बोले कासों?" "कैसे कै प्रकासों;" "कहो;" कह्यो हठ परे, सुनि अचरज रले हैं। मानुस

पठाये, सुधि ल्याए सांच, आंच लागी, करी साष्टाङ्ग बात मानी भाग फले हैं ॥ १२१ ॥ (६२९—५०८)

"आंच"=ताप। "अचरज रले हैं" = आश्चर्य में मिले, आश्चर्य युक्त हुए, आश्चर्य को प्राप्त हुए।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकील्हदेव जी के पिता, श्रीसुमेरदेव जी, सूबे गुजरात के "सूबा" (सूबादार) थे; यद्यपि गृहस्थाश्रम ही में रहे, तथापि परम भगवद्भक्त थेः सो आप वहां ही (गुजरात में ही) शरीर त्याग कर विमान पर चढ़के श्री रामधाम को पधारे; उस समय श्रीकील्हदेव जी मथुराजी में राजा मानसिंह के पास बैठे थे। आपने पिताजी को विमान पर आकाश में जाते देख, उठके, प्रणाम कर बोले कि "बहुत अच्छा, भले, पधारिये"

यह सुन मानसिंह ने पूछा कि "आप किससे बोले?" आपने उत्तर दिया कि "प्रगट कहने की बात नहीं है" परन्तु राजा ने बड़ी नम्रतापूर्वक बड़ा हठ किया कि "कृपा करके अवश्य सुनाइये"। तब आपने पिता जी के श्रीरामधाम पधारने की सब वार्त्ता कह सुनाई।

बड़ा आश्चर्य्य मान, साँढ़नी पर मनुष्यों को भेज के राजा ने सुधि मँगवाई।

गुजरात से लौट के उन लोगों ने कहा कि "हां, सत्य है, उसी दिन उसी क्षण आप का तन छूटा है"।

यह सुन मानसिंह अपनी अप्रतीति का पश्चात्ताप

कर, श्रीकील्हदेव जी के समीप गया और उसने सा-
ष्टाङ्ग दण्डवत करके यह बिचारा कि ऐसे त्रिकालज्ञ
महानुभाव का संग तथा सेवा मुझे प्राप्त है; सो मेरा
अहोभाग्य और पूर्व सुकृतों का फल, तथा श्री करु-
णाकर प्रभु की विशेष कृपा है ॥

(१२२/८४२) टीका। कवित्त।

ऐसे प्रभु लीन, नहीं काल के अधीन, बात सुनियें
नवीन, चाहैं रामसेवा कीजिये। धरी ही पिटारी फूल
माला, हाथ डार्‌यो तहां ब्याल कर काट्यो ,कह्यो "फेरि
काटि लीजिये" ॥ ऐसेही कटायो बार तीनि, हुलसायो
हियो, कियो न प्रभाव नेकु रुद्रा रस पीजिये। करि कैं
समाज साधु मध्य यों बिराज, प्रान तजे दशैं द्वार;
योगी थके; सुनि कीजिये ॥ १२२ ॥ (६२९—५०७)

[नव द्वार १।२ नेत्र, ३।४ कर्ण, ५।६ नासिका; ७ मुख, ८ मलद्वार,
९ मूत्रद्वार; १० वां "दशैं द्वार"=ब्रह्माण्ड, ब्रह्मरंध्र मस्तक ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकील्हदेव जी इस प्रकार परब्रह्म श्री सीतापति
प्रभु में लीन रहते थे कि काल आप को अपने आधीन
करही नहीं सक्ता था। एक समय की यह लोकोत्तर
नवीन वार्त्ता सुनिये कि प्रभात में आप श्रीसीताराम
जी की पूजा सेवा करने लगे; सो, सुगन्धित पुष्प मा-
लाओं की पिटारी जो पहिले से वहां रक्खी थी, उसमें

एक काला-सर्प शीतलता तथा सुगन्धि के लिये आ-बैठा था। आपने जब, श्रीप्रभु को स्नान चन्दनादिक अर्पण करके फूल लेने के अर्थ, उस पिटारी में हाथ डाला, तब उस सांपने हाथ में काट लिया; फिर हाथ उसके मुँह के समीप लेजाके आप बोले कि "फिर काट ले, तेरा बिष क्या मुझे चढ़ थोड़े ही सकता है; क्योंकि मेरे तन मन में श्रीसीतारामध्यानामृत व्याप्त है"। इस प्रकार केवल एक क्या बरन आनन्द पूर्वक तीन बेर कटवाया, परन्तु किंचित मात्र भी उस काले-सर्प के बिष का प्रभाव आपको व्याप्त न हुआ, काहे कि आप तो सदा श्रीरामरूपामृतरसको पान कर मग्न रहते थे॥

पुनः कालान्तर में जब आपने अपनी इच्छाही से श्रीरामधाम को गमन करना चाहा, तब समस्त सन्त-मण्डली को बुला, श्री सीताराम मन्दिर में समाज बैठा, सतकार पूजन कर, मध्य में बिराजमान हो, दशमद्वार से (ब्रह्माण्ड फोर के) प्राण को त्याग, श्री-रामधाम को प्राप्त हुए॥ इस बात को देख सुनके योगी लोग आश्चर्यमान, (इस गति से) थक के रह गए।

ऐसे श्रीरामोपासक की कथा सुन सुन के जगत में जीना योग्य है॥

श्रीसुमेरदेव जी।

श्रीसुमेरदेव जी श्रीकील्हदेव स्वामी के पिता, बड़े

भक्त थे। आप की कथा १२१ वें कवित्त (पृष्ठ ४५३ में लिखी गई है॥

कुल्हू के राजा की कथा श्रीपैहारी जी की कथा के अन्तर्गत (पृष्ठ ४४३।४४४ में) है॥

(१६३/८४२) छप्पै।

(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन, काल वृथा नहिँ बित्तयो॥ सदाचार ज्यों सन्त प्राप्त जैसे करि आये। सेवा सुमिरण सावधान, चरण राघव चित लाये॥ प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर। रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥ (श्री) कृष्णदास कृपाकरि भक्ति दत्त, मन बच क्रम करि अटल दयो। (श्री) अग्रदास हरि भजन बिन, काल वृथा नहिँ बित्तयो ३६ (४१/२१३)

"बित्तयो"=बिताया, व्यतीत किया। "धाराधर" =मेघ, जलद। "सुहथ" स्वहस्त, अपने हाथों से। "दयो" = दिया।

स्वामी श्रीअग्रदेव जी।

श्री १०८ अग्रदास स्वामी जी ने श्रीसीताराम जी के भजन बिना किंचित मात्र भी काल व्यर्थ नहीं बिताया। आप का सदाचार किस प्रकार का था कि जैसा पू-

र्याचार्य्य सन्तों का हुआ करता; और प्रातःकाल से वे पूर्व के महात्मा लोग जैसे सम्पूर्ण भगवत कर्म कर आए हैं, वैसेही आप भी मानसी तथा प्रत्यक्ष सेवा पूजा और नाम रूप गुण स्मरण करते हुए अपने चित्त की वृत्ति सावधानता पूर्वक श्रीयुगलसर्कार के चरण-कमलों में एकरस लगाए रहा करते थे।

और जो आपके स्थान के समीप पुष्प फलादि युक्त वाटिका थी उसको "श्रीसीताराम बिहारस्थल अशोकबन और प्रमोदबन" ही भावना से मानकर उसमें प्रीति करते थे; सो प्रीति आपकी लोकप्रसिद्ध हो गई, क्योंकि आप निज कर कमलों से ही उसको सब कृत्य, अर्थात् श्री तुलसी आदि वृक्षों का कोड़ना सींचना सूखे पत्रादिकों का बहारना इत्यादि, निरन्तर किया करते थे; और रसना (जिह्वा) से "श्रीसीताराम" निर्मलनाम इस प्रकार से सप्रेम उच्चारण किया करते थे, कि जैसे कोई अलौकिक आनन्द का मेघ मधुर २ शब्द करके बरसता है।

स्वामी श्री १०८ अग्रदेवजीकी इस प्रकार की वाह्यान्तर प्रेमा परा दशा कैसे न हो? क्योंकि आपके श्रीगुरुदेव पयोहारी श्रीकृष्णदास जी ने कृपा करके, मनवचनकर्म तीनों प्रकार की भक्तिभाव, अपना सर्वस्व, देके अटल (अचल) कर दिया था। श्रीअग्रदेव स्वामी जी की अष्टयामीय भावना-रीति-भक्ति की जय॥

(१६४/८४२) टीका। कवित्त।

दरशन काज महाराज मानसिंघ आयो, छायो बाग मांझ, बैठे द्वार द्वारपाल हैं। झारिकै पतौवा गये बाहिर लै डारिबे को, देखी भीरभार, रहे बैठि ये रसाल हैं॥ आये देखि नाभा जू ने साष्टांङ्ग करी, ठाढ़े, भरी जल आंखैं, चले अँशुवनि जाल हैं। राजा मग चाहि, हारि, आनिकै निहारि नैन, जानी आप, 'जानी भए दासनिदयाल हैं'॥ १२२॥ (६२९—५०७)

"जानी"=जगत के प्राण श्री जानशिरोमणि प्रभु।

वार्तिक तिलक।

एक समय श्रीअग्रदेव स्वामी के दर्शन करने के लिये (आमेर जयपुर के) महाराज मानसिंह आए; उस समय आप बाटिका ही की सेवा में थे; इस्से राजा अपने समाज सहित (बाटिकाही में) गया। अतः द्वारपाल लोग बाटिका के द्वार पर बैठा दिये गए, जिस्में इतर मनुष्यों की भीड़ भीतर न आने पावे। श्रीअग्रदेव स्वामी जी उस क्षण बाटिका के सूखे पत्ते आदि बहार के फेकने के निमित्त बाहर निकल चुके थे; कूड़े को फेंक के जो देखा तो राजसेवकों की भीड़ भाड़ हो रही है और द्वाररक्षक भी द्वार पर बैठे हैं।

अतएव श्रीरामरसिक शिरोमणि स्वामी जी बाहरही एक आम्रवृक्ष के नीचे बैठके श्री प्रभु की मानसी सेवा ध्यान में मग्न हो गए। विलम्ब देख श्री६नाभा जी

आके साष्टाङ्ग दण्डवत कर सन्मुख खड़े हो, आपकी निस्सीम निरभिमानता सरलता तथा प्रेम-मग्नता देख प्रेम से विह्वल हो गए, नेत्रों से प्रेमाश्रु की धारा चलने लगी। उधर राजा आप के आने का मार्ग देख देख हारके, आप ही आके दोनों महानुभावों की प्रीति की यह विलक्षण दशा अपने नेत्रों से देख, कृतकृत्य हो, उसने यह जाना कि साक्षात् जानशिरोमणि श्रीराम जी ही अस्मदादिक दासों पर दयालु होके "श्रीअग्रदेव" रूप से प्रगट हुए हैं॥

आप "शृङ्गार रस के आचार्य्य "श्रीअग्रअली" के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप का अष्टयाम, आपकी "ध्यान मंजरी" आप के कुण्डलिया, पदावली इत्यादि प्रख्यात ही हैं। आप के विशेष प्रभाव आदि में मानसी का वर्णन, (पृष्ठ ४८।५५ में) हो चुका है; और यहां वाटिकाप्रीति प्रसंग कुछ लिखा गया।

श्रीअग्रस्वामी जी के प्रेम की, प्रशंसा कहां तक हो सकती है जिनके कृपापात्र, श्रीभक्तमाल-जी-के-कर्त्ता श्री १०८ नाभास्वामी जी हुए॥

आप को श्रीजानकी जी महारानी ने कृपा करके दर्शन दिया। आप अपनी इच्छा से तन तज के श्रीसाकेत को पधारे॥

छप्पै। श्री अग्रदेव अव्यग्रमन अग्र उपासक राम सिय॥ अष्टयाम कैङ्कर्य्य चाह तन मन में धास्यो।

कियो भक्तिरस प्रगट गूढ़-प्रभु-तत्व उचाख्यो ॥ "ध्यान-मंजरी," सरस रसिक-मन मोद प्रचाह्यो । सीताराम अनन्यभाव त्रयविध निर्बाह्यो ॥ पूर्वाचारज रीति रस-रङ्गमणी हित दामहिय । श्री अग्रदेव अव्ययगमन अगू उपासक राम सिय ॥ १ ॥ (श्रीरामरसरङ्गमणि जी)

गोस्वामी श्री१०८ नाभा जी महाराज का नाम श्रीनारायणदास जी भी (पृष्ठ ५७ में) लिखा जा चुका है । आपकी चरचा पृष्ठ १९ तथा पृष्ठ ५ में भी आई है, एवं ४८ वें से ५७ वें पृष्ठ पर्य्यन्त आप का वर्णन हो चुका है; और यह भी कि भक्तमाल विक्रमीय सम्वत की १७ वीं शताब्दी में, अर्थात् १६४० और १६८० के बीच में, लिखी गई है ।

भगवान् श्रीरामानन्द का समय, (पृष्ट ४३० में,) 'पन्द्रहवीं शताब्दी' लिख चुके हैं। "श्रीराधाकृष्णादास सम्पादित भक्तनामावली" में भी यही वर्णित है।

☞ स्पष्ट है कि स्वामी श्री १०८ अग्रदेव जी, विक्रमीय सम्वत की सत्रहवीं शताब्दी में विराजते थे॥

श्री १०८ नाभास्वामी जी ने, पहिले चारो भागवत सम्प्रदायों के चारो आचार्य्यों का वर्णन (पृष्ठ ३७५ से ३९५ तक) किया; फिर अपने निज सम्प्रदाय (श्री "श्रीसम्प्रदाय") की वार्त्ता (पृष्ठ ४११ में) उठाई; पुनः श्रीगुरु परम्परा का वर्णन, स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी से लेके, श्री अनन्तानन्द द्वारा, अपने गुरु भगवान् तक, अर्थात् श्री१०८ अग्र स्वामी जी पर्य्यन्त (पृष्ठ ४५६ से ४५९ तक), गान किया; जय जय जय। जब श्रीगुरु यश गा चुके, तब पुनः पीछे लौटकर, अब सब से पुराने (कलियुग ३८८९) आचार्य्य, श्री शङ्करस्वामीजी का वर्णन करते हैं—

(१६५/८४२) छप्पै।

कलियुग धर्मपालक प्रगट, आचारज शङ्कर सुभट॥ उतशृङ्खल अज्ञान जिते अन ईश्वरवादी। बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥ बिमुखनि को दियो दण्ड, ऐंचि सन्मारग आने। सदाचार

की सींव विश्व कीरतिहि बखाने ॥ ईश्वरांश अतवार महि, मरजादा मांड़ी अघट। कलियुग धर्मपालक प्रगट, आचारज शङ्कर सुभट ॥३७॥ ($\frac{४२}{२१३}$)

"अनीश्वर बादी"=वे नास्तिक लोग, कि जो संसार का कर्त्ता किसी को, ईश्वर नहीं मानते बरन कहते हैं कि स्वयं स्वभावतः सब होता रहता है और बिनशता है। "ऐंचि"=खींचकर। "माँड़ी" =मण्डन किया। "उत्शृङ्खल"=शृङ्खला को उत्पादन करनेवाले। "बुद्ध"=बौध।

श्रीशङ्कराचार्य्य जी।

बार्तिक तिलक।

कराल कलियुग में अधर्म और अधर्मियों से धर्म को अर्थात् वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, तथा भागवत धर्म को पालन रक्षण करनेवाले परम सुभट श्रीशङ्कराचार्य्य जी प्रगट हुए॥ किस प्रकार से आपने धर्म पालन किया सो सुभटता वर्णन करते हैं कि जितने उतशृङ्खल अर्थात बेदविदित सनातन-धर्म-परम्परा के उठा देने वाले अज्ञानी अनीश्वरवादी थे, और बुद्धमतावलम्बी तथा कुतर्की जैनमतवादी एवं पाखण्डपरायण आदिक जितने विमुख थे, तिन सब को यथा योग्य दण्ड देके उन कुमार्गों से खींच सनातन सतमार्ग में (ला के, स्थापित करके) चलाया; इस प्रकार की धर्म सुभटता की।

श्रुति-स्मृति-विहित सज्जन-परिगृहीत समीचीन आचरण की सीमा (मर्य्यादा) ही हुए।

"ईश्वर" के (शङ्कर जी के) अंशावतार प्रगट होके, बेदधर्ममर्य्यादा को आपने मंडन किया कि जो फिर घटे नहीं एक रस बनी रहे। आपकी ऐसी सत्कीर्त्ति सम्पूर्ण विश्व बखान करता है॥

श्रीशङ्कराचार्य्यजी (श्रीशङ्करांशावतार) दक्षिण देश में प्रगट हुए। स्मार्त मत रक्षक दण्डी सन्यासी थे। मण्डनमिश्र नामक एक ब्राह्मण जिन को किसी ने श्री ब्रह्मा जी का अंशावतार भी लिखा है, बड़े कर्म-काण्डी मीमांसामतवादी थे मानो कर्म ही को वह ई-श्वर मानते थे; उनको आपने (श्रीशंकरस्वामी ने) शास्त्रार्थ में निरुत्तर कर शिष्य (भगवत शरणागत) किया॥ (दो०) बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गए बिनु राम पद होय न दृढ़ अनुराग॥ शिवजी की आप पर बड़ी कृपा थी। आपने प्रायः सब बड़े बड़े देवतों की स्तुतियां लिखीं और बहुत देवतों के मन्दिर भी बनवाए। स्मार्त आप को अपना आचार्य्य, और अद्वैतबादी अपना मानते हैं; निर्गुणमतावलम्बी अपना तथा शैव और शाक्त भी अपना अपना आचार्य्य आपको पुकारते हैं। "शिव विष्णु भक्ति"; "भजगोविन्दं"; "बिश्वेशपादाम्बुज दीर्घ

नौका" इत्यादि उपदेश आपही के हैं; "ब्रह्मसूत्रभाष्य" तथा "नृसिंहतापनी भाष्य," आदि आपके प्रख्यात ही हैं। आप के मुख्य शिष्य चार प्रसिद्ध हैं—

१. पद्माचार्य्य जी;	३. स्वरूपाचार्य्य जी।
२. पृथ्वीधराचार्य्य जी;	४. तोटकाचार्य्य जी।

ऐसा कहते हैं कि आप इस मर्त्यलोक में केवल ३२ ही वर्ष रहे।

कलि संवत्सर	विक्रमीय सम्बत	ईसवी सन्
३८८९	८४५	७८८

Mr R. C. Datt (आर० सी० दत्त); A. C. Mukerji (ए० सं.० मुकर्जी) M. A. B. L.; Dr. W. W Hunter (डाक्टर् हन्टर); तथा श्रीतपस्वी राम जी सीतारामीय ने भी ऐसाही लिखा है॥

"श्रीशङ्कर दिग्विजय" नामक ग्रन्थ में आप का समस्त जीवन चरित्र है। यह भी कथा उसी की है।

अब श्री प्रिया दास जी महाराज की टीका (कवित्तों) पर ध्यान दीजिये—

(१६६/८४२) टीका। कवित्त।

बिमुख समूह लैकैं किये सनमुख श्याम, अति अभिराम लीला जग विसतारी है। सेवरा प्रबल बास केवरा ज्यों फैलि रहे; गहे नहीं जाहिं, बादी शुचि बात धारी है॥ तजिकै शरीर काहू नृप में प्रवेश कियो, दियो करि ग्रन्थ, "मोह मुद्गर" सुभारी है। शिष्यनि सों कह्यो "कभूं देह में आवेश जानो तब ही बखानो आय सुनि कीजै न्यारी है"॥१२४॥ (६२१-५०५)

"शुचि" = शृङ्गार रस। (अमरकोशे "शृङ्गारः शुचिरुज्वलः" ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीशङ्कराचार्य्य जी ने भगवत विमुख (सेवड़ा, अबुध, अज्ञानी, बौद्ध, नास्तिक, अनीश्वरबादी, चार्वाक, जैन, इत्यादि समूहों को बाद में परास्त करके दंड देके, श्रीमन्नारायण श्याम सुन्दर जी के सन्मुख कर दिया, और श्रीबदरिकाश्रमादिक भगवद्धामों के माहात्म्य को प्रसिद्ध कर भगवतस्तोत्रादि "श्रीविष्णु सहस्र नाम भाष्य" गीता भाष्यादि अति सुन्दर भगवत यश लीला को जग में विस्तार किया। उस काल में सेवरा आदिक प्रबल नास्तिक समूह इस प्रकार से लोक में फैले थे कि जैसे बाटिका में फूले केवड़े की बास फैल जाती है; और बड़े ही बिबादी थे, कि वेद वाक्य के ग्रहण में किसी प्रकार से आ नहीं सकते थे।

एक समय श्रीशङ्कराचार्य्य जी से शास्त्रार्थ में और २ विवादों से पराजय होके, आप को बाल ब्रह्मचारी जान के "शुचि" अर्थात् शृङ्गार रस (स्त्री पुरुष प्रसङ्ग) की वार्त्ता का बाद करने लगे। तब आप उस बात के जान्ने के अर्थ कुछ अवकास लेके किसी राजा ("अमरुक") के मृतक शरीर में, परकाय प्रवेश सिद्धि के बल से, घुस गए; और अपने शरीर की रक्षा करने को शिष्यों से कह गए। तथा, प्रवेश करने के पूर्व ही एक "मोह मुद्गर" नामक ग्रन्थ बना के शिष्यों

को पढ़ा के कहे गए कि "कदाचित विषयाशक्त होके नृप देह विषे मेरा ममत्त्व आवेश देखो तो आके यही ग्रंथ मुझे सुनाना, सुन्ते ही मैं नृप शरीर से न्यारा होके (तज के) निज देह में चला आऊंगा"

(६९७ / ८४२) टीका। कवित्त।

जानिकै आवेश तन शिष्यनैं, प्रवेश कियो रावले में देखि सो श्लोक लै उचार्‌यो है। सुनत हि तज्यो तन, निज तन आय लियो, कियो यो प्रनाम दास, पन पूरो पार्‌यो है॥ सेवरा हराए बादी; आए नृप पास, ऊंचे छात पर बैठि एक माया फन्द डार्‌यो है। जल चढ़ि आयो, नाव भाव लै दिखायो, कहे "चढ़ौ, नहीं बूड़ौ;" आप कौतुक सों धार्‌यो है॥ १२५॥ (६२९-५०४)

"रावल"=राजा का गृह।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीशङ्कराचार्य्य जी जितने काल की अवधि शिष्यों से कह गए थे सो काल व्यतीत हो गया; तब शिष्य ने जाना कि "जो स्वामी जी ने आज्ञा की थी सो काल तो बीत गया, अतएव अब जाना जाता है कि राजा के तन में ममत्व का आवेश आप को कुछ हो गया है;" तब राजा के गृह में जाके शिष्य ने "मोह मुद्गर" के श्लोक उच्चारण करके नृप शरीरस्थ स्वामी जी को सुनाया। सुनते ही आपने नृपतन त्याग के अपने शरीर को ग्रहण कर लिया। शिष्य साष्टांग प्रणाम कर कहने लगे कि "हे स्वामी! जो पन किया था सो

आपने पूरा किया;" आप बोले "तुमने भी मेरी आज्ञा भले पाली।"

श्रीशङ्कराचार्य्य जी ने उस काम कौतुक बाद को, इस ढंग से समझ के, कुबादी सेवड़ों को बाद में परास्त किया।

जब सेवरों ने जाना कि "अब तो हम सब हार गए, राजा शङ्कराचार्य्य जी ही का मत ग्रहण करेगा, अतः राजाको शङ्कराचार्य्य सहित माया से मारडालें" तब, कुमत करके, निज शिष्यों सहित मायावी सेवड़ों का गुरू राजा तथा श्रीशङ्कराचार्य्य जी को लेके ऊंचे छत पर जा बैठा और अपने माया फन्द का प्रयोग किया कि जिस्से चारों ओर से प्रलय कालीन समुद्र सरीखा जल छत के समीप तक चढ़ आया और उसी जल में छत के समीपही माया की एक बहुत बड़ी नौका भी आ पहुंची; तब सेवड़ों के उस गुरू ने राजा से कहा "कि शीघ्र इस नाव पर चढ़ो, नहीं तो डूब जाओगे।" राजा ने भय से चढ़ना चाहा; परन्तु श्रीशङ्कराचार्य्य जी ने इस माया कौतुक को अपने मन में मिथ्या ही धारण किया (झूठ समझा)

(१६६/८४२) टीका। कवित्त।

आचारज कही यो चढ़ाओ ईनि सेवरानि; राजा ने चढ़ाए; गिरे टूक उड़ि गए हैं। तब तो प्रसन्न नृप, पाव पस्यो, भाव भस्यो, कह्यो जोई कस्यो धर्म भागवत

लए हैं॥ भक्ति ही प्रचार; पाछे मायाबाद डारी दीनो, कीनो प्रभु कह्यो, किते बिमुख हु भए हैं। ऐसे सो गँभीर सन्त धीर वह रीति जानें, प्रीति ही में साने हरि रूप गुन नए हैं ॥ १२६ ॥ (६२९–५०३)

वार्त्तिक तिलक ।

उस माया जाल के जल में वह माया रूपी मिथ्या नौका देखके राजा चढ़ताही था तभी श्रीशंकराचार्य्य जी ने राजा को चढ़ने से रोक के कहा कि "पहिले इन सब सेवड़ों को चढ़ाओ"। राजा ने सेवराओं से कहा कि "हां आगे आप सब ही चढ़िये" यह सुन सेवड़ों ने बिचारा कि "जो अब हम इस नौका में नहीं चढ़ते तौभी तो राजा हम सब को मार ही डालेगा"; इस्से वे सब सेवड़े राजा के भय से चढ़े। वह नाव तो देखने मात्र की थी ही, भूमि में गिरके सब सेवरे टुकड़े टुकड़े होके मर गए। फिर तो न वह नाव ही रही, न वह जल ही रह गया।

तब तो यह सब कौतुक देख राजा अत्यन्त प्रसन्न हो, धन्यबाद पूर्ब्बक श्री शंकरस्वामी के चरणों पर गिरा; तथा भक्तिभाव में भर गया। और, आप ने जो उपदेश दिया राजा ने सो ही किया, अर्थात् उसने वेदविहित भागवत धर्म को अपनी प्रजा समेत ग्रहण किया।

इस इस प्रकार से श्रीशंकराचार्य्य जी ने प्रथम तो श्री भगवद्भक्ति तथा भागवत धर्म ही का भलीभांति

प्रचार किया था; परन्तु पीछे कालानुवर्ती कौतुकी प्रभु की प्रेरणा से, अपने मत में स्वयं उन्होंने ☞ कुछ मायावाद डाल दिया; कि केवल निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है और सब माया है, अर्थात् ईश्वर को भी विद्यामाया युक्त कहा और ज्ञान, भक्ति, वेद, मन्त्र, इत्यादिक मोक्ष साधनों को भी केवल विद्यामायामय बताया, तथा जीव और संसार को अविद्यामायामय, और दोनों मायाओं को तीनों काल में मिथ्या कहा। अतः कितने जीव भगवत से और भागवतधर्म से विमुख हो गए और होते जाते भी हैं। (यथा, दोहा) ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहैं न दूसरि बात। कौड़ी लागी लोभ वश करहिं विप्र गुरु घात॥"

और जो धीर गम्भीर (श्री श्रीधर स्वामी आदि सरीखे) सन्त हैं सो तो श्रीशंकराचार्य्य जी की प्रथम भक्ति मति रीति को यथार्थ जान के अपने मन को प्रीति ही में सान के नित्य नवीन भगवत रूप गुण लीला में लौलीन हुए हैं तथा होते हैं॥

इन कथाओं को किसी किसी ने प्रकारान्तर से भी लिखा है, परन्तु यहां तो श्री प्रिया दास जी के अक्षरों के अनुसार ही लिखा गया॥

☞ श्रीशंकराचार्य्य जी कृत "मोह मुद्गर" के १६ (सोलह) श्लोकों में से, ये पांच श्लोक—

"का तव कान्ता कस्तेपुत्रः, संसारोय मतीव विचित्रः।
कस्य त्वं वा कुत आयातः, तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः॥३॥
तत्त्वं चिन्तय सततं चित्ते, परिहर चिन्तं नश्वरवित्ते।
क्षणमिह सज्जनसङ्गतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका॥६॥
सुरमन्दिरतरु मूल निवासः, शय्या भूतलमजिनं बासः।
सर्ब परिग्रह भोग त्यागः, कस्य सुखं न करोति बिरागः॥१०॥
बालस्तावत् क्रीडासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणी रक्तः।
बृद्ध स्तावत् चिन्तामग्नः, परमेब्रह्मणि कोपि न लग्नः॥११॥
यावज्जननं तावन्मरणं, तावज्जननी जठरे शयनम्। इति
संसारे स्फुटतर दोषः, कथमिह मानव तव सन्तोषः?॥१३॥"

(१८१/८४२) छप्पै।

"नामदेव" प्रतिज्ञा निर्बही, ज्यों त्रेता* नरहरिदास की॥ बालदसा "बीठल" पानि जाके, पै पीयौ॥ मृतक गऊ जिवाय परचौ असुरन कौं दीयौ॥ सेज सलिल तें काढ़ि पहिल जैसी ही होतो।

देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती॥ "पंडुरनाथ" कृत अनुग ज्यों छानि सुकर छाई घास की। नामदेव प्रतिज्ञा निर्बही, ज्यों त्रेता नरहरि दास की॥ ३८॥ (४३/२१३)

"सोती," = श्रोत्री, वेद पाठी ब्राह्मण।
"पानी" = पाणि, कर, हाथ।
"होती" = थी।

वार्तिक तिलक।

श्री नामदेव जी।

श्रीभगवद्भक्त नामदेवजी की प्रतिज्ञा श्रीहरिकृपा से इस प्रकार से निबही कि जैसे त्रेता* में श्री नृसिंह जी के दास श्री प्रह्लाद जी की (प्रतिज्ञा निबही थी)।

*श्री नृसिंहावतार सत्ययुग का कहा जाता है, और श्रीनाभास्वामी जी ने त्रेता लिखा, इसका तात्पर्य्य यह है कि उक्त अवतार सतयुग त्रेता के संध्या में हुआ अतएव त्रेता ही कहा; हिरण्यकशिपु ने बर ही तो मांग लिया था कि 'न सत्ययुग में मरे न त्रेता में'॥

देखिये, बालअवस्था ही की प्रीतिदशा में जिनके हाथों से श्रीविट्ठलभगवान् ने दूध पिया। और मरी हुई गाय को जिला के असुरों (यमन म्लेच्छों) को परीक्षा परचौ दिया। तथा, उस यमनराज की दी हुई सेज (पलंग) को जो आपने नदीके जल में डाल दिया था, सो उस जल में से वैसेही अनेक पलंग निकाल के दिखा दिये।

और जब आपने मन की दुचिताई के भय से पनही कमर में बांध ली थी, उस्को देखके पुजारी पंडों ने आप का तिरस्कार किया, इस्से आप मन्दिर के पीछे जाके भजन गान करने लगे; तब "श्रीपण्ढरीनाथ" जी के देवालय का द्वार उलट के आप ही की ओर हो गया जिस्को देखके अत्यन्त सकुचाके सब पूजक श्रोत्री लोगोंने श्रीनामदेव जी से विनयकर अपना अपराध क्षमा कराया।

पुनः भक्तवत्सल श्रीपंडुरनाथ जी को आपने अपनी प्रेमपुंजभक्ति के बल से, अनुग (सेवक) सरीखा कर लिया, यहां तक कि प्रभु ने स्वयं अपने कर कमलों से आप का छप्पर छाया॥

(दो०) "जिन जिन भक्तन प्रीति की, ताके बस भए आनि। सेन होइ नृप टहल किय, नामदेव छाइँ छानि॥" (श्रीध्रुवदास जी)

श्रीशिव सम्प्रदाय (विष्णुस्वामी संप्रदाय) में श्रीलक्ष्मणभट्टजी से और श्रीवल्लभाचार्य्य जी से आप पहिले हुए; आपके गुरु श्रीज्ञानदेव जी; शिष्य त्रिलोचन देव; और आपके नाना श्री बामदेव जी थे। आप सुकवि थे; आपकी कविता उदासियों के "ग्रन्थ साहिब" में भी संग्रहीत है। यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि आप श्रीकबीर जी के समकालीन थे।

कलिसंवत्सर	विक्रमीय सम्बत्	ईसवी सन्
४५८९	१५४५	१४८८

श्रीराधाकृष्ण जी (काशीनागरीप्रचारिणी सभा), तथा श्रीतपस्वीराम सीतारामीय जी ने भी ऐसाही लिखा है; और उस समय भारतबर्ष में "बादशाह सिकन्दर लोदी" था ॥

(१७०/८४२) टीका। कवित्त।

छीपा वामदेव हरिदेव जू को भक्त बड़ो, ताकी एक बेटी पतिहीन भई जानिये। द्वादश बरष मांझ भयो तन, कही पिता सेवा सावधान मन नीके करि आनिये॥ तेरे जे मनोरथ हैं पूरन करन एई जो पै दत्तचित्त ह्वैके मेरी बात मानिये। करत टहल प्रभु बेगिही प्रसन्नभए, कीनी काम बासना सु पोखि जन मानिये॥ १२७॥ (६२९—५०२)

"छीपा" - छीट वस्त्र छापनेवाले (छीपा दरजी नहीं)

वार्त्तिक तिलक।

पण्डरपुर (दक्षिण) में, जाति के छीपा, श्रीबामदेवजी श्री हरि जी के परम भक्त हुए; तिनकी एक कन्या थोड़ीही अवस्था में बिधवा हो गई। जब उसकी अवस्था बारह बर्ष की हुई, तब उसके पिता श्रीबामदेव जी (श्रीनामदेव जी के नाना) ने कहा कि "श्रीपण्डुरनाथ (श्रीबिट्ठलदेव) जी, कि जो मेरे गृह में विराज-

मान हैं, इनकी सेवा पूजा सावधान मन लगा के भली भांति से किया कर, तेरे जितने मनोरथ हैं उन सब के पूरेकरनेहारे येही प्रभु हैं; परन्तु जो मेरी बात में विश्वास करके चित्त लगाके प्रेम सहित सेवा करेगी तो"।

इस प्रकार पिताका उपदेश सुन, वह बड़ भागिन सप्रेम सेवाटहल दिन रात करने लगी । उस पर शीघ्र ही प्रसन्न हो प्रियतम प्रभु ने अति अनूप किशोर रूप से साक्षात् दर्शन दिया, जिन्हे देख उसको काम बासना हुई । सर्वकामपूरक प्रभु ने उसकी कामना पूर्ण की, यहां तक कि वह गर्भवती हो गई । इस कलिकाल में भी ऐसी अनोखी प्रगट कृपा प्रभु की हुई, इसको विश्वास पूर्वक मानिये ॥

(दो०) "कलियुग सम नहिं आन युग, जो नर करि विश्वास । गाइ गाइ हरि भक्त यश, भव तरु बिनहि प्रयास ॥"

(१७१/२४२) टीका । कवित ।

बिधवा की गर्भ; ताकी बात चली ठौर ठौर, दुष्ट शिरमौरनि की भई मन भाइये । चलत चलत वामदेव जू के कान परी, करी निरधार प्रभु आप अपनाइये ॥ भए जू प्रगट बाल, नाम "नामदेव" धस्यो, कस्यो मन भायो सब सम्पति लुटाइये । दिन दिन बढ़यो, कछु और रंग चढ़यो; भक्तिभाव अंग मढ़यो, कढ़यो, रूप सुखदाइये ॥ १२८ ॥ (६२९-५०१)

"कढ़्यो" = निकला। "करीनिर्धार" = निश्चय निर्णय किया; पूछा। "मढ़्यो" = मढ़ा। छाया, लपेटा।

वार्त्तिक तिलक।

कुछ कालान्तर में जब लक्षणों से उनका गर्भ प्रत्यक्ष जान पड़ने लगा, तब विधवा के गर्भ की वार्त्ता जहां तहां लोग मुहांमुहीं करने लगे, और दुष्टशिरोमणि निन्दकों की मन भाई बात हुई; क्योंकि वे निन्दा करने के लिये छिद्र ढूंढ़ते ही रहते हैं, सो मिल गया। वार्ता चलते चलते श्रीभक्त बामदेव जी के कानों तक पहुँची; तब आपने एकान्त में पुत्री से पूछा कि "यह क्या बात है?" इन ने, बांछा-पूरक–कृपा–युक्त प्रभु के दर्शन देने तथा का अपने को अपना लेने की सत्य सत्य बात, पूरी पूरी कह सुनाई; आप (श्रीवामदेवजी) सुनके अति हर्षित हुए। धन्य आप के भाग्य।

प्रसव काल की पूर्णता पर अनूपम बालक प्रगट हुए; श्रीबामदेव जी ने बालक का नाम "नामदेव" रक्खा और मनमाना जन्मोत्सव कर, घर की सम्पति को लुटाया; जय जय।

बालक दिन दिन प्रति बढ़ने लगा; इन में लोक के रंगों से कुछ और ही रंग; (श्रीरामानुराग रंग) चढ़ा; और प्रेम भक्तिभाव से लपेटा हुआ अति सुखदाई सुन्दर रूप का प्रकाश निकलने लगा, क्या कहना॥

(१७३/८४२) टीका। कवित।

खेलत खेलौना प्रीति रीति सब सेवाही की, पट

पहिरावै, पुनि भोग को लगावहीं। घंटा लै बजावैं, नीके ध्यान मन लावैं, त्यों त्यों अति सुख पावैं, नैन नीर भरि आवहीं॥ बार बार कहैं नामदेव बामदेव जू सों "देवो मोहि सेवा मांझ, अतिही सुहावहीं"। "जाऊं एक गाउँ, फिरि आऊं दिन तीनि मध्य, दूध को पिवावो, मत पीवो, मोहि भावहीं॥१२९॥(६२९-५००)

"सेवा"=अर्चावतार भगवत की परिचर्य्या; ठाकुर जी।

जब श्रीवामदेव जी की पांच बर्ष के निकट बाल्यावस्था हुई: तब आप खेल खेलने लगे; सो और संसारी खेल नहीं; किन्तु जैसे अपने नाना जी को पूजा करते देखते थे, वैसे ही, प्रीति रीति से सब सेवा पूजाही का खेल खेलते थे। कोई पाषाणादिक की मूर्त्ति कल्पित करके उनको स्नान कराके बस्त्र पहिराते, पुष्प चढ़ाते, भोगलगाते, घंटा बजाके धूप आर्ती करते और भली भांति आंखें मूंद के ध्यान में मन लगाते थे; बरंच ध्यान करते समय आपको श्रीप्रभुकृपा संस्कार बश अपूर्व सुख उत्पन्न होता और नेत्रों में प्रेमानन्द का जल भर आता था। यथा (चौ०) "खेलौं तहां बालकन मीला। करौं सकल रघुनायक लीला॥"

कुछ कालान्तर में श्रीनामदेव जी श्रीबामदेव जी से बारम्बार कहने लगे कि "नाना जी! मुझे अपनी सेवा अर्थात् अपने ठाकुर जी, पूजा करने के लिये,

दीजिये; मुझको उसमें बड़ाही सुख प्राप्त होगा क्योंकि मुझको सेवा अत्यन्त प्रिय लगती है"।

इस प्रकार सचाई सहित अति अभिलाषा देख, श्री बामदेव जी एक दिन बोले कि "मुझे तीन दिनों के लिये एक ग्राम को जाना है; सो जब जाऊंगा तब तुम पूजा करना, और दूध ठाकुर जी को पिलाना, परन्तु प्रभु को भोग लगाए बिना तुम आप न पीना"। श्रीनामदेव जी ने सुन के कहा कि "हां बहुत अच्छा, यह तो मुझे बहुत ही भला लगता है"॥

(१७३/८४२) टीका। कवित।

कौन वह बेर ? जेहिं बेर दिन फेर होय, फेर फेर कहैं "वह बेर नहिं आइयें?" आई वह बेर, लै कराही मांझ हेरि दूध डार्यो युग सेर मन नीके कै बनाइयें॥ चौपनि के ढेर, लागि निपट अौसेर, दृग आयो नीर घेरि, जिनि गिरै घूटि जाइयें। माता कहै टेरि, "करी बड़ी तैं अबेर, अब करी मति झेर" "आजू चितदै अौटाइयें॥ १३०॥ (६२९—४११)

"बेर=बेला, समय	"निपट"=अत्यन्त
"हेरि"=देख भाल के	"अबेर"=बिलम्ब
"चौप"=प्रेम का चाव	"अवसेर"=चिन्ता
"ढेर"=राशि, समूह	"झेर"=झेल, बिलम्ब

"घूंट जाइये"=रोक लूं, रोकलेना चाहिये॥

वार्तिक तिलक।

जब श्रीबामदेव जी आप को सेवा देके उस ग्राम

को चले गए, तब श्रीनामदेव जी को रात्रि ही से छट-पटी लगी और आप मन में यह बिचारने लगे कि "वह बेला कौन है? कि जिस बेला में फिर दिन आवे; और बारंबार माता से पूछने लगे कि "मां! अभी सेवा का समय नहीं आया?"

होते होते वह प्रभात बेला आगई; आप उठ के स्नानादिक और पूजा करके, दो सेर दूध देख भाल छान के कड़ाही में छोड़ औंटने लगे। मन में ऐसी अभिलाषा कर रहे हैं कि "भले प्रकार से दूध को बनाऊं"। चित्त में प्रभु प्रेम चाह चोप की अति अधिकहता है, और अत्यन्त औसेर अर्थात् चिन्ता भी है कि "मुझ से दूध कैसे उत्तम बने जिसमें प्रभु पीलेवें"। ऐसी चिन्ता करते में नेत्रों में प्रेमजल भर आया; तब आपने उसको रोका कि कहीं कोई बूंद दूध में न टपक पड़े।

माता पुकार के कहने लगीं कि "बेटा! तूने बड़ा बिलम्ब लगाया, अब अधिक झेल न कर, शीघ्र भोग लगा"। सुनके आप बोले कि "माता! मैंने चित्त लगा के दूध औंटा है इससे कुछ बिलम्ब हो गया"॥

(१७४/८४२) टीका। कवित्त।

चल्यो प्रभु पास, ले कटोरा छबिरास, तामैं दूध सो सुबास-मध्य, मिसिरी मिलाइये। हिये मैं हुलास, निज अज्ञता को त्रास, ऐपैं करैं जो पै दास मोहि, महा सुख दाइये॥ देख्यो मृदु हांस, कोटि-चांदनी को

भास, कियौ भाव को प्रकास, मति अति सरसाइये।
प्याइबे की आस, करि ओट कछु, भस्यो स्वास; देखिकै
निरास, कह्यो "पीवौ जू अघाइये" ॥१३१॥ (६२९-४९८)

"भस्यो स्वास"=स प्रेम चित्त एकाग्र किया॥

वार्त्तिक तिलक।

जब दूध सिद्ध हो गया, तब एक बड़े सुन्दर कटोरे में सुगन्ध द्रव्य तथा मिस्री मिलाया हुआ वह दूध लेके श्रीनामदेवजी, भगवान् श्रीबिट्ठलदेवजीकेपास चले। हृदय में अतीव प्रेमानन्द का हुलास और साथ ही साथ अपनी अज्ञता का त्रास भी, अर्थात् यह कि "मुझ से दूध बनाते बना कि नहीं? प्रभुके योग्य हुआ पियेंगे? कि नहीं? अहा! यदि मुझे अपना दास बनालें और कृपा करके दूध पीलें। तो मैं सदा सेवा करके सुख पाऊं।"

योंही बिचार करते, समीप जाके, आपने श्रीप्रभु का श्रीमुख अवलोकन किया। तो देखा कि श्रीविग्रह जी में कोटिन चांदनी के भास के समान मृदु मुस्क्यान प्रगट हो रही है; क्योंकि श्रीनामदेव जी के प्रेमभाव का प्रकाश प्रभु ने अपने विग्रह में प्रगट दिखाया; तब तो नव अनुरागी श्रीनामदेव जी की मति अति ही सरस हो आई। और, दूध पान कराने की आसा से कटोरा आगे रख, किसी वस्त्र का ओट कर, प्रेम सहित स्वांस भर, चित्त एकाग्र कर, अर्पण किया; दूध पीने की प्रार्थना की।"

पुनः आवर्ण वस्त्र को कुछ अलग करके देखा कि सब दूध अभी तक ज्यों का त्यों ही रक्खा है; तब, कुछ निरास से होके प्रार्थना करने लगे कि "प्रभो ! आप अति अघाके दूध पीजिये जिस्में मैं भी प्रेमानन्द से अघा जाऊं ॥

(१७१/८४२) टीका । कवित ।

ऐसैं दिन बीते दोय, राखी हिये बात गोय, रह्यो निशि सोय, ऐपै नींद नहीं आवहीं । भयो जू सबार, फिरि वैसैंही सुधार लियौ हियौ कियौ गाढ़ो, जाय धस्यौ पियो भावहीं ॥ बार बार "पीवो" कहूं; अब तुम पीवो नाहिँ, आवै भोर नाना; गरे छूरी दै दिखावहीं । गहि लीयो कर, "जिनिकर ऐसी पीवौं मैं" तो पीवेकौं लगेई, "नेकु राखौ, सदा पावहीं" ॥१३२॥ (६२१—४१७)

"सबार" = सबेरा, प्रभात, भोर ।

"गाढ़ौ हियौ" = दृढ़ मन ।

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीनामदेव जी ने बहुत प्रार्थना की परन्तु प्रभु ने दूध नहीं पिया; तब आप भी उपवासही करके रह गए; दूसरे दिन फिर वैसेही दूध औंट, आगे रख विनय किया तब भी प्रभु ने नहींही पिया । दोनों दिन दूध न पीने की बात माता से न कही; भूखेही चुपचाप रात्रि में पड़ रहे; परन्तु नींद किंचित भी नहीं

आई; केवल प्रभु के दूध न पीने की चिन्ता ही में सारी रात व्यतीत हुई ॥

तीसरे दिन का प्रातःकाल हुआ; फिर उसी प्रकार से पूजा आदि करके दूध को औंट, सुधार, प्रभुके आगे ला रक्खा; और जो, प्रभु के दूध न पीने के सोच से मन सिथिल हो रहा था, सो दृढ़ करके दीनता युक्त कहने लगे कि "हे प्रभो! दूध पीलीजिये; जिस्में मैं शोक से मुक्त हो आनन्द पाऊं"। इतने पर भी सर्कारने जब दूध नहीं ही पिया, तब तो श्रीनामदेव जी अति अधीर हो गए, क्योंकि बाल्यावस्था के मुग्ध मधुर प्रेम विश्वास बस आप ऐसाही समझते थे कि "प्रभु नाना के हाथों से नित्य ही दूध पिया करते हैं" ॥

अतः परम प्रेम की विलक्षण विहूलता से, आप कहने लगे कि "मैं बारम्बार सविनय कहता हूं कि दूध पीजिये पीजिये, पर आप अब नहींही पीते; और कल्ह सबेरे नाना आवेंगे मुझ से आप के दूध न पीने का समाचार सुन, मुझे आपकी सेवा पूजा से अलग कर ही देंगे; इस्से भला है कि मैं मरही जाऊं" इतना कह तीक्ष्ण छूरी ले, प्रभु को दिखा के, अपने गले पर लगाही तो दी।

तब तो, वहीं, भक्तवत्सल कृपासिन्धु विश्वासवर्द्धक प्रभु ने अतीव आतुरता से नामदेव जी का छूरी-युक्त-

हाथ पकड़ लिया और कहा कि "अरे प्रिय बालम! ऐसा मत कर; देख मैं दूध पिये लेता हूं"। ऐसा समझा के प्रभु कटोरा हाथ में ले, दूध पीने लगे। जब थोड़ा सा दूध रह गया, तब श्रीनामदेव जी बोले कि "महाराज! मेरे लिये भी तो कुछ रहने दीजिये; क्योंकि आपका प्रसाद नाना का दिया मैं सदाही पाता था'॥

तब कृपा से बिहँस के अपने अधरामृत का अवशेष प्रभु ने अपने हाथों से ही नामदेव जी को पिला के भक्ति प्रेमानन्द से तृप्त कर दिया।

(श्लोक) ध्यानेपाठे जपे होमे, ज्ञाने योगे समाधिभिः।
विनोपासनया मुक्ति नास्ति सत्यब्रवीमिते ॥ १ ॥

(१/८ ७/४ ६/२) टीका। कवित्त।

आये बामदेव, पाछें पूछैं नामदेवजू सों, दूध को प्रसंग, अति रङ्ग भरि भाखियैं। "मोसौं न पिछानि, दीन दोय हानि भई; तब मानि डर, प्रान तज्यो चाहौं, अभिलाषियैं॥ पीयो, सुख दीयो, जब नेकु, राखि लीयो, मैं तो जीयो," सुनि बातें, कही "प्यायो कौन साखियैं?" धस्यो, पै नपीयैं, अस्यो, प्यायो, सुख पायो नाना, यामैं ले दिखायो भक्त-बस-रस चाखियैं ॥१३३॥ (६२९—४१६)

"पिछानि"=पहिचान। "अस्यो"=अड़े, हठ किया।

वार्तिक तिलक।

जब श्रीवामदेव जी घर आए। और श्रीनामदेव

जी से पूछने लगे कि "पूजा सेवा नीके करके दूध भोग लगाया करते थे?"॥ तब श्रीनामदेव जी अति प्रेमानन्द रङ्ग में रँगे हुए दूध पिलाने का सारा प्रसंग कहने लगे; कि "नाना! मुझ से ठाकुरजी से जान-पहिचान तो थी ही नहीं, इस्से दो दिन तो बड़ी हानि हुई कि प्रभु ने दूध नहीं ही पिया; तब आपके भय से मैंने छूरी लेके अपना गला काटना चाहा; सो देखते ही प्रभु ने अति अभिलाख से दूध पान कर मुझे बड़ा सुख दिया; थोड़ा सा मैंने प्रसाद भी मांग लिया; इस भांतिं प्रभु ने दूध पी पिला के मुझे जिलाया"।

यह वार्त्ता सुनके श्रीवामदेव जी बोले कि "दूध पिलाने का साखी कौन है?"

श्रीनामदेव जी ने कहा कि स्वयं ठाकुरजी ही साक्षी हैं कि जिन्होंने पिया है"। नाना ने कहा कि "भला पिलाके मुझे भी तो दिखा दे"। तबश्रीनामदेव जी ने उसी प्रकार से दूध बनाके सामने रख पीने की प्रार्थना की, परन्तु प्रभु ने न पिया। तब आपने अत्यन्त हठ पूर्वक कहा कि "कल्ह तो तुमने पिया और आज नपीके मुझे झूठा बनाते हो? वह छूरी अभी मेरे पास रक्खी ही है" यह सुन मन्द मुस्क्यान सहित प्रभु ने फिर दूध पी लिया।

यह देख श्रीवामदेव जी ने अत्यन्त सुख पाया।

और प्रभु से कहा कि "नाथ! इसको अपनी सेवा ही के लिये आपने प्रगट किया है; सो अब इसी से सेवा लिया कीजिये।" उसी क्षण से श्रीनामदेव जी को सब सेवा पूजा सौंप दी॥

देखिये! इस चरित्र में प्रभु ने यह दिखाया कि "हम भक्तों के प्रेम बसही होके भोजनादिक रसों को चखते हैं, तात्पर्य्य प्रेमही को चखते हैं॥"

(१/८ ७/४ १/२) टीका । कवित्त ।

नृप सो मलेछ, बोलि, कही "मिले साहिब को, दीजिये मिलाय करामात दिखराइये"। "होय करामात तो पै काहे को कसब करैं? भरैं दिन ऐपै बांटि सन्तन सों खाइयै॥ ताही के प्रताप आप इहांलौं बुलायो हमैं;" "दीजिये जिवाय गाय घर चलि जाइयै।" दईलै जिवाय गाय सहज सुभाय ही मैं, अति सुख पाय, पांय पर्यो, मन भाइयै॥ १३४॥ (६२९—४९५)

"साहिब् صاحب"=स्वामी प्रभु। "करामात کرامات"=प्रभुता, सिद्धाई, परचौ, प्रभाव, परीक्षा। "कसब् کسب"=प्राप्त करना, कमाना॥

वार्तिक तिलक॥

श्रीभगवत कृपा से जब श्रीनामदेव जी की प्रीति-प्रतीति-भक्ति-महिमा अति फैली, और सब राजाओं-का-राजा-म्लेक्ष (मुसलमान् बादशाह्) के हां तक भी आप की सिद्धाई की वार्ता जा पहुंची; तब उसने आपको बुलाके कहा कि "हम सुनते हैं कि आप साहिब् को मिले

(पहुंचे) हैं; सो हमको भी मिला दीजिये अथवा अपनी कुछ करामात् दिखाइये"। आपने उत्तर दिया कि "यदि मुझ में कोई करामात् ही होती तो मैं अपनी जीविका के हेतु छीपा का काम क्यों करता? दिन भरके परिश्रम से जो कुछ मिलता है सो, सन्तों के साथ बांट खाता हूं; इसी के प्रताप से अर्थात् जो साधु लोग मुझ पर कृपा करके मुझे दरशन देते हैं, इसी से लोगों में मेरी बड़ाई हो रही है, यहां तक कि आप ने भी अपने हां मुझे बुला भेजा है"।

यह सुन भूप (बादशाह्) ने कहा कि "इस मरी हुई गऊ को जिला दीजिये; बस अपने घर चले जाइये"।

नृप का हठ देख के, आपने सहज स्वभाव ही से, अर्थात् एक * विष्णुपद सप्रेम गान करके, गऊ को जिला दिया।

*विनती सुनु जगदीश हमारी। तेरो दास, आस मोहि तेरी, इत करु कान मुरारी॥ दीनानाथ! दीन हूं टेरत गायहिँ क्यों न जियाओ? आछे सबै अंग है याके मेरे यश हिँ बढ़ाओ॥ जो कहों याके करमहिँ में नहिँ जीवन लिख्यो बिधाता। तौ अब नामदेव आयुष तें होहु तुमहिँ प्रभु! दाता॥१॥

(श्लोक) हरिस्मृति प्रमोदेन, रोमाञ्चित तनुर्यदा।
नयनानन्दसलिलं, मुक्तिदासी भवेत्तदा॥१॥

यह प्रभाव (करामात्) देख, भूपति (बादशाह) बड़ाहीप्रसन्न हुआ और सुख पूर्वक सादर आपके चरणों पर गिरा॥

(१७८/८४३) टीका । कवित्त ।

"लेवो देश गांव, जाते मेरो कछु नांव होय,"
"चाहिये न कछु," दई सेज मनि मई है । धरि लई
सीस, "देउँ संग दशबीस नर," नाहीं करि आये, जल-
माँझ डारि दई है ॥ भूप सुनि चौंकि पस्यो, "ल्यावो
फेरि;" आए "कहौ;" कही "नेकु आनिकै दिखावो कीजे
नई है"। जल तें निकासि बहु भांति गहि डारी तट "ली-
जिये पिछानि" देखि सुधि बुधि गई है ॥१३५॥ (६२९-४९४)

"जातें" = जिस्से

वार्त्तिक तिलक ।

और कर जोड़ के कहा कि "आप मुझ पर कृपा करके कोई गांव वा देशराज्य लीजिये जिस्से आप सरीखे सन्तों की सेवा से मेरा नाम सुयश हो" आप ने उत्तर दिया कि "मुझ को कुछ नहीं चाहिये"।

(श्लोक) ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परम् ॥ १ ॥

दिल्लीपति ने बड़ी प्रार्थना करके एक सुवर्ण रचित मणिजटित सेज (पलंग) दिया कि "इसपर अपने साहिब् को सयन कराइयेगा"। तब श्रीनामदेव जी ने अपनी साधुता सरलता से उसको अपने ही माथे पर रख लिया।

सीस पर रखते देख, यवनाधिप ने प्रार्थना की कि

"मैं दस बीस मनुष्य साथ दिये देता हूं पहुंचा देंगे, आप पर्य्यंक को अपने मस्तक पर न रखिये" आपने नकार दिया कि "मुझे मनुष्यों की कुछ भी आवश्यकता नहीं हैं।" और आप अपने स्थान को चल दिये। नृप ने पीछ से कुछ लोग रक्षा के निमित्त भेज ही तो दिये। आप नदी (यमुना) तट आए जहां अति अगाध जल था; वहां उस सेज को श्रीप्रभु को अर्पण करके जल में डाल दिया। (चौ०। सब से सो दुर्लभ मुनिराया। रामभक्तिरत, गत मद माया॥)

इस कौतुक को देख के उन राजभृत्यों ने (जो पीछे २ आरहे थे) शीघ्र लौट के म्लेक्षराज से समाचार कहा; जिसे सुन्ते ही भपू चौंक पड़ा; और आज्ञा दी कि "नामदेव जी को फिरालाओ"।

ऊपर (पृष्ट ३७२ की १८ वीं पंक्ति में), "शिष्य त्रिलोचन देव" लिखा गया है; सो भूल और प्रमाद है। ऐसा चाहिये कि "आपके (श्रीनामदेव जी के) 'गुरुभाई' श्री त्रिलोचनदेव जी"॥

(२) ऐसा लिखा है कि जब श्रीनामदेव जी की माता ने अपने पिता श्रीवामदेवजी से अपने गर्भ की वार्त्ता पूरी पूरी कहसुनाई, तब उसी दिन स्वप्न में श्रीप्रभु ने भी वामदेव जी से आज्ञा की कि "हां, इस निष्कलङ्क की सब बातें ठीक हैं, सत्य हैं, तुम कुछ शंका संशय मत करो सुता तुम्हारि सकल गुन खानी"॥

सो सुन, आप लौट आए और पूछा कि "किस-लिये फिर बुलाया? सो कहो" उसने कहा कि "उस सेज को तनक लाके (सुनारोंको) दिखा दीजिये, क्योंकि वैसाही नया पर्य्यंक बनवाना है" ॥

आप ने आके उस जल से वैसे और उससे भी चढ़ बढ़ के अनेक सेज निकाल निकाल तट पर डाल दिये और कहा "लो पहिचान के अपनी ले लो" यह प्रभाव देख नरेशकी सुधबुध जातीरही चकित होगया ॥

(१७१/८४२) टीका । कवित्त ।

आनि पर्यो पाय, "प्रभु पास तें बचाय लीजे;" "कीजे एक बात कभूं साधु न दुखाइये" । लई*यही मानि, "फेरि कीजियै न सुधि मेरी"; "लीजियै गुननि गाय मन्दिर लों जाइयै" ॥ देखि द्वार भीर, पगदासी कटि बांधी धीर; कर सो उछीर करि, चाहैं पद गाइये । देखि लीनी वेई, काहू दीनी पांच सात चोट! कीनी धकाधकी! रिस मन मैं न आइये ॥ १३६ ॥ (६२१-४९३)

"उछीर" = भीड़ नहीं, "घना नहीं, अलग अलग । "कर सों उछीर करि"=हाथों से लोगोंकोकुछ इधर उधर सरका थोड़ा अवकाश करके । "रिस" = रोष, क्रोध ।

* पाठान्तर "लीजे"

वार्तिक तिलक ।

यह दूसरा बड़ाभारी चमत्कार देखके, भूप फिर चरणों पर पड़, हाथ जोड़, प्रार्थना करने लगा कि "आप ने गऊ भी जिला दी तब भी आप का प्रभाव

नजानके मैंने पलंग को देखना चाहा, सो यह मेरा अपराध आप क्षमा करके अपने प्रभु से मुझे बचा-लीजिये जिस्में वे भी मेरा अपराध क्षमा करदें" श्री-नामदेव जी ने आज्ञा की कि "जो मेरे प्रभु की क्षमा चाहो तो एक बात करना कि कदापि साधु मात्र को दुख मत देना" (दोहा) साधु सताए तीन हानि अर्थ[१] धर्म[२] अरु बंस[३]। "टीला" नीके देखिये कौरव, रावण, कंस ॥ १ ॥ यह बात उसने मानली। पुनः चलते स-मय आप ने यह भी कहा कि "अब फिर मुझको अ-पने हां न बुलाना;" और वहां से अपने स्थान (पण्ड-रपुर) को चले आए।

एक पर्य्यंक यवनाधिप को लौटा देकर; शेष पलंगों को श्रीयमुना जी में आपने छोड़ दिया॥

आपने बिचारा कि "प्रथम श्रीपण्डरीनाथ जी के मन्दिर में जा, आप के गुन गा, तब गृह को, चलूं"।

आके देखा तो बिट्ठलदेव जी के द्वार पर लोगों की बड़ी भीड़ है; "यदि पगदासी (पनही) बाहर छोड़ जाऊंगा तो मन में उस्का खटका, दर्शन तथा पदगाने में विक्षेप करेगा"; इस्से धीरे से कपड़े में कर, कटि में बांध, भीतर जा, झांझ हाथों में ले, तब आपने पद गाना चाहा।

इतनेही में किसी ने जूती का कोर देख लिया, सो उसने आप को पांच सात चोट लगा, धक्के दे, बाहर

निकाल दिया। परन्तु, आपके क्षमा-साधुता-युक्त मन में किंचित भी क्रोध न आया॥

(दो०) उमा जे रघुपति चरण रत, विगत काम मद क्रोध। निज प्रभु मय देखहिँ जगत कासन करहिँ विरोध॥

(१८०/८४२) टीका। कवित्त।

बैठे पिछवारे जाइ "कीनी जू उचित यह, लीनी जो लगाइ चोट, मेरे मन भाइयैं। कान दैकैं सुनो अब चाहत न और कछु; ठौर मोकों यही; नित नेम पद गाइयैं।" सुनत हीं आनिकरि करुना विकल भए फेर्यौ द्वार इतै गहि मन्दिर फिराइयैं। जेतिक वे सोती मोती आब सी उतरि गई, भई हिये प्रीति, गहे पांव सुखदाइयैं॥ १३७॥ (६२९-४९२)

"आब् آب"=पानी, द्युति, कान्ति, चमक।

"ठौर"=ठांव, ठिकाना, स्थान।

और जाके, मन्दिर के पीछे बैठ, प्रभु से बिनय करने लगे "हे प्रभो! यह आपने बहुतही उचित बात की कि जो मेरे दो चार धौलधक्के लगवा दिये, क्योंकि मैंने अपराध किया ही था; सो दण्ड देके आपने शुद्ध कर लिया; मुझे यह बहुतही अच्छा लगा। परन्तु अब मेरी प्रार्थना कान लगाके सुनिये; मैं और कुछ नहीं चाहता; केवल यही चाह मुझे है कि नित्य नेम से जो पद गाया करता हूं सो गाके सुनाया करूं; क्योंकि आप की शरण छोड़ मुझको दूसरा ठौर-ठिकाना ही नहीं"। यही प्रार्थना इस पद में भी है—

'हीन है जाति मेरी, यादवराय! कलिमें "नामा" यहां काहे को पठाय ॥ पातुरि नाचैं, तालपखवाज बाजैं, हमारी भक्ति बीठल काहे को राजैं ॥ पांडवप्रभु जू बचन सुनी जे। "नामदेव स्वामी" दरशन दीजे' ॥

इस पद के सुनतेही भक्तवत्सल श्रीकरुणासिंधु प्रभु ने, कृपा से विकल हो सम्पूर्ण मन्दिर को नीचे से (जड़ से) फेर के उसका द्वार फिरा के, श्रीनामदेव जी के सन्मुख हो, दर्शन दिये। (उस मन्दिर का द्वार अब तक दक्षिण मुख है)

इस प्रसंग से यह निश्चय होता है कि जो मूर्ति श्रीबीठलदेव की, श्रीवामदेव जी ने सेवा के निमित्त अपनी पुत्री (श्रीनामदेव जी की माता) को तथा श्रीनामदेव जी को दी थी, सो इन्ही प्रधान मूर्ति का द्वीतय विग्रह, उनके गृह के आवान्तर में था।

यह अतिबिचित्र चरित्र देख, जितने श्रोत्री बेदपाठी पंडा पुजारियों ने धौल धक्के दिये दिलाए थे, तिन सब के मुख ऐसे सूख गये कि जैसे मोती का पानी उतर जाय। और सुखदाई श्रीनामदेव जी के विषे अति प्रीति भाव कर, चरणों में पड़, अपराध की क्षमा कराई। श्रीनामदेव जी की जय ॥

(१८९१/८४२) टीका। कबित्त।

औचकहीं घरमांझ सांझही अगिनि लागी, बड़ो अनुरागी, रहि गई सोऊ डारियै। कहै "अहो नाथ! सब कीजिये जु अंगीकार," हँसे सुकुमार हरि मोही कों निहारियै?" ॥ "तुम्हरो भवन और सकै कौन आइ

इहां?" भए यों प्रसन्न छानि छाई आप सारियै। पूछैं आंनि लोग "कौनें छाई हो? छवाइ लीजे, दीजे जोई भावे"; "तन मन प्राण वारियै" ॥१३८॥ (१२९—४९१)

"रहिगई"=बचरही। "मोही को निहारीयै?" =क्या तू सब में मुझेही देखता है! सबको मुझमय ही समझता है! सबको मेराही रूप जानता है?

वार्तिक तिलक।

एक दिन सांझ के समय अचानक ही आपके घर में आग लगगई, आप तो बड़ेही अनुरागी थे पंच-तत्वादि सब को सानुराग भगवत रूपही देखाकरते थे, अतः जो २ वस्तु उस आग से पृथक भी रहगईथी, सो सब भी उठा २ के आप अग्नि में डाल के प्रार्थना करने लगे कि "हे नाथ! ये पदार्थ भी अंगीकार कीजिये।"

श्री नामदेवजी का ऐसा सर्वात्मकभाव देख, तथा सप्रेम बचन सुन, सुकुमार-शिरोमणि श्री हरि प्रगट हो, बिहँसके पूछने लगे कि "हे नामदेव! क्या अग्नि में भी मुझकोही देखते हो? अर्थात् अग्नि को भी मेरा ही रूप तुम जानते हो?" आपने हाथ जोड़ निवेदन किया कि "प्रभो! यह गृह आप का है इसमें आप को छोड़ दूसरा कौन आसकता है?"

इसपर अत्यन्त प्रसन्न होकर रात्रिही भर में सम्पूर्ण गृह का छप्पर आपने अपनेही हाथों से सुन्दर अति बिचित्र छादिया।

सबेरे, लोग छप्पर की सुन्दरता देख २, चकित हो हो, आपसे पूछने लगे कि "यह छप्पर अति सुन्दर किसने छाया है? जिसने छाया हो उसको बताओ तो हम भी छवालें, जो मांगे सोई छवाई दें।"

आपने उत्तर दिया कि "भाइयो! वह छान छाने-वाला तो रुपएपैसे लेनेवाला नहीं है, किन्तु उरपर जब पहिलेही तन मन प्राण सर्वस्व न्योछावर कर दीजिये तब वह ऐसी छावनी छादेता है॥

(दोहा) प्रभुता को सब कोउ चहै, प्रभु को चहै नकोय। तुलसी जो प्रभु को चहै आपहि प्रभुता होय॥

(१८३/८४२) टीका। कवित्त।

सुनौ और परचे जो आए न कबित्त मांझ, बांझ भई माता क्यों न? जौं न मति पागी है। हुतो एक साह, तुला दान को उछाह भयो; दयो पुर सबै, रह्यो नाम देव रागी है॥ "ल्यावौ जू बुलाइ" एक दोई तो फिराइ दिये; तीसरे सों आए "कहा कहो? बड़ भागी है"। "कीजिये जु कछु अंगीकार मेरो भलो होय," "भयो भलो तेरो, दीजै जो पै आसा लागी है" ॥ १२९॥ (६२९-४९०)

"रह्यो"==शेष रहे।

"फिरायदिये" == कोरेही लौटा दिये।"

अब श्री नामदेव जी के परचे प्रभाव, जो श्रीनाभास्वामी जी के छप्पै में नहीं कहे गए हैं, सो सुनिये;

देखिये ऐसे भक्तिभरे श्रीनामदेवचरित्र सुनके श्रीसीताराम जी में तथा श्रीसीतारामनाम में जिसकी मति प्रेम से न पगी, उसकी माता बांझ क्यों न हुई? इस निज-जीवन-विटप-कुठार पुत्र को व्यर्थ ही क्यों उत्पन्न किया?

पण्ढरपुर में एक बड़ा साहु (सेठ) था, उत्साह पूर्वक सोने का तुलादान करके उसने सबको सुवर्ण दिया। परमानुरागी श्रीनामदेव जी ही एक रह गए।

आप के पास भी सादर बुलाने को मनुष्य भेजे; परन्तु आपने एक दो बेर तो उनको कोरेही लौटा दिया कि "मुझे नहीं चाहिये"। तीसरी बार बड़ी प्रार्थना पूर्वक उसने बुलाया तो आप जाके बोले कि "हे बड़भागी सेठ! कहो क्या कहते हो?" उसने विनय किया कि "आप कृपा करके इसमें से कुछ सुवर्ण अंगीकार कीजिये कि जिसमें मेरा भला हो।"

आपने उत्तर दिया कि "तेरा भला हुआ ही है, क्योंकि तूने सब को दिया। जिसकी आसा लगी हो उसको दे; और यदि मुझको भी देने के हेतु तेरी आसा लगीही है तो दे॥"

(१८३/२४२) टीका। कवित्त।

जाके तुलसी हैं ऐसे* तुलसी के पत्र मांझ, लिख्यो आधो राम नाम; "यासों तोल दीजिये"। "कहा परिहास करो? ढरो, ह्वै दयाल"; "देखि, होत कैसो ख्याल

याकों, पूरी करी, रीझिये" ॥ ल्यायो एक कांटो, ले चढ़ायो पात सोना संग; भयो बड़ो रंग, समहोत नाहिं छीजिये। लई सो तराजू जा सों तुलै मन पांच सात; जाति पांति हू को धन धखो, पै न धीजिये ॥१४०॥ (६२९—४८९)

बार्तिक तिलक।

इतना कह के, श्री तुलसी जी के पत्र में आधा श्री राम नाम अर्थात् "रा" मात्र लिखके, आप बोले कि "यदि दियाही चाहता है तो इसी भर तौल के दे।" सुन के सेठ ने कहा कि "आप हँसी क्या करते हैं, इस पत्रहीभर मैं क्या दूं? मुझपर दयालु होके कुछ अधिक अङ्गीकार कीजिये।" श्रीनामदेव जी ने उत्तर दिया कि "मैं हँसी नहीं करता, देख तो इसका कैसा कौतुक होता है; इसभर तौल के पूरा तो कर, तब मैं तुझ पर अतिशय प्रसन्न हूंगा"

एक तोलने-का-कांटा ला के उसके एक ओर वह तुलसीदल और दूसरी ओर सोना साह ने चढ़ाया; परन्तु बड़ाही रंग मचा कि वह सोना श्रीपत्र के तुल्य न हुआ, बरन घट गया। तदनन्तर, साहु ने एक ऐसी तुला (तराजू) मँगवायी जिसमें पांचसात मन वस्तु तुल सके; और उसपर वह श्रीनामपत्र रख के अपने घर भर का स्वर्णादिक सब धन चढ़ाया तब भी श्रीपत्र वाले पल्ले ने भूमि न छोड़ी।

फिर, अपने जातिभाइयों का धन भी मांगमांगके पल्लेपर चढ़ाता गया, तथापि पूर न पड़ा, धन का पल्ला अतीव हलकाही रहा। उन सब का प्रिय न हुआ॥

"ख्याल"=रंग, खेल, कौतुक। "रंग"=ख्याल, खेल, कौतुक, तमाशा। "न धीजियै"=प्रिय न हुआ, पूर्ण न हुआ, पूरा न पड़ा। "देखि"=देखु। "तराजू (ترازو)"=तुला।

*"जाके तुलसी हैं ऐसे"—

इसका अर्थ कोई २ महात्मा यों करते हैं:—

जिस श्रीनामदेव जी के, श्रीतुलसी जी ऐसे इस प्रकार से हैं, सर्वस्व हैं, (जैसो आगे के संघट से प्रत्यक्ष है,) सो श्रीनामदेव जी ने श्रीतुलसीपत्र पर "रा" लिखा। (श्रीतुलसी जी वैष्णव मात्र के सर्वस्व हैं विशेषतः श्रीनामदेव जी के॥)

(१८४/८४२) टीका। कवित्त।

पर्यो सोच भारी, दुःख पावें नर नारी, नामदेव जू बिचारी "एक और काम कीजियै। जिते ब्रत दान और स्नान किये तीरथ मैं करियै संकल्प या पैं जल डारि दीजियै"॥ करेऊ उपाय, पात पला भूमि गाड़े पांय, रहे वे खिसाय, कह्यो "इतनोई लीजियै"। "लै कैं कहा *करैं? सरबरहू न करैं, भक्ति भाव सों लै भरैं हिये, मति अति भीजियै"॥ १४१॥ (६२९—४८८)

"खिसाय"=लजाय। "सरबर"=समता।

* पाठान्तर "कहां धरैं?"।

वार्त्तिक तिलक ।

यह श्रद्भुत रामनाम युक्त तुलसीपत्र के गौरव महत्त्वका कौतुक देख के, सेठ के घर के सब स्त्री-पुरुषवर्गों को बड़ाही सोच श्रौर दुख हुश्रा कि कैसे पूरा हो ।

श्रीनामदेव जी ने विचार किया कि "श्रीरामनाम के सामने धनादिकों की तुच्छता तो दिखा ही दी, परन्तु श्रब यह भी दिखा दूं कि श्रीनाम के श्रागे सब धर्म कर्म भी हलके (न्यून) ही हैं;" श्रतः श्राप ने कहा कि "सुनो एक काम श्रौर करो कि तुम लोगों ने जितने व्रत उपवास, तीर्थस्नान, दान, इत्यादि सुकर्म-धर्म किये हों, उन सब को भी संकल्प करके वह जल इसपर छोड़ दो श्रर्थात् सब पुण्य भी चढ़ादो" ।

यह उपाय भी किया गया; तथापि श्रीनामपत्र वाला पल्ला भूमि में पांव जमाए ही रहा; यथा (दो०) "भूमि न छांड़त कपि चरण, देखत रिपु मद भाग । कोटि विघ्न ते सन्त कर-मन जिमि नीति न त्याग ॥ १ ॥

तब तो वे सब श्रति लज्जित संकुचित होके कहने लगे कि "महाराज ! श्राप इतनाही ले लीजिये" । श्रीनामदेव जी ने उत्तर दिया कि "यह सब धन श्रौर पुण्य लेके मैं क्या करूंगा ? क्योंकि तुम सब ने स्पष्ट देखाही कि मेरा धन जो श्री राम नाम है, उसके श्राधे के भी तुल्य ये सब नहीं ठहरे; इससे श्रीरामनाम श्रौर श्रीभक्तिही से मैं अपने हृदय को संतुष्ट रक्खता हूं श्रौर रक्खूंगा; किस लिये कि मेरी मति प्रेमभक्ति रस ही

से भीगी है। इस्से तुम लोग भी धनधर्म्माभिमान छोड़ श्रीरामनाम की भक्ति रस में अपनी बुद्धि को भिगाके भव पार हो"॥ (दो०) "राका रजनी हरि भगति, राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडुगण विमल, बसैं भक्त उर व्योम॥"

(१/८ ८/४ ५/२) टीका। कवित्त।

कियो रूप ब्राह्मन कों दूबरो निपट अंग, भयो हिये रंग, ब्रत परिचै को लीजियें। भई एकादशी, अन्न मांगत "बहुत भूखी," "आजु तो न देहों भोर चाहौ जितो दीजियें"॥ कस्यो हठ भारी मिलि दोऊ, ताको शोर पस्यो; समझावै नामदेव याको कहा खीजियें। बीते जाम चारि मरि रहे यों पसारि पांव, भाव पै न जानैं दई हत्या नहीं छीजियें॥ १४२॥ (६२९—४८७)

"परिचै" = परीक्षा, जांच, पर, प्रभाव, वैप्रभुता।

"शोर (شور)" = हल्ला, कोलाहल, घने शब्द।

वार्तिक तिलक।

अब जिस प्रकार स्वयं प्रभु ने एकादशी ब्रत का पन श्री नामदेवद्वारा दृढ़ाया, सो आख्यायिका कहते हैं—

प्रभु के हृदय में यह रंग (कौतुक) आया कि "एकादशी निष्ठा की परीक्षा लूं;" इस हेतु अत्यन्त दुर्बल ब्राह्मण का रूप बना, एकादशी को सबेरेही आ, श्रीनामदेव जी से बोले कि "मैं कई दिनों का बहुत ही भूखा हूं, मुझ को अन्न दो।" आप ने उत्तर दिया कि "आज एकादशी ब्रत है, इस्से अन्न भोजन न दूंगा; कल सबेरे जितना मांगोगे उतना दूंगा।"

ब्राह्मण जी ने बड़ा भारी हठ किया कि "मैं अन्न अभी अभी लूंगा; आप ने भी हठ किया कि "आज तो मैं अन्न नहीं ही दूंगा"। दोनों के हठ युक्त उत्तर प्रत्युत्तर का बड़ा हल्ला मचा, सुन के बहुत लोग इकट्ठे हो गए; और श्रीनामदेव जी से कहने लगे कि "हम इस मरणप्राय ब्राह्मण पर क्रोध करके क्या कहें? पर तुम्हें समझाते हैं कि दे दो"। तथापि, एकादशी को अन्न देना निषेध जान के, आप ने नहींही दिया।

जब चार पहर बीत गए, तब अन्नाभिलाषी भूखे ब्राह्मण देव, पांव फैलाके मर गए।

लोग आप के भाव निष्ठा को न जान के, कहने लगे कि "नामदेव को ब्राह्मण ने ब्रह्महत्या दी, इनको छूना न चाहिये, अब यह हत्या छूटनेवाली नहीं है"॥

(१८६/८४२) टीका। कबित्त।

रचिके चिता कों, विप्र गोद लेके, बैठे जाइ, दियो मुसुकाइ "मैं परीछा लीनी तेरी है। देखि सो सचाई, सुखदाई, मन भाई मेरे"; भए अन्तर्धान, परे पायँ प्रीति हेरी है॥ जागरन मांझ, हरि भक्तन को प्यास लगी, गए लैन जल; प्रेत आन्ति कीनी फेरी है। फेट तें निकासि ताल, गायो पद ततकाल; बड़ेई कृपाल रूपधर्‌यो छवि ढेरी है॥ १४२॥ (६२९—५८६)

"फेट" == कटि बन्धन बस्त्र।

वार्तिक तिलक।

तदन्तर, श्रीनामदेव जी चिता रच, मृतक विप्रके शरीर को गोद में लेकर चितापर जा बैठे, और किसी आज्ञाकारी जन से कहा कि "अग्नि लगा दो"

तब तो श्री एकादशी पति प्रभु ने मुस्क्याके कहा कि "प्रिय भक्त! जलो मत, तुम्हारे हृदय के शीतल करनेवाले मैं ही ने तुम्हारी परीक्षा ली है, तुम्हारे व्रत की तथा ब्रह्मण्यता की सचाई देखी, सो मझको बड़ीही प्यारी सुखदाई लगी।" यह कहके श्रीप्रभु उस चिताही पर से अन्तर्धान हो गए।

इस प्रकार, वैष्णवधर्म तथा ब्राह्मण, श्रीतुलसी, श्रीराम नाम, और श्रीप्रभु में नामदेव जी की परमप्रीति देख, एवं प्रभु के चरित्रों की विचित्रता विचार, सब लोग जय जय कार कथनपूर्वक श्रीनामदेव जी के चरणों में पड़के प्रशंसा करने लगे।

अन्य एकादशी की रात्रि में आप के गृह विषे जागरन उत्सव हो रहा था; उस्में हरिभक्तों को प्यास लगी, आप स्वयं जलाशय में जल लेने गए; क्योंकि वहां एक बड़ा प्रेत रहता था इस्से और किसी को न भेजा। सो जब आप वहां पहुंचे तो कई प्रेतों को साथ लिये वह प्रेत बड़ा भारी विकराल भयंकर रूप धारण कर आप के सन्मुख आखड़ा हुआ। उसको देख, आपने उस्में भगवतभाव ही अरोपण किया क्योंकि आप की दृष्टि में तो और भाव रहही

नहीं गया; इस्से अपने फेट से ताल अर्थात् कांश्यताल (झांझ) वा करताल निकाल के तत्कालही यह * पद बनाके सप्रेम गाने लगे।

*ये आए मेरे लम्बकनाथ! धरती पांव स्वर्ग लौ माथो जोजन भरि भरि हाथ॥ शिव सनकादिक पार न पावैं, तेसेइ सखा विराजत साथ। नामदेव के स्वामी अन्तर्यामी कीन्हयो मोहिं सनाथ॥ १॥

सुन्तेही सर्वान्तर्यामी परम कृपालु ने प्रेतरूपों को विनाशकरके, परम छविराशि रूप धारण कर दर्शन दिया। निज रूपामृत पिलाके कहा कि "जल लेजाव। जल लाके आप ने भगवत भक्तों को पिलाया श्रीनामदेव जी की जय॥

(१८७/८४२) छप्पय।

जयदेव कविनृप चक्कवै;खँड मंडलेश्वर आन कवि। प्रचुर भयो तिहुँ लोक गीत गोविन्द उजागर। कोक काव्य नव रस सरस सिंगार को सागर। अष्टपदी अभ्यास करैं तिहुँ बुद्ध बढ़ावैं। (श्री)राधारमन प्रसन्न सबन निश्चय तहँ आवैं॥ संत सरोरुहखंड कों "पद्मा"पति सुखजनक रवि। जयदेव कवि नृप चक्कवै खँडमंडलेश्वर आन कवि॥ ३९॥ (४४/२१३)

"चक्कवे" = चक्रवर्ती, सातो द्वीप का राजराजेश्वर। "खण्डेश्वर" = नव खण्डों में से एक खण्ड का महाराज। "मण्डलेश्वर" = सौ दो सव कोस के मण्डल का राजा। "खण्ड" = कदम्ब अर्थात् समूह। "सरोरुह-खण्ड" = कमल के समूह॥

वार्तिक तिलक।

श्री ज़यदेव जी।

कलियुग में संस्कृत के कवियों में, श्रीजयदेव कविराज, चक्रवर्ती महाराज सरीखा हुए; और, और सब कवि खण्डेश्वर वा मण्डलेश्वर राजाओं के सरिस हैं। उक्त महा-कवि-कृत अति उजागर "श्रीगीत गोविन्द" काव्य, देव मनुष्य नाग इन तीनों लोकों में प्रचुर (विख्यात) हुआ; कैसा "गीतगोविन्द" है कि, कोकशास्त्र का, काव्य के सम्पूर्ण अङ्गों का, नवो रसों का, तथा सरस शृङ्गार का, रत्नाकर समुद्र ही है।

और, श्रीगीतगोविन्द की अष्टपदियां जो कोई अभ्यास करे (पढ़े), उसकी बुद्धि को बढ़ाती है। तथा जो सप्रेम गान करता है तो श्रीराधावल्लभ जी वहां उसके सुनने के लिये प्रसन्न होके प्रगट वा गुप्त रूप से अवश्यही आते हैं।

सन्त रूपी कमल समूहों को सुख उत्पन्न करने वाले, श्रीपद्मावती जी के पति (श्रीजयदेव जी) सूर्य्य समान हुए।

(१६६/८४२) टीका। कवित्त।

किन्दुबिल्लु ग्राम, तामैं भए कविराज राज, भस्यो

रसराज हिये, मन मन चाखियैं। दिन दिन प्रति रूंख रूंख तर जाइ रहैं, गहैं एक गूदरी, कमंडल कों, राखियैं॥ कही देवै विप्र सुता जगन्नाथदेव जू कों, भयो जब समै, चल्यो दैन प्रभु भाखियैं। "रसिक जैदेव नाम मेरोई सरूप, ताहि देवो ततकाल अहो, मेरी कहि साखियैं" ॥१४४॥ (६२९-४८५)

"रसराज"=रसों का राजा 'श्रृङ्गार रस'॥

वार्तिक तिलक।

सब कविराजों के राजा श्री जयदेव जी पूर्वदेश में "किन्दु बिल्व" नामक ग्राम में "भोजदेव" पिता और "राधा देवी" माता से, ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए; सो आप के हृदय में प्रभु संबन्धी रसराज (श्रृङ्गार रस) भरा था, परन्तु उसका स्वाद मनही मन में लिया करते थे। और विरक्त (वैराग्यवान) कैसे थे कि गृह को त्याग के बन में भी एक वृक्ष तले एकही दिवस रहते थे, दो दिन भी एक के नीचे नहीं; और तनु-क्रिया-निर्वाह के हेतु केवल एक गुदड़ी (कन्था) और एक कमण्डल मात्र रखते थे।

उसी काल की वार्ता है कि एक ब्राह्मण श्रीजगन्नाथ जी को अपनी कन्या प्रतिज्ञा पूर्वक देने को कह गया; जब वह लड़की अवस्था में उस योग्य हुई, तो उसको देने के लिये वह विप्र श्रीजगन्नाथ जी के पास लाया; प्रभु की आज्ञा हुई कि "जयदेव जी नामक आश्चर्य्य रसिक भक्त मेरेही स्वरूप हैं, सो इसी क्षण

लेजाके और मेरी आज्ञा उन्से सुनाके, यह अपनी सुता उन्ही को दे दो"।

(१६६) टीका। कवित्त।

चल्यो द्विज तहां, जहां बैठे कविराजराज, "अहो महाराज! मेरी सुता यह लीजिये"। "कीजिये बिचार, अधिकार, बिसतार जाके, ताहि को निहारि, सुकुमारि यह दीजिये"॥ "जगन्नाथ देव जू की आज्ञा प्रतिपाल करो, ढरो मति धरो हिये; ना तो दोष भीजिये"। "उनिको हजार सोहैं, हमको पहार एक; ताते फिरि जावो, तुम्हैं कहा कहि खीजिये" ॥१४५॥ (१२९-४८४)

वार्तिक तिलक।

श्रीजगन्नाथ जी की आज्ञा सुन, कन्या लिये हुए ब्राह्मण जहां कबिराजराज श्रीजयदेव जी श्रीप्रभु का स्मरण करते हुए बैठे थे, वहां जाके आप से प्रार्थना की कि "हे महाराज! यह अपनी कन्या मैं आपको अर्पण करताहूं इसका कर ग्रहण कीजिये"। आप ने उत्तर दिया कि "आप विचार कीजिये, जिसको कन्या लेने का अधिकार और गृहस्थाश्रम का विस्तार हो, उसी को यह सुन्दरि कुमारी दीजिये"।

ब्राह्मण बोले कि "महाराज! मैं जो अपनी इच्छा से कन्यादान करता तो विभव विचार अवश्य करता; परन्तु मैं तो श्रीजगन्नाथदेव जी की आज्ञा से आप को कन्या दे रहा हूं, इस्से उनकी आज्ञा को आप भी

प्रतिपाल कीजिये; और कन्या को ग्रहण करना हित मान, अपनी मति में धारण कर, प्रभु की आज्ञा अनुवर्तन कीजिये; नहीं तो 'प्रभु-आज्ञा-भंग' का बड़ा भारी दोष आप को लगेगा।"

इस्पर, श्रीजयदेव जी बोले कि "मैं श्रीजगन्नाथजी की ऐसी आज्ञा पालन करने में समर्थ नहीं हूं। वे प्रभु समर्थ हैं उनको सहस्रों (हज़ारों) सुन्दर स्त्रीयां शोभा देती हैं, पर मुझे तो एक ही स्त्री पहाड़ है, अर्थात् जैसे दुर्बल निर्बल मनुष्य को पहाड़ का चढ़ना उतरना लांघना अगम होता है, अथवा पहाड़ का उठाना असक्य है, वैसेही मुझको एकही स्त्री का सँभाल अतिशय अगम असह्य है, इस्से आप यहां से चलेही जाइये; हम आप को और क्या बात कह के रिसायँ" ॥

(८१६२) टीका। कवित्त।

सुतासों कहत "तुम बैठि रहो याही ठौर, आज्ञा सिरमौर मोपैं* नाहीं जाति टारी है"। चल्यो अनखाइ समझाइ हारे बातनि सों; "मन! तूं समझ, कहा कीजे? सोच भारी है!" बोले द्विज-बालकीसों "आप ही विचार करो, धरो हिये ज्ञान, मो पैं जाति न सँभारी है"। बोली कर जोरि "मेरो जोर न चलत कछू, चाहो सोई होहु, यह वारि फेरि डारी है"॥ १४६॥ (६२९-४८३)

"सिरमौर" = शिरोमणि। "जोर (,,;)"=बल। "अनखाइ" = अमर्ष करके, सङ्कोच। "वारि फेरिडारी"=न्योछावर हुई। "बालकी." = बालिका. कन्या, लड़की।

*पाठान्तर 'मेरे'।

वार्तिक तिलक।

तब, भक्त ब्राह्मण ने अपनी कन्या से कहा कि "तू इसी ठौर इन्ही के पास बैठ रह, क्योंकि त्रयलोक्य शिरोमणि श्रीजगन्नाथ जी की आज्ञा मुझ से टारी नहीं जाती;" ऐसा कह, कन्या को बिठला (बैठाय), ब्राह्मण कुछ अनखाके चल दिया। आप बहुत प्रकार की वार्ता से ब्राह्मण को समझा के हार गए, परन्तु ब्राह्मण ने नहीं ही माना, आप की एक न सुनी।

आप अपने चित्त में कहने लगे कि "रे मन! तू समझ, विचार कर, कि अब क्या करना योग्य है? यह बड़े भारी सोच की वार्ता आ पड़ी!"

और, विप्रसुता से बोले कि "तुम अपने पति की योग्यता तथा योगक्षेम निर्वाह आदिक को विचार करो, जैसा करना उचित है वैसा ज्ञान हृदय में धारण करो; मेरे पास मत बैठी रहो; क्योंकि तुम्हारा सारसँभार मुझ से नहीं होने का।"

श्रीपद्मावती जी आप की पूर्व जन्म सम्बन्ध-सौभाग्यवती तो थीं ही, यह सुन, हाथ जोड़, बोलीं कि "नाथ! मेरा कुछ बल विचार नहीं चलता; अब जो चाहे सो हो, मैं तो पिता के देने से तथा प्रभु आज्ञा से, आप को श्रीजगन्नाथ ही जान, अपना नाथ मान,

श्राप के ऊपर तन मन से न्योछावर हो, श्राप की हो चुकी ॥"

(१/८ १/४ १/२) टीका । कवित्त ।

जानी जब "भई तिया किया, प्रभु जोर मो पैं, तो पैं एक झोपरी की छाया करि लीजियै"। भई तब छाया, श्याम सेवा पधराइ लई, "नई एक पोथी मैं बनाऊं" मन कीजियै ॥ भयो जू प्रगट "गीत" सरस "गोविन्द" जू को, मान में प्रसंग "सीस मंडन सो * दीजियै"। एही एक पद मुख निकसत सोच पस्यो, धस्यो कैसे जात? लाल लिख्यो, मति रीझियै ॥.१४७ ॥ (६२९—४८२)

* "पाठान्तर"="को"।

"छाया"=छांह, कुटीर, झोपड़ी, गृह।

"धस्यो कैसे जात?" = किस प्रकार से लिखा जासके?

वार्तिक तिलक।

इस प्रकार जब श्री पद्मावती जी से सुबुद्धि-विनय प्रीति-पतिव्रत-भरा हुआ उत्तर श्रीजयदेव जी ने सुना, तब जाना कि "यह मेरी पत्नी हुई, क्योंकि श्रीजगन्नाथ जी ने मुझ पर अपनी प्रभुता का बल किया, अब मेरी कुछ नहीं चलने की। इससे उचित है कि एक झोंपड़ी की छाया कर लूं" ऐसा विचार सज्जनों से कहकर एक कुटी बनवा ली।

जब छाया हो गई, तब श्रीश्यामसुन्दर जी की मूर्ति सेवा के हेतु पधराली; क्योंकि गृह कुटी में रह

के, जो भगवत मूर्ति की पूजा कर अन्न को भोग लगा के प्रसाद नहीं पाते, अपने ही लिये बना के खालेते हैं, वे पाप ही भोजन करते हैं (ऐसा श्रीगीता जी में लिखा है। श्लोक। यज्ञ शिष्टा शिनः संतो मुच्यंते सर्व किल्बिषैः। भुंजते तेत्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात॥ (३।१३)॥

कुछ काल में श्री प्रभु प्रेरणा से आपके हृदय में इच्छा हुई कि "मैं श्री प्रभु चरित्र मय एक नवीन पुस्तक बनाऊं" तब "श्रीगोविन्द" जी का अतिसरस "गीत" अर्थात् "श्रीगीत गोविन्द" प्रगट हुआ।

उसमें जब श्रीराधिका जी के महामान का प्रसङ्ग आया, तो उस स्थान पर ध्यान भावना में आपको श्याम सुन्दर जी का विनय श्रीप्रिया जी प्रति यह पद स्फुरित हुआ कि "स्मर-गरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं देहि पदपल्लवमुदारम्" (हे प्रिये! कन्दर्प का विष खंडन करनेवाला और मेरे मस्तक का मण्डन, भूषण, अपना उदार पदपल्लव मेरे सीस पर रख दीजिये); इसी एक पद के मुख से निकलते ही, श्री जयदेव जी को सोच संकोच हुआ, कि "इस प्रकार का पद पोथी में कैसे लिखूं ?"

तब सोच विचार करते स्नान को चले गए। इतने में श्रीराधारमण जी ने, जयदेव जी के स्वरूप से आके, जयदेव जी की मति में रीझ के, जो पद स्फुरित

हुआ था वही पद पुस्तक में आपही लिख दिया ॥

पुनः जब जयदेव जी स्नान करके आए और पुस्तक में वह पद लिखा देखा, तब पद्मावती जी से पूछा कि "यह पद किसने लिख दिया?" उनने कहा "अभी अभी आपही तो आके लिख गये हैं" जयदेव जी ने कहा कि "मैं ने तो नहीं लिखा" तब यह निश्चै हुवा कि प्रभु आपही लिख गए हैं ॥

(१९२/८४२) टीका । कवित ।

नीलाचल धाम तामैं पंडित-नृपति एक, करी यही नाम धरि पोथी सुख दाइये। द्विजनि बुलाइ कही "वही है, प्रसिद्ध करो, लिखि लिखि पढ़ौ देश देशनि चलाइये" ॥ बोले मुसिकाइ विप्र क्षिप्र सी दिखाइ दई "नई यह कोऊ मति अति भरमाइये"। धरी दोऊ मंदिर मैं जगन्नाथ देव जू के; दीनी यह डारि, वह हार लपटाइये ॥ १४८ ॥ (६२९—४८१)

वार्तिक तिलक ॥

जब श्री "गीतगोविन्द" जी बन के पूर्ण हो गए और प्रभु अनुग्रहीत जान सब कोई पढ़ने गाने लगे, तब इस्को देखके श्रीजगन्नाथ धाम का राजा जो पण्डित था, सो उसने भी यही (गीतगोविन्द) नाम रख के दूसरा एक

सुखदाई पुस्तक बना, ब्राह्मण पण्डितों को बुला, पुस्तक देकर, बोला कि "यह वही गीतगोविन्द है इस्को लिख २ के पढ़ो, और देश देश में प्रसिद्ध करो चलाओ।"

यह सुन, पण्डितों ने श्रीजयदेव जी कृत गीतगोविन्द राजा को दिखा के मुस्क्याके उत्तर दिया कि "राजन्! वह गीतगोविन्द तो देखिये यह है, और यह दूसरी किसी ने नई बनाई है, हमारी मति में अत्यन्त भ्रम होता है"।

इस्पर, दोनों पुस्तकें श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर में रख दी गईं। तब प्रभु ने इस राजावाली पुस्तक को अलग फेंक के, 'श्रीजयदेव-कृत गीतगोविन्द' को पदिक हार की नाईं अपने हृदय में लपटा लिया॥

(१९३/८४२) टीका। कवित।

पर्‍यो सोच भारी, नृप निपट खिसानो भयो, गयो उठि सागर मैं, "बूड़ों वही बात है। अति अपमान कियो; कियो मैं बखान सोई, गोई जात कैसें?" आंच लागी गात गात है॥ आज्ञा प्रभु दई "मत बूड़े तूं समुद्र मांझ, दूसरोनग्रन्थ ऐसो, वृथा तनुपात है। द्वादश सुश्लोक लिखि, दीजे सर्ग द्वादश मैं, ताहि संग चले जाकी ख्याति पात पात है" ॥१४९॥ (६२९-४८०)

"पात पात"=सर्ब माहिँ, सब में ॥

वार्तिक तिलक।

जब श्रीजगदीश जी ने उस पुस्तक का आदर करके राजा की पोथी का निरादर कर दिया, तब राजा को बड़ा ही शोक हुवा, तथा अति संकुचित गलितमान होकर, उठके समुद्र की दिशि चल दिया; और मन में यह निश्चय किया कि "अब मैं समुद्र में डूब के मर जाऊं, सो भला है; क्योंकि जो जयदेव जी ने कहा सोई मैंने बखान किया और प्रभु ने मेरा इस प्रकार का अतिशय अपमान किया; तिसको मैं कैसे छिपाऊं।" इस प्रकार राजा सर्बाङ्ग संतप्त होकर डूबने ही तो लगा।

सो देख, भक्तवत्सल करुणाकर श्रीजगन्नाथ जी ने प्रगट होकर, आज्ञा दी कि "तुम समुद्र में मत डूबो, मैं सत्य सत्य कहता हूं "जयदेव जी के ग्रन्थ स-रीखा तुम्हारा तथा और कोई ग्रन्थ है ही नहीं; तुम वृथा ही शरीर त्याग करते हो। एक बात करो कि अपने ग्रन्थ के बारह श्लोक, जिस गीत गोबिन्द की प्रसिद्धता बिराट रूपी वृक्ष के पत्रों पत्रों में है अर्थात् मनुष्यों मनुष्यों में है, उसी में लिख दो; उसी के साथ साथ तुम्हारे भी द्वादश श्लोक चलैंगे (प्रसिद्ध होंगे)।"

राजा ने हर्ष पूर्बक प्रभु की आज्ञा मानकर ऐसाही किया ॥

(१/८ १/४ ४/२) टीका। कवित्त।

सुता एक माली की जु बैंगन-की-बारी मांझ तोरे, "बनमाली" गावै कथा सर्ग पांच की। डोलैं जगन्नाथ पाछें, काछें अङ्ग मिहीं झँगा, "आछे" कहि घूमैं सुधि आवै बिरहांच की॥ फट्यो पट देखि नृप पूछी "अहो भयो कहा?" "जानत न हम"; "अब कहो बात सांच की"। प्रभु ही जनाई "मन भाई मेरे वही गाथा" ल्याए वही बालकी कौं पालकी मैं नांच की॥ १५०॥ (६२९—४७९)

"बिरहांच"=बिरह की आंच, बिरहाग्नि ताप। "नांच की"=नृत्य किया।

वार्तिक तिलक।

एक दिन एक माली की कन्या बैंगन (भांटा) की बारी में बैंगन तोड़नी हुई श्रीगीतगोबिन्द के पंचम सर्ग की कथा का यह पद गाती थी "न कुरु नितम्बिनि गमन बिलम्बन मनुसर तं हृदयेशम्॥ धीरसमीरे यमुनातीरे बसति बने बनमाली" (अर्थ दूती श्रीराधिका जी से कहती है कि हे नितम्बिनि! अब गमन में बिलम्ब मत करो; उन प्राणप्रिय के समीप चलो। वे बनमाली बनविषे यमुना के कूल में धीर समीर कुंज में बसते हैं।) इसी पद को सुनते हुए उस माली की सुता के पीछे पीछे श्रीजगन्नाथ जी निज अंगमें झीना झंगा (जामा) पहिने फिरतेडोलतेथे; और

जब वह तान तोड़ती थी तब प्रेममादिकता से झूम के "बहुत अच्छा" कहते थे, क्योंकि पद सुनतेही उस समय के विरहाग्नि की सुधि आ जाती थी, अर्थात् बिरहाग्नि से संतप्त हो के उस दूती को प्रिया जी के पास आपही ने भेजा था।

जब वह कन्या अपने घर को चली गई तब बैंगन के कंटकों से झंगा फाड़ के आप मन्दिर में आए और उसी समय पुरुषोत्तमपुरी का राजा दर्शन करने आया; सो फटे हुए बस्त्रों को देख के पंडा से पूछा "क्यों जी! श्रीजगन्नाथ जी के ये बस्त्र कैसे फटे हैं? सत्य २ कहो, क्या हुआ है ?" पंडा ने कहा "हम नहीं जानते कि क्या हुआ है॥"

तब, प्रभुही ने जनाया कि "वह माली की कन्या बैंगन की बारी में गाती थी, सो हम सुनते थे; इस्से बस्त्र फट गए हमको वह कथा अतिही प्रिय लगी है" तात्पर्य्य "उसको बुला के गवाओ"।

ऐसी आज्ञा सुन के उसी क्षण पालकी पर चढ़ा के उस कन्या को लाए। आके गान और नृत्य करके उसने प्रभु को प्रसन्न किया॥

($\frac{१६५}{८४२}$) टीका। कबित्त।

फेरी नृप डौंडी, यह औंडी बात जानि महा; कही "राजा रंक पढ़ें नीकी ठौर जानि कैं। अक्षर मधुर और

मधुर स्वरनि हि सों गावैं जब लाल प्यारी ढिग हिले मानिकैं" ॥ सुनि यह रीति एक मुग़ल ने धारि लई, पढ़ै चढ़े घोड़े आगे श्याम रूप ठानिकैं। पोथी को प्रताप स्वर्ग गावत हैं देवबधू आपही जु रीझि लिख्यो निज कर आनिकैं ॥ १५१ ॥ (६२९-४७८)

"औंड़ी" = गहिरी, गंभीर। "मुग़ल" مغل =यवन जाति बिशेष।

वार्तिक तिलक।

श्री गीतगोविन्द इस प्रकार प्रभु को प्रिय जानकर श्री पुरुषोत्तमपुरी के राजा ने सर्वत्र डौंड़ी (ढँढोरा) फिरवा दिया, क्योंकि उक्त ग्रन्थ के गान की बार्ता बड़ी ही गहिरी जानी; और यह पुकार करा दिया कि "राजा हो अथवा रंक हो परन्तु श्री गीतगोबिन्द को अच्छे ठौर ठिकाने पर पढ़ै और मधुरता से अक्षरों को उच्चारण कर मधुरही स्वर से गान करे, तथा गाते समय अपने मन में ऐसा निश्चय मान ले कि श्रीराधिकाश्याम जी मेरे समीप ही में सुन रहे हैं"।

राजा की पुकार कराई हुई इस बार्ता को एक मुगल जाती के यवन ने सुनकर अपने मन में निश्चय कर धर लिया; और, घोड़े पर चढ़ा चला जाता श्रीगीत गोविन्द का पद गान करता था। इसके बिश्वास पर रीझ के श्रीश्यामसुन्दर जी ने अनूप रूप धारण कर आगे आके दर्शन दिया; तथा संसार सागर से उसको मुक्त भी कर दिया ॥

श्रीगीतगोविन्द पुस्तक के प्रताप को स्वर्ग में देव बधू गान करती हैं क्योंकि जिससे रीझ के स्वयं प्रभु ने आके निज कर कमल से पूर्वकथित ("स्मर गरल खण्डनं" इत्यादि) पद लिख दिया। इससे इस की महिमा जहां तक कही जाय सो सब युक्त ही है ॥

(१९१/८४२) टीका। कवित्त।

पोथी की तो बात सब कही मैं सुहात हिये; सुनो और बात जामे अति अधिकाइयें। गांठि में मुहर मग चलत मैं ठग मिले, "कहो कहां जात?" "जहां तुम चलि जाइयें॥ जानि लई बात, खोलि द्रव्य पकड़ाइ दियो, लियो चाहो जोई जोई सोई मोकों ल्याइयें। दुष्टनि समुझि कही "कीनी ईनी विद्या अहो आवै जो नगर इन्हें बेगि पकराइयें" ॥१५२॥ (६२९-४७७)

वार्तिक तिलक।

श्रीगीतगोविन्द पुस्तक की रचना और प्रभु प्रिय होने की, अपने तथा सज्जनों के हृदय की, सुहाती बार्ता तो मैंने सब कह ही दी; परन्तु श्रीजयदेव जी के चरित्र की और बार्ता सुनिए कि जिस्मे उनकी शान्ति सहनशीलता साधुता की अति अधिकाई है।

एक समय आप सन्तसेवा भंडारा के वास्ते अन्न घृतादि सामग्री लेने को द्रव्य मोहर गांठ में बांधे हुए ग्रामान्तर को चले जाते थे दैवयोग मार्ग में कई

ठग चोर मिल गए; तब आपने पूछा कि "कहाँ जाते हो?" चोरों ने कहा "जहां तुम जाते हो।" तब श्रीजयदेव जी ने जान लिया कि "ठग हैं ऐसा न हो कि द्रव्य के हेतु मेरे भजन-सहायक शरीर का घात करें;" इससे गांठ से छोर (खोल के) सब द्रव्य चोरों को दे दिया। परन्तु दुष्ट इस साधुता को उलटा ही समझ आपस में कहने लगे कि देखो इसने यह अपनी बुद्धिमानी की है कि अभी द्रव्य दे दूं; जब नगर ग्राम आवे तब इन सबों को शीघ्र पकड़ा दूँ॥

(११९३) टीका। कवित।

एक कहै "डारो मार, भलो है बिचार यही," एक कहै "मारो मत, धन हाथ आयो है"। "जौ पै ले पिछान कहूं कीजियै निदान कहा," हाथ पांव काटि बड़ो गाड पधरायो है॥ आयो तहां राजा एक, देखि के बिबेक भयो, छयो उजियारो, औ प्रसन्न दरसायो है। बाहिर निकासि मानो चन्द्रमा प्रकाश रासि; पूछ्यो इतिहास; कह्यो "ऐसो तनु पायो है"॥ १५३॥ (६२९—४७६)

वार्तिक तिलक।

ऐसा सुन एक ठग बोला कि जब इसने ऐसी चातुरी की है, तो इसको मारडालना ही अच्छा विचार है" यह सुन और ठग कहने लगे कि "मारो

मत क्योंकि धन तो हमारे हाथ आही गया अब मार डालने का क्या काम है?' तब दूसरे दुष्ट बोले कि भला जो कहीं पहिचान के पकड़ा दे तब क्या करोगे?" इत्यादि कुतर्क कुसंमत करके श्रीजयदेव जी के हाथों तथा पगों को काट कर बड़ेभारी गड्ढे में डाल दिया और चले गए।

तदनन्तर उस बन में आके एक राजा ने श्रीजयदेव जी को देखा; उसी क्षण उसके हृदय में ज्ञान उदय हुआ और चमत्कार क्या देखता है कि हाथ पग तो कटे हैं परन्तु आप के तेज की उजियाली हो रही है और मुखारबिन्द प्रसन्न है तब राजा ने आप को गड़हे से निकलवा कर बाहर बैठाल के दर्शन किया मानो अनेक चन्द्रमाओं के राशि का प्रकाश हो रहा है। फिर आप से हाथ पग कटने का वृत्तान्त पूछा। श्रीजयदेव जी ने कहा कि "मुझे इसी प्रकार का शरीर मिला है।"

इस प्रसंग में कोई महानुभाव इस प्रकार का भाव कहते हैं कि श्रीजगन्नाथ जी ने जो कहा था कि "रसिक जयदेव मेरोई स्वरूप जानो" सोभी अपने बर्तमान विग्रह की सदृशता कराके लोक को दिखा के फिर अच्छा कर दिया॥

(८६६) टीका। कवित्त।

बड़ेई प्रभाववान, सकै को बखान? अहो मेरे कोहु

भूरि भाग, दरशन कीजियै। पालकी बिठाइलिये, किये सब ठूठ नीके, जीके भाए भए "कछु श्राज्ञा मोहि दीजियै" ॥ "करौ हरि-साधु-सेवा, नाना पकवान मेवा; श्रावैं जोई सन्त तिन्है देखि देखि भीजियै"। श्राए वेई ठग, माला तिलक चिलक किये, किलकि कै कहि "बड़े बन्धु लेखि लीजियै" ॥ १५४ ॥ (६२१—४७५)

"मालातिलक चिलक किये"=कण्ठी माला तिलक आदि सन्त भेष बनाए। "भीजियै"=प्रेमाश्रुयुक्त; प्रेम रस में भीगा।

वार्तिक तिलक।

श्रीजयदेव जी के इस प्रकार गंभीर बचन सुनके राजा श्रपने मन में बिचारने लगा कि "येतो कोई बड़े ही प्रभावयुक्त श्रकथनीय महानुभाव हैं; मेरे कोई बड़े भाग्य उदय हुए कि मैंने इन के दर्शन पाए"। ऐसा बिचार कर श्रापको पालकी पर बिठा के श्रपने घर में लिवा लाया श्रौर कटे हुए हाथपगों के ठूठों को श्रौषधि से श्रच्छा कराया।

फिर, श्राप के पास श्रा, प्रणाम कर, राजा बोला कि "हे स्वामी जी! यह श्रापका श्रागमन श्रौर हाथ पग का श्रच्छा हो जाना श्रति उत्तम हुवा परन्तु श्रब मुझको कुछ हितोपदेश तथा श्राज्ञा दीजिए"। राजा के बिनय सुन श्रीजयदेव जी ने श्राज्ञा दी कि "दिब्य मन्दिर बनवा के श्रीभगवान की मूर्त्ति पधराश्रो, श्रौर

नित्य सेवा पूजा मेवा मिठाई भोग अर्पण करो, तथा प्रभु के आगे सन्तशाला बनवा के उसमें अति प्रेम से साधु सेवा करो। और, जो सन्त आवैं तिनका दर्शन करके प्रेमरस में भींजि जाया करो"।

आपकी आज्ञा मस्तक पर धारणकर राजा इसी प्रकार करने लगा॥

तन, मन, धन, अर्पण पूर्वक राजाकृत सन्तसेवा सुनके, वे सब ठग भी चमाचम-तिलक तथा माला धारण कर साधुवेष बना के आए। श्रीजयदेव जी उन सबों को देखतेही अति प्रीतिहर्षाकुल होके बोले कि "आइए २" और समीप के लोगों से कहने लगे कि "ये सब मेरे बड़े गुरुभाई हैं। इन को दर्शन और प्रणाम करो"॥

(११९/८४२) टीका। कवित्त।

नृपति बुलाइ कही हिये हरि भाय भरे, "ढरे तेरे भाग, अब सेवा फल लीजियै।" गयो लै महल मांझ टहल लगाए लोग, लागे होन भोग; जिय शंका तन छीजियै॥ मांगैं बारबार बिदा; राजा नहीं जान देत; अति अकुलाये, कही स्वामी "धन दीजियै"। देकैं बहु-भांति सो, पठाए संग मानस हूं, "आवौ पहुँचाय तब तुम पर रीझियै"॥ १५५॥ (६२९—४७४)

पाठान्तर "अकुताए"। अति त्वरा की, अति शीघ्रता चाही।

"मानुस हूं"=मनुज हूं, मनुष्य भी। "ढरे"=आए हैं, पधारे हैं।

वार्तिक तिलक।

श्रीजयदेव जी ने राजा को बुलवा के कहा कि "हे राजा! श्रीभगवत के प्रेमभाव से भरे हुए हृदय वाले ये सन्त तुम्हारे भाग्यवस आज पधारे हैं, आज तक तुमने जितनी सन्तसेवा की है तिसका फल अब इन की सेवा करके लो।"

आप की आज्ञा मान राजा ने अतिहर्ष से उन को लेजा कर अपने राजभवन में सबों का आसन निवास दिया; और बहुत मनुष्यों को सेवा टहल में लगा दिया। नित्य नवीन भोग पदार्थ अर्पण करने लगा। तथापि, वे दुष्ट तो अतिही अपराधी थे; इस्से जी में यह शंका हो रही थी कि "जयदेव जी हम सबों को मरवाही डालेंगे"। अतएव सबों का शरीर सूखा जाता था। वे ठग बारंबार बिदा मांगते परंतु भक्त राजा नहीं जाने देता; जब ठग लोग अतिही अकुला गए, बड़ी शीघ्रता मँचाई, तब श्रीजयदेवजी ने उन की शंका जानकर राजा को आज्ञा दी कि "ये सन्त हैं, रजो-गुणी के हां इतनाही बहुत रहे, अब धन वस्त्रादिक देके बिदा कर दो।"

आप की आज्ञा सुन राजा ने रत्न सुवर्ण मुद्रादि बहुत प्रकार का धन दे के बिदा किया, और वह धन ले जाने रक्षा करने के लिये बहुत से मनुष्य साथकर

उन से कहा कि "अच्छे प्रकार सन्तों को पहुँचाकर आवोगे तब तुम लोगों पर मैं अतिही प्रसन्न होकर बहुत द्रव्य दूंगा" ॥

(२८०४१) टीका। कवित्त।

पूछैं नृप-नर "कोऊ तुम्हरी न सरबर, जिते आए साधु ऐसी सेवा नहीं भई है। स्वामी जू सौं नातौ कहा? कहौ हम खांइ हहा;" "राखियो दुराइ, यह बात अति नई है ॥ हुते एक ठौर नृप चाकरी मैं, तहां इन कियोई बिगार 'मारिडारौ' आज्ञा दई है। राखे हम हितू जानि, लै निदान हांथ पावँ, वाही के इसान अब हम भरिलई है" ॥१५६॥ (६२९—४७३)

"सरबर"=तुल्यता। "इसान"=इह्सान्, उपकार, भलाई।

वार्त्तिक तिलक।

इस प्रकार जब चल के मार्ग में आए तब राजा के सेवक लोग उन से पूछने लगे कि "महाराज! आप सबों के समान कोई महात्मा नहीं हैं; क्योंकि यहां जितने सन्त आए हैं उनमें किसी की भी ऐसी सेवा नहीं हुई; आप कृपा करके कहिए हम लोग अति बिनय करके हाहा खाते हैं स्वामी जी से और आप सबों से क्या नाता सम्बंध है?" यह सुन दुष्ट बोले कि "हम कहते तो हैं परन्तु यह बात बहुत नवीन (आश्चर्य्यमय) है, इस्से छिपा रखना, कहीं कहना नहीं। प्रथम हम लोग और ये स्वामी जी एकही राजा के चाकर थे;

वहां इनने बहुत ही बुरा काम किया था; राजा ने आज्ञा दी कि 'इसको मारडालो' तब हम लोगों ने अपना हितू जान के इन के प्राण की रक्षा की, केवल हाथ पग काट के राजा को दिखा दिये थे। उसी उपकार के पलटे में अब हम ने यह सेवा सतकार धन सब ले लिया है" ॥

(२०१ / ८४३) टीका । कवित्त ।

फाटि गई भूमि, सबठग वै समाइ गए, भए ये चकित दौरि स्वामी जू पै आए हैं। कही जिती बात सुनि गात गात कांपि उठे, हांथ पांव मीडैं भए ज्यों के त्यों सुहाए हैं ॥ अचिरज दोऊ नृपपास जा प्रकाश किये जिए एक सुनि आए वाहीठौर धाए हैं। पूछैं बारबार सीस पांयनि पै धारि रहे कहिए उघारि कैसे मेरे मन भाए हैं ॥ १५७ ॥ (६२९—४७२)

"उघारि"=प्रगट कर, खोलके ।

वार्तिक तिलक ।

श्रीजयदेव जी ने इस प्रकार की क्षमा साधुता की; परन्तु दुष्टों के चित्त में एक भी न चढ़ी, उलटे निन्दा युक्तही बचन कहे; इस्से यद्यपि श्री भूमि जी का "सर्वंसहा" नाम है तथापि इन सन्तद्रोहियों की न सहि सकीं; जितने में ठग थे उतनी भूमि फट गई! दुष्ट रसातल को चले गए!!

राजा के मनुष्य देख के अतिचकित हुए और दौड़ के स्वामी जी के समीप आ संपूर्ण बृन्तात कह सुनाया। सुन के श्रीजयदेव जी सर्वाङ्ग कंपित होकर हाथ पग मीडने लगे। मीडतेही आपके कर तथा चरण सुन्दर ज्यों के त्यों निकल आए।

दुष्टों का भूमि में समाजाना तथा आप के हस्त पद ज्यों के त्यों हो जाना, ये दोनों आश्चर्य देख राजा के सेवक जनों ने राजा को आ सुनाया; आप के हाथ पगों का यथार्थ हो जाना सुन कर नृप ऐसा प्रसन्न हुआ कि जैसा मरणप्राय पुरुष अमृत पी के जी उठै, और दौड़कर श्री जयदेव जी के पास आके चरणौं में सीस धर बारंबार पूछने लगा कि "हे महाराज! मेरे मन भावते आप के ये हस्त पद कैसे अच्छे हो गए? और वे लोग भूमि में क्यों समा गए? इस आश्चर्य्य चरित्र का मर्म खोल के कहिए कृपा करके" ॥

(३०३/८४१) टीका। कवित।

राजा अति आरि गही, कही सब बात खोलि, निपट अमोल यह सन्तन को बेस है। कैसौ अपकार करैं तऊ उपकार करैं ढरैं रीति आपनी ही सरस सुदेस है॥ साधुता न तजे कभूं जैसे दुष्ट दुष्टता न, यही जानि लीजे मिले रसिक नरेस है। जान्यो जब नांव ठांव

"रहो इहां बलि जांव भयो मैं सनाथ, प्रेम भक्ति भई देस है" ॥ १५८ ॥ (६२९–४७१)

"अरि"=हठ। "खोलि"=स्पष्ट करके, गुप्त न रख के, प्रगट।

वार्तिक तिलक।

जब राजा ने, श्रीजयदेव जी के चरणों में सिर धर के, अति ही हठ ग्रहण करके, पूछा तब आप, अपना नाम ग्राम, तथा ठगों की करनी सब वार्त्ता यथार्थ कहकर, हितोपदेश करने लगे कि "राजन्! वे ठग अत्यन्त अयोग्य सन्तों का वेष बना के आए, इसी से मैंने उनका अतिशय सतकार कराया; भगवद्भक्त को ऐसा ही उचित है, कि कोई कैसेहूं अपकार करे तब भी उसका उपकारही करें, अपनी सरस सुदेश रीति ही से चलें, कभी साधुता को न त्याग करना चाहिए जैसे दुष्ट अपनी दुष्टता कभी नहीं त्याग करता; यह निश्चय जान लो कि इसी प्रकार की साधुता से प्रभु-रसिकनरेश मिलते हैं" ॥

जब श्रीजयदेव जी के कहने से राजा ने जाना कि किन्दुविल्ववासी श्रीगीतगोविन्द काव्य के कर्त्ता आप ही हैं, तब तो अति ही प्रेम भाव में भर के प्रार्थना करने लगा कि "हे प्रभो! मैं आप के ऊपर न्योछावर होता हूं; अब आप श्री पद्मावती जी सहित यहां ही रहिए; मैं सनाथ होऊं; जबसे आप विराजे तब से इस नगर तथा देश में भगवद्भक्ति उत्पन्न हुई; अब उसको बढ़ाइये, और मुझ पर कृपा कीजिये ॥"

(३०३/८४१) टीका । कवित्त ।

गयो जा लिवाय ल्याय कबिराज-राज तिया; किया लै मिलाप आप रानी ढिग आइ है । मस्यो एक भाई वाको, भई यों भौजाई सती, कोउ अङ्ग काटि, कोउ कूदि परी धाइ है ॥ सुनतही नृपबधू निपट अचंभो भयो इनकैं न भयो फिरि कही समुझाइ है । "प्रीति की न रीति यह बड़ी विपरीति अहो छुटै तन जबै प्रिया प्रान छूटि जाइ है" ॥ १५९ ॥ (६२९—४७०)

वार्तिक तिलक ।

राजा ने अपनी प्रार्थना श्रीजयदेव जी को अङ्गीकार कराकर किन्दुविल्व से सादर श्रीपद्मावती जी को लाके दोनों मूर्त्ति का मिलाप करा दिया; और भक्तराजा की रानी भी श्रीपद्मावती जी के दर्शन सतसङ्ग को आया करती थी । एक दिवस कविराज-कान्ता जी के पास रानी बैठी थी उसी समय किसी किंकरी ने सुनाया कि "आप के भाई का शरीर छूट गया; सो आपकी भौजाइयाँ कोई सती होगईं, कोई शस्त्र से अंग काट के मर गईं, कोई दौड़कर चित्ता में कूद पड़ीं।" रानी यह सुन, उन सबों के प्रीति पातिव्रत का परम आश्चर्य्य मान, विस्मित हुई; पर श्री पद्मावती जी ने इस बात का कुछ आश्चर्य्य न किया; किन्तु रानी को समझाकर कहने लगीं कि "यह प्रीति

की रीति नहीं है, शस्त्र से मर जाना, जर जाना, बड़ी विपरीति गति है; प्रीति की रीति तो यह है कि प्रिय पति का शरीर छूटते ही प्रिया के प्राण छूट जायं"॥

(२०४/८४६) टीका। कवित्त।

"ऐसी एक आप" कहि, राजा सुं युं बात कही. "लेकें जाओ बाग स्वामी नेकु, देखौं प्रीति कों"। "निपट बिचारी बुरी, देत मेरे गरे छुरी," तिया-हठ मानि करी वैसेही प्रतीति कों॥ आनि कहे "आप पाय" कही यही भांति आय, बैठी ढिग तिया देखि लोटिगई रीति कों। बोली "भक्तबधू अजू! वे तो हैं बहुत नीके, तुम कहा औचक हीं पावतिहो भीति कों"॥ १६०॥ (६२९–४६९)

"आप पाय"=आप ने श्री हरिधाम पाया। "औचक हीं"=अचानक, धोखे में। "सुँ"=से। "युँ"=यों, इस भांति।

बार्तिक तिलक।

श्रीपद्मावती जी के बचन सुनके भक्त राजा की स्त्री बोल उठी कि "ऐसी प्रेममूर्त्ति तो जगत में एक आप ही हो" ऐसा कहके, फिर उसने राजा से जाके सब वार्ता कही; और साथही यह बात भी, आग्रह पूर्वक, कही, कि "आप स्वामी जी को बाटिका में तनक लेके जाइये, तो मैं भला इनकी प्रीति देखूं तो"। भक्त राजा ने उत्तर दिया कि "तूने ऐसा विचार बहुतही बुरा किया है, तू मेरा गला ही काटा चाहती है"।

कुसंग से कहां हानि नहीं हुई? दुष्टा रानी के हठ आग्रह बस उसके बचन में प्रतीति करके, राजा ने वैसाही किया। उस त्रिया ने एक टहलनी को सिखा रक्खा था; जब वह श्रीपद्मावती जी के पास बैठी हुई थी, उसी क्षण वह लौंडी आकर सिखाई बनाई दुख-की-रीति से बोली कि "स्वामी जी तो बैकुण्ठ धाम पागए"; यह सुन राजा की स्त्री रोरो कर कुरीति से भूमि में लोट गई।

पर, श्रीजयदेवप्रिया जी ने कहा कि "हे भक्तबधू! तुम व्यर्थही धोखे में पड़ती और भयभीत होती हो, श्री स्वामी जू महाराज तो बहुत अच्छे बिराज रहे हैं"॥

(२०५/८४२) टीका। कवित्त।

भई लाज भारी, पुनि फेरिकै सँवारी दिन बीति गए कोऊ, जब तब वही कीनी है। जानि गई 'भक्त बधू चाहति परीछा लियो,' कही "अजू पाए"; सुनि तजी देह भीनी है॥ भयौ मुख स्वेत रानी; राजा आए जानी यह, रची चिता "जरौं, मति भई मेरी हीनी है"। भई सुधि आप कौं, सु आए बेगि दौरि इहां; देखि मृत्यु प्राय नृप, कह्यो "मेरी दीनी है" ॥१६१॥(६२१४६८)

वार्तिक तिलक।

जब श्रीपद्मावती जी इस झुठाई को जान गईं; तब तो रानी के मन में बड़ी भारी लज्जा हुई; परन्तु उस दुर्मति को छोड़ा नहीं, कुछ दिन बीते फिर पूर्ववत कपट

का ठाट रच कर वैसेही किया। तब श्रीपद्मावती जी जान गईं कि "यह मेरी परीक्षा लिया चाहती है"। इससे, जब उसके मुख से सुना कि "स्वामी जी श्री-हरि धाम को प्राप्त हुए," उसी क्षण स्नेह से भीजी हुई निज देह त्याग दी॥ श्रीपद्मावती जी की यह अलौकिक स्वछन्द-मृत्यु देख, रानी का मुख स्वेत हो गया; और राजा आके यह चरित्र सुन देख बोले कि "मेरी मति नष्ट हो गई इस स्त्री के संग से, इससे मैं जल जाऊंगा," और चिता रचा कर जलाही चाहता था॥ यह बार्ता श्रीजयदेव जी सुनतेही दौड़े आए राजा को देखा कि शोक से मृत्युप्राय हो रहा है। आप का दर्शन कर कहने लगा कि "स्वामी जी! मेरीही दी हुई मृत्यु से माता जी मरी हैं" !!!

(३०१/२४२) टीका। कवित्त।

बोल्यो नृप "आजू मोहि जरेई बनत अब, सब उपदेश लेके धूरि मैं मिलायो है"। कह्यो बहु भांति ऐपै आवति न शान्ति किहूं; गाई अष्टपदी, सुर दियो, तन ज्यायो है॥ लाजनि को मास्यो राजा चाहै अपघात कियो, जियो नहीं जात, "भक्ति लेसहूं न आयो है"। करि समाधान, निज ग्राम आए "किन्दु बिल्लु," जैसो कछु सुन्यों यह परचै लै गायो है॥

वार्तिक तिलक।

श्रीजयदेव जी ने राजा को निषेध किया कि "तुम

जरो मरो मत;" तब राजा बोला कि "आपजी महाराज! मुझे अब जले बिना नहीं बनता क्योंकि आप का समस्त उपदेश लेके मैंने धूल में मिला दिया'। यह सुन श्रीजयदेव जी ने बहुत प्रकार से समझाया तथापि राजा के हृदय में किसी प्रकार शान्ति नहीं ही आई; तब आपने ज ना कि 'बिना इनके जिवाए राजा नहीं जीवेगा;' इससे आप ने संजीवन मंत्र सम गीतगोबिन्द की अष्टपदी गानकर, शरीर में स्वर भर दिया; सुनतेही श्रीपद्मावती जी उठके साथ में आप भी गान करने लगीं। यह चरित्र देख के सब "जयजयकार" करने लगे॥

इस प्रकार आप ने अपनी भक्तिभाग्यवती को जिला दिया; तथापि लज्जा के मारे राजा को अपना जीना भला न लगता था, ग्लानि से ऐसा विचारता कि "हाय; मेरे मन में भक्ति का लेश भी न आया;" इससे आत्मघात किया चाहता था, तब श्रीजयदेव जी ने बहुत प्रकार उपदेश देकर उसको सावधान किया; और आप अपने किन्दुविल्व ग्राम को चले आए।

श्रीनाभास्वामी जी के छप्पै से उपरान्त, श्रीजयदेव जी के ये परचै चरित्र चमत्कार जिस प्रकार वृद्ध लोगों से सुना था, तिस भाँति गान किया॥

(२८४) टीका। कवित्त।

देवधुनी सोत हो अठारे कोश आस्रम तें; सदाई

अस्नान करैं, धरैं जोग्यताई कौं। भयो तन वृद्ध, तऊ छोड़ैं नहीं नित्य नेम, प्रेम देखि भारी निशि कही सुखदाई कौं ॥ "आवो जिनि ध्यान करो, करो मत हठ ऐसो" मानी नहीं "आऊँ मैं हीं;" "जानौं कैसे आई कौं"? । "फूले देखौ कंज तब कीजियो प्रतीति मेरी;" भई वही भांति, सेवैं अबलौ सुहाई कौं ॥ १६३ ॥ (६२९-४६६)

"देवधुनि"=देवसरिता, श्रीगङ्गा जी । "सोत"=स्रोत, धारा । "हो"=थी, रही ॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीजयदेव जी राजा के यहां से आए । श्री-गङ्गा जी की धारा आप के आश्रम से अठारह कोश थी, परन्तु आप श्री प्रभु कृपा से योगसिद्धि बेग से गमन कर, नित्य ही श्रीगङ्गा स्नान करते थे। जब आप का शरीर वृद्ध हो गया तब भी नित्य स्नान का नेम नहीं छोड़ा। ऐसा भारी प्रेम नेम देख, श्री-गङ्गा जी को दया लगी; क्योंकि यद्यपि योगावेश से जाते आते थे तौ भी शरीर को परिश्रम होता ही था; इससे श्रीगङ्गा जी ने निज सुखदाता श्रीजयदेव जी को रात्रि में आज्ञा दी कि "अब वृद्ध शरीर से नित्य स्नान को मत आवो, इस हठ को छोड़कर ध्यान ही से मेरा स्नान कर लिया करो।" परन्तु आप ने बात मानी नहीं; आतेही थे; तब श्रीगङ्गा जी ने कृपा कर कहा कि "तुम्हारे आश्रम के निकट की नदी में ही मैं आ-

ऊंगी इसी में स्नान किया करो" । आप ने पूछा कि "मैं कैसे जानूं कि आप आई हो ?" श्री गङ्गा जी ने कहा कि "देखो इस में कमल नहीं हैं; अब जब सुन्दर कमल फूले देखना तब मेरे आ जाने की प्रतीति करना ।" दूसरे दिवस देखैं तो दिव्य कमल फूले हैं, जल भी दिव्य गङ्गा जल के तुल्य अमल मिष्ट हो गया; तब श्रीजयदेव जी ने जीवनावधि उसी में स्नान और पान किया। अभी तक किन्दुविल्व ग्राम में अति सुहाई "जयदेई-गङ्गा" नाम से प्रसिद्ध हैं। सज्जन लोग श्री गङ्गा तुल्य मानकर सेवन स्नान पान करते हैं॥

मुन्शी तपस्वीराम जी सीतारामीय ने श्रीजयदेव जी की माता का नाम "श्रीराधा देवी" जी लिखा है, और श्री राधाकृष्ण दास जी की 'भक्तनामावली' (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) में "रामादेवी" है। इनका समय "सन् १०२५ ई० से १०५०. ईसवी तक" निर्णय किया गया है, अर्थात् विक्रमी सम्बत १०८२ तथा ११०७ के मध्य॥ इनका ग्राम किन्दुविल्व, बङ्गाल देश में बीरभूम से प्रायः दस कोस दक्षिण की ओर अजयनद के उत्तर था॥

(दोहा) प्रगट भयो जयदेव मुख, अद्भुत गीतगुविन्द ।
कह्यो 'महा शृङ्गार रस,' सहित प्रेम मकरन्द ॥
(श्रीध्रुवदास जी)

श्रीपद्मावती जी।

श्री आज्ञा से जब पिता ने आप को श्रीजयदेव जी के पास छोड़ दिया, तब श्रीपद्मावती जी ने अपने को आपकी दासी जानकर पातिव्रत उसी समय से धारण किया, और श्री जयदेव जी के और और प्रकार से समझाने पर भी आप की ही सेवा में दृढ़ रहीं। जब श्रीकविराजराजेश्वर जी स्नान को गए प्रभु ने आप उनके रूप में आकर श्रीपद्मावती जी को दर्शन दिये, तब इनके हाथ का भोजन सराह सराह के पाया; और वह पद पोथी में (पृष्ठ ५०८) लिख कर चल दिये; धन्य धन्य श्रीपद्मावती जी। जब दुष्टा रानी (भक्तबधू) ने पुनः पुनः परीक्षा ली (पृष्ठ ५२८) आप ने शरीर छोड़ ही दिया था। आप की प्रशंसा कहां तक की जा सके॥ "पद्मावति जयदेव प्रेम बस कीने मोहन" ॥ (श्री ध्रुवदास जी)

---

(३०६) छप्पै।

श्रीधर श्री भागौत में, परम-धरम नि-रनै कियौ ॥ तीन-कांड एकत्व सानि, कोउ अज्ञ बखानत। कर्मठ ज्ञानी ऐंचि अर्थ कौ अनरथ* बानत ॥ 'परमहंस-

संहिता' बिदित टीका बिस्तास्यो। षट-शास्त्रनि अबिरुद्ध बेदसंमतहिँ बिचास्यो॥ "परमानन्द" प्रसाद तें, माधौ सुकर सुधार-दियौ। श्रीधर श्रीभागौत मैं, परम धरम निरनै कियौ॥ ४४० ॥ (४५/२१३)

*"बानत"=बर्णत। जैसे, कनक हि बान चढ़ै जिमि दाहे। अर्थात् जैसे दाहेते कनक में बर्ण चढ़े। पुनः जैसे, गाजत अर्थात् गर्जत।
☞ "ठानत" पाठ, नवीन कल्पित है॥

वार्तिक तिलक।

श्री श्रीधर स्वामी।

श्री श्रीधरजी ने श्रीभागवत ग्रंथ बिषे परम-धर्म (श्रीभगवद्धर्म) का यथार्थ निर्णय किया अर्थात् श्रीव्यास जी और श्रीशुकजी ने जिस ठिकाने जो भागवद्धर्म जिस महत्व तथा जिस आशय से कथन किया था वहां वैसाही स्पष्ट अर्थ करके दिखा दिया॥ और अन्य टीका (अर्थ) करने वालों ने यथार्थ नहीं कहा। कोई लोग कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञान काण्ड, इन तीनों काण्डों को एकही में सान (मिला) के अर्थ बखानते हैं, "क्योंकि वे अज्ञानी हैं," तीनों का स्वरूप ही नहीं जानते। और पूर्व-मीमांसासक्त कर्मठ अर्थात् कर्मकाण्डी तथा उत्तर-मीमांसासक्त (वेदान्ती ज्ञानी, जन इस भक्ति ग्रंथ भागवत को, कर्म ज्ञान की दिशि खींचके

अर्थ को अनर्थ करके बर्णते हैं। और श्री श्रीधरानन्द जी ने जैसा "पारमहंस-संहिता" यह बिख्यात ग्रन्थ है, वैसाही परमहंसप्रीतिबर्द्धिनी टीका बिस्तारकर बर्णन किया कि जिसमें मीमांसा, बेदान्त, योग, सांख्य, न्याय, बैशेषिक, इन छहूं शास्त्रों के अविरुद्ध बेद के संमत बिचार पूर्बक बखान किया। उस "श्रीमद्भागवत भावार्थ दीपिका" नामक टीका के प्रारंभ का मङ्गलाचरण यह है "नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय"॥ सो इस प्रकार की टीका रचना आप को योग्य ही है, क्योंकि आप के ऊपर गुरु स्वामी "श्रीपरमानन्द" जी ने अति प्रसन्न होकर कृपा की। इसी हेतु से उस टीका को श्रीविन्दुमाधवजी ने स्वयं श्रीकरकमलों से सुधार दिया अर्थात् सर्बोपरि सर्ब टीकाओं की शिरोमणि बनाकर स्वीकार किया॥

(दोहा) "श्रीधरस्वामी तो मनौ, श्रीधर प्रगटे आन। तिलक भागवत को कियो, सब तिलकन परमान॥ १॥ (श्रीध्रुवदास जी)

[२०६/८४२] टीका। कवित्त।

पंडित समाज बड़े बड़े भक्तराज जिते, भागवत टीका करि आपस मै रीझिये। भयो जू बिचार काशी पुरी अविनाशी मांझ, सभा अनुसार जोई सोई लिखि

दीजिये ॥ ताको तो प्रमान भगवान "बिन्दुमाधो जी" हैं, साधो यही बात धरि मन्दिर मै लीजिये। धरे सब जाय, प्रभु सुकर बनाय दियो, कियो सर्ब-ऊपर ले, चल्यो मति धीजिये ॥ १६४ ॥ (६२९—४६५)

वार्तिक तिलक।

जिस समय श्रीश्रीधर स्वामी जी ने "श्रीभागवत" पर टीका रची, उस समय और बड़े बड़े पंडित भक्तों ने भी इस ग्रन्थ की टीकाएं कीं; और सब के सब अपनी अपनी टीका अन्य टीकाओं से श्रेष्ठ कह कर निज निज मति पर रीझ कर आपस में बिवाद करते थे।

फिर सब का संमत बिचार होकर, प्रलय काल* में भी अबिनाशिनी ऐसी श्री काशीपुरी के मध्य इकट्ठे होकर, सब टीकाओं के टीकाकारों ने सभा की कि 'इस सभा के मतानुसार जो टीका उत्तम मध्यम जैसी हो तैसी लिख दीजै। निदान अन्तिम सिद्धान्त यह हुआ कि "इस में महा पंच-पंडित भगवान् श्रीबिन्दुमाधव जी हैं, जो टीका आप अङ्गीकार कर सर्बोपरि करैं सोई प्रमाण है। अब टीका की श्रेष्ठता जानने के हेतु यही बात साधैं, प्रथम सब टीका मंदिर में रख कर फिर लेलेवैं"। ऐसाही किया; मध्यान्ह भोग के पश्चात् प्रभु के आगे सब टीकाएं धर मंदिर के किवाड़ दे, दो मुहूर्त में खोला; तो देखते क्या हैं कि —

"स्वामी श्रीधर जी कृत टीका" श्रीबिन्दु माधवजी निज करकमलों से सब टीकाओं के ऊपर धर कर, ब्रह्मा के भाल में भाग्य लिखने वाले हस्त कंज से उस पर लिख दिया कि "श्री भागवत पर श्रीधरी टीका सर्वोपरि है"। इस प्रकार आपने अङ्गीकार करके सुधार दिया॥ इसी से श्री श्रीधर जी की टीका चली (फैली) और उस पर सब सज्जनों की मति प्रसन्न हुई॥

श्रीपरमानन्द जी।

स्वामी श्रीपरमानन्द जी श्रीश्रीधरस्वामी के गुरु सन्यासी हैं "परमानन्द प्रसादतें"।

"श्री परमानन्द जी †" सुकवि, भजन प्रवीन, शान्त, श्री वृन्दाबन के सन्यासी सर्वस्व त्यागी थे॥

---

* "मंगल की राशि परमारथ की खानि काशी विरचि बनाई विधि केशव बसाई है"॥ "प्रलयहूं काल राखी शूलपाणि शूलपर"॥ (प्रमाण कवित्त श्री गोस्वामी कृत॥)

"मतिधीजिए"=मति प्रसन्न हुई।

† और भी कई परमानन्द जी हुए हैं। जिनमेंसे, डाक्टर् ग्रियर्सन् साहिब् (Dr. G. A. Grierson) ने अष्टछापवाले को, और श्रीराधाकृष्णदास जी ने चार की चरचा की है॥

॥ श्रीः ॥

श्रीबिल्वमङ्गल जी।

(२/८ १/४ ०/२) छप्पय।

कृष्णकृपा कोै पर प्रगट, "बिल्व मंगल" मङ्गल स्वरूप ॥ "करुणामृत" सु कवित्त युक्ति अनुच्छिष्ट उचारी। रसिक जनन जीवन जु हृदय हारावलि धारी॥ हरि पकरायो हाथ बहुरि तहँ लियो छुटाई। "कहा भयो कर छुटैं बदौं जो हिय तें जाई"॥ चिन्तामणि सँग पाय कैं, ब्रजबधू केलि बरनी अनूप। कृष्णकृपा को पर प्रगट, "बिल्वमङ्गल" मंगल-स्वरूप ॥ ४१ ॥ (४६/२१३)

"पर" = परत्व, सर्बोपरि। "कोपर" = पात्र विशेष, परात। "अनुच्छिष्ट" = उच्छिष्ट नहीं; अमनिया, छाया किसी की नहीं, अनुवाद नहीं।

वार्तिक तिलक।

श्रीकृष्ण जी के बड़े कृपापात्र तथा परम मङ्गल के स्वरूप श्री "बिल्वमंगल" जी ने श्री "श्री कृष्ण करुणामृत" नामक ग्रन्थ ऐसा बिरचा है कि जो श्री कृपा को परत्व मंगल स्वरूप है; जिसमें न किसी कवि की छाया ही है न किसी काव्य का अनुवाद है; वह रसिक

जनों का जीवन है; कि जो उसको हारों की नाईं अन्तर हृदय में धारण किये रहते हैं। श्री हरि ने अपना हाथ पकड़ाके और, फिर (उस देशकाल में) छुड़ा भी लिया; तब आपने कहा कि "मेरा कर तो छटकाए जाते हो, परन्तु बदौं तब कि जब मुझ दुर्बल के हृदय में से भी छटक जा सको"*। "चिन्तामणि" नाम प्रमदा (वेश्या) के संग से, विषई से विरक्त हो कर आप ने श्री ब्रज बधून की केलि का अनूप वर्णन किया है।

* हस्तमुत्क्षिप्य निर्यासि बलात् कृष्ण! किमद्भुतम्।
हृदयाद् यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते॥
दो० बाँह छुड़ाये जात हौ निबल जानि कै मोहिं।
हृदय तें जु छुड़ाइहौ मर्द बदौं तब तोहिं॥

(२/८ १/४ १/२) टीका। कवित्त।

"कृष्णवेंना" तीर एक द्विज मतिधीर रहै ह्वै गयो अधीर संग "चिन्तामणि" पाइकैं। तजी लोकलाज, हिये वाही को जु राज, भयो निशि दिन काज, वहै रहै घर जाइकैं॥ पिता को सराध, नेकु रह्यो मन साधि, दिन शेस मैं आवेश चल्यो अति अकुलाइकैं। नदी चढ़ी रही भारी, पैये न अवारी नाव, भाव भर्यो हियो जियो जात न धिजाइकैं॥ १६५॥ (६२९-४६४)

"अवारी" = अबेर। "धिजाय कैं" प्रेम में भीग के।

वार्तिक तिलक।

दक्षिण में "कृष्ण वेणा" नदी के तट पर ब्राह्मण कुल में श्री बिल्वमंगल जी का जन्म था; प्रथम बड़े मति धीर थे

पर चिन्तामणि नाम की एक वेश्यानारी के प्रेम में वह अतिशय आशक्त थे, यहांतक कि लोक की लाज धैर्य्य इत्यादि खोके दिन रात उसी के घर, जो उस नदी के दूसरी ओर था, रहा करते; उनके हृदय में उसीका पूरा पूरा राज्य था। एक दिन पिता के श्राद्ध के कारण जैसे तैसे मन मार के दिनभर तो उसी कार्य्य में लगे रहे परन्तु दिन के अन्त में बड़े अधीर होके अकुलाके उसके घर की ओर चले।

सरिता तीर पहुँचे तो देखा कि नदी तो बड़ी चढ़ी हुई है और उस पार जाने की कोई सामा, नाव बेड़ा कुछ नहीं है। अत्यन्त प्रेम भाव में इनका हृदय डूबने लगा।

(२१२/८४२) टीका। कवित्त।

करत विचार वारि धार मैं न रहैं प्राण, तातें भली धारि मित्र सनमुख जाइयैं। परे कूदि नीर, कछु सुधि न शरीर की है, वही एक पीर कब दरसन पाइयैं॥ पैयत न पार, तन हारि भयो बूड़िबे कों, मृतक निहारि, मानी नाव मनभाइयैं। लगेई किनारे जाय, चले पग धाय चाय, आए, पट लागे, निशि आधी सो बिहाइयैं॥ १६६॥ (६२९—४६३)

वार्तिक तिलक।

इनने विचार किया कि न प्रियाबिरह धार ही में प्राण बच सकते हैं और न जल धार में ही, इससे यही

भला है कि प्रेमी के सन्मुख ही प्राण देदूं। इतना मन में लाके, नदी में कूदही तो पड़े; शरीर की कुछ सुधि न रही, केवल प्रिया वियोग का दुःख तथा यह उत्कण्ठा रह गई कि कब अपने प्रेमी का दर्शन पाऊं। पैरते पैरते थक के ज्योंही तन जलमग्न होने पर हुआ, त्योंही अकस्मात् एक मृतक (मुरदा) को देखके समझे कि प्रेमी ही ने मेरे अर्थ नाव भेज दी है। उस पर चढ़के दैव इच्छा से पार होके तीर लगे। उतर के प्रेमातुर होके दौड़े; जब चिन्तामणि के द्वार पर पहुँचे, रात आधी से कुछ अधिक बीती थी; अतः पट लगे थे॥

(२१३/८४२) टीका। कवित्त।

अजगर घूमि झूमि भूमि कों परस कीयो, लियोई सहारो, चढ्यो छात पर जाय कै। ऊपर किवार लगे, पर्यो कूदि आंगन मैं, गिर्यो, यों गरत राग जागी सोर पायकै। दीपक बराइ, जो पै देखै, बिल्वमंगल है, "बड़ोइ अमंगल, तूं कियो कहा आय कै"। जल अन्हवाय, सूके पट पहिराय, "हाय! कैसैं करि आयो जलपार द्वार धाय कै?" १६७॥ (६३१—४६२)

वार्तिक तिलक

चिन्ता में थेही, कि इतने में एक लटकी हुई वस्तु पर इनकी दृष्टि पड़ी; वह एक अजगर था जो पृथ्वी के पास तक पहुँचके झूल रहा था परन्तु ये अति प्रेमान्ध तो थेही, यह समझे कि प्रेमिन ने मेरेही लिये

रस्सा लटकाय रक्खा है, चटपट आप उसके सहारे से चढ़के छत पर पहुँच गए।

ऊपर किवाड़ लगे देखके ये आंगन में धम से कूद पड़े; धमाके का शब्द सुन इनकी प्रेमी जाग उठी; लोग दीप जलाके उसके प्रकाश में जो देखैं तो आप हैं श्रीविल्वमंगल महाशय जी।

चिन्तामणि झिँझला के बोली कि "हा! तुम बड़े ही अमंगल हो! तुमने आके क्या किया? अस्तु, स्नान करा, सूखे वस्त्र पहिरा, उसने पूछा कि "बताइये तो आप नदी पार हुए क्योंकर और ऊपर चढ़े कैसे?

(२२४/८२१) टीका। कवित्त।

"नवका पठाई, द्वार लाव लटकाई देखि मेरे मन भाई, मैं तो तबै लई जानिकै'। "चलो देखौं अहो यह कहा धौं प्रलाप करै" देख्यौ बिषधर महा, खीजी अपमानि कै॥ "जैसो मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायो, तैसो स्याम सौं लगव तो पै जानियें सयानिकै। मैं तौ भये भोर भजौं युगल किशोर अब, तेरी तुही जानै चाहो करौ मन मानि कै"॥१६८॥ (६२१—४६१)

वार्तिक। तिलक।

इनने उत्तर दिया कि मैंने जभी देखा कि तुम ने मेरे लिये नाव भेज दी है और छत से डोरलटका

रक्खा है, तो मैंने तभी तुम्हारी प्रीति और कृपा की बिलक्षणता जान ली। वह बोली कि "ये क्या बड़बड़ाते हैं चलो लोग देखें तो कि डोर कहां और कैसा है?" जा के देखें कि वह बड़ा बिषधर अजगर है।

यह सुन चिन्तामणि झुंझला उठी और अपमान तथा क्रोध पूर्वक कहने लगी कि—"मेरे हाड़ चाम में जैसा अनोखा अनुराग किया, यदि श्यामसुन्दर मुरलीधर, शोभासिन्धु, करुणाकर, में लगाते तो तुम्हारा सयानापन था। अब तो तेरी बात तूही जाने, जो चाहे सो कर, पर मैं तो भोर होतेही श्री युगल सर्कार के भजन में चित्त लगाऊंगी॥"

[३१५/८४२] टीका। कवित्त।

खुलि गईं आखैं अभिलाखैं रूप माधुरी कौं चाखैं रस रंग औ उमंग अंग न्यारि ये। बीन ले बजाइ गाइ बिपिन निकुंज क्रीड़ा भयो सुखपुंज जापै कोटि बिषै वारिये॥ बीति गई राति प्रात चले आप आप कों जू हिये वही जाप दृग नीर भरि डारिये। "सोम गिरि" नाम अभिराम गुरु कियो आनि सकै को बखानि लाल भुवन निहारिये॥१६१॥ (६२९—४६०)

वार्तिक तिलक।

श्रीभगवत् कृपा से चिन्तामणि जी के वचनों से श्रीबिल्वमङ्गल जी के हृदय की आंखें खुल गईं; श्रीयुगलसर्कार के रूप के माधुर्य्य की अभिलाषा बहुतही बढ़ी, प्रेमरङ्ग में रँग गए; तन मन में अपूर्व बिलक्षण उमंग छागया; चिन्तामणि बीणा बजाके श्रीबिहारी जी की वृन्दावन कुंजकी लीला रूप धाम नाम कीर्तन करने लगी। सुनकर, बिल्वमंगल जी ऐसे आनन्द में मग्न हुए कि जिसपर करोड़ों विषय के सुख न्यवछावर करना चाहिये। इसी प्रकार भगवत् कृपा के अनुभव में जब सारी रात्रि बीत गई, तो भोरे दोनों ही ने अपना अपना रस्ता पकड़ा। श्रीरूप हृदय में धरे, और नाम रटते प्रेमाश्रु बहाते चले।

आके, "सोमगिरि" जी को विल्वमंगल जी ने गुरु किया और उनसे उपदेश लिया।

इनके प्रेम का वर्णन किससे हो सके? आप सर्वत्र श्री नन्दलाल जी ही को देखते थे—

"जहँ तहँ देख लली अरु लालहिं॥"

[२१६/८४२] टीका। कवित्त।

रहे सो बरस, रस सागर मगन भये, नये नये चोज के श्लोक पढ़ि जीजियें। चले वृन्दाबन, मन कहै कब देखौं जाइ, आइ मग मांझ एक ठौर मति भीजियें॥

पस्यो बड़ो सोर दृग कोर कै न चाहै काहू, तहां सर तिया न्हाति, देखि आंखैं रीझियें। लगे वाके पाछे कांछ कांछे की न सुधि कछू, गई घर आछे, रहे द्वार, तन छीजियें ॥ १७० ॥ (६२९-४५१)

"कांछ काछे की"=भागवत वेष धारण किये की।

"चोज"=अनोखा भाव ।

वार्तिक तिलक ।

एक वर्ष श्रीगुरु की सेवा में रह के, प्रेमरस सिन्धु में मग्न हुए, कई रसीले रसीले काव्य पढ़े तथा गुरु कृपा से आप भी अनेक भाव भरे श्लोक रचना किये; और जीवन का सुख लिया। फिर श्री वृन्दावन को चले; दर्शन की उत्कण्ठा मन को जैसी बिलक्षण है, कही नहीं जा सकती। ऐसी चटपटी हो रही है कि कब देखूं।

मार्ग में एक सरोवर पर आए। आप की श्रीप्रभु प्रेमोन्माद की दशा में मति मग्न हो गई; अश्रुपाता-दिक सात्विक प्रगट हुए। आपकी यह दशा देख के गांव में बड़ी धूम मची; आप किसी की ओर दृष्टि भी नहीं करते थे; केवल प्रभु के रूप की माधुरी में छके थे॥ परन्तु माया के कौतुक से, उसी सर में एक अति रूपवती स्त्री को स्नान करते देख उस मृग-लोचनी के नयन बाण इनकी आंखों में चुभही तो गये, और ऐसा खटकने लगे कि बेष की भी लज्जा

जाती रही; तन मन की सुधि खो, उसके पीछे पीछे लगे, और उसके द्वार पर जा जमे। "देखन को अति व्याकुल नयना" ॥ विरह से तन क्षीण होने लगा। वह सुन्दरी अपने घर में चली गई ॥

(२१७/८४१) टीका। कवित्त।

आयो वाको पति, द्वार देखे भागवत ठाढ़े, बड़ो भागवत; पूछी बधू सों, जनाइयें। कही जू "पधारो पांव धारो गृह पावन कों, पावन पखारौं जल ढारौं सीस भाइयें" ॥ चले भौन मांझ, मन आरति मिटायबे कौं, गायबे कौं जोई रीति सोई कै बताइयें। नारि सो कह्यो "हो तूं सिंगार करि सेवा कीजै, लीजै यौं सुहाग जामैं बेगि प्रभु पाइयें" ॥१७१॥ (६२९—४५८)

"गायबे कौं"=कहने को।

वार्तिक तिलक।

उस स्त्री का पति कहीं बाहर गया रहा। वह बड़ा हरिभक्त था, घर आके सन्त को द्वार पर खड़े देख, अपने धन्य भाग समझ, दण्डवत कर, आसन दिया। स्त्री से पूछा तब उसने सारी बार्त्ता कह सुनाई।

उस भक्त ने आप के पास आके कहा कि "आप भीतर पधारिये; मेरे गृह पवित्र होने के हेतु अपने चरण उसमें रखिये। मैं आप के चरण धोके जल सीस पर धारण करके कृतार्थ होऊं"। यह सुन आप उसके साथ घर में जाके अपने मन की आरति मिटाने के लिये जो कहना था सब बात बता दी।

उसने अपनी पतिव्रता स्त्री को आज्ञा दी कि "तुम शृङ्गार करके महात्मा जी की सेवा करो, इसको परम सुहाग मानकर ऐसी प्रतीति रक्खो कि परम भागवत की निष्कपट सेवा करने से भगवत शीघ्र रीझते मिलते हैं॥"

(३३६) टीका। कवित्त।

चली ये सिँगार करि, थार मैं प्रसाद लैके, ऊंची चित्रसारी, जहां बैठे अनुरागी हैं। झनक मनक जाइ, जोरि कर ठाढ़ी रही, गही मति देखि देखि नून वृत्ति भागी है॥ कही युग सूई ल्यावो, ल्याई, दई, लई हाथ, फोरि डारी आंखैं, अहो बड़ी ये अभागी हैं। गई पतिपास स्वास भरत न बोलि आवै, बोली, दुख पाय आय पांय परे रागी हैं॥ १७२॥(६२९—४५७)

वार्तिक तिलक।

पति की आज्ञा ही को परम धर्म मान, वह सौभाग्यवती सज धज बन ठन, श्रीभगवतप्रसाद का थार हाथ में ले, उस ठिकाने चली जहां चित्रसारी युक्त ऊंची अटारी पर विल्वमंगल जी उसकी चाह में विराजते थे; गहनों के शब्द तथा प्रमदाओं के स्वभाविक हाव-भाव युक्त सुन्दरी आप के आगे पहुँचकर कर जोड़ के खड़ी होगई; अर्थात् विल्वमंगल जी की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी।

विल्वमंगलजी की मति जो कामबश बही जाती थी, उसको विवेकसे ये पकड़कर बारम्बार उसका रूप देखने लगे; मुख्य प्रभु कृपा और निष्कपट भक्त तथा

पतिव्रता स्त्री के दर्शन से, इनकी न्यून (विषय) वृत्ति भागी, निर्मल मति प्राप्त हुई; विचार किया कि इन अनर्थों की जड़ येही निगोड़ी आखें हैं। उस सुलक्षणा से कहा कि "दो सूई लादो" वह ले आई; इनने शीघ्रही उन दोनों सूइओं से अपने दोनों नेत्र फोड़ डाले। वह भक्तिवती शोक से स्वांस लेती कांपती डरती अपने पति के पास गई; अतिशय दुःख के साथ टूटे फूटे स्वर से सब वृत्तान्त निवेदन किया; सुनतेही वह अनुरागी भड़भागी भी घबराया हुआ दौड़कर आप के चरणों पर आ गिरा॥

(३ १ १ / ८ ४ २) टीका। कवित्त।

"कियो अपराध हम, साधु कौं दुखायों", "अहो बड़े तुम साधु हमनाम साधु धर्यो है"। "रहौ अजू सेवा करौं" "करी तुम सेवा ऐसी जैसी नहीं काहू मांझ, मेरो मन भर्यो है"॥ चले सुख पाइ, दृग भूत से छुटाइ दिये, हिये ही की आंखिन सो अबै काम पर्यो है। बैठे बन मध्य जाइ, भूखे जानि आप आइ भोजन कराइ "चलौ छाया दिन ढर्यो है"॥ १७३॥ (६२९—४५६)

वार्तिक तिलक।

व्याकुलता से बोला कि "हम दोनों से बड़ा अपराध हुआ; हम से सन्तने दुःख पाया; हम बड़े अभागी हैं!" आस्वासन पूर्वक आपने उत्तर दिया "अहो, तुम वस्तुतः बड़े साधु हो; मैं तो साधु बेषको महा कलंक

लगानेवाला वास्तव में बड़ा असाधु हूं, साधु का तो केवल नाम मात्र मुझे है"। तब भक्तने विनय किया कि "महाराज! आप रहिये, मैं आप की सेवा औषधि करूं"। आपने उत्तर दिया कि "तुमने तो ऐसी सेवा करके मेरा मन हर लिया कि किसीसे ऐसी कहां हो-सकेगी; तुम हरिकृपासे बने रहो, भगवद्भजन तथा सन्तसेवा किया करो"। श्रीबिल्वमंगलजी नेत्र रूपी प्रेतों को अपने शरीर से छुड़ाके, सुख पूर्व्वक श्रीवृन्दाबन को चल खड़े हुए।

अब बाहर की आंखों से तो स्थूल भौतिक वस्तुओं के देखने का काम रहगयाही नहीं, हृदय के नयन से सुखपूर्वक प्रयोजन साधते चलके एक बन के मध्य जा बैठे। श्री बिल्वमंगल जी को भूखे देख, श्री वृन्दाबनबिहारी जी ने स्वयं आकर प्रसाद पवाय के कहा कि "दिन ढर चला, संध्या समीप है, छाए में चलो"॥

(२३०/८४१) टीका। कवित्त।

चले लै गहाइ कर, छाया घन तरु तर; चाहत छुटायो हाथ, छोड़ैं कैसे? नीको है। ज्यों ज्यों बल करैं त्यों त्यों तजत न एऊ अरैं, लियोई छुटाइ, गह्यो गाढ़ो, रूप हीको है॥ ऐसेही करत वृन्दाबन घन आइ लियो पियो चाहैं रस, सब जग लाग्यो फीको है। भई उतकंठा भारी, आये श्री बिहारीलाल, मुरली बजाइ के सुकियो भयो जीको है॥१७४॥ (६२९—४५५)

वार्त्तिक तिलक।

श्री प्रभु करुणाकर भक्तबत्सल जी हाथ पकड़ा के आपको एक घने वृक्ष की सुखद छाया के तले बैठा के, अपना कर सरोज आपके हाथ में से छुड़ाने लगे; आप भला कैसे छोड़ना चाहते; क्योंकि वह कर कमल अति प्रिय ब्रह्मस्पर्श सुखद था परन्तु बल कर के छुड़ाके प्रभु अलग होगए। आप बोले "हाथों में से तो निकलेजातेहो, पर यदि मन में से सरकोगे तो देखूंगा। इसी प्रकार प्रभु के सहारे से वृन्दाबन में आकर श्री वृन्दावन के कुंज में जमके रहे; संसार फीका लगने लगा; सब ओर से चित की वृत्ति इकट्ठी कर के श्री कृपासे भगवत का प्रेम रस पीना चाहा।

"सब के ममता ताग बटोरी।
ममपद मनहिं बांध बट डोरी"॥

युगल सर्कार के दर्शन की उत्कण्ठा प्रबल हुई।

"राम चरण पंकज जब देखौं।
तब यह जन्म सफल करि लेखौं"।

श्री बिहारी जी कृपा करके आए। बंशी की मीठी तान सुनाई; इनके हृदय का भावता मनोरथ पूर्ण किया॥

(२२१/८४२) टीका। कवित्त

खुलि गए नैन ज्यौं कमल रवि उदै भए, देखि रूप रासि बाढ़ी कोटि गुनि प्यास है। मुरली मधुर सुर राख्यो मद भरि मानो ढरि आयो कानन मैं, आनन मैं

भास है ॥ मानिके प्रताप चिंतामनि मन मांझ भई, "चिंतामनि जैति" आदि बोले रसरास है। "करुना मृत" ग्रंथ, हृदै ग्रंथि कौं बिदारि डारे, बांधे रस ग्रंथ पन्थ युगल प्रकास है ॥१७५॥ (६२९—४५४)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीबिहारीजीने आके मुरली बजाई; उसकी तान सुन, आपने जाना कि यह तो बिहारी लाल के मुख की ही बंशी है; इससे स्वरूप माधुरी देखने की अभिलाषा हुई। तब जैसे सूर्य्योदय से कमल खिल जाते हैं, वैसेही आप के नयन खुलगए। सामने करुणासागर शोभाराशि भगवान् के दर्शन प्राप्त हर्ष से फूले, आनन्द हृदय में अँटता नहीं था, दर्शन से भला कब तृप्ति होती है? छबिसमुद्र का मुखचन्द्र देखते रहने की प्यास कोटिगुण अधिक बढ़ती चली।

श्री वंशी का वह मधुर स्वर सुनकर आनन्द मग्न हो गए, उस श्रवणामृत ने इनके कानों में पहुंच कर इनको मतवाला कर दिया; मुरली ध्वनि की गूंज सदा बनीही रही; और मुखारबिन्द के प्रकाश का कहनाही क्या है।

आपने चिन्तामणि के उपदेश का प्रताप जान, मन में गरु तुल्य मान, "जयति चिन्तामणि" आदि शब्द, उच्चारण किये; रसराशि शृङ्गार ग्रन्थ में, जिसका नाम श्रीकृष्ण करुणा मृत' है, और जो जीव मात्र की हृदय

ग्रन्थि के खोलने के लिये अति अपूर्व है; ऐसी चमत्कृति दिखाई है, कि वह ग्रन्थ श्रीयुगलसर्कार (प्रियाप्रियतम) के रूपमाधुरी प्रेमरसमें गांठ बांधदेता है: तथा प्रभुकी प्राप्ति के सुन्दर मार्ग का प्रकाशक ही है।

(२२२/८४२) टीका। कवित्त।

चिन्तामनि सुनी "बन मांझ, रूप देख्यो लाल," ह्वै-गई निहाल, आई नेह नातो जानि कैं। उठि बहु मान कियो, दियो दूध भात दोना, "दे पठावैं नित हरि हितू जन मानि कैं"॥ लियो कैसें जाइ, "तुम्हैं भाय सों दियो जो प्रभु, लैहौं नाथ हाथ सौं जो देहैं सनमानि-कैं"। बैठे दोऊ जन, कोऊ पावै नहीं एक कन, रीझे श्याम-घन, दीनो दूसरो हूं आनि कैं ॥१७६॥ (६२९—४५३)

वार्तिक तिलक।

चिन्तामणि जी को यह बिदित हुआ कि "श्री बिल्व मंगल पर बिशेष कृपा श्री युगल सर्कार की हुई; और श्री ब्रजचन्द्र महाराज के दर्शन पाए हैं"। वह अति हर्ष को प्राप्त हुई, निहाल हो गई, पिछला नेह नाता सुरति कर अनेक मनोरथ करती वह भी श्री वृन्दावन में आपके पास बड़े भाव से आई। देखतेही आप उठखड़े हुए, बड़े आदर भाव से सत्कार किया; श्री युगल सर्कार (ललीलाल) का प्रसाद दूध भात जो कि प्रभु नित्य ही अपना स्नेही जन मान के भेज दिया करते थे, सो दिया।

इन ने पूछा कि "यह प्रसाद का दोना कहां से कैसे आया किसने दिया?" आपने उत्तर दिया कि "स्वयं भगवत कृपा करके अपने कर कमलों से भेज दिया करते हैं"। यह सुनतेही बोल उठी कि "जब वे कृपा करके आपही अपने हाथों से ही देंगे तो लूंगी;"। अब न आप पावैं न चिन्तामणि पावैं, दोना रक्खा है और दोनों भजन कर रहे हैं।

श्री बिल्वमंगल जी की भक्ति भाव तथा श्री चिन्तामणि जी का सच्चा पन जान के श्री भावबश भगवान् ने दर्शन दे दूध भात का दूसरा दोना भी कृपा किया ही। कृतकृत्य हो दोनों ने धन्यवाद गुणानुबाद पूर्वक मिलके प्रसाद पाया॥ आगे क्या कहूं? प्रेम की जय! प्रेम प्रिय प्रभु की जय!! परम प्रेमियों की जय!!!

श्रीविष्णु पुरी जी।

(२/८ २/४ ३/२) छप्पै।

कलि जीव जँजाली कारनै, "बिष्णुपुरी" बड़ि निधि सँचो॥ भगवत धर्म उतंग आन धर्म आननन देखा। पीतर पटतर बिगत, निषक ज्यौं कुंदन रेखा॥ कृष्णकृपा कहि बेलि फलित सतसंग दिखायो। कोटि ग्रंथ को अर्थ, तेरह बिरंचन में

गायो॥ महा समुद्र भागौत तें, "भक्ति-रतन-राजी" रची। कलि जीव जँजाली कारनै, "बिष्णु पुरी" बड़ि निधि सँची ॥४२॥ (४७/२१३)

"पीतर"=पीतल। "निकष" = कसौटी (सुनार की)।
"आनन न देखा"=मुंह न देखा। "राजी" – पंक्ति, माला।
"आन धर्म आनन न देखा" = अन्य धर्मों का मुंह भी नहीं देखा।
"आन धर्म आनन देखा"=आन (सपथ) करके आन [अन्य] धर्मों को नहीं देखा। वा, अन्य धर्मों को, अपनी मति में आन के [ला के] देखा भी नहीं।
"पटतर" – सरिस, उपमा। "विरंचन"=लर, माला-की-लड़ियां।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीविष्णुपुरी जी ने, कलियुग के जंजाल झंझट में उलझे हुए, भगवतभक्ति सम्पत्तिहीन दरिद्री, जीवों के उपकारार्थ बहुत बड़ा धन (महानिधि) संचय किया।

श्रीभगवत धर्म (नवधा, प्रेमा, परा भक्तियों) को सब धर्मों से ऊंचा जानके वैसाही बर्णन किया; और अन्य धर्मों (वर्ण तथा आश्रम के धर्मों) का मुख भी (आनन) सपथ करके नहीं देखा; किस प्रकार कि जैसे सोनार की कसौटी में पीतल घिसने से उस्का रंगरेखा बिगत हो जाता है अर्थात् कसौटी किंचिल भी ग्रहण नहीं करती, और कुन्दन सुवर्ण के रंगरेखा अति चमक युक्त उपट आते हैं; इसीप्रकार आपकी मति तथा भणितमें भगवतधर्म चमत्कार युक्त चमकता है।

श्रीकृष्णचन्द्र जी की कृपा रूपिणी बेलि (लता) का फल सत्संग को कह दिखाया।

उक्तग्रन्थ ("श्रीभक्ति रत्नावली") के तेरह ही बिरंचन (माला की लड़ियों) में करोड़ों ग्रन्थों का तात्पर्य्य संग्रह कर गाया है। श्रीमद् भागवत रूपी महा समुद्र में से निकाल के "भक्तिरत्नावली" भक्ति की माला पानसो रत्नों (श्लोकों) की अपूर्व रची है॥

(२३४ / ८४२) टीका। कवित।

जगन्नाथ क्षेत्र मांझ बैठे महा प्रभु जू वे, चहूं ओर भक्त भूप भीर अति छाई है। बोले "बिष्णुपुरी, पुरी काशी मध्य रहै, जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन आई है"॥ लिखी प्रभु चीठी "आपु मणिगण माला एक दीजिए पठाइ, मोहि लागत सुहाई है"। जानि लई बात, निधि भागवत, रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है॥१७७॥ (६२९—४५२)

वार्तिक तिलक।

एक दिन श्रीविष्णुपुरी जी के सतगुरु महाराज श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी श्रीजगन्नाथपुरी में भक्तराजों की भीड़ के मध्य सन्त समाज में विराजमान थे, उन्हीं में से कोई कोई कहने लगे कि "विष्णुपुरी जीने काशी में बास किया है इस्से जान पड़ता है कि मुक्ति की इच्छा भले प्रकार मन में रखते हैं"। महाप्रभु जी ने सब को समझाया कि ऐसा नहीं है, वह उनमें से

हैं कि जो, "मुक्ति निरादरि भक्ति लोभाने" इस प्रकार के अनुरागी हैं।

और उन लोगों के समाधानार्थ यह काम किया कि इनको एक पत्र लिखा कि "रत्नों की एक माला भेज दो; मुझे प्रिय लगती है।"

आप ने श्रीमद्भागवत में से रत्न रूपी ५०० श्लोक चुन और संग्रह करके, अपूर्व माला रूपी एक पोथी "भक्तिरत्नावली" नाम रख भेज दी, कि जिस्में रूखी मुक्ति सूखे मोक्ष को तो जड़से ही खोद के बहा दिया है और भागवत धर्म हरिभक्ति भगवत प्रेम की महिमा तथा ऐसी विलक्षणता प्रकाशित की है कि जिस्को पढ़ते ही सब "साधु साधु" कह उठे। उक्त ग्रन्थ भक्तों के देखने ही योग्य है॥

(२३५/८४२) छप्पय।

"विष्णुस्वामि संप्रदाइ" दृढ़ "ज्ञानदेव"[१] गंभीर मति॥ "नाम[२]" "तिलोचन[३]" शिष्य, सूर शशि सदृश उजागर। गिरा गंग उन-हारि काव्य रचना प्रेमाकर॥ आचारज, हरिदास, अतुल बल आनँद दायन। तेहिँ मारग "बल्लभ[४]" बिदित, पृथुपधति परा-यन॥ नवधा प्रधान सेवा सुदृढ़, मन बच

क्रम हरि चरन रति। विष्णुस्वामि संप्रदाइ दृढ़ "ज्ञानदेव" गंभीर मति ॥४३॥ ($\frac{४८}{२१३}$)

वार्तिक तिलक ।

श्रीविष्णुस्वामीसम्प्रदाय में, गम्भीरमति "श्री ज्ञान देव" जी प्रसिद्ध हैं; जिन के शिष्य (१) श्री नामदेव जी और (२) श्री तिलोचन जी, सूर्य्य तथा चन्द्र के सरिस उजागर हुए और श्री ज्ञानदेव जी की गिरा (बाणी) श्री गंगा जी की नाईं निर्मल और संसार को पवित्र करनेवाली हुई, जिस बाणी से प्रेम की खानि काव्य की रचना कर हरि यश गाया। आचार्य्य (गुरुवर्ग), तथा हरिभक्तों का, अतुलित बल विश्वास आप के हृदय में था; जिन सबों को अति आनन्ददाता हुए।

१. श्री ज्ञानदेव जी;	३. श्री त्रिलोचन जी;
२. श्रीनाम देव जी;	४. श्री बल्लभाचार्य्य जी।

इसी मार्ग (सम्प्रदाय) में, जगविख्यात, पृथुपद्धति अर्थात् प्रभु पूजन अर्चन में परायण, "श्रीबल्लभाचार्य्य जी" हुए; कि जिन्होंने नवधा भक्ति ही को प्रधान मान, प्रभु की सेवा में अत्यन्त दृढ़ होकर मन बचन कर्म से श्रीहरिचरणों में प्रीति की।

बिष्णुपुरी जी ने भगवत धर्म को अति उतंग मान करके, आन धर्मों को नहीं देखा। अथवा, अन्य धर्मों की आन [कानि] रखने की तो बात क्या, उनकी ओर देखा भी नहीं।

[$\frac{१}{८}\frac{२}{४}\frac{६}{२}$] टीका। कवित्त।

विष्णुस्वामि सम्प्रदाई बड़ोई गंभीर मति, "ज्ञान-

देव" नाम, ताकी बात सुनि लीजियैं। पिता गृहत्यागि, आइ ग्रहण सन्यास कियो, दियो बोलि झूठ "तिया नहीं," गुरु कीजियैं॥ आई सुनि बधू पाछें, कह्यो जान्यो मिथ्यावाद, "भुजनि पकरि मेरे संग करि दीजियैं"। ल्याई सो लिवाइ, जाति अति हीं रिसाइ, दियो पंक्ति मैतें डारि, रहैं दूरि, नहीं छीजियैं॥१७८॥ (६२९—४५१)

श्रीज्ञानदेवजी।

वार्तिक तिलक।

बिष्णुस्वामीसम्प्रदाय में बड़े गम्भीरमति श्री ज्ञान देव जी, उनकी कथा सुनिये। आपके पिता ने अपना घर छोड़ आके सन्यास ले लिया। पूछने पर गुरुजी सेझूठ कहा था कि "मेरे पत्नी नहीं है, मुझे शिष्य कर लीजिये" (क्योंकि स्त्री रहते संन्यासी वैरागी बनाने वाले को बड़ा दोष होता है)॥

परन्तु पीछे उनकी स्त्री पहुँची और बिगड़ के कहने लगी कि "हे महाराज! बलसे हाथ पकड़ के इनको मेरे साथ करही दीजिये", और आपको अपने साथ घर लेही आई। जाति के ब्राह्मणों ने अत्यन्त क्रोध करके इन दोनो को अपनी पंगति से निकाल दिया कि "अब मिलने योग्य नहीं हैं,"। इससे जाति पांति से पृथक रहते थे॥

($\frac{१}{८}\frac{२}{४}\frac{७}{२}$) टीका। कवित्त।

भए पुत्र तीन, तामें मुख्य बड़ो ज्ञानदेव जाकी कृष्णा-

देव जू सों हिये की सचाई है। बेद न पढ़ावे कोऊ कहैं सब "जाति गई," लई करि सभा अहो कहा मन आई है॥ "बिनस्यो ब्रह्मत्व" कही "श्रुति अधिकार नाहिं," बोल्यो यों निहारि "पढ़ै भैंसा" ले दिखाई है। देखि भक्ति भाव, चाव भयो, आनि गहैं पांव, कियोई सुभाव वही गही दीनताई है॥१७९॥ (६२९—४५०)

वार्तिक तिलक।

उनके तीन पुत्र हुए जिनमें सब से बड़े श्री ज्ञानदेव जी हैं जिनको श्री भगवतचरण में सत्य प्रेम था (दूसरे "महानदेव;' तीसरे "सोपानदेव")॥

जब श्री ज्ञानदेव जी पढ़ने योग्य हुए, तब ब्राह्मणों के पास बेद पढ़ने गए; परन्तु किसीने पढ़ाया नहीं; कारण यह कहके कि "तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है"। श्रीज्ञानदेव जी भगवत विभूति साधु अवतार तो थे ही, अतः सभा करके इनने सब ब्राह्मणों से कहा कि "आप लोगों के मन में हमारी क्या न्यूनता आई है, क्यों बेद नहीं पढ़ाते?" ब्राह्मणों ने वही उत्तर दिया कि "तुम्हारे पिता सन्यास लेकर पुनः आय के गृहस्थ हुए इससे तुम्हारा ब्रह्मत्व नष्ट हो गया, बेद का अधिकार नहीं रहा"।

आपने कहा कि "पूर्णब्रह्म श्री भगवान् को मन कर्म बचन से सप्रेम जाननेवाला वास्तविक ब्राह्मण है, नकि केवल वेद पाठी ही; वेद तो एक भैंसा भी पढ़

सकता है” इतना कह कर जिस्के स्वास से बेद हुए हैं उन श्री युगलसर्कार (ललीलाल) का स्मरण कर, पास के एक भैंसे को कि जो संयोग से वहां ही आ गया था, आज्ञा की कि “वेद पढ़ सुना”। वह पशु, शिक्षित ब्राह्मण से भी भली रीति तथा उत्तम मधुर स्वर से स्पष्ट और शुद्ध बेद पढ़ चला। सुनके सबकी बुद्धि चक्कर में आगई, लज्जित हुए, और भगवत की भक्ति में प्रतीति की; श्री भक्ति महारानी का प्रभाव और प्रताप जाना।

श्रीज्ञानदेव जी के चरणोंमें पड़कर अपने देह जात्याभिमानको त्याग, आप के शिष्य, तथा अनुमतमें स्थित हो, दीनतापूर्ब्बक भगवत भक्ति ग्रहण की॥

श्री त्रिलोचन जी।

(२३८ / ८३२) टीका कवित्त।

भये उभै शिष्य नाम देव श्री तिलोचन जू, सूर शशि नाईं कियो जग में प्रकास है। “नाम” की तो बात सुनि आए; सुनो दूसरे की सुनेई बनत भक्त कथा रस रास है॥ उपजे बनिक कुल सेवे “कुल अच्युत” कों ऐपै नहिं बने, एक तिया रहे पास है। टहलू न कोई “साधु मनही की जानि लेत” येहि अभिलाष सदा दासनि को दास है॥ १८०॥ (६२१—४४१)

“नाम”=श्री नामदेव जी। “अच्युत कुल”=वैष्णव।

वार्तिक तिलक।

श्री ज्ञानदेव जी के दो शिष्य हुए (१) श्री नाम

देव जी और (२) श्री त्रिलोचन जी। सूर्य्य और चन्द्र के समान दोनों ने संसार में प्रकाश किया। जिन मेंसे "श्री नामदेव जी" की वार्त्ता तो ऊपर (पृष्ठ ४७१) में कही ही जा चुकी है; दूसरे (श्री त्रिलोचनजी) की भक्ति की कथा ऐसी अपूर्व रस की भरी है कि सुनतेही बनता है; सो सुनिये—

आप वैश्य वर्ण में उत्पन्न थे; और "अच्युत कुल" अर्थात् वैष्णवों, की सेवा किया करते। दोही प्राणी थे, आप और इनकी धर्मपत्नी; घर में तीसरा कोई न था। आप को साधुसेवा में ऐसा प्रेम था कि सदा यही बड़ी लालसा रहती थी कि 'हरि कृपा से कोई ऐसा नोकर हाथ लगता कि जो सन्तों के मन की बूझ बूझ उनकी रुचि के अनुसार टहल किया करता'; ये हरि-दासों के दास, इसी सोच बिचार में रहा करते थे॥

(३२१/८४२) टीका। कवित्त।

आए प्रभु, टहलुवा रूप धरि, द्वार पर, फटी एक कामरी पन्हैया टूटी पाय हैं। निकसत पूछें "अहो कहां ते पधारे आप? बाप महतारी और देखिये न गाय हैं॥ "बाप महतारी मेरे कोऊ नाहिं सांची कहौं, गहौं मैं टहल जो पै मिलत सुभाय है"। "अनमिल बात कौन? दीजिये जनाय वहू," "पाऊं पांच सात सेर, उठत रिसाय हैं" ॥ १८१ ॥ (६२९–६४८)

"गाए हैं" =कथन किया।

वार्तिक तिलक।

भक्त की अनोखी अभिलाषा जान, एक दिन स्वयं प्रभुही एक टहलू के रूप से; कंधे पर फटी कमली धरे पावें में टूटी पनही पहिने, आप के द्वार पर आ ही तो पहुँचे।

श्री त्रिलोचन जी ने घर से निकलतेही आप को देख मा बाप घर आदि का प्रश्न किया। आपने उत्तर दिया कि "सच कहता हूं मेरे बाप मां कोई नहीं हैं। जो मुझे रक्खे, और मेरा उसका स्वभाव मिल जाय, तो मैं सेवा टहल भले प्रकार करता हूं"। श्री तिलोचन जी ने पूछा कि "आपके सुभाव में अनमिल वार्त्ता कौनसी है? सो भी तो बता दीजिये"। टहलू जी ने उत्तर दिया कि "मैं पांच सात सेर खाता हूं; इसी से जिसके हां रहताहूं सो रिसाय उठता है, ग्लानि मानने लगता है; तब मैं चलही देता हूं॥"

(२३१०/८६१) टीका। कवित्त।

"चारि हू बरन की जु रीति सब मेरे हाथ, साथ हू न चाहौं, करौं नीके मन लाइ के। भक्तन की सेवा सो तौ करत जनम गयो, नयो कछु नांहि, डारे बरस बिताइ के॥ "अंतरजामी" नाम मेरो, चेरो भयो तेरो हौं तो," बोल्यो भक्त "भाव, खावो निशंक अघाइ के।" कामरी पन्हैयां सब मई करि दई, और मीड़ि के न्हवायो, तन मैल कौं छुटाइ के॥१८२॥ (६२९-४४७)

वार्त्तिक तिलक।

"चारो बर्णों की रीति मैं सब जानता हूं, मेरे हाथों में है, और अकेलाही सब टहल कर लेताहूं, मन लगाके भली भांति सेवा किया करताहूं; बिशेष करके हरि भक्तों सन्तों की सेवा तो करते बरसों क्या बरन् सारा जन्म बीता, कुछ नई बात नहीं; मेरा नाम "अन्तर्यामी है; मैं आपका चाकर हुआ।"

(दो०) "चार बरन की चातुरी सरै न मेरी काम।
भक्त सेव जो जानई तौ रहु मेरे धाम"॥

तब श्री त्रिलोचन जी ने हर्षित होकर कहा कि "जितना चाहो उतना अघाके खाइयो, कुछ शंका मत करो"।

इनको अच्छी प्रकार से अंग मांजमांज के स्नान कराकर, पगरखी (पनही) तथा कमली आदि नई मँगवादी॥ तब सन्तों का टहल सौंपा॥

(२८१/१) टीका। कबित्त।

बोल्यो घरदासी सों, "तूं रहै याकी दासी होइ, देखियो उदासी दैत ऐसो नहीं पावनो। खाय सो खवावो, सुख पावो नित नित क्रियै, जियैं जग माहिं जौलौं मिलि गुन गावनो"॥ आवत अनेक साधु, भावत टहल हियें, लिये चाव दाबे पाँव, सबनि लड़ावनो। ऐसें ही करत, मास तेरह बितीत भए, गए उठि आपु, नेकु बात को चलावनो॥१८३॥ (६२९—४४६)

वार्तिक तिलक।

स्त्री से कहा कि " तू इसकी दासी सी रहियो, दे-

खना, उदास होके खाने को देने से यह चला जावेगा और फिर ऐसा सेवक मिलने का नहीं, जितना खाय सो खिलाना, सुख पूर्वक नित्यही इसके लिये रोटी करना। जब तक हम तुम जियैं, तब तक तीनों मिल जुलके साधु सेवा और भगवत का भजन करैं" अस्तु। इस भांति इनके भोजन के विषय में बिशेष करके उसे समझा बुझा दिया।

अब अन्तर्यामी ने सन्तों की टहल आरम्भ की; साधु तो यहां पहिलेही से अनेक आया करते थे, पर अब औरभी अधिक आनेलगे; क्योंकि अन्तर्यामी उन की बड़ी चाव भाव से टहल सेवा करते, चरण चांपते; "अन्तर्यामी" अन्तर्यामी ही निकले; जिस्की जो रुचि होती वैसीही करते, जो जहां पुकारते उनके पास वहीं पहुँच जाते; इसी रीति से सब सन्तों को लाड़ लड़ाया करते थे;। निदान चारो खूंट में श्री त्रिलोचन जी की साधुसेवा की धूम मच गई।

इसी भाँति एक बर्ष से एक महीना अधिक बीततेही, तनक सी बात चलातेही उसीक्षण "अन्तर्यामी" अन्तर्धान ही हो गए॥

(२३२/८४२) टीका। कवित्त।

एक दिन गईही परोसिनि कैं भक्तबधू, पूछि लई बात "अहो! काहे कौं मलीन हैं?" बोली मुसुकाय, "वे टहलुवा लिवाय ल्याये, क्यौंहू न अघाय खोट, पीसि

तन छीन है ॥ काहू सौं न कहीं, यह गहीं मन मांझ एरी, तेरी सौं सुनैगो जो पै जात रहै भीन है" । सुनि लई यही नेकु, गए उठि, हुती टेक, दुखहूं अनेक जैसे जल बिन मीन है ॥१८४॥ (६२९–४४५)

"भीन" - भिनसारे, प्रभात, सबेरे । "वे" = मेरे पति ।

वार्तिक तिलक ।

एकदिन श्री त्रिलोचन जी की घरनी, अपने एक पड़ोसिन के पास गईथी; उसने पूछा कि "अरी सखी! तुम दुबली क्यों हुई जाती हो ?" इसने मुसकाय के उत्तरदिया कि "बहिन! ये (मेरेस्वामी) एकटहलुवा लाए हैं; वह खोटा पांच सात सेर खाता है तोभी उसका पेट भरता ही नहीं, उसी के लिये (आटा पीसते) रोटी करते मैं पिसी जाती हूं । इसी से शरीर दुर्बल हो गया है । परन्तु, बहिन! यह भेद तुम्हो से कहती हूं, तुम अपने मनही में रखना किसी से कहना नहीं, जो वह सुन पावेगा तो भीनहीं (सवेरे ही) चलदेगा" ।

फिर क्या था, अन्तर्यामी ने सुना और कर्पूर से उड़गए । यह तो पहिलेही टेक धराली थी हीकि "भोजन करने की निन्दा होतेही मैं आगे ठहरने का नहीं" ।

अन्तर्यामी के चले जाने से भक्तराज जलहीन मीन की नाईं अति बिकल हुए ।

(१/८ ॥ १/१) टीका कवित्त ।

बीते दिन तीनि, अन्न जल करि हीन भये, "ऐसो

सो प्रबीन अहो फेरि कहाँ पाइयें? । बड़ी तूं अभागी! बात काहे कों कहन लागी? रागी साधु सेवा मैं जु केसे करि ल्याइयें?॥ भई नभ बानी "तुम* खावो पीवो पानी, यह मैंही मति ठानी, मोकौं प्रीति रीति भाइयें। मैं तो हौं अधीन, तेरे घरही मैं रहौं लीन, जोपैं कहो, सदा सेवा करिबे कौं आइयें ॥१८५॥ (६२९-४४४)

*तुम खावो पीवो पानी। पाठान्तर "खावो अरु पीवो पानी"

वार्त्तिक तिलक।

अन्तर्यामी के बिना, श्री त्रिलोचन जी को अन्न जल बिन तीनदिन व्यतीत होगए; स्त्री से बोले कि "आह! वैसा प्रवीण सेवक फिर कहां मिलनेका? अब मैं साधु-सेवा किस प्रकार से करूं?" अभागिन! तूने क्यों उस्की वार्त्ता चलाई? वह साधु सेवा में अति अनुरागी था। अब उस्को कहां से कैसे लाऊं? भक्तराज त्रिलोचन जी को आकाशबाणी हुई कि "तुम प्रसाद पाओ जलपान करो उपवास मत करो, यह 'अन्तर्यामी' नामक तुम्हारा टहलू मैं ही था; और मैं सदा तुम्हारेही पास हूं भी; यदि अब भी तुम्हारी इच्छा हो, तो वैसोही सेवकाई सन्तों की मुझे स्वीकार है; मैं तो सदैव भक्तों ही के अधीन हूं, कहो तो फिर पहुँचूं?"

(१३४/८५२) टीका। कबित्त।

"कीने हरिदास, मैं तौ दास हू न भयौं नेकु, बड़े उपहांस मुख जगमें दिखाईयैं। कहैं जन "भक्त" कहा

भक्ति हम करी कहां? अहो! अज्ञताई रीति मन मैं न आइयैं॥ उनकी तौ बात बनि आवै सब उनहीं सौं गुन हो कौं लेत मेरे औगुन छिपाइयैं। आए घर मांझ तऊँ मूढ़ मैं न जानि सक्यौं! आवै अब क्यौंहू धाय पाय लपटाइयैं" ॥१८६॥ (१२९—४४३)

वार्तिक तिलक।

इस प्रकार श्रीप्रभु की आकाश बानी सुन त्रिलोचन जी ग्लानि से बिलाप करने लगे कि—

"मैं कैसा दास हूं हा! मुझ से दासत्व भी कुछ न बना! स्वयं प्रभु दास होके रहे, यह भारी उपहास की बात हो गई, मैं संसार में क्या मुँह दिखाऊं? लोग मुझे भक्त कहते हैं, धिक्कार मेरी भक्ति को!! ऐसी अज्ञानता मेरी सो प्रभु के मन में भी न आई।"

सर्कार की बात तो सर्कारही से बनआती है, दूसरे की सामर्थ्य कहां? शील, स्वभाव, कृपा की बलिजाऊं, आप तो गुणही को ग्रहण करते हैं, शरणागत के दोषों को छिपाते हैं। घर में आप कृपा करके इतने दिनों बिराजमान रहे, तब भी मुझ मूढ़ ने न जाना। अब कैसेहू पाऊं तो दौड़ कर चरण कमलों में लपट जाऊं।" इसी प्रकार श्रीत्रिलोचन जी ने प्रेम पश्चात्ताप कर, फिर श्री प्रभु की कृपालुता स्वभाव स्मरण पूर्बक भजन और सन्त सेवा में जीवन को व्यतीत किया।

"तुमकहँ,भरत! कलंक "यह, हमसबकहँ उपदेश" ॥
भक्त भक्ति भगवन्त की जय! जय!! जय!!!

(३३५/८४२) टीका कवित्त।

श्री बल्लभाचार्य्य जी।

हिये में सरूप, सेवा करि अनुराग भरे, ढरे और जीवनि की, जीवनि कौं दीजियें। सोई ले प्रकास घर घर में बिलास कियो, अति ही हुलास, फल नैननि कौं लीजियें॥ चातुरी अवधि, नेकु आतुरी न होति किहूं, चहूं दिशि नाना राग भोग सुख कीजियें। "बल्लभ जू" नाम लियो "पृथु" अभिराम रीति, गोकुल मैं धाम जानि सुनि मन रीझियें॥१८७॥ (६२९—४४२)

वार्तिक तिलक।

श्री बल्लबाचार्य्य जी की बात्सल्य रस भरी भक्ति रीति अति अनूप थी। हृदय में प्रभु स्वरूप का ध्यान धरे हुवे अन्तर तथा बाहर में अति अनुराग से सेवा पूजा करते थे। ध्यान सेवा सुख पाकर आप अनुग्रह कर और जीवों की ओर ढरे। यह बिचार किया कि यह जगतजीवनप्रभु की अमृत संजीवनी भक्ति अपने आश्रित जनों को भी देना चाहिये। सो ऐसा ही किया, कि वह प्रीति रीति शिष्य वर्गों के घर घर में प्रकाशित कर प्रभु के बिलास में हुलास पूर्ण कर दिया। आप के सदन में, तथा सेवकों के घरों में, प्रभु विग्रह की झांकी कर नेत्र सफल होते थे। सेवा आदिक कृत्यों में आप चातुरी की अवधि, और परम धीर थे; किसी प्रकार से किंचित भी आतुरता आप से

नहीं होती थी। नानाप्रकार के भोगपदार्थ तथा राग-रागियें से यशलीलागान का आनन्द लिया करते थे।

श्रीज्ञानदेव जी के छप्पय (पृष्ठ ५५५) में जो श्री १०८ नाभा स्वामी जी ने "पृथु पद्धति परायण अभिराम रीति वाले श्रीवल्लभ जी" लिखा, सो उनका श्रीगोकुल में स्थान है। इनको जानके और सुयश सुनके मेरा मन इन में रीझ गया है ॥

[२३५/८४२] [टीका कवित्त]

गोकुल के देखिबे कौं गयो एक साधु सूधो, गो कुल

मगन भयो रीति कछु न्यारियें। छोंकर के वृक्ष पर बटुवा झुलाइ दियौ, कियो जाय दरशन, सुख भयो भारियें ॥ देखै आइ नाहीं प्रभु, फेरि आप पास आयो चिंता सौं मलीन देखि, कही जा निहारियें। वैसेई सरूप केइ; गई सुधि बोल्यो आनि, लीजिये पिछानि कह्यौ सेवा नित धारियें ॥ १८८ ॥ (६२९—४४१) ॥

"छोंकर" = क्षेमंकर, समी का वृक्ष ।

वार्त्तिक तिलक ॥

एक समय एक सरल चित्त वाले सीधे सन्त गोकुल तथा आप के देखने को गए, वहां की लोकोत्तर प्रेमोद्दीपक रीति देखके बड़े प्रसन्न हुए, यहांतक कि गोकुल अर्थात् मन सहित सब इन्द्रियां प्रेमानन्द में डूब गईं। श्री शालग्राम ठाकुर जी का बटुआ क्षेमंकरके वृक्ष की डाल पर लटकाकर श्रीवल्लभाचार्य्य जी के दर्शन को गए। दर्शन करके और भी भारी सुख पाया। जब फिर आके देखा तो उस डाल में ठाकुर का बटुआ न पाया; तो आपके पास आके कह सुनाया। आपने सन्त को चिन्ता से मलीन देखके कहा कि "फिर जाके वहीं देखिये"। अब आके देखें तो ठीक ठीक वैसेही बहुत से ठाकुरबटुए झूल रहे हैं। साधु जी बेसुध होकर पुनः आपके पास आये। तब आपने कहा कि "अपने ठाकुर जी को पहिचान लो नित्य सेवा पूजा करते हैं और अपने ठाकुर जी को पहिचानते तक नहीं" !

[२३७ / ८४२] टीका। कवित्त

खुलिगईं आंखैं अभिलाखैं पहिचानि कीजे दाजे जू बताइ मोहिं, पाऊं निज रूप है। कही जावो वाही ठौर देखो प्रेम लेखौ हिये, लिये भाव सेवा करो मारग अनूप है॥ देखि कै मगन भयो लयो उर धारि हरि नैन भरि आये जान्यो भक्ति को स्वरूप है। निशि दिन लग्यौ पग्यौ जग्यौ भाग पूरन हो पूरन चमतकार कृपा अनुरूप है॥१८९॥ (६२९—४४०)

वार्त्तिक तिलक।

साधु जी को झलक गई कि यह परचो आपही का हैं; और चाहा कि पहिचानें; परन्तु पहिचान में न आए; तब आप से बिनय किया कि "कृपा करके बता दीजिये जिस्में मैं अपने प्रभु की मूर्त्ति को पाऊं"। प्रार्थना सुन आपने समझाया कि "प्रेम भाव सहित सेवा किया करो; ठाकुर कहीं, और तुम कहीं; यह सप्रेम सेवा भक्ति का मार्ग अति अनूप है"। यह कह, आज्ञा की कि "उसी ठांव जाओ"। आके, अपनेठाकुरजी पाके, बड़े सुखी हुए; प्रेम जल आंखों में भर आया, और भक्ति का स्वरूप जान गए, अपने को धन्य माना। और प्रभु के सेवा अनुराग में तत्पर हो पग गए; पूर्व के उनके पूर्ण भाग्य जगे, क्योंकि श्रीवल्लभाचार्य्य जी की कृपा से प्रभु की भक्ति का पूर्ण चमत्कार देख लिया॥

श्रीभक्त दासेभ्यो नमः । श्रीकलियुग के भक्तों की जय ॥

• [२३८/८४२] छप्पय

संत साखि जानैं सबै, प्रगट प्रेम कलियुग प्रधान॥ भक्तदास इक भूप श्रवन सीता-हर कीनौं। "मार मार" करि खड़्ग बाजि सागर मैं दीनौं॥ नरसिँघ को अनुकरन होइ हिरनाकुस मार्‍यौ। वहै भयौ दसरत्थ, राम बिछुरत तन छार्‍यौ॥ कृष्ण दाम बांधे सुने, तिहि छन दीयो प्रान। संत साखि जानैं सबै, प्रगट प्रेम कलियुग प्रधान॥ ४४॥ (४८/२१३)

"भक्तदास"=श्रीराम भक्तों का दास । "भक्तदास" रूढ़ी संज्ञा अर्थात् दूसरा नाम ही है । दास्यरसावेशी भक्त ॥

वार्तिक तिलक ।

इस बात को सब सज्जन जानते हैं, और सन्तजन इसके साक्षी हैं कि कलियुग में प्रगट प्रेम अर्थात् अनेक भक्तों की प्रेमभाव प्रत्यक्ष देखने में आया, उसमें ये तीन प्रेमावेशी भक्त परम प्रधान हुए । उन में से (१) दक्षिण देश में श्रीसीतारामजी के दास्यरसावेशी भक्त राजा "श्रीकुलशेखरजी" हुए । इनने श्री

रामायण जी में श्री सीताहरण कथा श्रवण करते ही महा प्रेमावेश में पग के, सेना सहित खड्ग खींच के "मारो मारो क्षुद्र रावण को" इस प्रकार बीरालाप करते घोड़े पर चढ़े, दौड़ा के, घोड़े को सागर में डाल दिया। तब प्रेमग्राहक प्रभु ने दरशन देके इन्हे लौटाया ॥

"ढाईअक्षर 'प्रेम' का पढ़ा जो, पण्डित सोइ ॥"

(२) श्री नृसिंह भगवान् का अनुकरण (लीला) में एक आवेशीभक्त नृसिंह जी के रूप बने। उनने हिरण्यकशिपु बन्नेवाले को मार डाला; वेही फिर लीला में श्री दसरथ महाराज जी रूप बने और श्रीसीताराम बिछोह य अपना शरीर त्याग दिया।

(३) "श्री कृष्ण जी को श्री जसोदा जी ने बांधा" ऐसी कथा सुनतेही एक भक्ता "रतिवन्ती बाई" ने तन त्याग दिया।

प्रगट है, सबको बिदित है, साधु इस्केसाक्षी हैं, कि कलियुग में "प्रेम प्रधान है"; कलियुग के प्रेमियोंमें तीन प्रधानआवेशीहैं, इनका प्रेम प्रत्यक्ष सच होगया ॥

(२१६) टीका। कवित्त।

सन्त साखिजानैं कलिकालमैं प्रगट प्रेम बड़ोईअसत जाके भक्ति में अभाव है। हुतो एक भूप राम रूप ततपर महा, राम ही की लीला गुन सुनैं करि भाव है ॥ बिप्र सों सुनावै सीताचोरी को न गावै हियो खरो भरि-

आवै, वह जानत सुभाव है। पठ्यो द्विज दुखी निज सुवन पठाइ दियो जाने न सुनायो भरमायो कियो घाव है ॥११०॥ (६२१—४३९)

वार्त्तिक तिलक।

इस्के साक्षी साधु हैं कि कलिकाल में प्रेमही प्रगट है क्योंकि इन तीनों का प्रेम प्रगट हो गया। उस्को बड़ा अभागा और गयाही हुआ जानो कि जिस्को इन सन्तों की कथा सुन के भी, श्रीभक्ति जी में अभाव अर्थात् अनादर ही बना रहे।

श्री भक्त दास कुलशेखर जी।

दक्षिण में एक राजा श्रीरामोपासक श्रीराम रूप में बड़े अनन्य दास्य रसावेशी प्रेमी भक्त थे; श्री जानकीजीवन जी का परत्व उन्हें जैसा चाहिये वैसा था; बड़े भाव से श्री अवध बिहारी जी की लीला श्रीबाल्मीकीय रामायण कथा सुना करते थे। इनका "कुल शेखर" नाम था; "भक्तदास" नाम से भी प्रसिद्ध थे। जो बिप्र पण्डित उनको कथाश्रवण कराते थे वे इनके अलौकिक प्रेम को जानते थे, क्योंकि एक समय अरण्य काण्ड की खरदूषण की चढ़ाई की कथा सुनकर राजा आवेश में आ गया, आप घोड़े पर चढ़ हथियार बांध सेना साथ ले, शीघ्रतम पयान करने की आज्ञा दी। तो चतुर पण्डित ने देशकालानुसार युक्ति से इनको

लौटाया—तस्मात् श्री महारानी जी के चोरी की कथा उनने इन्हे कभी नहीं सुनाई।

एक दिन श्री पण्डित जी दुखी हुए, इस्से अपने पुत्र को कथा सुनाने के लिये भेजा। राजा का सुभाव नहीं जानने से उसने श्रीसीता हरण सुनाया; सुनतेही भक्त राजा को यह भ्रम आ गया कि यह इसी समय सत्य हो रहा है। इस्से हृदय में घाव सरीखा दुःख हो गया। राज ने लंका की ओर धावा किया॥

वार्त्तिक तिलक।

(२४०/८४२) टीका कवित्त।

"मार मार" करि कर खड्ग निकासि लियौ, दियौ घोरो सागरमैं, सो आवेस आयो है। "मारौं याहि काल दुष्ट रावन बिहाल करौं, पावन को देखौं सीता" भाव दृग छायो है॥ जानकी रवन दोऊ दरशन दियो आनि, बोले "बिनप्रान कियौ, नीच फल पायो है"॥ सुनि सुख भयो, गयो शोक हृदै दारुन जो, रूप की निहारनि यों फेरि कै जिवायो है॥१९१॥ (६२९—४३८)

वार्त्तिक तिलक।

खड्ग निकाल "मार मार" कहता, लङ्का की ओर घोड़ा दौड़ाया यहां तक आवेश आया कि समुद्र में भी घोड़ा डालही दिया; "दुष्ट रावण को व्यथित कर दूंगा, इसी क्षण मारडालूंगा; अपनीमाता श्रीजानकीजी महारानीके चरणकमलके दरशनकर अभी ले आऊंगा"।

इस प्रकार बीरवाक्य कहते हुवे प्रेम में मग्न और नयनों में प्रेमाश्रु भरे हुए सागर में चले ही जारहे थे—कि उसी क्षण, भक्तप्रणपालक प्रेमनिर्बाहक जन-रक्षक श्रीजानकी जानकीरमण जी श्री लक्ष्मण जी और श्रीहनुमदादि कपि सेना समेत पुष्पक बिमा-नारूढ़, भक्त के समीप आकाश में प्रगट हो, दर्शन दे, इन्हें कृतकृत्य कर, बोले कि "हे प्रिय पुत्र! उस दुष्ट को हमने सपरिवार मारडाला, उस नीच रावण ने अपनी करनी का फल पाया। तुम चिन्ता मत करो; देखो अपनी माता के दर्शन करो। हम अब अपनी राजधानी श्रीअयोध्या जी को जाते हैं, तुम भी घर जाओ" ॥

श्री बचनामृत सुनते ही इनके हृदय से दारुण शोक जाता रहा; दर्शन पाके अति कृतार्थ हुए। "मृतक शरीर प्राण जनु पाये॥" आप लौट के अपने घर आए।

परमावेशी भक्त श्री कुलशेखर जी की जय।

"प्रेम कलियुग प्रधान"।

"कलिकाल में प्रगट प्रेम"।

"कलियुसम युग आन नहिँ, जो नर करि बिश्वास।
गाइ राम गुण गण बिमल, भव तर बिनहि प्रयास॥

"कलि कर एक पुनीत प्रतापा।
मानस पुण्य होयँ, नहिँ पापा॥"

"कलि केवल रघुपति गुण गाहा।
गावत नर पावहिं भव थाहा" ॥
"सुनु व्यालारि, करालकलि, बिनुप्रयास निस्तार" ॥
"कृतयुग, त्रेता, द्वापर, पूजा, मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलिविषे, 'नाम' तें पावहिं लोग" ॥
"रामनाम जपु जिय सदा सानुराग रे।
कलि न विराग जोग जाग तप त्याग रे"
"रामहिं केवलप्रेम पियारा।
जानिलेहु जे जाननिहारा" ॥
मिलहिं न रघुपति बिनुअनुरागा।
किये योग जप ज्ञान विरागा ॥"
कालधर्म नहिं व्यापहिं तेहीं।
रघुपतिचरणप्रीतिं रति जेही ॥"

और युगों से कलियुग में, कमलनयन श्रीहरि ने जीवों पर बिशेष करुणा की है ॥

(२४१/८४२) टीका। कवित्त।

नीलाचल धाम तहां लीला अनुकर्न भयो, नरसिँघ रूप धरि, सांचे मारि डाखो है। कोऊ कहैं द्वेस, कोउ कहत आवेस, "तो पै करो दशरथ"; कियो; भाव पूरो पाखो है॥ हुती एक बाई, कृष्ण रूप सों लगाई मति, कथा में न आई, सुत सुनी, कह्यो धाखो है। "बांधे जसुमति" सुनि औरे भई गति, करि दई सांची रति, तन तज्यो, मानो वाखो है ॥१९२॥ (६२९—४३७)

वार्तिक तिलक।

श्रीलीलानुकर्ण भक्त जी।

एक समय श्रीनीलाचल धाम में लीला होती थी। इन सत्य प्रेमावेशी भक्त जी को लोगों ने लीला अनुकरण में "श्रीनृसिंह भगवान्" का स्वरूप बनाया; आपने आवेश में आके, जो हिरण्यकशिपु बना था उसको पेट फाड़ के मारही डाला। सज्जन तो इस्का कारण श्रीनृसिंह जी का सच्चा आवेश बताते थे, और दुर्जन लोग मारडालने का कारण द्वेष (वैर भाव) कहते थे।

अन्ततः यहविचारहुआ कि "इनको श्रीरामलीला में श्रीदशरथ जी महाराज का अनुकरण स्वरूप बनाओ और देखो कि आवेश होता है वा नहीं"।

ऐसाही किया गया; आपका भाव तो सच्चा था ही, पूरा पड़ा; अर्थात् आवेश में आकर श्रीप्राणनाथ रघुनाथ के बन यात्रा में बिछुरतेही, आपने शरीर को तृण सरीखा त्याग ही तो दिया।

सब ने जाना कि भावावेश पूरा था॥

श्रीरतिवन्ती जी।

श्रीरतिवन्ती जी नाम की एक बाई जी वात्सल्य निष्ठा से श्रीकृष्णभगवान् में अत्यन्त प्रेम रखती थीं; भगवान् को अपना बेटा जानती और चाहती थीं; कथा सुन्ने का भी नित्य नियम था।

एक दिवस आप कथामें नहीं गईं, कि उस दिन ऊखलीबन्धन की कथा थी। बालक जो नित्य साथ जाया करता था, लौट कर उसने जब वही कथा आप को सुनाई, तो यह सुन्तेही कि 'परम सुकुमार श्रीकृष्णचन्द्र जी को माता यशोदा जी ने ऊखल में बांधा है" आप अति व्याकुल हुईं, तड़पने लगीं, और ही गति हो गई, अर्थात् सच्ची प्रीति से, कोमल अन्तःकरण में प्यारे का इतना दुःख न सहकर प्राण ही श्रीभक्तबत्सल जी महाराज पर न्योछावर कर दिये॥

भाव इसको कहते हैं॥

श्रीभक्ति महारानी जी की जय! जय!! जय!!!
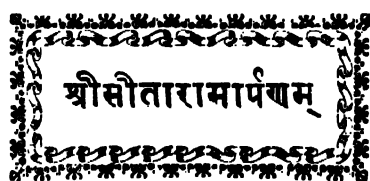
इति शुभम्॥
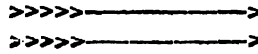
॥ श्रीहनुमते नमः ॥

भक्तमाल विषयोपक्रमणिका (सूचीपत्र)

इति प्रथम भाग ॥

मूल २७ + टीकाकवित्त १०५ = १३२

इति श्री भक्तमाल के पूर्वखंड अर्थात्
सत्ययुग, त्रेता और द्वापर पर्य्यन्त
के भक्तों की सूची समाप्त ॥

श्रीमौद्गल्य ऋषीश्वराय नमः ।

श्रीगणेशाय नमः।

ॐ नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय ॥

श्रीमतेरामानन्दाय नमः।

श्रीभक्तमाल विषयोपक्रमणिका।

(कवित)

"भक्तमाल" ग्रन्थ पन्थ जान हरि जानबे को, भानबे को भर्म, कर्म बहु भांति छूटही। सब मत रत भक्ति भाव गाव कहि सत मत अनुसार तें कुमत सब टूटही ॥ मूल को बखान सो कहान "नाभा जू" सयान आभा सू अपार अर्थ रंचहू न खूटही। "प्रिया दास" टीका को प्रकास कियो लियो जैसे हाटकालंकार पर कूदन को बूटही ॥१॥

(दोहा) चातक भक्तन को रह्यो, जापर प्रेम अपार।
'सुधाबिन्दु' सोइ स्वाति जल, 'स्वाद' लेहु सुखसार ॥

॥ श्री मारुतिवीरकला की जय ॥

(दो०) श्रीसियपिय, श्रीभक्ति, गुरु, विप्र, भक्त पदधूरि।
बन्दौं मन बच प्रेम ते, मङ्गलमय मुदमूरि ॥ १ ॥

श्रीमारुतिबीरकला-कृपाश्रितों की जय।

शुद्धि पत्र (अशुद्धि संशोधन)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		श्रीवैष्णवनामावली का	
२	१९	कृषि	ऋषि
३	९	अब प्रभु	अब
४	२	* (छन्द मंजु)	(छन्द मंजु)
१५	११	अद्भुदानन्द	अद्भुत आनन्द
१९	७	टोक	कोट
३०	३	और	और हिन्दी में
३०	४	नेमि	ने
		श्रीभक्तमाल का	
७	१	चुकाहूं	चुका हूं,)
७	११	सोधो	सोंधो
९	५,१६	अङ्ग प्रक्षालन	अङ्ग पोंछना
१३	१३	धरी	धरि
१४	६	है	है ॥
१५	१२	ताहि	ताही
१७	१३	नारा	नीरा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	२३	संक्षप	संक्षेप
२०	२३	यन्त्रो	यन्त्रों
२४		आधृति	अधृति
२६		आवेग	आवेश
२७	१७	रामस्यक्लिष्ट	रामस्याक्लिष्ट
३०	४	येत्ते	यत्ते
३०	५	दधीमिह	दधीमहि
३०	६	धर्म	धीर्भ
३२	३	नहीं	नहिं
३२	१०	माहिं	माहीं
३२	१४	का	का,
४१	३	जाल	जाल'
४२	३	भीं	भी
४२	१४	अराघना	आराधना
३८	२	सात सव	पान्सौ (५००)
४४	१	हां	हों
४८	१२	अ	औ
४८	१४	दूसरा	दूसरी
५१	१३	वतालीस	बयालीस (४२)
५५	१७	नभभूज	नभोभूज
५६	६	नभमूज	नभोभूज
५७	२	अधा	अद्धा
६०	८	ध्यान्ह	मध्यान
६१	३	श्रीअयोध्या	बिठूर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६१	८	बिठूर	मथुरा
६१	१०	श्रीअयोध्या	ब्रह्मावर्त्त
६३	८	जगधार	जगदुद्धार
६३	१७	भा	भी
६४	४	शंष	शंख
६९	७	बृजा	बिरजा
७८	१३,१६	अजामेल १२	धर्म स्वरूप १२
७९	११,१२	(१२) अजामिल	(१२)धर्मस्वरूप
७९	१८	नामाच्चारण	नामोच्चारणादि
८०	२	की	के
८२	७	प्रवाण	प्रवीण
८९	६	अन्तर्ध्यान	अन्तर्धान
९०	६	जननि	जननी
९०	२२	प्रण	पण
९३	९	पात	बात
९४	१८	तारि	तोरि
९४	१९	हरि	हारे
९५	२०	कहि	कही
९५	१३	दिया	दिया ।
९६	७	विष वकसेन	विष्वकसेन
१०१	१२,१३	श्री प्रभु	निज
१०३	९	स्वय	स्वयं
१०५	१६	आश्चर्य्य मग्न में	आश्चर्य्य में मग्न
१०६	१०	सत	सुत

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	२४	सानुकल	सानुकूल
१०८	१९	सुन	सुनो
१११	१३	क्रिया	कियो
१२०	३	हमारा	हमारी
१२२	६	सुगन्धित	सुगन्धि
१२२	९	धन्ध	धन्य
१२३	११	रज से	परस ते
१२५	३	मन	मुख
१२५	९	का	की
१२६	१६	रीसि	ऋषि
१२६	१७	खीसि	सीख
१३७	१५	क्रिया	क्रिये
१४०	२२	निराद रदेख	निरादर देख
१४१	३	मेरे	मोर
१४१	६	चीफ	चोप
१४३	११	जी भी	जी ने भी
१४४	१२	५१	५२
१४५		गान	कुछ गान
१४६	१	भाम	बाम,
१५७	२२	तिल	तिलक,
१५८	४	उस्के	उस्को
१५८	२१	करहि	करहिँ
१५९	१०	करि	करी
१५९	१५	क्योकी	क्योंकि

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६०	६	का था	की थी
१६०	२१	सहचारियों	सहचारियाँ
१६२	१	देई	दई
१६२	३	उभरायो	उभरायो (उघरायो)
१६६	२३	वाञ्छित	वाञ्छा
१६७	१४	लीजियें	लीजिये
१६७	२०	श्राऊ	श्रोऊ
१६८	२	को	श्री
१६८	१०	फल	फूल
१७२	५	परभीं	पर भी
१७३	१६	बहार	बाहर
१७५	१७	मन्त्र'	मन्त्र"
१८०	१३	ख्यात	नाम ख्यात
१८०	२०	ममेरे	फुफेरे
१८३	१६	वानी	बानी में
१९४			
१९६			

(प्रमाणिका छन्द)

नमामिभक्तमाल को ॥

"पढ़े जो आदिअन्तलों बढ़ें सोपर्मतंत लों, दहै अनन्त साल को नमामिभक्तमाल को ॥१॥ कथा करे जो याहिकी व्यथा रहै न ताहिकी, मिले सो रामलाल को नमामि भक्त मालको ॥२॥ प्रकार नौ की भक्ति जो सो अंग होत शक्ति सो, कहैगिरा रसाल को नमामिभक्तमाल को ॥३॥ गढे सो अन्य भावहै लहै जो भक्ति दाव है, यही प्रमाण भाल को नमामि भक्तमाल को ॥४॥ अभक्त भक्ति को लहै सभक्ति मुक्त ह्वै रहै, गिनै सो तुच्छ कालको नमामिभक्तमालको ॥५॥ करै जो पाठ प्रात में सरै सुकाज गात में, हरै हि कर्म जाल को नमामि भक्तमाल को ॥६॥ मिलाय दुग्ध तक्रते जु होत सर्पि चक्रते, तथा सुबुद्धि बाल को नमामि भक्तमाल को ॥७॥ बहूपमा कहीं कहा कहे न पार को लहा, बखान सूर्य्य ख्याल को नमामिभक्तमाल को ॥८॥

श्रीगणेशाय नमः। श्रीहनुमतेनमः।
॥ श्रीरामानन्दाय नमः ॥

—:०:—
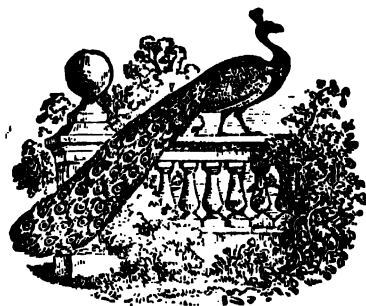
शुद्धि-पत्र (अशुद्धि संशोधन)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९६	१३	सोमवंशीबिठूर--निवासी	बिठूर निवासी
१९९	१०	पारमहंसी	पारमहंस
२००	७।८।१०	सम्प्रदा	सम्प्रदाय
२०१	२	पंथमें व	पंथ में
२०३	१६	महँ कछु	महँ सो कछु
२०७	३	जिसने	जो
२०९	२२	हा री	तिहारी
२१०	५	पैन	बनै न
२१०	१५	जात	जीत (सर्वजीतलाल)
२१२	१४	नीलमीरध्वज	(१८) श्रीनील जी
२१२	१५	(१९) ताम्रध्वज	(१९)श्रीमयूरध्वजजी; श्रीताम्रध्वज जी।
२१८	१३	बास कहूं	न बास कहूं
२३१	७	की लाट	को लौट
२३३	१७	८ ४६	५४६
२३५	४	५२९	६२९
२४२	१७	गिरा	गिरिजा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५३	२	मरि	भरि
२५७	१७	शवय	शक्य
२६३	२२	स्रहर	सहस्र
२६४	२३	टेरि टेरि ॥ १ ॥	टेरि टेरि।
२६५	१	बिबिध	बिबुध
२७०	२३	क्यों	को
२७२	१७	ब्राह्मण	ब्राह्मणने
२७३	२	होके	होने से
२७५	४	नहुष	चन्द्रवंशी नहुष
२८७	१५	समर्थन	समर्पन
२९१	१९	तृतीयस्कन्धका	तृतीयस्कन्धका तथाकईश्लोक दशमस्कन्ध के
२९६	५:६	उठ के	उठा के
२९९	१६	पाईके	पाइके
३०१	१८	हरि	हारि
३०२	२१	बलि	बलि,[६] रु
३०७	२	सखी	सखी और पूज्य
३१०	११	बाल्मीक	बल्मीक
३१७	१५	देवहूति	देवहूती
३३०	६	बाढ़ी	बढ़ी

श्रीगणेशायनमः । श्रीहनुमते नमः ॥
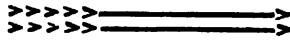
श्रीभक्तिसुधाविन्दु स्वाद के तीसरे भाग का शुद्धिपत्र ।

☞ इस 'शुद्धिपत्र' के अनुसार इसको पहिले, अवश्य, शुद्ध कर लेते जाइये, तब अशुद्धिसंशोधन के अनन्तर पुस्तक को पढ़ा कीजिये ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८०		५श्रीवोपदेवजी	४ श्रीवोपदेवजी
		४श्रीशठकोपजी	५ श्रीशठकोप जी (श्रीपरांकुशजीप्रथम)
		{ ९ श्रीपरांकुशमुनि १० श्रीयामुनाचार्य्यजी	९श्रीयामुनाचार्य्यजी
		११ महापूर्णा चार्य्य	१०श्रीमहापूर्णाचार्य्यजी (श्रीपरांकुशजी द्वितीय
		१२स्वामीश्रीरामानुज	११स्वामीश्रीरामानुजजी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०१	१४	मयो	गयो
४०२	१७	लुटाए	लुटाइ
४०३	२१	सब कोई	सब ने
४०७	२	कृति	कृत
४०७	४	सुरधुनि	सुरधुनी
४०९	१८	पर	पै
४१४	८	श्रीर्यानन्द जी	श्रीहरियानन्द जी (श्रीप्रधानानन्द जी)
४३१		९परांकुश मुनिद्वितिय	९श्रीयामुनाचार्य्य जी
		१० श्रीयामुनाचार्य्य	१०श्रीमहापूर्णाचार्य्यजी (श्रीपरांकुशजीद्वितीय)
		११ महापूर्णाचार्य्यजी १२स्वामीश्रीरामानुज	११स्वामीश्रीरामानुजजी
		१३ इत्यादि	१२ इत्यादि
४३६	२१	स्वानी	स्वामी
४३७	१७	मारे	मारौं
४३७	१९	११६;४१३	११७; ५१२

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५६	८	प्राप्त	प्रात
४६७	१८	गुरु राज	गुरु, राजा
४६७	२१	यो	यों
४६८	१	प्रचार; डारी	प्रचारि; डारि
४७२	१८	शिष्य	शिष्य (लघुगुरुभाई)
४७३	१३	पोखि जन	पोखी उन
४७९	१३	।	,
४८२	१	बालम !	बालक !
४८२	११	मुक्तिनास्ति सत्य	मुक्तिर्नास्ति सत्यं
४८७	१४	पृष्ठ ३७२	पृष्ठ ४७२
४९१	१३	द्वितय	द्वितीय
४९८	१४	पर, चैप्रभुता	परचै, प्रभुता
५०१	१७	तिहुँ	तेहिँ
५०१	१८	सबन	सुनन
५०७	४	तियाकिया,	तिया, किया
५१०	१५	वही	यही
५१४	१	हिले	हो ले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१५	११	चाहो	चाहौं
५१५	२०	वास्ते	लिये
५१६	१४	बड़ो	बड़े
५१७	२३	कोहु	कोऊ
५१८	५	कहि	कही
५१८	६	लेखि	लखि
५२४	२२	मिले	मिलैं
५२६	९।१३	पाय	पाए
५३३	५	४४०	४०
५३३	२१	ज्ञानी,	ज्ञानी)
५३६	१	विन्दु माधवजी	विन्दुमाधवजी ने
५४१	१७	लगव	लगावै
५४२	४	कि	तो
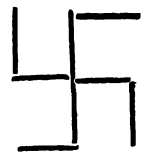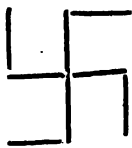
(कवित)

सोयो जौन "सरजू" के पास मै पसारि पग, सो तो मानौ जोग की समाधि सुख स्वै चुक्यौ; जोयो जौन नैन "राम-नैनजलजातजा" को, सो तो ही के नैन मानौ ब्रह्म ज्योति ज्वै चुक्यौ॥ बोयो जो "वसिष्ठजा" को प्रेम बीज उर बीच, मानौ सो प्रमोद प्रद कल्प-बृक्ष ब्वै चुक्यो; धोयो "रामगंग" मै जो अंग रसरंग-मणी, सो तो जग जनम मरन दाग ध्वै चुक्यो ॥१॥ लेत मुख नाम "रामगङ्ग" रसरङ्गमणी ! देत सुख संग, भारी भव भीति भूलती। शरद ससी के कल किरनै समान तुंग तरल तरंग ताके ताप निरमूलती ॥ परसत पाथ, सीतानाथ अनुराग बाग बेलि रसकेलि उर फैलि फलि फूलती। सरजू के कूल कौन पूछै रिद्धि, सिद्धि भुक्ति ,मुक्ति, झुण्ड झाउन के झारन में भूलती ॥२॥

(सवैया) कैधो विराट स्वरूप सुवृक्ष पै मुक्ति मरालनि केरि कतार है। पातकशत्रु विनाशकरी, अकि राघव की उघरी तरवार है॥ कै सबको बिनदामहिं आनँद दाइनि रामकृपा की बजार है। की रसरंगमनी अवनी पर सोहति "श्री सरजू सरि" धार है ॥१॥

(श्रीरामरसरङ्गमणि)

॥ श्रीहंसकलादेव्यै नमः ॥

॥ श्रीअयोध्यासरयूभ्यां नमः ॥

(दो०) "परमहंस सीताशरण[१]" राम प्रेम आगार।
सन्तशिरोमणि, लाल-प्रिय, नेमी, सहज उदार ॥१॥
हनुमत पदपंकज मधुप, सन्त "गोमती दास[२]"।
हरिजन बल्लभ सर्ब हित, तेजपुंज, तपरास ॥२॥
तजि ईर्षा, तजि मोहमद, तजि मत्सर, तजि काम।
उर धरि सीताराम पद, बसत अवधपुर धाम ॥३॥
"रामबल्लभाशरण[३]" शुचि, पण्डित, सन्त, प्रवीन।
बिपिन प्रमोद विराजहीं, शोभा नित्य नवीन ॥४॥
नेम-प्रेम- बिज्ञान-सर, विकसित तीनों कंज।
इनके पद रंज सीस धर, धन्य ते जन सुखपुंज ॥५॥
"पंडित श्रीशिवराम[४]" "श्रीमणी रामरसरंग[५]"।
भक्तमालवक्ता युगल, भक्ति अमिय जनु गंग ॥६॥
"श्यामसुन्दरी शरण[६]" जी, रसिक प्रवीण-सिंगार।
कनकभवन-सरकार युग, पद रज प्रेम अपार ॥७॥
"युगलविहारिणिशरण[७]" श्री स्वामी "गङ्गा दास[८]"।
"पंडित रामनारायण,[९]" विरति प्रेम गुण रास ॥८॥
"रामरतन पण्डित[१०]" विदित, 'रामकोट' यस बास।
पंडित 'तुलसी बाड़ि' के "श्री विश्वेश्वर दास[११]" ॥९॥

(दीन सीतारामशरण भगवान् प्रसाद)